First Edition 750 Copies

Copies of this book can be had direct from Jaina Samskriti Samrakshaka Sangha, Santosha Bhavan, Phaltan Galli, Sholapur (India)

Price Rs. 10 per copy, exclusive of postage

जीवराज जैन ग्रंथमालाका परिचय

सोलापूर निवासी ब्रह्मचारी जीवराज गौतमचदजी दोशी कई वर्षोसे ससारसे उदासीन होकर धर्मकार्यमे अपनी वृत्ति लगा रहे थे। सन् १९४० मे उनकी यह प्रबल इच्छा हो उठी कि अपनी न्यायोपार्जित सपत्तिका उपयोग विशेष रूपमे धर्म और समाजकी उन्नतिके कार्यमे करे। तदनुसार उन्होने समस्त देशका परिभ्रमण कर जैन विद्वानोसे साक्षात् और लिखित सम्मतिया इस बातकी सग्रह की कि कौनसे कार्यमे सपत्तिका उपयोग किया जाय। स्फुट मतसचय कर लेनेके पश्चात् सन् १९४१ के ग्रीष्म कालमे ब्रह्मचारीजीने तीर्थक्षेत्र गजपथा (नासिक) के शीतल वातावरणमे विद्वानोकी समाज एकत्र की और ऊहापोह पूर्वक निर्णयके लिए उक्त विषय प्रस्तुत किया। विद्वत्-सम्मेलनके फलस्वरूप ब्रह्मचारीजीने जैन सस्कृति तथा साहित्यके समस्त अगोके सरक्षण, उद्धार और प्रचारके हेतुसे 'जैन सस्कृति सरक्षक सघ' की स्थापना की और उसके लिए रु ३०,००० तीस हजारके दानकी घोषणा कर दी। उनकी परिग्रहनिवृत्ति बढती गई, और सन् १९४४ मे उन्होने लगभग रु २,००,००० दो लाखकी अपनी सपूर्ण सपत्ति सघको ट्रस्ट रूपसे अर्पण कर दी। इस तरह आपने अपने सर्वस्वका त्याग कर दि १६-१-५७ को अत्यन्त सावधानी और समाधानसे समाधिमरणकी आराधना की। इसी सघके अतर्गत 'जीवराज जैन ग्रथमाला'का सचालन हो रहा है। प्रस्तुत ग्रथ इसी ग्रथमालाका तेरहवा पुष्प है।

प्रकाशक
गुलाबचद हिराचद दोशी
जैन सस्कृति सरक्षक सघ
सोलापूर

मुद्रक
शकर रामचद्र दाते
यशवत मुद्रणालय,
१८३५ सदाशिव, पूना २

लोकविभागः



स्व. ब्रह्मचारी जीवराज गौतमचंदजी दोशी,
मस्थापक, जैन सस्कृति सरक्षक सघ, शोलापूर

जीवराज जैन ग्रथमाला, ग्रथ १३

ग्रन्थमाला–सम्पादक

डॉ. आ. ने. उपाध्ये
एम् ए, डी लिट
कोल्हापूर

और

डॉ. हीरालाल जैन,
एम ए, एल्एल् बी., डी लिट
जबलपूर

श्री सिंहसूरर्षि-विरचित

लोक-विभाग

(जैन विश्व-विधान-प्ररूपक संस्कृत-ग्रन्थ)

हिन्दी अनुवाद, आलोचनात्मक प्रस्तावना, पाठान्तर एव परिशिष्टो आदिसे सहित
प्रथम वार सम्पादित

सम्पादक

बालचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री
जैन सस्कृति सरक्षक सघ, सोलापूर.

प्रकाशक

गुलाबचन्द हीराचन्द दोशी
जैन सस्कृति सरक्षक सघ, सोलापूर

वि सं. २०१९] वीर-निर्वाण सं. २४८८ [ई. सन् १९६२

विषयानुक्रमाणिका

प्रधान सम्पादकीय वक्तव्य

प्रस्तुत ग्रथमालामे हम करणानुयोग विषयक दो ग्रथो–तिलोयपण्णत्ति और जम्बूदीव-पण्णत्ति–को पाठकोके हाथमे सौप चुके हैं। अब उसी विषयका यह तीसरा ग्रथ उपस्थित है।

इस ग्रथके सम्पादकने अपनी प्रस्तावनामे इस रचनाका अनेक दृष्टियोसे परिचय कराया है जो ग्रथकी भाषा, विषय व इतिहासकी जानकारीके लिये महत्त्वपूर्ण है। विशेष ध्यान देने योग्य इस ग्रथके अन्तकी प्रशस्ति है जिसमे कहा गया है कि "इस विश्वकी रचनाका जो स्वरूप भगवान् महावीरने बतलाया, सुधर्मादि गणधरोने जाना और आर्चार्यपरम्परासे चला आया, उसे ही सिंहसूर ऋषिने **भाषापरिवर्तनसे** यहा रचा है" (११, ५१)। ग्रंथकारके इस कथनसे सुस्पष्ट है कि जिस परम्परासे उन्हे यह ज्ञान प्राप्त हुआ उसमे महावीरसे लगाकर उनके समय तक कोई भाषापरिवर्तन नही हुआ था, उन्होने ही उसे भाषान्तरका रूप दिया। यह भली भाति ज्ञात है कि महावीर स्वामीने अपना उपदेश सस्कृतमे नही, प्राकृतमे दिया था, और उनके गणधरोने तथा उनके अनुयायी आचार्योंने भी उसे प्राकृतमे ही ग्रथरूपसे रचा था, सिंहसूरको अपने कालमे प्राकृत पठन-पाठनके ह्रास व सस्कृतके अधिक प्रसारके कारण यह आवश्यकता प्रतीत हुई होगी कि इस विषयका ग्रथ सस्कृतमे भी उतारना चाहिये, और यही उनके भाषापरिवर्तनका हेतु रहा।

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि उक्त प्राकृत रचनाकी परम्परामे किस विशेष ग्रंथके आधारसे सिंहसूरने यह भाषापरिवर्तन उपस्थित किया? इसका उत्तर भी उन्होने आगे के पद्य (११, ५२ आदि) मे बहुत स्पष्टतासे दे दिया है। अपने कार्यके लिये उनके सम्मुख जो ग्रथ विशेष रूपसे उपस्थित था वह था सर्वनन्दि मुनि द्वारा लिखित वह शास्त्र जो उन्होने काञ्चीनरेश सिंहवर्माके राज्यकालमे शक सवत् ३८० मे पूर्ण किया था। इस प्रकार इसमे किसी सशयको अवकाश नही रहता कि प्रस्तुत सस्कृत रचना मुख्यत मुनि सर्वनन्दि की प्राकृत रचनाके आधारसे की गई है। उस प्राकृत ग्रथका क्या नाम था, यह यद्यपि उक्त प्रशस्तिमे पृथक् रूपसे नही कहा गया, किन्तु प्रसग पर से स्पष्टत उसका नाम 'लोयविभाग' (स लोकविभाग) ही रहा होगा। जब कोई लेखक प्रतिज्ञापूर्वक एक ग्रथका भाषापरिवर्तन अर्थात् आधुनिक शब्दोमे अनुवाद मात्र करता है तब वह उस ग्रथका नाम बदलनेका साहस नही करता। दूसरे तिलोयपण्णत्तिमे 'लोय-विभाग' का अनेक वार प्रमाणरूपसे उल्लेख किया गया है जिसका अभिप्राय सिंहसूरकी रचनासे कदापि नही हो सकता। इससे सर्वनन्दिकी रचनाका नाम **लोयविभाग**, तथा उसकी प्राचीनता व मान्यता भले प्रकार सिद्ध होती है।

इस परिस्थितिमे प्रस्तुत ग्रथके विद्वान् सम्पादकने अपनी प्रस्तावना (पृष्ठ २५) मे जो 'क्या सर्वनन्दिकृत कोई लोकविभाग रहा है?' 'सम्भव है उसका कुछ अन्य ही नाम रहा हो, और वह कदाचित् सस्कृतमे रचा गया हो' इत्यादि वाक्यो द्वारा सर्वनन्दिकी रचना और

उसके प्रस्तुत ग्रंथकी आधारभूमि होनेमे एक बडी शकाशीलता प्रकट की है वह निरर्थक प्रतीत होती है। जब प्रस्तुत लेखक प्रतिज्ञापूर्वक एक पूर्वग्रथका भापापरिवर्तन मात्र कर रहे हैं, तब स्पष्ट है कि उन्होने अपनी रचनाका वही नाम रखा होगा जो उसका आधारभूत ग्रथ था। यदि ऐसा न होता तो जब उन्होने उसके रचयिताका नाम लिया, उनके कालके राजाका भी और रचनाकालका भी निर्देश किया तब वे उसका असली नाम छिपाकर क्यो रखते? यदि वह मूल ग्रथ सस्कृतमे ही था तब उसका उसी भापामे रूपान्तर करने और उसे भापा परिवर्तन कहनेका क्या हेतु रहा होगा? सस्कृतका सस्कृतमे ही भापापरिवर्तन करना विद्यार्थियोके अभ्यासके लिये अवश्य सार्थक है, किन्तु ग्रथकारके लिये न तो वह कुछ अर्थ रखता है और न प्राचीन प्रणालीमे उसे भापापरिवर्तन कहे जानेके कोई अन्य प्रमाण दिखाई देते। हा, प्राचीन प्राकृत ग्रथोके सस्कृत रूपान्तर अनेक दृष्टिगोचर होते है। अभी जो हरिदेवकृत अपभ्रश भापाका 'मयण-पराजय-चरिउ' ज्ञानपीठ, काशी, से प्रकाशित हुआ है उसका उन्हीकी पाच पीढी पश्चात् नागदेव द्वारा सस्कृत रूपान्तर किया गया था। नागदेवने स्पष्ट कहा है कि "जिस कथाको हरिदेवने प्राकृतमे रचा था उसे ही मैं भव्योकी धर्मवृद्धिके लिये सस्कृतवद्ध उपस्थित करता हू।" इस प्रकार प्राकृतका सस्कृतमे भापापरिवर्तन करनेकी प्रतिज्ञा करके भी नागदेवने अपनी रचनामे वहुत कुछ नयापन लानेका प्रयत्न किया है और ज्ञानार्णव आदि ग्रथोसे अनेक अवतरण भी जोड दिये हैं। सिहसूर द्वारा किये गये लोकविभाग के भापापरिवर्तनको हमे इसी प्रकार समझना चाहिये। उसमे यदि पीछेके लेखकोके अवतरणादि मिलते है तो उनसे उसका सर्वनन्दिकी रचनाके सस्कृत रूपान्तर होनेकी वात असिद्ध नही होती।

प वालचन्द्रजीने जो इस ग्रथके सशोधन, अनुवाद व प्रस्तावना लेखनमे परिश्रम किया है उसके लिये प्रधान सम्पादक उनके कृतज्ञ है।

इस वातका हमे परम हर्प है कि इस ग्रथमालाके मन्त्री व अन्य अधिकारी मालाके प्रकाशनकार्यको गतिशील वनानेके लिये सदैव तत्पर रहते हैं। उनके इसी उत्साहके फलस्वरूप यह ग्रथमाला इतना प्रकाशनकार्य कर सकी है, और आगे वहुत कुछ करनेकी आशा रखती है।

कोल्हापूर — आ ने उपाध्ये
जबलपूर — हीरालाल जैन

सम्पादकीय वक्तव्य

लगभग सात वर्ष पूर्व मेरे अमरावती रहते हुए जब जबूदीवपण्णत्तीके प्रकाशनका कार्य चल रहा था तब श्री डॉ हीरालालजी और डॉ ए एन् उपाध्येजीकी यह प्रबल इच्छा दिखी कि वर्तमान लोकविभागको प्रामाणिक रीतिसे सपादित कर उसे भी इस जीवराज जैन ग्रन्थमालासे प्रकाशित कराया जाय। तिलोयपण्णत्तीमे अनेक स्थलोपर जिस लोकविभागका उल्लेख किया गया है उसका इस वर्तमान लोकविभागसे कितना सम्बन्ध है, इसका अध्ययन चूकि मैं स्वय भी करना चाहता था, अत एव उक्त दोनो महानुभावोकी प्रेरणासे मैने इस कार्यको अपने हाथमे ले लिया था। परन्तु परिस्थिति कुछ ऐसी निर्मित हुई कि अमरावतीमे मुद्रणकी व्यवस्था पूर्वके समान सुचारु न रह सकनेसे मुझे षट्खण्डागमके १३ वे भागके प्रकाशनकार्यके लिये लगभग एक वर्ष बम्बई रहना पडा, जहा इस कार्यको प्रारम्भ करना शक्य नही हुआ। तत्पश्चात् उक्त षट्खण्डागमके शेष १४-१६ भागोके प्रकाशनकार्यके लिये बम्बईको भी छोडकर बनारस जाना पडा।

बनारसमे उस कार्यको करते हुए जो समय मिलता उसमे इस लोकविभागके अनुवादको चालू कर दिया था। उसकी प्रतिलिपि श्री डॉ उपाध्येजी बहुत पूर्वमे करा चुके थे और उसे उन्होने तिलोयपण्णत्तीकी प्रस्तावनामे उसका परिचयादि देनेके लिये मेरे पास बहुत समय पहिले ही भेज दिया था। अनुवादका कार्य मैने इसी प्रतिलिपिपरसे प्रारम्भ किया था। किन्तु एक मात्र इसपरसे अनुवादके करनेमे कुछ कठिनाईका अनुभव हुआ। तब मैने जैन सिद्धान्त-भवन आराकी प्रतिको भिजवा देनेके लिए सुहृद्वर प नेमिचन्दजी ज्योतिषाचार्यको लिखा। वे यद्यपि इसका स्वय सपादन करना चाहते थे, फिर भी मेरे द्वारा उसका कार्य प्रारम्भ कर देनेपर उन्होने सहर्ष उस प्रतिको मेरे पास भिजवा दिया और अपने उस विचारको स्थगित भी कर दिया। परन्तु इस प्रतिमे पूर्वोक्त प्रतिलिपिसे कोई विशेषता नही दिखी। इस प्रकार मेरी वह कठिनाई तदवस्थ ही रही।

जब मैं बम्बईमे श्रद्धेय स्व. प. नाथूरामजी प्रेमीके यहा रह रहा था तब उनके 'जैन साहित्य और इतिहास' के द्वितीय सस्करण का मुद्रणकार्य चालू हो गया था। उसमे पहिला लेख 'लोकविभाग और तिलोयपण्णत्ती' ही है। उसको मैने देखा था व तद्विषयक चर्चा भी उनके साथ होती रहती थी। उसका स्मरण करके मैंने अपनी उस कठिनाईके सम्बन्धमे प्रेमीजीको लिखा। उन्होने उसी समय अपनी ओरसे १०० रु जमा करके ऐ प सरस्वती भवन बम्बई की प्रति हस्तगत की और मेरे पास भेज दी। इस प्रतिमे यह विशेषता थी कि श्लोकोके मध्यमे सख्याक भी निर्दिष्ट थे। इससे सशोधनके कार्यमे पर्याप्त सहायता मिली। इस प्रकारसे अनुवादका कार्य प्राय. बनारसमे समाप्त हो चुका था। परन्तु वहा रहते हुए प्रथमत पत्नीका स्वास्थ्य खराब हुआ और वह ठीक भी न हो पाया था कि मै स्वय भी बीमार पड गया। इस बीमारीके कारण

मुझे वनारस ही छोड़ना पडा । लगभग ५-६ मासमे जव स्वास्थ्यलाभ हुआ तव सोलापुर आ जानेपर उसके प्रस्तावनादि विपयक शेप कार्यको पूरा कर सका ।

इसके पश्चात् मुद्रणके कार्यमे अधिक विलव हो गया है । उसे लगभग ४ वर्ष पूर्व मुद्रणके लिये प्रेसमे दे दिया था । परन्तु प्रेसकी कुछ अनिवार्य कठिनाइयोके कारण उसका मुद्रण कार्य शीघ्र नही हो सका । अस्तु ।

इन सव कठिनाइयोसे निकलकर आज उसे पाठकोके हाथमे देते हुए अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है । ऐसे अप्रकाशित ग्रन्थोके प्रथमत. प्रकाशित करनेमे सशोधनादि विपयक जो कठिनाइया उपस्थित होती है उनका अनुभव भुक्तभोगी ही कर सकते है । ऐसी परिस्थितिमे यद्यपि प्रस्तुत सस्करणको उपयोगी वनानेका यथासम्भव पूरा प्रयत्न किया गया है, फिर भी इसमे जो त्रुटिया रही हो उन्हे क्षन्तव्य मानता हू ।

मुझे इस वातका हार्दिक दुख है कि जिनका इस कार्यमे मुझे अत्यधिक सहयोग मिला है वे स्व प्रेमीजी हमारे बीचमे नही है व इस सस्करणको नही देख सके । फिर भी स्वर्गमे उनकी आत्मा इससे अवश्य सन्तुष्ट होगी, ऐसा मानता हू ।

अन्तमे मैं सुहृद्वर प नेमिचन्द्रजी ज्योतिपाचार्यको नही भूल सकता हू कि जिन्होने प्रस्तुत ग्रन्थके स्वयं संपादनविपयक विचारको छोडकर जैन सिद्धान्त-भवन आराकी प्रतिको भेजते हुए मुझे इस कार्यमे सहायता पहुचायी है । आदरणीय डॉ उपाध्येजी और डॉ हीरालालजीका तो मैं विशेष आभारी हू, जिनकी इस कार्यमे अत्यधिक प्रेरणा रही है तथा जिन्होने प्रस्तावनाको पढकर उसके सम्वन्धमे अनेक उपयोगी सुझाव भी दिये हैं । श्री डॉ उपाध्येजीने तो ग्रन्थकी उस प्रतिलिपिको भी मुझे दे दिया जिसे उन्होने स्वय कराया था । साथ ही उन्होने ग्रन्थके अन्तिम प्रूफोको भी देखनेकी कृपा की है । श्री प जिनदासजी शास्त्री न्यायतीर्थने ग्रन्थकी श्लोकानुक्रमणिकाको तैयार कर हमे अनुगृहीत किया है । जिस जीवराज जैन ग्रन्थमालाकी प्रवन्ध समितिने इस ग्रन्थके प्रकाशनकी अनुमति देकर मुझे प्रोत्साहित किया है उसका भी मैं अतिशय कृतज्ञ हू । इत्यलम् ।

श्रुत-पचमी
वी नि स २४८८

बालचन्द्र शास्त्री

प्रस्तावना

१. हस्तलिखित प्रतियां

प्रस्तुत ग्रन्थका सम्पादन निम्न प्रतियोंके आधारसे किया गया है –

प– यह प्रति भाण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इस्टीटचूट पूना की है । इसपरसे श्रीमान् डॉ. ए एन्. उपाध्येजीने ग्रन्थकी जो प्रतिलिपि करायी थी उसपरसे इस ग्रन्थका मुद्रण हुआ है।

आ– यह प्रति जैन सिद्धान्त भवन आराकी है। वह हमे सुहृद्वर प नेमिचन्दजी ज्योतिषाचार्यके द्वारा प्राप्त हुई है । इसकी लम्बाई चौडाई १३×८ इच है । सब पत्र ७० है। इसके प्रत्येक पत्रमे दोनो ओर १३–१३ पक्तिया और प्रत्येक पक्तिमे लगभग ३५ अक्षर हैं। ग्रन्थका प्रारम्भ '।। श्रीवीतरागाय नम ।।' इस मगल वाक्यको लिखकर किया गया है। प्रतिके अन्तमे उसके लेखक और लेखनकालका कोई निर्देश नही है। फिर भी वह अर्वाचीन ही प्रतीत होती है । इसमे श्लोकोकी सख्या सर्वथा नही दी गई है । इसमे व पूर्व प्रतिमे भी २-३ स्थलोपर कुछ (२–४) पद्य नही पाये जाते हैं। जैसे– दसवे विभागमे १२ वा श्लोक और इसी विभागमे (पृ २१३) श्लोक ३२१ के आगे ति प. से उद्धृत गाथा २८–३० व ३१ का पूर्वार्ध भाग ।

ब– यह प्रति श्री ए पन्नालाल सरस्वती भवन बम्बईकी है । इस प्रतिको हमे श्रद्धेय स्व प नाथूरामजी प्रेमीने कष्टसे प्राप्त करके भिजवाया था । इसमे सब पत्र ७७ हैं। प्रत्येक पत्रकी दोनो ओर १२ पक्तिया तथा प्रत्येक पक्तिमे लगभग ३५ अक्षर हैं। ग्रन्थका प्रारम्भ '।। श्रीवीतरागाय नम ।।' इस मगल वाक्यसे किया गया है। यह प्रति मूडविद्रीमे वी नि स २४५९ मे श्री एन् नेमिराजके द्वारा लिखी जाकर मार्गशीर्ष शुक्ल पौर्णिमाको समाप्त की गई है, ऐसा प्रतिकी अन्तिम प्रशस्तिसे ज्ञात होता है। वह प्रशस्ति इस प्रकार है– लिखितोऽय ग्रन्थ महावीर शक २४५९ रक्ताक्षि स । मार्गशीर्ष शुक्लपक्षे पौर्णिमास्या तिथौ एन् नेमिराजाख्येन (जैन-मूडबिद्र्या निवसता) मया समाप्तश्च । शुभ भवतु । स्वस्तिररतु ।

प्रस्तुत सस्करणमे तिलोयपण्णत्तीकी पद्धतिके अनुसार श्लोकके नीचे और क्वचित् उसके मध्यमे भी जो सख्याकोका निर्देश किया गया है वह इस प्रतिके ही आधारसे किया गया है । ये अक पूर्वनिर्दिष्ट (आ प) दोनो प्रतियोमे नही पाये जाते हैं। इस प्रतिमे 'ध' के स्थानपर बहुधा 'द' पाया जाता है ।

२. ग्रन्थपरिचय

प्रस्तुत ग्रन्थ 'लोकविभाग'[१] इस अपने नामके अनुसार अनादिसिद्ध लोकके सब ही विभागोका वर्णन करनेवाला है। इसकी गणना प्रसिद्ध चार अनुयोगोमेसे करणानुयोग

---

१ प नाथूराम प्रेमी 'लोकविभाग और तिलोयपण्णत्ति', जैन साहित्य और इतिहास पृ १–२२ (बबई, १९५६), अनेकान्त, २, पृ ८ इत्यादि

(गणितानुयोग) के अन्तर्गत की जाती है। जैसा कि ग्रन्थके अन्तमे निर्दिष्ट किया है[1], श्री वर्धमान जिनेन्द्रके द्वारा प्ररूपित लोकका स्वरूप सुधर्म आदि गणधरों तथा अन्य आरातीय आचार्योकी परपरासे जिस प्रकार प्राप्त हुआ है उसी प्रकारसे उसका वर्णन यहा सिंहसूरर्षिके द्वारा भाषा मात्रका परिवर्तन करके किया गया है। आगे यह भी सकेत किया गया है कि ग्रन्थकी रचना शक स ३८०मे श्री मुनि सर्वनन्दीके द्वारा पाणराष्ट्रके अन्तर्गत पाटलिक नामके ग्राममे की गई थी[2]। उस सर्वनन्दिविरचित ग्रन्थमे प्रस्तुत ग्रन्थका कितना सम्बन्ध है, उसकी चर्चा हम आगे स्वतन्त्र शीर्षक द्वारा करेंगे। अस्तु। यह ग्रन्थ सस्कृत भाषामे अधिकाश अनुष्टुप् वृत्तके द्वारा रचा गया है। प्राय प्रत्येक विभागके अन्तमे उसके विषयका उपसहार एक एक भिन्न वृत्तके द्वारा किया गया है। यथा– प्रथम विभागमे दो उपजाति वृत्त, द्वितीय विभागमे एक उपजाति, तृतीय विभागमे द्रुतविलम्बित, षष्ठ विभागमे मालिनी, सप्तम विभागमे मत्तमयूर, अष्टम विभागमे हरिणी, नवम विभागमे मन्दाक्रान्ता, दशवे विभागमे वसन्ततिलका, तथा ग्यारहवे विभागमे दो शार्दूलविक्रीडित और एक वसन्ततिलका। इनमे सातवेसे ग्यारहवे विभाग तक उन वृत्तोंके नामको किसी प्रकारसे ग्रन्थकारने स्वय ही उन पद्योमे व्यक्त कर दिया है। प्रथम विभागके अन्तर्गत ९७वे श्लोकमे पृथ्वी छन्दका लक्षण (वृ र ३–१२४) पाया जाता है, परन्तु वह यहा दो ही पादोमे उपलब्ध होता है।

यह ग्रन्थ उन ग्यारह प्रकरणोमे विभक्त है— जम्बूद्वीपविभाग, लवणसमुद्रविभाग, मानुषक्षेत्रविभाग, द्वीप-समुद्रविभाग, कालविभाग, ज्योतिर्लोकविभाग, भवनवासिलोकविभाग, अधोलोकविभाग, व्यन्तरलोकविभाग, स्वर्गविभाग और मोक्षविभाग। इसकी श्लोकसख्या ३८४+५२+७७+९२+१७६+२३६+९९+१२८+९०+३४३+५८ = १७३७ है। इसके अतिरिक्त लगभग १७० पद्य इसमे तिलोयपण्णत्ती, त्रिलोकसार और जबूदीवपण्णत्ती आदि अन्य ग्रन्थोंके भी उद्धृत किये गये है। पाचवे विभागमे ३८वे श्लोकसे आगे १३७वे श्लोक तक सब ही श्लोक आदिपुराण (पर्व ३)के हैं। इनमे अधिकाश श्लोक ज्योंके त्यों पूर्णरूपमे ही लिये गये है। परन्तु कही कही उसके १-१ व २-२ चरणोको लेकर भी श्लोक पूरा किया गया है। इससे कही कही पूर्वापर सम्बन्ध टूट गया है। यथा —

तेषा विक्रियया सान्तर्गर्जया तत्रसु प्रजा । इमे भद्रमृगा पूर्वं सवसन्तोऽनुपद्रवा ॥ ५०
इदानी तु विना हेतो शृङ्गैरभिभवन्ति न । इति तद्वचनाज्जातसौहार्दो मनुरब्रवीत् ॥ ५१

इन दो श्लोकोमे प्रथमका पूर्वार्ध आ पु के ९४वे श्लोकका पूर्वार्ध, उसका तृ चरण आ पु के ९५वे श्लोकका प्र चरण तथा चतुर्थ चरण आ पु के ९६वे श्लोकका चतुर्थ चरण है। द्वितीय श्लोकका पूर्वार्ध आ पु के ९७वे श्लोकका पू और उत्तरार्ध आ पु के ९९वे श्लोकका पूर्वार्ध है। प्रथम श्लोकके पूर्वार्धके पश्चात् आ पु. मे यह अश है जो उस सम्बन्धको जोडता है– पप्रच्छुस्ते तमभ्येत्य मनु स्थितमविस्मितम् ॥९४ उ॥ वह सम्बन्ध यहाँ टूट गया है।

---

१ भव्येभ्य सुरमानुषोरुसदसि श्रीवर्धमानार्हता यत्प्रोक्त जगतो विधानमखिल ज्ञात सुधर्मादिभि ।
आचार्यावलिकागत विरचित तत् सिंहसूरर्षिणा भाषाया परिवर्तनेन निपुणै सम्मानित साधुभि ॥ ११–५१

२ वैश्वे स्थिते रविसुते वृषभे च जीवे राजोत्तरेषु सितपक्षमुपेत्य चन्द्रे ।
ग्रामे च पाटलिकनामनि पाणराष्ट्रे शास्त्र पुरा लिखितवान् मुनिसर्वनन्दी ॥ ११–५२
सवत्सरे तु द्वाविंशे काञ्चीश सिंहवर्मण । अशीत्यग्रे शकाब्दाना सिद्धमेतच्छतत्रये ॥ ११–५३.

३. विषयका सारांश

प्रस्तुत ग्रन्थमे निम्न ११ प्रकरण है, जिनमे अपने अपने नामके अनुसार लोकके अवयवभूत जम्बूद्वीप एव लवणसमुद्र आदिका वर्णन किया गया है। यथा—

१. **जम्बूद्वीपविभाग**— इस प्रकरणमे ३८४ श्लोक हैं। यहाँ जिन-नमस्कारपूर्वक क्षेत्र, काल, तीर्थ, प्रमाणपुरुष और उनके चरित्र स्वरूपसे पाँच प्रकारके पुराणका निर्देश करके यह बतलाया है कि अनन्त आकाशके मध्यमे जो लोक अवस्थित हे उसके मध्यगत विभागका नाम तिर्यग्लोक है। उसके मध्यमे जम्बूद्वीप, और उसके भी मध्यमे मन्दर पर्वत अवस्थित है। लोकके तीन विभाग इस मन्दर पर्वतके कारण ही हुए है— मन्दर पर्वतके नीचे जो लोक अवस्थित है उसका नाम अधोलोक, उस मन्दर पर्वतकी ऊचाई (१ लाख यो) के बराबर ऊचा द्वीप-समुद्रोके रूपमे जो तिरछा लोक अवस्थित है उसका नाम तिर्यग्लोक,तथा उक्त पर्वतके उपरिम भागमें अवस्थित लोकका नाम ऊर्ध्वलोक है। इस प्रकार लोकके इन तीन विभागो और उनके आकारका निर्देश करते हुए तिर्यग्लोकके मध्यमे अवस्थित जम्बूद्वीपके वर्णनमे छह कुलपर्वत, सात क्षेत्र, विजयार्ध व उसके ऊपर स्थित दो विद्याधरश्रेणियोके ११० नगर, नाभिगिरि आदि अन्य पर्वत, गगा-सिन्धु आदि नदियाँ, जम्बू व शाल्मलि वृक्ष, ३२ विदेह, मेरु पर्वत व उसके चार वन, जिनभवन, जम्बूद्वीपकी जगती, विजयादिक ४ गोपुरद्वार तथा इस जम्बूद्वीपसे सख्यात द्वीप जाकर आगे स्थित द्वितीय जम्बूद्वीप व उसके भीतर अवस्थित विजयदेवका पुर, इन सब भौगोलिक स्थानोका वर्णन यहा यथास्थान समुचित विस्तारके साथ किया गया है।

२. **लवणसमुद्रविभाग**— इस प्रकरणमे ५२ श्लोक हैं। यहाँ लवणसमुद्रके विस्तार व उसके आकारका निर्देश करके कृष्ण व शुक्ल पक्षके अनुसार उसके जलकी ऊचाईमे होनेवाली हानि-वृद्धिका स्वरूप दिखलाया गया है। इस समुद्रके मध्यमे जो पूर्वादि दिशागत ४ प्रमुख पाताल, विदिशागत ४ मध्यम पाताल व उनके मध्यमे स्थित १००० जघन्य पाताल है उनके भीतर स्थित जल व वायुके विभागोमे होनेवाले परिवर्तनके साथ उक्त पातालोके पार्श्वभागोमे अवस्थित पर्वतो, गौतमद्वीप और २४ अन्तरद्वीपोका वर्णन करते हुए उनके भीतर अवस्थित कुमानुषोका स्वरूप दिखलाया गया है।

३. **मानुषक्षेत्रविभाग**— इस प्रकरणमे ७७ श्लोक है। यहाँ धातकीखण्डद्वीपकी प्ररूपणामे दो मेरु, दो इष्वाकार, दोनो ओरके छह छह कुलपर्वतो व सात सात क्षेत्रोके अवस्थान और उनके विस्तारादिका वर्णन है। तत्पश्चात् कालोदक समुद्रकी प्ररूपणा करते हुए लवण समुद्रके समान उसके भी भीतर अवस्थित अन्तरद्वीपो और उनमे रहनेवाले कुमानुषोका विवेचन किया गया है। तत्पश्चात् पुष्कर नामक वृक्षसे चिह्नित पुष्करद्वीपका विवरण करते हुए धातकीखण्डद्वीपके समान वहाँपर अवस्थित मेरु, कुलाचल, इष्वाकार और क्षेत्रोके अवस्थान व विस्तारादिकी प्ररूपणा की गई है। इस पुष्करद्वीपके भीतर ठीक मध्यमे द्वीपके समान गोल मानुषोत्तर नामका पर्वत अवस्थित है। इससे उक्त द्वीपके दो विभाग हो गये है— अभ्यन्तर पुष्करार्ध और बाह्य पुष्करार्ध। अभ्यन्तर पुष्करार्धमे धातकीखण्डद्वीपके समान पर्वत, क्षेत्र और नदियाँ आदि अवस्थित है। जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड और अभ्यन्तर पुष्करार्ध तथा

लवणोद व कालोद ये दो समुद्र, इतने (पु. ८+का. ८+धा ४+ल २+ज १+ल २+धा ४ +का ८+पु. ८ = ४५ लाख योजन) क्षेत्रको अढाई द्वीप अथवा मनुष्यक्षेत्रके नामसे कहा जाता है। मनुष्यक्षेत्र कहलानेका कारण यह है कि मनुष्योका निवास व उनका गमनादि इतने मात्र क्षेत्रके ही भीतर सम्भव है, इसके बाहिर किसी भी अवस्थामे उनका अस्तित्व सम्भव नही है। अन्तमे उस मानुषोत्तर पर्वतके विस्तार, परिधि और उसके ऊपर स्थित कूटोका वर्णन करते हुए मध्यलोकमे स्थित ३९८ जिनभवनोको नमस्कार करके इस प्रकरणको समाप्त किया गया है।

४. समुद्र विभाग— इस प्रकरणमे ९२ श्लोक हैं। यहा सर्वप्रथम मध्यलोकमे स्थित असख्यात द्वीप-समुद्रोमे आदि व अन्तके १६–१६ द्वीपो व समुद्रोका नामोल्लेख करके समुद्रोके जलस्वाद और उनमे जहाँ जलचर जीवोकी सम्भावना है उनका नामोल्लेख किया गया है। तत्पश्चात् राजुके अर्धच्छेदोके क्रमका निर्देश करते हुए आदिके नौ द्वीप-समुद्रोके अधिपति देवोंके नामोका उल्लेख किया गया है। आगे चलकर नन्दीश्वर द्वीपका विस्तारसे वर्णन करते हुए उसके भीतर अवस्थित ५२ जिनभवनोमे अष्टाह्निक पर्वके समय सौधर्मादि इन्द्रोके द्वारा की जानेवाली पूजाका उल्लेख किया है। तत्पश्चात् अरुणवर द्वीप, अरुणवर समुद्रके ऊपर उद्गत अरिष्ट नामक अन्धकार, ग्यारहवे कुण्डलवर द्वीपके मध्यमे स्थित कुण्डल पर्वत व उसके ऊपर स्थित १६ कूट, तेरहवे रुचक द्वीपके मध्यमे स्थित रुचक पर्वत और उस रुचक पर्वतपर स्थित कूटोके ऊपर अवस्थित प्रासादोमे रहनेवाली दिक्कुमारिया व उनके द्वारा की जानेवाली जिनमाताकी सेवा, तथा अन्तिम स्वयभूरमण द्वीप व उसके मध्यमे स्थित स्वयप्रभ पर्वत, इन सबका यथायोग्य वर्णन किया गया है।

५. कालविभाग— इस प्रकरणमे १७६ श्लोक हैं। यहाँ प्रारम्भमे अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी कालोके विभागस्वरूप सुषमसुषमादि कालभेदोका उल्लेख करके अवसर्पिणीके प्रथम तीन कालोमे उत्पन्न होनेवाले मनुष्योके शरीरकी ऊचाई, आहारग्रहणकाल, पृष्ठास्थिसख्या, नौ प्रकारके कल्पवृक्षो द्वारा दी जानेवाली भोगसामग्री और तत्कालीन नर-नारियोके स्वरूपका निरूपण किया गया है। पश्चात् इन तीन कालोमेसे कौन-सा काल कहाँपर निरन्तर प्रवर्तमान है, इसका निर्देश करते हुए यह कहा गया है कि जब तृतीय कालमे पल्योपमका आठवा भाग ($\frac{1}{8}$) शेष रह जाता है तब चौदह कुलकर[1] व उनके पश्चात् आदि जिनेन्द्र भी उत्पन्न होते हैं। उन कुलकरोका वर्णन यहाँ अनुक्रमसे किया गया है। इनमे अन्तिम कुलकर नाभिराज थे। उनके समयमे कल्पवृक्षोकी फलदानशक्ति प्राय समाप्त हो चुकी थी। इसके पूर्व जो मेघ कभी दृष्टिगोचर

---

१ आवश्यकसूत्र (निर्युक्ति) मे कुलकरोकी सख्या सात निर्दिष्ट की गई है। यथा —
ओसप्पिणी इमीसे तइयाए समाए पच्छिमे भाए। पलितोवमट्ठभागे सेसमि य कुलगरुप्पत्ती ॥
अद्धभरहमज्झिल्लतिभागे गगासिधुमज्झम्मि। एत्थ बहुमज्झदेसे उप्पन्ना कुलगरा सत्त ॥ १४७–४८
यहा उनकी प्ररूपणा क्रमसे पूर्वभव, जन्म, नाम, प्रमाण, सहनन, सस्थान, वर्ण, स्त्रिया, आयु, भाग (कुलकर होनेका वयोभाग), भवनोपपात और नीति, इन १२ द्वारोंके आश्रयसे की गई है। नाम उनके ये हैं– १ विमलवाहन, २ चक्षुष्मान्, ३ यशस्वी, ४ अभिचन्द्र, ५ प्रसेनजित्, ६ मरुदेव और ७ नाभि।

नही हुए थे वे अब सघनरूपमे गर्जना करते हुए आकाशमे दिखने लगे थे। उनके द्वारा जो समुचित वर्षा की जाती थी उससे विना जोते व विना बोये ही अनेक प्रकारके अनाज स्वय उत्पन्न होकर पक चुके थे। परन्तु भोले-भाले प्रजाजन उनका उपयोग करना नही जानते थे। इसलिए वे भूख आदिसे पीडित होकर अतिशय व्याकुल थे। तव दयालु नाभिराजने उन्हे यथायोग्य आजीविकाके साधनोकी शिक्षा देकर निराकुल किया था। प्रसगवश यहाँ कुलकर, मनु व कुलधर आदि नामोकी सार्थकताका दिग्दर्शन कराते हुए उनके द्वारा यथायोग्य की जानेवाली दण्डव्यवस्थाके साथ पूर्वांग व पूर्व आदि विविध कालभेदोकी भी प्ररूपणा की गई है। कर्मभूमिके प्रारम्भमे ग्राम, पुर व पत्तन आदि तथा ग्रामाध्यक्ष आदिकी व्यवस्था भगवान् आदि जिनेन्द्रके द्वारा की गई थी। यहाँसे कर्मभूमिका प्रारम्भ हो जाता है। आगे अवसर्पिणीके शेष तीन कालोमे होनेवाली अवस्थाओका वर्णन करते हुए अवसर्पिणीका अन्त और उत्सर्पिणीका प्रारम्भ कैसे होता है, इसका दिग्दर्शन कराया गया है और अन्तमे उत्सर्पिणीके भी छह कालोका उल्लेख करके इस प्रकरणको समाप्त किया गया है।

६. **ज्योतिर्लोकविभाग**— इस प्रकरणमे २३६ श्लोक है। यहा प्रारम्भमे ज्योतिषी देवोके ५ भेदोका निर्देश करके पृथिवीतलसे ऊपर आकाशमे उनके अवस्थानको दिखलाते हुए ताराओके अन्तर तथा सूर्यादिके विमानोके विस्तार, बाहल्य व उनके वाहक देवोके आकार एव सख्याकी प्ररूपणा की गई है। तत्पश्चात् अभिजित् आदि नक्षत्रोका सचार, चन्द्रादिकोकी गतिकी विशेषता, चन्द्र-सूर्यका आवरण, मेरुसे ज्योतिर्गणकी दूरीका प्रमाण, द्वीप-समुद्रोमे चन्द्र व सूर्योकी सख्या, प्रत्येक चन्द्र व सूर्यके ग्रह-नक्षत्रोकी सख्या, सूर्य-चन्द्रका सचारक्षेत्र, द्वीप-समुद्रोमे उनकी वीथियो व वलयोकी सख्या, वीथिके अनुसार मेरुसे सूर्यका अन्तर, दोनो सूर्योके मध्यका अन्तर, वीथियोका परिधिप्रमाण, चन्द्रोके मेरुसे व परस्परके अन्तरका प्रमाण, चन्द्रवीथियोका परिधिप्रमाण, लवणोदादिमे सचार करनेवाले सूर्योका अन्तर, गति, मुहूर्तगति, चन्द्रकी मुहूर्तगति, दिन-रात्रिका प्रमाण, ताप व तम क्षेत्रोका परिधिप्रमाण, ताप व तमकी हानि-वृद्धि, सूर्यका जबूद्वीपादिमे चारक्षेत्र, अधिक मास, उत्तरायणकी समाप्ति व दक्षिणायनका प्रारम्भ, युगका प्रारम्भ, आवृत्तियोकी सख्या, तिथि व नक्षत्र, विषुपोकी तिथिया व नक्षत्र, प्रत्येक चन्द्रके ग्रह, नक्षत्र, कृत्तिका आदि नक्षत्रोकी तारासख्या, अभिजित् आदि नक्षत्रोका चन्द्रके मार्गमे संचार, उनका अस्त व उदय, जघन्यादि नक्षत्रोका नामनिर्देश, उनपर सूर्य-चन्द्रका अवस्थान, मण्डलक्षेत्र व देवता, समय व आवली आदिका प्रमाण चक्षु इन्द्रियका उत्कृष्ट विषय, अयोध्यामे सूर्यबिम्बस्थ जिनप्रतिमाका अवलोकन, भरतादि क्षेत्रोमे तारासख्या, अढाई द्वीपस्थ नक्षत्रादिकी सख्या तथा चन्द्र-सूर्यादिका आयुप्रमाण, इन सबकी यथाक्रमसे प्ररूपणा की गई है।

७. **भवनवासिलोकविभाग**— इस प्रकरणमे ९० श्लोक है। यहाँ प्रारम्भमे चित्रा-वज्रा आदि पृथिवियोका नामनिर्देश करके असुरकुमारादि दस प्रकारके भवनवासियोके भवनोकी सख्या व उनका विस्तारादि, भवनवासियोके २० इन्द्रोके नाम, उनकी भवनसख्या, सामानिक आदि परिवारभूत देव-देवियोकी सख्या, आयुप्रमाण, शरीरकी ऊचाई, जिनभवन, चैत्यवृक्ष, मुकुटचिह्न, चमरेन्द्रादिका सौधर्मेन्द्रादिसे स्वाभाविक विद्वेष, व्यन्तर व अल्पर्द्धिक आदि भवनवासी देवोके भवनोका अवस्थान और असुरकुमारोकी गति आदिका वर्णन करते

हुए अन्तमे सकेत किया गया है कि यह विन्दु मात्र कथन है, विशेप विवरण लोकानुयोगसे जानना चाहिये।

८. **अधोलोकविभाग**--इस प्रकरणमें १२८ श्लोक हैं। यहाँ प्रारम्भमे रत्नप्रभादि सात पृथिवियोका निर्देश करके उनके पृथक् पृथक् वाहल्यप्रमाणको वतलाते हुए उनके तलभागमे तथा लोकके वाह्य भागमे जो घनोदधि आदि तीन वातवलय अवस्थित हैं उनके वाहल्यप्रमाणका निर्देश किया गया है। तत्पश्चात् प्रत्येक पृथिवीमे स्थित पटलोकी सख्या, उनके वाहल्य व परस्परके मध्यगत अन्तरके प्रमाणको दिखलाते हुए किस पृथिवीमे कितने इन्द्रक, श्रेणीवद्ध और प्रकीर्णक नारक विल है, इसकी गणितसूत्रोके अनुसार प्ररूपणा की गई है। साथ ही प्रसग पाकर यहाँ उन नारक विलोमे स्थित जन्मभूमियोकी आकृति व विस्तारादि, नारकियोके शरीरकी ऊचाई, आयु, आहार, अवधिज्ञानका विपय, यथासम्भव गत्यादि मार्गणायें, शीत-उष्णकी वेदना, छह लेश्याओमेसे सम्भव लेश्या, जन्मभूमियोसे नीचे गिरकर पुन उत्पतन, जन्म-मरणका अन्तर, गति-आगति, प्रत्येक पृथिवीसे निकलकर पुन उसमे उत्पन्न होनेकी वारसख्या, नारकभूमियोसे निकलकर प्राप्त करने व न प्राप्त करने योग्य अवस्थायें, विक्रियादिकी विशेषता और क्षेत्रजन्य दुखकी सामग्री, इत्यादि विपयोकी भी प्ररूपणा की गई है।

९. **व्यन्तरलोकविभाग**— इस प्रकरणमे ९९ श्लोक हैं। यहाँ प्रथमत व्यन्तर देवोके औपपातिक, अध्युपित और अभियोग्य इन तीन भेदोका निर्देश करके उनके भवन, आवास और भवनपुर नामक तीन निवासस्थानोका उल्लेख किया गया है। इनमे किन्ही व्यन्तर देवोके केवल भवन ही, किन्हीके भवन और आवास, तथा किन्हीके भवन, आवास और भवनपुर ये तीनो ही होते है। इनमेसे भवन चित्रा पृथिवीपर, आवास तालाव, पर्वत एव वृक्षोके ऊपर, तथा भवनपुर द्वीप-समुद्रोमे हुआ करते हैं। प्रसगवश यहाँ इन भवनादिकोकी रचना व उनके विस्तारादिकी भी प्ररूपणा की गई है।

इसके पश्चात् यहाँ पिशाचादि आठ प्रकारके व्यन्तरोके पृथक् पृथक् कुलभेदो, उनके दो दो इन्द्रो व उन इन्द्रोकी दो दो प्रधान देवियोके नामादिका निर्देश करके उन पिशाचादि व्यन्तरोके वर्ण व चैत्यवृक्षोका उल्लेख करते हुए सामानिक आदि परिवार देवोकी सख्या निर्दिष्ट की गई है। इस प्रसगमे यहाँ अनीक देवोकी पृथक् पृथक् सात कक्षाओका निर्देश करके उनके महत्तरो (सेनापतियो) का नामोल्लेख करते हुए उन अनीक देवोकी कक्षाओकी सख्याका निरूपण किया गया है। व्यन्तरेन्द्रोकी पाच पाच नगरिया (राजधानिया) होती हैं जो अपने अपने नामके आश्रित होती है। जैसे— काल नामक पिशाचेन्द्रकी काला, कालप्रभा, कालकान्ता, कालावर्ता और कालमध्या ये पाच नगरिया। इनमे काला मध्यमे, कालप्रभा पूर्वमे, कालकान्ता दक्षिणमे, कालावर्ता पश्चिममे और कालमध्या उत्तरमे स्थित है। इस प्रकार यहाँ इन नगरियोके विस्तारादिको भी दिखलाकर अन्तमे भवनत्रिक देवोमे लेश्याका निर्देश करते हुए उन पिशाचादि व्यन्तरोमे गणिकामहत्तरोके नामोल्लेखपूर्वक उनकी आयु व शरीरकी ऊचाई आदिका भी कथन किया गया है।

१० **स्वर्गविभाग**--इस प्रकरणमे ३४९ श्लोक हैं। ऊर्ध्वलोकविभागमे प्रथमत भवनवासियोके ऊपर क्रमश नीचोपपातिक आदि विविध देवोके व अन्तमे सिद्धोके निवासस्थानका

निर्देश करके आगे उनके इस निवासस्थानकी ऊचाईके प्रमाणके साथ आयुका भी प्रमाण बतलाया गया है। तत्पश्चात् वैमानिक देवोके कल्पज और कल्पातीत इन दो भेदोका निर्देश करके बारह कल्पभेदोका उल्लेख इस प्रकारसे किया गया है -- १ सौधर्म २ ऐशान ३ सनत्कुमार ४ माहेन्द्र ५ ब्रह्मलोक ६ लान्तव ७ महाशुक्र ८ सहस्रार ९ आनत १० प्राणत ११ आरण और १२ अच्युत। इसकी सगति यहा त्रिलोकसार की 'सोहम्मीसाणसणक्कुमार-' इत्यादि तीन (४५२-५४) गाथाओको उद्धृत करके इन्द्रोकी अपेक्षासे बैठायी गई है। इन कल्पोके ऊपर क्रमसे तीन अधोग्रैवेयक, तीन मध्य ग्रैवेयक, तीन उपरिम ग्रैवेयक, नौ अनुदिश, पाच अनुत्तर विमान और अन्तमे ईषत्प्राग्भार पृथिवीका अवस्थान निर्दिष्ट किया गया है। समस्त विमान चौरासी लाख (८४०००००) हैं।

ऊर्ध्वलोकमे जो ऋतु आदि तिरेसठ (६३) पटल है उनके ठीक बीचमे इन्ही नामोवाले तिरेसठ इन्द्रक विमान है। इनमे सौधर्म-ऐशानमे इकतीस, सनत्कुमार-माहेन्द्रमे सात, ब्रह्मने चार, लान्तवमे दो, महाशुक्रमे एक, सहस्रारमे एक, आनतादि चार कल्पोमे छह, तीन अधोग्रैवेयकोमे तीन, मध्यम तीनमे तीन, उपरिम तीनमे तीन, नौ अनुदिशमे एक और अनुत्तर विमानोमे एक ही पटल है[1]।

जिस प्रकार तिलोयपण्णत्तीमे[2] सोलह कल्पविषयक मान्यताभेदका उल्लेख करके उन उन कल्पोमे विमानसख्याके कथनकी प्रतिज्ञा करते हुए आगे तदनुसार उनकी सख्याका निरूपण किया गया है ठीक इसी प्रकारसे यहा (१०-३६) भी उक्त मान्यताका निर्देश करके सोलह कल्पोके आश्रयसे विमानसख्याका कथन किया गया है। इस प्रसगमे आगे जैसे ति प मे[3] आनत-प्राणत और आरण-अच्युत कल्पोमे वह विमानसख्या एक मतसे ४४०+२६०=७०० तथा दूसरे मतसे ४००+३००=७०० निर्दिष्ट की गई है ठीक उसी प्रकारसे उन दोनो ही मान्यताओके आश्रयसे यहा (१०, ४२-४३) भी वह सख्या उसी प्रकारसे निर्दिष्ट की गई है। इसके आगे ग्रैवेयकादि कल्पातीत विमानोमे भी उक्त विमानसख्याका निरूपण करते हुए सख्यात व असख्यात योजन विस्तृत विमानो, समस्त श्रेणीबद्ध विमानो तथा पृथक् पृथक् कल्पादिके आश्रित श्रेणीबद्ध विमानोकी सख्या निर्दिष्ट की गई है।

प्रथम ऋतु इन्द्रकका विस्तार मनुष्यलोक प्रमाण ४५ लाख यो. है। इसके आगे द्वितीयादि इन्द्रकोके विस्तारमे उत्तरोत्तर ७०९६७$\frac{2}{3}\frac{3}{1}$ यो की हानि होती गई है। अन्तिम सर्वार्थसिद्धि इन्द्रका विस्तार १ लाख यो है। यहा इन विमानोमे कितने श्रेणीबद्ध विमान किस

---

१ लो वि १०, २५-३५, ति प ८, १३७-४७, त्रिलोकसार (४६२) मे इन कल्पाश्रित इन्द्रकोकी सख्या मात्रका निर्देश किया गया है, कल्पनामोका निर्देश कर उनके साथ सगति नही बैठायी गई है। परन्तु टीकाकार श्री माधवचन्द्र त्रैविद्य देवने १६ कल्पोके आश्रित उनकी सगति बैठा दी है।

२ जे सोलस कप्पाइ केई इच्छति ताण उवएसे। तस्सि तस्सि वोच्छ परिमाणाणि विमाणाण॥ ति प ८-१७८

३ आणदपाणदकप्पे पचसया सट्ठिविरहिदा होति।
आरणअच्चुदकप्पे दुसयाणि सट्ठिजुत्ताणि॥
अहवा आणदजुगले चत्तारि सयाणि वरविमाणाणि।
आरणअच्चुदकप्पे सयाणि तिण्णि च्चिय हुवति॥ ति प ८, १८४-८५

द्वीप-समुद्रके ऊपर अवस्थित हैं, इसका निर्देश करते हुए उन विमानोके आधार, बाहल्य, विमान-गत प्रासादोकी ऊचाई और उन विमानोके वर्णका भी कथन किया गया है।

किस प्रकारके जीव किन देवोमे उत्पन्न होते है तथा वहासे च्युत हुए जीव किस किस अवस्थाको प्राप्त करते है और किस किस अवस्थाको नही प्राप्त करते हैं, इसकी भी प्रसगवश प्ररूपणा करते हुए आगे सौधर्मादि इन्द्रोके मुकुटचिह्न, अवस्थान, नगरोके विस्तारादि, देवीसख्या और उन देवियोमे अग्रदेवियोके प्रासादोका भी कथन किया गया है। साथ ही उक्त सौधर्मादि इन्द्रोके परिवार देव-देवियोकी सख्या, आयु, आहार और उच्छ्वासकालका निर्देश करते हुए सुधर्मा सभाकी भव्यताका निरूपण करके इन्द्रके सुखोपभोगकी सामग्री दिखलायी गई है। अन्तमे यहा वैमानिक देवोमे प्रवीचारकी मर्यादा, शरीरकी ऊचाई, लेश्या, विक्रिया, अवधिज्ञानका विषय, देव-देवियोके उत्पत्तिस्थान, देवोके जन्म-मरणका अन्तर, इन्द्रोका विरहकाल, लौकान्तिक देवोका अवस्थान व उनके भेदभूत सारस्वतादि लौकान्तिकोकी सख्या, तथा उत्पत्तिके पश्चात् स्वर्गीय अभ्युदयको देखकर नवजात देवोका आश्चर्यान्वित होते हुए पुण्यका फल जान प्रथमतः जिनपूजामे प्रवृत्त होना, इत्यादिका कथन करते हुए इस प्रकरणको समाप्त किया गया है।

११ **मोक्षविभाग**—इस प्रकरणमे ५४ श्लोक है। यहा सिद्धोके निवासस्थानभूत ईषत्-प्राग्भार पृथिवीके विस्तारादिको दिखलाकर उनके अवस्थान, अवगाहना, विशेष स्वरूप, उनके स्वाभाविक सुख और सासारिक सुखकी तुलना तथा लोककी समस्त व पृथक् पृथक् ऊचाई एव विस्तारकी प्ररूपणा की गई है। अन्तमे कैसा जीव सिद्धिको प्राप्त करता है, इसका उपसहाररूपसे निर्देश करके अन्तिम प्रशस्तिमे ग्रथकी रचना व उसके प्रमाणादिका निरूपण किया गया है।

४. ग्रन्थकार

प्रस्तुत ग्रन्थके रचयिता सिंहसूरर्षि हैं। ग्रन्थके अन्तमे जो उन्होने अतिशय सक्षिप्त प्रशस्ति दी है उसमे अपना व अपनी गुरुपरम्परा आदिका कुछ भी परिचय नही दिया है। जैसा कि ग्रन्थ-परिचयमे लिखा जा चुका है, वहा उन्होने इतना मात्र निर्देश किया है कि श्री वर्धमान जिनेन्द्रके द्वारा समवसरण सभामे जो लोकविषयक उपदेश दिया गया था वह सुधर्मादि गणधर तथा अन्य आचार्योकी परम्परासे जिस रूपमे प्राप्त हुआ उसी रूपमे उस लोकका वर्णन भाषामात्रके परिवर्तनसे इस ग्रन्थ द्वारा किया गया है। इतने मात्रसे उनके विषयमे कुछ विशेष परिज्ञात नही होता। सिंहसूरर्षि यह नाम भी कुछ विचित्र-सा है। सम्भव है वे भट्टारक परम्पराके विद्वान् रहे हो। ग्रन्थके विवरणोसे यह अवश्य जाना जाता है कि ग्रन्थकारका लोकविषयक ज्ञान उत्तम था और उन्होने अपने पूर्ववर्ती लोकविषयक ग्रन्थोका—विशेष कर वर्तमान तिलोयपण्णत्ती, हरिवशपुराण और त्रिलोकसार आदिका—अच्छा परिशीलन किया था।

५. ग्रन्थका वैशिष्ट्य

यद्यपि प्रस्तुत लोकविभागकी रचना वर्तमान तिलोयपण्णत्ती, हरिवशपुराण, आदि-पुराण, त्रिलोकसार और जबूदीवपण्णत्ती आदि ग्रन्थोके पर्याप्त परिशीलनके साथ उनके पश्चात्

ही हुई है[1], फिर भी उसमें कुछ ऐसी विशेषतायें दृष्टिगोचर होती हैं जिससे यह अनुमान होता है कि इसके रचयिताके सामने सम्भवत लोकानुयोगका कोई अन्य ग्रन्थ भी अवश्य रहा है[2]। वे विशेषतायें ये है —

१ इसके चतुर्थ विभागमे जो राजुके अर्धच्छेदोके पतनकी प्ररूपणा की गई है वहा २३वे श्लोकमे राजुका एक अर्धच्छेद भारतान्त्यमे, एक निषध पर्वतपर और दो कुरुक्षेत्रोमे भी निर्दिष्ट किये गये है। उनका निर्देश तिलोयपण्णत्ती (पृ ७६५), धवला (पृ ४, पृ १५५ व १५६) और त्रिलोकसार (गा ३५२-५८) मे नही पाया जाता है।

२ यहां पाचवे विभागके १३वे श्लोकमे कल्पागो (कल्पवृक्षो) के साथ दस जातिके वृक्षोका निर्देश किया गया है। आगे १८-२३ श्लोकोमे उसी क्रमसे नौ प्रकारके वृक्षोकी फल-दानशक्तिका उल्लेख करके २४ वे श्लोकमे दसवे भेदभूत उन कल्पागो (सामान्य वृक्ष-वेलियो) का उल्लेख किया गया है। यहा दीपाग जातिके वृक्षोका निर्देश नही किया गया है। सम्भव है ज्योतिरग वृक्षोके प्रकाशमे दीपोकी निरर्थकताका अनुभव किया गया हो। इन दस प्रकारके कल्पवृक्षोमे दीपाग जातिके कल्पवृक्षोका उल्लेख तिलोयपण्णत्ती (४–३४२, ८२९), हरिवंश-पुराण (७–८०), आदिपुराण (३–२९), ज्ञानार्णव (३५–१७५) और त्रिलोकसार (७८७) आदि अनेक ग्रन्थोमे उपलब्ध होता है। साथ ही उक्त ग्रन्थोमे कल्पाग वृक्षोकी एक पृथक् भेद स्वरूपसे उपलब्धि भी नही होती। इसके अतिरिक्त यह भी एक विशेषता यहा दृष्टिगोचर होती है कि जिस क्रमसे इन वृक्षोके नामोका निर्देश त्रिलोकसारमे किया गया है, ठीक उसी क्रमसे प्राय पर्याय शब्दोमे उन वृक्षोके नामोका निर्देश यहा भी किया गया है[3]। त्रिलोकसारमे जहा 'दीवंगेहि दुमा दसहा' ऐसा कहा गया है वहा इस लोकविभागमे 'कल्पागैर्दशधा द्रुमा' ऐसा कहा गया है। साथ ही यहा भाजनागके लिये जो 'भृङ्गाङ्ग' शब्दका उपयोग किया गया है, वह भी अपनी अलग विशेषता रखता है। कारण यह कि भृङ्ग शब्दका अर्थ कोशके अनुसार सामान्य या किसी विशेष भाजनरूप नही होता है। सम्भवत यहा 'भृङ्गार' के एक देशरूपसे 'भृङ्ग'का उपयोग किया गया है।

३ इसी पाचवे विभागके ३५-३७ श्लोकोमे क्षेत्रोके साथ अढाई द्वीपके तीस कुलपर्वतोके ऊपर भी सुषमा-सुषमा आदि विविध कालोके प्रवर्तनका निर्देश किया गया है। इस प्रकारका उल्लेख अन्यत्र कही देखनेमे नही आया[4]।

४ छठे विभागमे चन्द्रके परिवारकी प्ररूपणा करते हुए श्लोक १६५-६६ मे कुछ ही ग्रहोका नामनिर्देश करके उन्हे चन्द्रके परिवारस्वरूप कहा गया है। परन्तु ति. प. (७, १४-२२)

---

१. इसका कारण यह है कि इसमे उक्त ग्रन्थोके नामनिर्देशपूर्वक अनेक उद्धरण पाये जाते है।

२ ग्रन्थकारने अन्तिम प्रशस्तिमे सर्वनन्दिविरचित शास्त्रका स्वय उल्लेख किया है।

३ तूर्यग-पत्त-भूसण-पाणाहारग-पुप्फ-जोइतरू।
गेहगा वत्थगा दीवंगेहि दुमा दसहा ॥ त्रि सा ७८७
मृदङ्ग-भृङ्ग-रत्नाङ्गा पान-भोजन-पुष्पदा ।
ज्योतिरालय-वस्त्राङ्गा कल्पागैर्दशधा द्रुमा ॥ लो ५–१३

४ देखिये ति प महा ४ गा १६०७, १७०३, १७४८ और २१८५ (इन गाथाओंमें निषध [illegible] निर्देश [illegible] किया गया है) तथा त्रि सा गा. ८८२–८८

और त्रिलोकसार (३६२-७०) मे चन्द्रके परिवारभूत ८८ ग्रहोकी सख्या व उनके पृथक् पृथक् नाम भी निर्दिष्ट किये गये है। प्रस्तुत लोकविभागमे एक चन्द्रके ग्रह कितने होते है, इस प्रकार उनकी किसी नियत सख्याका निर्देश नही किया है। यहा जो उनके कुछ नाम निर्दिष्ट किये गए है उनमे कुछ नाम भिन्न भी दिखते है। यद्यपि इस प्रकरणके अन्तमे उपसहार करते हुए ८८ग्रहोको ज्योतिष ग्रन्थसे देखनेका सकेत किया गया दिखता है, परन्तु इसके लिए 'अष्टाशीत्यस्तारकोऽग्रहाणा चारो वक्र' आदि जिन पदोका प्रयोग किया गया है वे भाषाकी दृष्टिसे कुछ असम्बद्ध-से प्रतीत होते है।

५ छठे विभागमे १९७-२०० श्लोकोमे रौद्र-श्वेतादि कितने ही नाम निर्दिष्ट किये हैं, परन्तु वहा क्रियापदका निर्देश न होनेसे ग्रन्थकारका अभिप्राय अवगत नही हुआ। अन्तमे वहा जो 'मुहूर्तोऽन्योऽरुणो मत' यह कहा गया है उससे वे मुहूर्तभेद प्रतीत होते है। इस प्रकारके नामोका उल्लेख तिलोयपण्णत्ती और त्रिलोकसारमे उपलब्ध नही होता।

६ नौवे विभागमे ७८-८५ श्लोकोके द्वारा पिशाचादि व्यन्तर निकायोंमे १६ इन्द्रोकी ३२ महत्तरियोके नामोका उल्लेख किया गया है। इसमे नाम सब स्त्रीलिंग ही हैं, परन्तु उनका उल्लेख किया गया है महत्तर-स्वरूपसे। यथा – गणिकाना महत्तराः। यहा 'महत्तरा' यह पद न तो अशुद्ध प्रतीत होता है और न उनके स्थानमे 'महत्तर्य' जैसे पदकी भी सम्भावना की जा सकती है। तिलोयपण्णत्ती (६-५०) मे 'गणिकामहल्लियाओ दुवे दुवे रूववतीओ' रूपसे महत्तरी स्वरूपमे ही उनका उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार त्रिलोकसार (२७५)मे भी 'गणिकामहत्तरीयो'के रूपमे उनका उल्लेख महत्तरीस्वरूपसे ही किया गया है।

७ दसवे विभागमे ९३–१४९ श्लोकोमे सौधर्मादिक १४ इन्द्रोकी प्ररूपणा की गई है[1]। उनमे आनत और प्राणत इन्द्रोका उल्लेख नही पाया जाता है। यह १४ इन्द्रोका अभिमत तिलोयपण्णत्तीमे उपलब्ध नही होता। वहा (८–२१४) बारह कल्पोके आश्रयसे १२ इन्द्रोका ही उल्लेख पाया जाता है[2]। त्रिलोकसार (५५४) मे १२ और जबूदीवपण्णत्ती (५, ९२-१०८) मे १६ इन्द्र निर्दिष्ट किये गये है। हा, उपर्युक्त १४ इन्द्रोकी मान्यता श्री भट्टाकलक देवको अवश्य अभीष्ट है। वे अपने तत्त्वार्थवार्तिकमे कहते है —

---

१ इसी ग्रन्थमे आगे सामानिक (१५०-५२) और देवियोकी (१६२–७८) सख्याप्ररूपणामे प्राणत और अच्युत इन्द्रोका उल्लेख न करके सौधर्मादि १४ इन्द्रोका निर्देश किया गया है। आत्मरक्ष देवोकी सख्याप्ररूपणामे (१५४–५७) १६ इन्द्रोका उल्लेख पाया जाता है।

२ यहापर सामानिक (२१९-२२), तनुरक्ष (२२४-२७), पारिषद (२२८-३३) और देवियोकी सख्याप्ररूपणामे भी इसी क्रमसे १२ इन्द्रोका ही उल्लेख पाया जाता है। सात अनीको सम्बन्धी प्रथम कक्षाकी सख्याप्ररूपणा (८,२३८-४६) मे १० इन्द्रोका ही उल्लेख पाया जाता है। सम्भव है प्रतिमे वहा लिपिकारके प्रमादसे आनत-प्राणत इन्द्रोकी निर्देशक गाथा छूट गई हो। इसी प्रकार आगे गाथा ३६३ का पाठ भी स्खलित हो गया प्रतीत होता है। इसके पूर्व ५ वे महाधिकारमे नन्दीश्वर दीपका वर्णन करते हुए अष्टाह्निक पर्वमें जिनपूजा-महोत्सवके निमित्त जानेवाले इन्द्रोंका उल्लेख किया गया है। उनमे लान्तव और कापिष्ठको छोडकर १४ इन्द्रोका ही निर्देश पाया जाता है। पता नही इन दो इन्द्रोंकी निर्देशक गाथायें ही वहा स्खलित हो गई हैं या फिर वैसा कोई मतभेद ही रहा है।

एते लोकानुयोगोपदेशेन चतुर्दशेन्द्रा उक्ता.। इह द्वादश इष्यन्ते, पूर्वोक्तेन क्रमेण
ापिष्ठ-महाशुक्र-सहस्रारेन्द्राणा[1] दक्षिणेन्द्रानुवर्तित्वात् आनत-प्राणतयोश्च एकैकेन्द्र-
. वा. ४, १९, ८

तत्त्वार्थवृत्तिके कर्ता श्री श्रुतसागर सूरि तत्त्वार्थवार्तिकके अनुसार १४ इन्द्रोका वर्णन
उस मान्यतासे विशेष खिन्न दिखते है। वे कहते है --

कि क्रियते? लोकानुयोगनाम्नि सिद्धान्त आनत-प्राणतेन्द्रौ नोक्तौ, तन्मतानुसारेण
श भवन्ति। मया तु द्वादश उच्यन्ते। यस्मात् ब्रह्मेन्द्रानुवर्ती ब्रह्मोत्तरेन्द्र, लान्तवेन्द्रानु-
ठेन्द्र, शुक्रेन्द्रानुवर्ती महाशुक्रेन्द्रः, शतारेन्द्रानुवर्ती सहस्रारेन्द्र। सौधर्मैशान-सानत्कुमार-
त्वारा इन्द्रा आनत-प्राणतारणाच्युतेषु चत्वार इन्द्रा। तेन कल्पवासीन्द्रा द्वादश
त. वृ ४-१९

इस १२ और १६ कल्पविषयक प्रबल मतभेदके कारण वैमानिक देवोकी प्ररूपणामे
भी एकरूपता नही रह सकी है।

८. प्रस्तुत ग्रन्थमे कुछ विशिष्ट शब्दोका प्रयोग भी देखा जाता है। यथा – 'रुक्मी'
रुम्मी' (१–१२)[2], युगलके लिये 'निगोद'[3] (५–१६०), रात्रि-दिनकी समानता-
'इषुप' (६–१५०, १५४, १६१–६३) और 'विषुव'[4] (६–१५१, १५५-५७),
अशुचिके लिये 'चौक्ष' व 'अचौक्ष'[5] (९–१२), सम्भवत पीठ अथवा चैत्यवृक्षके
याग'[6] (९–५७, ५८ तथा १०–२६२, २६६), कापिष्ठके लिये सर्वत्र 'कापित्थ'
४, १२७, १७३, ३०४ आदि), करण्डकके लिये 'समुद्गक'[7] तथा ह्रस्वके लिये
९–१४) आदि।

६. ग्रन्थका वृत्त और भाषा

वृत्त— सम्पूर्ण ग्रन्थ प्राय अनुष्टुप् छन्दमे लिखा गया है। इस वृत्तके प्रत्येक चरणमे
क्षर हुआ करते है। उसका लक्षण इस प्रकार देखा जाता है—

ति प गा ८–१३३के अनुसार ब्रह्म, लान्तव, महाशुक्र और सहस्रार ये चार कल्प मध्यमे अवस्थित
ोंके नामानुसार इन्द्रोंके भी नाम ये ही हैं।

२ आगे भी रुक्मी पर्वतके लिये यही शब्द प्रयुक्त हुआ है।

३ देखिये ति प ४, १५४७-४८ और त्रि सा ८६५

४ ति प मे इसके लिये 'विसुप' (७–५३७), विसुय (७–५३९, ५४०) और 'उसुन'
४१, ५४३ आदि) शब्दोका तथा त्रि सा मे 'इसुप' (४२१, ४२७, ४२९-३०) और 'विसुप'
) शब्दोका प्रयोग किया गया है।

५ ति प ६–४८ और त्रि सा २७१ मे इनके स्थानमे 'चोक्खा' और 'अचोक्खा' पदोका
किया गया है। पा स म के अनुसार 'चोक्ख' शब्द देशी है।

६ यह या इसी प्रकारका अन्य कोई शब्द ति प और त्रि सा मे दृष्टिगोचर नही होता।

७ ति प ८, ४००-४०२ तथा त्रि सा ५२०-२१ 'करड' शब्द ही प्रयुक्त हुआ है। अमर-
२,६,१३९) मे इसका पर्याय शब्द 'सपुट' उपलब्ध होता है।

८ सूक्ष्म श्लक्ष्ण दभ्र कृश तनु ॥ अ को ३, १, ६१.

पञ्चम लघु सर्वत्र सप्तम द्वि-चतुर्थयो. । गुरु षष्ठ तु पादाना शेषेष्वनियमो मत. ॥

इस लक्षणके अनुसार उसके प्रत्येक चरणमे पाचवा अक्षर लघु और छठा दीर्घ होना चाहिये। सातवा अक्षर द्वितीय और चतुर्थ चरणमे ह्रस्व हुआ करता है। प्रस्तुत ग्रन्थमे कही कही इस नियमकी अवहेलना देखी जाती है। यथा—अशीतिरेवेशानस्य (१०–१५०), यहा पाचवा अक्षर दीर्घ तथा 'पुष्करार्धाद्यवलये' (६–३६), यहा षष्ठ अक्षर दीर्घ न होकर ह्रस्व है[1]।

किसी किसी श्लोकके चरणमे यहा ७ ही अक्षर पाये जाते है। जैसे—श्लोक ४–१९ के चतुर्थ चरणमे[2]। इसी प्रकार किसी किसी चरणमे ९ भी अक्षर पाये जाते हैं। जैसे— श्लोक १–३३४ के प्रथम चरणमे[3]।

श्लोकमे प्रथम चरणके अपूर्ण पदकी पूर्ति द्वितीय चरणमे तो देखी जाती है, परन्तु द्वितीय चरणके अपूर्ण पदकी पूर्ति तृतीय चरणमे नही देखी जाती। प्रस्तुत ग्रन्थमे कही कही इसका अपवाद देखा जाता है। जैसे —

मानुषोत्तरशैलश्च द्वीपसागरवेदिका-मूलतो नियुतार्धेन ततो लक्षेण मण्डलम् ॥ ६–३५

यहा 'वेदिकामूलत' पद अपेक्षित है जो द्वितीय चरणमे अपूर्ण रहकर तृतीय चरणमे पूर्ण हुआ है। यह क्रम ५–२०, ६–१२३ (ब), ६–१८०, ७–४३, ७–४८ और १०–२५८ आदि अन्य श्लोकोमे भी देखा जाता है।

भाषा— प्रस्तुत ग्रन्थका बहुभाग – जैसा कि आप आगे देखेगे – तिलोयपण्णत्ती, हरिवंश-पुराण, आदिपुराण और त्रिलोकसार आदि अन्य ग्रन्थोके आश्रयसे रचा गया प्रतीत होता है। इसमे ग्रन्थकार सिंहसूरर्षिकी जितनी स्वत की रचना है उसकी भाषा शिथिल, दुरवबोध और कही कही शब्दशास्त्रगत नियमोके भी विरुद्ध दिखती है। उदाहरणार्थ यह श्लोक देखिये —

षड्युग्मशेषकल्पेषु आदिमध्यान्तवर्तिनाम्। देवीना परिषदा सख्या कथ्यते च यथाक्रमम् ॥ १०-१७९

यहा ग्रन्थकार इस श्लोकके द्वारा यह भाव प्रदर्शित करना चाहते हैं कि अब आगे पृथक् पृथक् सौधर्म-ऐशानादि छह युगलो और आनतादि शेष कल्पचतुष्कमे क्रमसे आदिम,

---

१ पाचवे अक्षरके दीर्घ होनेके उदाहरणस्वरूप निम्न अन्य श्लोक भी देखे जा सकते हैं — १–३५१, ४–१९, ४–२३, ५–३३, ५–९०, ७–८३, ७–९२, ८–७, ८–४६, ८–७३, ९–७५, १०–२३, १०–९३ आदि। इसी प्रकार छठे अक्षरके ह्रस्व होनेके भी ये अन्य उदाहरण देखे जाते हैं — ५–९०, ६–१३१, ६–१४८, ९–७५ आदि।

२ इसके अतिरिक्त इन श्लोकोंके भी किसी किसी पादमे ७ ही अक्षर पाये जाते हैं— ४–२३, ५–३३, ७–६५, १०–६८ आदि।

३ इसी प्रकार निम्न श्लोकोंके भी किसी किसी पादमे ९ अक्षर देखे जाते हैं— ६–१०३, ६–१३१, ६–१४८, ७–५०, ८–१७, ८–३२, ९–१८, ९–३३ आदि। श्री पण्डित आशाधरजीके मतानुसार ९ अक्षर दोषकारक नही माने जाते हैं। वे सा ध ७–८ श्लोककी टीकामे कहते हैं —

अत्र च द्वितीयपादे नवाक्षरत्व न दोषाय, अनुष्टुभि नवाक्षरस्यापि पादस्य शिष्टप्रयोगे क्वापि क्वापि दृश्यमानत्वात्। यथा —'ऋषभाद्या वर्धमानान्ता जिनेन्द्रा दश पञ्च च' इत्यादिषु। अथवा 'हरिताङ्कुरबीजाम्बुलवणाद्यप्रासुक त्यजन्' इति पाठ।

थम और अन्तिम पारिषद देवोकी देवियोंका प्रमाण कहा जाता है । परन्तु श्लोकगत दविन्याससे यह भाव सहसा अवगत नही होता । कारण कि यहा जो 'आदिमध्यान्तवर्तिनाम्' द है उसके अन्तर्गत आदि, मध्य और अन्त इन शब्दोसे क्या विवक्षित है, यह स्पष्ट नही ता । यदि इन तीन शब्दोसे तीन पारिषदोकी विवक्षा है तो प्रथम उनके निर्देशके विना इन शेषणरूप शब्दोसे उन पारिपदोका ग्रहण कैसे हो, यह विचारणीय है । दूसरे, वैसी अवस्थामे गे प्रयुक्त 'परिषदा' पद व्यर्थ ठहरता है । यदि उक्त पदको 'देवीना' अथवा 'परिषदा' दका विशेषण माना जाय तो लिंगभेदसे वह भी सम्भव नही है ।

इसी प्रकरणमे आगेका यह दूसरा श्लोक भी देखिये --

ालर्द्धिपरिवाराश्च विक्रिया चेन्द्रसंश्रिताः । तादृशस्तत्प्रतीन्द्रेषु त्रायस्त्रिंशसमेष्वपि ॥१०-१८२.

भाव यहा यह अभीष्ट दिखता है कि आयु, ऋद्धि, परिवार और विक्रिया, ये चारों जस प्रमाणमे किसी विवक्षित इन्द्रके हुआ करते है उसी प्रमाणमे वे उसके प्रतीन्द्र, त्रायस्त्रिंश और सामानिक देवोके भी हुआ करते है । अब इसके लिए उक्त श्लोकके अन्तर्गत शब्दोपर विचार कीजिये । सर्वप्रथम यहा आयुके लिये जिस व्यापक 'काल' शब्दका उपयोग किया गया है उससे सहसा आयुका बोध नही होता है[1] । इसके लिये 'आयु' या 'स्थिति' जैसे किसी प्रसिद्ध शब्दका ही उपयोग किया जाना चाहिये था । इसी प्रकार सामानिक जातिके देवोके ग्रहणार्थ जिस 'सम' शब्दका उपयोग किया गया है वह भी शास्त्रीय दृष्टिसे उचित नही है । दूसरे वह भ्रान्तिजनक भी है । कारण कि 'त्रायस्त्रिशसमेपु' को 'प्रतीन्द्रेषु' का विशेषण मानकर 'त्रायस्त्रिशोके समान प्रतीन्द्रोमे भी' ऐसा भी उससे अर्थ निकला जा सकता है । इसके अतिरिक्त 'तादृश' पद भी 'यादृश' पदकी अपेक्षा करता है, जिसका निर्देश यहां नही किया गया है । दूसरे उसका सम्बन्ध किससे है यह भी ठीकसे नहीं जाना जाता है ।

इसके अतिरिक्त प्रस्तुत ग्रन्थमे कितने ही श्लोक ऐसे है जो अर्थकी दृष्टिसे अपूर्ण है । जसे-- दसवे विभागमे १८९-९० श्लोकोके द्वारा सौधर्म इन्द्रकी ७ अनीकोकी प्रथमादि सात कक्षाओके अनुसार पृथक् पृथक् व समस्त भी सख्या निर्दिष्ट की गई है । परन्तु उक्त श्लोकोमें सौधर्म इन्द्रका बोधक कोई भी शब्द नही दिया गया है । फिर आगे और भी यह विशेषता की गई है कि श्लोक १९१ मे 'शेषाणा' पदके द्वारा अन्य शेष (?) इन्द्रोकी अनीकोकी प्रथम

---

१ प्रस्तुत ग्रन्थमे ऐसे अनेक शब्दोका उपयोग किया गया है । जैसे – सख्याकोंके लिये 'स्थानक' (२ – ४), लवणसमुद्रके लिये 'जले' (६ – १२८), विक्रिया करनेके अर्थमे प्रकुर्वते (१० – १६३), उच्छ्वास-कालके लिये 'उच्छ्वसनक्षण' (१० – २१५), सेनामहत्तरीके लिये 'अग्रा' (१० – १८५), जघन्य आयुके लिये 'अल्पक' व 'अल्प' (१० – २३२, २३३), उत्कृष्ट आयुके लिये 'महत्' (१० – २३९), सौधर्म इन्द्रके लिये 'दक्षिणे' (१० – २७९), स्वाभाविकोके लिये 'स्वभावानि' (१० – २७३), छह हाथ ऊचेके लिये 'षट्कहस्तका' (१० – २८५) इत्यादि । इसी प्रकार विस्तीर्ण और विस्तारके लिये 'रुन्द्र' (१० – १११, ११६, ११७, १२५ आदि) । प्राकृतमे जो 'रुद' शब्द पाया जाता है उसे यहा 'रुन्द्र' के रूपमे लिया गया है । इसी प्रकारसे प्राकृतमे 'वाहिर' शब्दका उपयोग होता है । सस्कृतमे उसके स्थानमे 'वाह्य' शब्दका प्रयोग देखा गया है । परन्तु यहा वह उसी रूपमे (वाहिर) प्रयुक्त हुआ है (४ – १) । जहा जहा ग्रन्थका प्राकृतसे सस्कृतमे रूपान्तर किया जाता है, वहा वहा ऐसे प्रयोग विपुलतासे मिलते हैं ।

पञ्चम लघु सर्वत्र सप्तम द्वि-चतुर्थयो.। गुरु षष्ठ तु पादाना शेषेष्वनियमो मत ॥

इस लक्षणके अनुसार उसके प्रत्येक चरणमे पाचवा अक्षर लघु और छठा दीर्घ होना चाहिये। सातवा अक्षर द्वितीय और चतुर्थ चरणमे ह्रस्व हुआ करता है। प्रस्तुत ग्रन्थमे कही कही इस नियमकी अवहेलना देखी जाती है। यथा – अशीतिरेवेशानस्य (१०–१५०), यहा पाचवा अक्षर दीर्घ तथा 'पुष्करार्घाद्यवलये' (६–३६), यहा षष्ठ अक्षर दीर्घ न होकर ह्रस्व है[१]।

किसी किसी श्लोकके चरणमे यहा ७ ही अक्षर पाये जाते हैं। जैसे – श्लोक ४–१९ के चतुर्थ चरणमे[२]। इसी प्रकार किसी किसी चरणमे ९ भी अक्षर पाये जाते हैं। जैसे– श्लोक १–३३४ के प्रथम चरणमे[३]।

श्लोकमे प्रथम चरणके अपूर्ण पदकी पूर्ति द्वितीय चरणमे तो देखी जाती है, परन्तु द्वितीय चरणके अपूर्ण पदकी पूर्ति तृतीय चरणमे नही देखी जाती। प्रस्तुत ग्रन्थमे कही कही इसका अपवाद देखा जाता है। जैसे —

मानुषोत्तरशैलाश्च द्वीपसागरवेदिका-मूलतो नियुतार्धेन ततो लक्षेण मण्डलम् ॥ ६–३५

यहा 'वेदिकामूलत' पद अपेक्षित है जो द्वितीय चरणमे अपूर्ण रहकर तृतीय चरणमे पूर्ण हुआ है। यह क्रम ५–२०, ६–१२३ (ब), ६–१८०, ७–४३, ७–४८ और १०–२५८ आदि अन्य श्लोकोमे भी देखा जाता है।

भाषा– प्रस्तुत ग्रन्थका बहुभाग – जैसा कि आप आगे देखेंगे – तिलोयपण्णत्ती, हरिवंश-पुराण, आदिपुराण और त्रिलोकसार आदि अन्य ग्रन्थोके आश्रयसे रचा गया प्रतीत होता है। इसमे ग्रन्थकार सिंहसूर्रिषिकी जितनी स्वत की रचना है उसकी भाषा शिथिल, दुरवबोध और कही कही शब्दशास्त्रगत नियमोके भी विरुद्ध दिखती है। उदाहरणार्थ यह श्लोक देखिये —

षड्युग्मशेषकल्पेषु आदिमध्यान्तवर्तिनाम्। देवीना परिषदां सख्या कथ्यते च यथाक्रमम् ॥ १०-१७९

यहा ग्रन्थकार इस श्लोकके द्वारा यह भाव प्रदर्शित करना चाहते हैं कि अब आगे पृथक् पृथक् सौधर्म-ऐशानादि छह युगलो और आनतादि शेष कल्पचतुष्कमे क्रमसे आदिम,

---

१ पाचवे अक्षरके दीर्घ होनेके उदाहरणस्वरूप निम्न अन्य श्लोक भी देखे जा सकते हैं — १–३५१, ४–१९, ४–२३, ५–३३, ५–९०, ७–८३, ७–९२, ८–७, ८–४६, ८–७३, ९–७५, १०–२३, १०–९३ आदि। इसी प्रकार छठे अक्षरके ह्रस्व होनेके भी ये अन्य उदाहरण देखे जाते हैं — ५–९०, ६–१३१, ६–१४८, ९–७५ आदि।

२ इसके अतिरिक्त इन श्लोकोके भी किसी किसी पादमे ७ ही अक्षर पाये जाते हैं— ४–२३, ५–३३, ७–६५, १०–६८ आदि।

३ इसी प्रकार निम्न श्लोकोके भी किसी किसी पादमे ९ अक्षर देखे जाते हैं— ६–१०३, ६–१३१, ६–१४८, ७–५०, ८–१७, ८–३२, ९–१८, ९–३३ आदि। श्री पण्डित आशाधरजीके मतानुसार ९ अक्षर दोषकारक नही माने जाते हैं। वे सा ध ७–८ श्लोककी टीकामे कहते हैं —

अत्र च द्वितीयपादे नवाक्षरत्व न दोषाय, अनुष्टुभि नवाक्षरस्यापि पादस्य शिष्टप्रयोगे क्वापि क्वापि दृश्यमानत्वात्। यथा —'ऋषभाद्या वर्धमानान्ता जिनेन्द्रा दश पञ्च च' इत्यादिषु। अथवा 'हरिताङ्कुरबीजाम्लवणाद्यप्रासुक त्यजन्' इति पाठ ।

ताडनतोदनै:' (८-१०९), 'यथा हरिणी वृषा' (८-१२८), 'कुमार्गगतचरित्रा' (८-१२३), 'सहस्रारतोऽधिका' (८-८२), 'स्थावरानपि चैशानात् परतो यान्ति मानुषान्' (१०-८९), 'महिपमीनवत् (१०-९१), 'शते सार्धे च' (१०-१७३), 'शतद्वय पुन. सार्धं' (१०-१७७) 'शाक्रयो सोमयमयो.' (१०-२१३), 'अच्युतात्तु' (१०-२२२), 'उत्कृष्टमायुर्देवाना पूर्वं साधिकमल्पकम्' (१०-२३२), 'कल्पराजाहमिन्द्राणाम्' (१०-२३६), 'पल्यान्यर्धद्वय चैव सेनान्यात्माभिरक्षिणाम्' (१०-२३७), 'क्रोशतत्पाददीर्घक । व्यासाश्च' (१०-२५८), 'शतार्धायामविस्तीर्णा' (१०-२६४), 'देवराजबहि.पुरात्' (१०-२६८), 'स्थितिरेव गणिकाना ज्ञेया कन्दर्पा अपि चाद्ययो' (१०-२८२), 'शरीरस्पर्शरूपक शब्दचित्तप्रवीचारा.' (१०-२८४), 'पूर्वप्राप्तविजानता' (१०-३२८), 'धर्मास्तिकायतन्मात्र गत्वा न परतो गता:' (११-८,), 'भक्तमृद्धि सर्वभावि च जानाना . सुखायन्ते' (११-१३), इत्यादि ।

यहा श्लोकोके मध्यमे सम्भवत छन्दकी दृष्टिसे पदोके मध्यमे सन्धि नही की गई है। जैसे– नाम्ना अग्निवाहन (७-३०), भवनस्थानानि अर्हदायतनानि (७-८५), च अयुतानि (८-५६), त्रिकोणाश्च ऐन्द्रका (८-७२), सज्ञाश्च अन्ये (९-२), समुद्रेषु असख्येयेषु (९-१५), चत्वारि इन्द्रकाणि (१०-३०), च असख्येया (१०-५६), यान्ति उत्कृष्टा (१०-८३), चैव अष्टाना (१०-११७), सहस्राणि अशीति (१०-१५०), च अग्रा (१०-१८५), क्रमेणैते ईशाना (१०-१८७), चैव अर्हदा (१०-२६३)– सार्धं इन्द्रा'; इत्यादि ।

इ और उ के आगे किसी स्वरके रहनेपर इ के स्थानमे य् और उ के स्थानमें व् हो जाता है, यह एक सामान्य नियम है[1] । परन्तु जैनेन्द्र महावृत्ति (पृ २३) मे इस सम्बन्धमे एक अन्य मतका भी उल्लेख पाया जाता है । यथा —

भूवादीना वकारोऽय लक्षणार्थः प्रयुज्यते। इको यण्भिर्व्यवधानमेकेषामिति सग्रहाः ॥ १,२,१.

तदनुसार उक्त य् और व्, इ और उ के स्थानमे न होकर उनके आगे हुआ करते हैं। इस मतका अनुसरण कही कही प्रस्तुत ग्रन्थमे किया गया है। जैसे– वेश्मानि याद्दरा (१-१३३), सहस्राणि यात्मरक्षा (१-३६९), तु वशोकाख्यसुरस्य (१-३८१), सहस्राणि यमवास्याम् (२-७), षष्ठी युत्सर्पिण्याम् (५-१७६), तु वनुदिशानुत्तरे (१०-३०२), इत्यादि ।

७. ग्रन्थरचनाका काल

जैसा कि अन्तिम प्रशस्तिमे निर्दिष्ट किया गया है तदनुसार प्रस्तुत ग्रन्थके रचयिता सिंहसूरर्षि (सिंहसूर ऋषि) है। उन्होने इस प्रशस्तिमे अपने नाम मात्रका ही निर्देश किया है, इससे अधिक और कुछ भी अपना परिचय नही दिया। इसलिये वे किस परम्पराके थे तथा मुनि थे या भट्टारक, इत्यादि बातोका निर्णय करना अशक्य है। हा, यह अवश्य है कि इस ग्रन्थमे उन्होने तिलोयपण्णत्ती, आदिपुराण और त्रिलोकसारके अनेक पद्योको कही ग्रन्थनामोल्लेखके[2] साथ

---

१ जैनेन्द्र १।२।१ और अष्टाध्यायी ६।१।७७

२ देखिये पृ ३३-३४, ४२-४३, ६७, ७३ और ८७ आदि।

और कही विना उल्लेखके भी उद्धृत किया है। इसके अतिरिक्त जैसा कि आप आगे देखेंगे, उन्होने हरिवशपुराणके भी अनेको श्लोकोको ग्रन्थोल्लेखके विना इस ग्रन्थके अन्तर्गत कर लिया है।

प्रस्तुत ग्रन्थके ११वे विभागमे पृ २२४ पर 'उक्त च त्रयम्' कहकर जो ३ गाथाये उद्धृत की गई हैं उनमे प्रथम २ गाथाये स्वामि-कुमार द्वारा विरचित स्वामि-कार्तिकेयानुप्रेक्षामे उपलब्ध होती है। स्वामि-कुमारका समय श्री डॉ ए एन् उपाध्येजीके द्वारा श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीके पश्चात् और ब्रह्मदेवके पूर्व, अर्थात् ईसाकी १०वी और १३वी शताब्दिके मध्यका, अनुमानित किया गया है[1]। इससे इतना मात्र कहा जा सकता है कि कार्तिकेयानुप्रेक्षासे उन २ गाथाओको प्रस्तुत ग्रन्थमे उद्धृत करनेवाले श्री सिंहसूरर्षि स्वामि-कुमारके पश्चात् हुए हैं। परन्तु उनके पश्चात् वे किस समयमे हुए हैं, इसके सम्बन्धमे सामग्रीके विना निश्चित कुछ भी नही कहा जा सकता है। एक गाथा जवूदीवपण्णत्ती (जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति) की भी यहाँ नामनिर्देशके साथ उद्धृत पायी जाती है (देखिये पृ ६७)। इससे उनके समयकी पूर्वावधिका कुछ निश्चय होता है। उक्त तीन ग्रन्थोमे त्रिलोकसारका रचनाकाल प्राय निश्चित है। वह चामुण्डरायके समसमयवर्ती आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीके द्वारा विक्रमकी ग्यारहवी शताब्दिके पूर्वार्धमे रचा गया है।

तिलोयपण्णत्तीका रचनाकाल यद्यपि निश्चित नही है, फिर भी उसकी रचना त्रिलोकसारके पूर्व हो गई निश्चित प्रतीत होती है। इन दोनो ग्रन्थोकी विषयवर्णन पद्धति प्राय समान है। विशेषता यह है कि तिलोयपण्णत्तीमे जहाँ किसी भी विषयका विस्तारसे वर्णन किया गया है वहाँ वह त्रिलोकसारमे सक्षेपसे, किन्तु फिर भी स्पष्टतासे किया गया है[2]। वैसे तो त्रिलोकसारमे ऐसी पचासो गाथाये पायी जाती हैं जो तिलोयपण्णत्तीसे मिलती-जुलती ही नही, बल्कि कुछ गाथायें तो उसी रूपमे ही वहाँ उपलब्ध होती हैं। इससे यद्यपि उन दोनोकी पूर्वापरताका निश्चय सहसा नही किया जा सकता है, फिर भी एक गाथा ऐसी है जो त्रिलोकसारके तिलोयपण्णत्तीसे पीछे रचे जानेमे सहायक होती है। वह गाथा यह है —

केसरिमुहसुदिजिब्भादिट्ठी भूसीसपहुदि गोसरिसा।
तेणिह पणालिया सा वसहायारे त्ति णिद्दिट्ठा॥ त्रि. ५८५

इस गाथामे जिस प्रणालिकाको वृषभाकार निर्दिष्ट करके भी जिस रूपमे यहाँ उसके मुख, कान, जिह्वा और नेत्रोको सिंहके आकार बतलाया गया है उस रूपमे यह वर्णन अस्वाभाविक व विकृत-सा हो जाता है। यथार्थ बात यह है कि त्रिलोकसारके कर्ताके सामने जो तिलोयपण्णत्तीकी 'सिंग-मुह-कण्ण-जीहा-लोयण-भूआदिएहि गोसरिसो' आदि गाथा (४–२१५) रही है उसका पाठ कुछ भ्रष्ट होकर 'सिंघमुह–' आदिके रूपमे रहा है। इससे सिंहकी भ्रान्ति हो जानेसे उन्होने वहाँ सिंहके समानार्थक 'केसरि' शब्दका प्रयोग कर दिया

---

१ देखिये श्रीमद् राजचन्द्र शास्त्रमाला द्वारा प्रकाशित (ई स १९६०) स्वामि-कार्तिकेयानुप्रेक्षाकी प्रस्तावना पृ ६७-६९

२ उदाहरणार्थ ति प मे इन्द्रक नारक-बिलोके विस्तारका वर्णन जहा ५२ (२, १०५-५६) गाथाओ द्वारा किया गया है वहा त्रि सा. मे वह वर्णन एक ही गाथा (१६९) द्वारा कर दिया गया है।

है। इससे त्रिलोकसारके कर्ताके सामने तिलोयपण्णत्ती रही है व उसका उन्होने पर्याप्त उपयोग भी किया है, यह निश्चित प्रतीत होता है।

जबूदीवपण्णत्तीमे ऐसी कितनी ही गाथाये है जो त्रिलोकसारमे उसी रूपसे या कुछ थोडे-से परिवर्तित रूपसे उपलब्ध होती है[1]। उसकी रचनाशैली कुछ शिथिल भी प्रतीत होती है। इससे अनुमान होता है कि उसकी रचना त्रिलोकसारके पश्चात् हुई है। ग्रन्थके अन्तमे ग्रन्थकारने यह सकेत भी किया है कि जवूद्वीपसे सम्बद्ध अर्थका विवेचन प्रथमत जिनेन्द्रने और तत्पश्चात् गणधर देवने किया है। फिर आचार्यपरम्परासे प्राप्त उस ग्रन्थार्थका उपसहार करके मैंने उसे सक्षेपमे लिखा है[2]। इस आचार्यपरम्परासे कदाचित् उनका अभिप्राय आचार्य यतिवृषभादिका रहा हो तो यह असम्भव नही कहा जा सकता है। कुछ भी हो उसकी रचना विक्रमकी ११वी शताब्दिके पूर्वमे हुई प्रतीत नही होती।

अब चूकि लोकविभाग (पृ ६७) मे 'उक्त च जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तौ' इस प्रकार नामनिर्देशपूर्वक उसकी एक गाथा उद्धृत की गई है, अत एव उसकी रचना जबूदीवपण्णत्तीके पश्चात् हुई है, इसमे किसी प्रकारका सन्देह नही रहता। अब यह देखना है कि वह जबूदीवपण्णत्तीके कितने समय बाद रचा जा सकता है। इसके लिये हमने अन्य ग्रन्थोमे उसके उद्धरणोके खोजनेका प्रयत्न किया, परन्तु वे हमे कही भी उपलब्ध नही हो सके। श्री श्रुतसागर सूरिने अपनी तत्त्वार्थवृत्तिमे हरिवशपुराण[3] और त्रिलोकसार[4] आदिके[5] साथ एक अन्य भौगोलिक ग्रन्थके अनेको श्लोक उद्धृत किये है। परन्तु उन्होने कही भी प्रस्तुत ग्रन्थके किसी श्लोकको उद्धृत नही किया[6]। कहा नही जा सकता कि उस समय तक प्रस्तुत ग्रन्थकी रचना ही नही हुई थी, या वह उनके सामने नही रहा, अथवा उसके श्लोकोको उद्धृत करना उन्हे अभीष्ट नही रहा।

८. क्या सर्वनन्दिकृत कोई लोकविभाग रहा है ?

प्रस्तुत ग्रन्थके अन्तमे (११, ५२-५३) यह सूचना की गई है कि पूर्व समयमे पाणराष्ट्रके अन्तर्गत पाटलिक नामके ग्राममे सर्वनन्दी मुनिने शास्त्र लिखा था, जो काचीके राजा सिहवर्माके २२वे वर्षमे शक सवत् ३८० (वि स ५१५)मे पूर्ण हुआ। परन्तु यहाँ यह निर्देश नही किया गया है कि उस शास्त्रका नाम क्या था तथा वह सस्कृत अथवा प्राकृत भाषामेसे किस भाषामे लिखा गया था। आज वह ग्रन्थ उपलब्ध नही दिखता। जैसा कि इस प्रशस्तिमे निर्दिष्ट है, उससे उक्त शास्त्रका नाम 'लोकविभाग' ही रहा हो, ऐसा सिद्ध नही होता। सम्भव है उसका कुछ अन्य ही नाम रहा हो और वह कदाचित् सस्कृतमे रचा गया हो।

---

१ देखिये जबूदीवपण्णत्तीकी प्रस्तावना पृ १२८-२९
२ जबूदीवपण्णत्ती १३, १३५-१४२
३ त वृ ३-१० ४ त वृ ३-६, ३८, ४-१३, १५
५ त वृ ३-१० (सा ध २-६८), ४-१२ (ज दी प १२-९३)
६ देखिये त वृ ३-१, २, ३, ५, ६, १०, २७, ४-२४.

आगे इसी प्रशस्तिमे शास्त्रका सग्रह जो अनुष्टुप् छन्दमे १५३६ श्लोक प्रमाण निर्दिष्ट किया गया है वह प्रस्तुत लोकविभागका है या उस सर्वनन्दि-विरचित शास्त्रका, इसका कुछ निश्चय नही होता। प्रस्तुत ग्रन्थकी मूल श्लोकसख्या १७३७ है, जिसमे १२ वृत्त अन्य भी सम्मिलित है (देखिये पीछे पृ. १०)। इसके अतिरिक्त १७७ पद्य यहाँ तिलोयपण्णत्ती आदि अन्य ग्रन्थोके भी उद्धृत किये गये है। इस प्रकार इन उद्धृत पद्योको छोडकर यदि मूल ग्रन्थके ही १७३७ श्लोकोमेसे १२ अन्य उपजाति आदि वृत्तोको तथा आदिपुराणके भी लगभग ९९(१०७−८=)श्लोकोको छोड दिया जाय तो भी १६२६ अनुष्टुप् वृत्त मूल ग्रन्थके ही शेष रहते है जो उस निर्दिष्ट १५३६ सख्याकी अपेक्षा ९० अनुष्टुप् वृत्तोंसे अधिक होते हैं। इससे उस निर्दिष्ट सख्याकी सगति प्रस्तुत ग्रन्थके प्रमाणके साथ नही बैठती है[1]।

प्रशस्तिके उस श्लोकमे[2] जो 'इद' पदका प्रयोग किया गया है उससे यद्यपि प्रस्तुत ग्रन्थके ही प्रमाणका निर्देश किया गया प्रतीत होता है, फिर भी चूकि वह श्लोक सर्वनन्दि-विरचित उस शास्त्रके समयादिका निर्देश करनेके पश्चात् उपलब्ध होता है, अत एव वह सन्दिग्ध ही बना रहता है। इसके अतिरिक्त व्याकरणके अनुसार उक्त पदकी सगति भी ठीकसे नही बैठती[3]।

एक विचारणीय प्रश्न यहां यह भी उपस्थित होता है कि प्रस्तुत लोकविभागके कर्ताने जब उसमे त्रिलोकप्रज्ञप्ति, आदिपुराण (आर्ष), त्रिलोकसार और जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिका नामनिर्देश करके उनके अनेको उद्धरण दिये है तब क्या कारण है जो उन्होने इतने सुपरिचित उस सर्वनन्दि-विरचित शास्त्रके कोई उद्धरण नही दिये। इस प्रश्नके उत्तरमे यदि यह कहा जाय कि प्रस्तुत ग्रन्थकार जब उक्त सर्वनन्दि-विरचित शास्त्रका भाषापरिवर्तन पूर्वक अनुवाद कर रहे हैं तब यहाँ उसके उद्धरण देनेका प्रश्न ही उपस्थित नही होता है, तो इसपर निम्न अन्य प्रश्न उपस्थित होते हैं जिनका कुछ उत्तर नहीं मिलता —

१ यदि सिंहसूरर्षिने सर्वनन्दीके लोकविभागका यह अनुवाद मात्र किया है तो उन्होने विवक्षित विषयके समर्थनमे उससे अर्वाचीन त्रिलोकप्रज्ञप्ति आदि ग्रन्थोके यहाँ उद्धरण क्यो दिये तथा इस प्रकारसे उसकी मौलिकता कैसे सुरक्षित रह सकती है ?

२ त्रिलोकप्रज्ञप्तिमे लोकविभागके अनुसार लोकके ऊपर तीन वातावलयोका विस्तार क्रमसे $1\frac{1}{2}$, $1\frac{1}{6}$ और $1\frac{1}{12}$ कोस निर्दिष्ट किया गया है[4]। उसका अनुवाद सिंहसूर ऋषिने

---

१ आराकी प्रतिमे समस्त पत्रसख्या ७० हैं (७० वा पत्र दूसरी ओर कोरा है)। प्रत्येक पत्रमें दोनो ओर १३−१३ पक्तिया और प्रत्येक पक्तिमे लगभग ३६-४० अक्षर हैं। इस प्रकार उसके आधारसे ग्रन्थका प्रमाण लगभग २१४१ श्लोक प्रमाण ठहरता है।

२ पञ्चादश शतान्याहु षट्त्रिंशदधिकानि वै। शास्त्रस्य सग्रहस्त्वेद छन्दसानुष्टुभेन च ॥११−५४

३ उस श्लोकमे 'शास्त्रस्य सग्रहस्त्वेद' ऐसा कहा गया है। यहा 'तु+इद=त्वेद' इस प्रकारकी जो सन्धि की गई है वह व्याकरणके नियमानुसार अशुद्ध है, उसका शुद्ध रूप 'त्विद' ऐसा होगा। दूसरे, पुल्लिग 'सग्रह' का 'इद' यह नपुसकलिंग विशेषण भी योग्य नही है। तीसरे, 'आहु' इस क्रियापदका सम्बन्ध भी वहा ठीक नही बैठता। चौथे, अनुष्टुभेन' यह तृतीयान्त पद भी अशुद्ध है। इसके अतिरिक्त 'पञ्चादश' पद भी अशुद्ध ही है। इस प्रकारसे वह पूरा श्लोक ही अशुद्ध व असम्बद्ध प्रतीत होता है।

४. दो-छब्बारसभागब्भहिओ कोसो कमेण वाउघण। लोयउवरिम्मि एव लोयविभायम्मि पण्णत्त ॥ १−२८१

उसी रूपसे न करके उक्त वातवलयोका विस्तार भिन्न (२ को, १ को और १५७५ धनुष) क्यो निर्दिष्ट किया[1] ?

३. त्रिलोकप्रज्ञप्ति (४, २४४५-४८) मे लोकविभागके अनुसार लवणसमुद्रकी ऊचाई पृथिवीतलसे ऊपर आकाशमे ११००० यो मात्र अवस्थित स्वरूपसे निर्दिष्ट की गई है। वह शुक्ल पक्षमे क्रमश वृद्धिको प्राप्त होकर पूर्णिमाके दिन १६००० यो प्रमाण हो जाती है। पश्चात् कृष्णपक्षमे उसी क्रमसे हानिको प्राप्त होकर पुन वह ११००० यो. मात्र रह जाती है। लोकविभागके इस अभिप्रायको सिहसूरर्षिने उसी क्रमसे क्यो नही निर्दिष्ट किया[2] ?

४ त्रिलोकप्रज्ञप्तिमे लोकविभागाचार्यके मतानुसार जो सर्व ज्योतिषियोके नगरोका बाहल्य उनके विस्तारके बराबर कहा गया है[3] उसका उल्लेख सिहसूरर्षिने प्रस्तुत ग्रन्थमे कही भी क्यो नही किया ?

५ त्रिलोकप्रज्ञप्ति (४, ६३५-३९) मे लोकविभागाचार्यके मतानुसार जो वह्नि, अरुण, अव्याबाध और अरिष्ट इन चार लौकान्तिक देवोकी क्रमश ७००७, ७००७, ११०११ और ११०११ सख्या कही गई है[4] उसके स्थानमे यहाँ उनकी वह सख्या भिन्न (१४०१४, १४०१४, ९०९, ९०९) क्यो कही गई है[5] ? साथ ही उक्त आचार्यके मतानुसार त्रि प्र मे जब आग्नेय नामक लौकान्तिक देवोका कोई भेद नही देखा जाता है तब उसका उल्लेख यहाँ (१०–३१७ व ३२०) कैसे किया गया है ?

६ प्रस्तुत लोकविभागके ५वे विभागमे श्लोक ३८ से १३७ तक जो १४ कुल करोकी प्ररूपणा आदिपुराणके पूर्ण श्लोको व श्लोकाशोके द्वारा की गई है[6] वह उसी प्रकारसे क्या सर्वनन्दि-विरचित उस लोकविभागमे भी सम्भव है ?

इन प्रश्नोका जब तक समाधान प्राप्त नही होता है तब तक यह निश्चित नही कहा जा सकता है कि प्रस्तुत ग्रन्थके रूपमे श्री सिहसूरर्षिने उस लोकविभागका अनुवाद किया है जो तिलोयपण्णत्तिकारके समक्ष विद्यमान था तथा जिसकी रचना सर्वनन्दीके द्वारा की गई थी।

इसके अतिरिक्त यह भी एक विचारणीय प्रश्न है कि यदि सिहसूरर्षिने सर्वनन्दीके शास्त्रका – लोकविभागका – अनुवाद ही किया है तो प्रशस्तिमे 'आचार्यावलिकागत विरचितं तत् सिंहसूरर्षिणा' ऐसा उल्लेख न करके उसके स्थानमे 'आचार्यपरम्परासे प्राप्त उसकी रचना पूर्वमे — शक स ३८० मे — श्री मुनि सर्वनन्दीने की थी और तत्पश्चात् भाषा-परिवर्तन द्वारा उसीकी रचना सिहसूरर्षिने की है' इस प्रकारके अभिप्रायको स्पष्टतया क्यो नही व्यक्त किया ?

तिलोयपण्णत्तीके समान श्री कुन्दकुन्दाचार्य विरचित नियमसारकी १७वी गाथामे

---

१ लो वि ८–१४ व ११–५

२ लो वि २–३ व २–७

३. जोइगणणयरीण सव्वाण रुदमाणसारिच्छ। बहलत्त मण्णते लोगविभायस्स आइरिया ॥७–११५

४ ति प. ८–६३९ व ८, ६२५-२६

५ लो वि १०, ३२०-२१

६ देखिये आगे 'लोकविभाग व आदिपुराण' शीर्षक (पृ ३८)।

भी 'लोयविभाएसु णादव्व' इस प्रकारसे 'लोकविभाग' का जो निर्देश किया गया है उससे सम्भवत किसी ग्रन्थविशेषका उल्लेख किया गया नही प्रतीत होता है[1]। किन्तु 'लोयविभाएसु' इस वहुवचनान्त पदको देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि वहाँ नियमसारके कर्ता दो प्रकारके मनुष्यो, सात प्रकारके नारकियो, चौदह प्रकारके तिर्यचो और चार प्रकारके देवोके विस्तारको क्रमश मनुष्यलोक, नारकलोक, तिर्यग्लोक तथा व्यन्तरलोक, ज्योतिर्लोक और कल्पवासिलोक आदि उन उन लोकविभागोके वर्णनोमे देखना चाहिये, यह मात्र प्रदर्शित कर रहे हैं[2]।

९. लोकविभाग व तिलोयपण्णत्ती

इसी ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित वर्तमान तिलोयपण्णत्तीमे अनेक वार 'लोयविभाय (लोकविभाग)' का उल्लेख हुआ है[3]। अनेक विद्वानोका विचार है कि यह वही लोकविभाग है कि जिसे सर्वनन्दीने शक स ३८० मे रचा है और जिसकी प्राकृत भाषाका सस्कृत भाषामे छायानुवादरूप यह वर्तमान लोकविभाग है[4]। परन्तु मैं यह ऊपर वतला चुका हू कि प्रस्तुत लोकविभागकी जिस प्रशस्तिपरसे उपर्युक्त अभिप्राय निकाला जाता है वह वस्तुत. उस प्रशस्तिसे निकलता नही है। उससे तो केवल इतना मात्र ज्ञात होता है कि शक स. ३८० मे सर्वनन्दीके द्वारा कोई एक शास्त्र रचा गया था जो लोकविषयक हो सकता है। तिलोयपण्णत्तीके कर्ताके समक्ष लोकविषयक अनेक ग्रन्थ रहे हैं[5], जिनमे एक लोकविभाग भी है और वह वर्तमानमे उपलब्ध नही है। वह सम्भवत प्राकृत भाषामय ही रहा है। परन्तु वह किसके द्वारा विरचित है, इसका निर्देश ति प मे नही किया गया है। वहाँ उसका उल्लेख लोकविभाग और लोकविभागाचार्य (४-२४९१, ७-११५) के रूपमे ही उपलब्ध होता है। वह लोक-विभाग प्रस्तुत लोकविभागके रचयिताके सामने नही रहा, यह निश्चित-सा प्रतीत होता है। इसका कारण यह है कि यदि उनके सामने उक्त लोकविभाग रहा होता तो वे उसके मतको सिद्धान्तरूपमे उपस्थित करके तत्पश्चात् मतान्तरोका उल्लेख करते। परन्तु उन्होने ऐसा नही किया, किन्तु विवक्षित विषयका स्वरुचिसे वर्णन करके उसके समर्थनमे तिलोयपण्णत्ती आदिके अवतरणोको उद्धृत किया है। इस कार्यमे कही कही विपरीतता भी हो गई है। जैसे——

यहाँ द्वितीय विभागमे ३३-४४ श्लोको द्वारा अन्तरद्वीपोका वर्णन करके आगे

---

१ देखिये 'पुरातन जैन वाक्यसूची' की प्रस्तावना पृ ३६

२ इस प्रकारके अधिकार तिलोयपण्णत्तीमे उपलब्ध होते हैं और वहा उक्त जीवभेदोका विस्तार भी देखा जाता है। देखिये ति प २, प्रस्तावना पृ २० आदि।

३ ति प १-२८१, ४-२४४८, २४९१, ७-११५ और ९-९ इनमे गा ४-२४४८ मे 'सगाइणिए लोयविभाए' तथा ९-९ मे 'लोयविणिच्छयगंथे लोयविभागम्मि' ऐसा निर्देश पाया जाता है। इससे सम्भवत पृथक् पृथक् २-२ ग्रन्थोका—सगायणी व लोकविभाग तथा लोकविनिश्चय व लोक विभागका— उल्लेख किया गया प्रतीत होता है।

४ जैन साहित्य और इतिहास पृ १-२ और पुरातन जैन वाक्यसूचीकी प्रस्तावना पृ ३१-३२.

५ जैसे- सग्गायणि (४-२१७, २०२९, २४४८, ८-२७२, सगोयणि (४-२१९), लोय-विणिच्छय (४-१८६६, १९७५, २०२८, ५-६९, १२९, १६७, ८-२७०, ३८६, ९-९), सगाहणिय (८-३८७), लोगाइणि (२४४४) और लोगविणिच्छयमग्गायणि (४-१९८२)

उसके समर्थनमे तिलोयपण्णत्तीकी जो गाथाये (४, २४७८-८८) दी गई हैं उनसे उक्त मतका समर्थन नही होता हे, किन्तु वे उक्त मतके विरुद्ध ही पडती है। हा, उक्त तिलोयपण्णत्तीमे ही आगे गा २४९१-९९ द्वारा इस विषयमे जो लोकविभागाचार्यका मत प्रदर्शित किया गया है इस मतसे वह प्रस्तुत ग्रन्थका वर्णन पूर्णतया मिलता है ।

इससे यह शका हो सकती है कि प्रस्तुत लोकविभागके कर्ताके सामने वह प्राचीन लोकविभाग रहा है, इसीलिये उसके रचयिताने तदनुसार ही उन अन्तरद्वीपोकी प्ररूपणा की है। परन्तु वह ठीक प्रतीत नही होती, क्योकि, उस अवस्थामे उन्हे इन गाथाओको उद्धृत ही नही करना चाहिये था। कारण यह कि उक्त लोकविभागाचार्यका वह मत तिलोयपण्णत्तीसे प्राचीन है। यदि उन गाथाओको उद्धृत करना ही उन्हे अभीष्ट था तो वे अपने मतसे तिलोयपण्णत्तीके मतभेदको प्रगट करके उन्हे उद्धृत कर सकते थे। यथार्थ बात यह है कि श्री सिंहसूर ऋषिने तिलोयपण्णत्ती और त्रिलोकसार आदिका अनुसरण करके ही इस ग्रन्थकी रचना की है। इसलिये उनसे उपर्युक्त भूल ही हुई है। वस्तुत उन्हे तिलोयपण्णत्तीके पूर्व मतको अपनाकर उन गाथाओको उद्धृत करना चाहिये था। परन्तु वे सम्भवत ति प के कर्ता द्वारा आगे प्रदर्शित उस लोकविभागाचार्यके अभिमतको 'लोकविभाग' इस नामके व्यामोहसे नही छोड सके।

१) यहा तिलोयपण्णत्तीमे अन्यत्र भी जो लोकविभागके मतोका उल्लेख किया है उनका भी विचार कर लेना ठीक होगा। सर्वप्रथम ति. प. के प्रथम अधिकार गा. २८१ मे लोकविभागके मतका उल्लेख करते हुए तीनो वातवलयोका बाहल्य क्रमसे $१\frac{३}{२}$, $१\frac{१}{६}$ और $१\frac{१}{१२}$ = $३\frac{३}{४}$ कोस निर्दिष्ट किया गया है। यह मत प्रस्तुत लोकविभागमे नही पाया जाता है। किंतु वहा ति प. के ही समान उनका बाहल्य क्रमसे २ कोस, १ कोस और १५७५ धनुष मात्र बतलाया गया है। दोनोकी वह समानता भी दर्शनीय है। यथा—

कोसदुगमेक्ककोसं किंचूणेक्क च लोयसिहरम्मि ।
ऊणपमाणं दंडा चउस्सया पंचवीसजुदा ।। ति. प. १–२७३.

लोकाग्रे कोशयुग्मं तु गव्यूतिर्न्यूनगोरुतम् ।
न्यूनप्रमाणं धनुषां पचविंश-चतुःशतम् ।। लो. वि. ८–१४

२) चतुर्थ महाधिकारमे गा २४४५-४८ द्वारा सगाइणी और लोकविभागके अनुसार लवण समुद्रकी ऊचाई पृथिवीतलसे ऊपर आकाशमे अवस्थितरूपसे ११००० यो निर्दिष्ट की गई है। इसके ऊपर शुक्ल पक्षमे क्रमशः ५००० यो की वृद्धि होकर पूर्णिमाके दिन वह ऊचाई १६००० यो प्रमाण हो जाती है तथा कृष्ण पक्षमे वह उसी क्रमसे घटकर अमावस्याके दिन ११००० यो मात्र ही रह जाती है। इतनी ऊचाई उसकी सदा ही रहती है— इससे कम ऊचाई कभी नही होती। विस्तार उसका जलशिखरपर १०००० यो मात्र कहा गया है। यह मत प्रस्तुत लो वि मे पाया जाता है। परन्तु जिस रूपमे यहाँ श्लोकोकी रचना की गई है उस रूपमे वह अभिप्राय सहसा अवगत नही होता। जैसे—

दशैवैष सहस्राणि मूलेऽग्रेऽपि पृथुर्मतः । सहस्रमवगाढो गामूर्ध्वं स्यात् षोडशोच्छ्रितः ।।२–३

यहा उसकी ऊचाई १६००० यो. निर्दिष्ट की गई है। यह अवस्थित ऊचाई नही है, किंतु पूर्णिमाके दिन रहनेवाली ऊचाई है जिसको कि यहा स्पष्ट नही किया गया है। इसके आगे यहा यह श्लोक प्राप्त होता है—

एकादश सहस्राणि यमवास्यां गतोच्छ्रय. । ततः पञ्च सहस्राणि पौर्णिमास्या विवर्धते ॥२–७.

यहा पूर्वार्धमे ग्रन्थकार यह कहना चाहते है कि कृष्ण पक्षमे क्रमश ५००० यो की हानि होकर अमावस्याके दिन वह ऊचाई ११००० यो रह जाती है। परन्तु वैसा भाव उन पदोसे निकलता नही है।

वस्तुत. ति प मे निर्दिष्ट वह मत हरिवशपुराण (५, ४३४–३७) मे पाया जाता है और सम्भवत उसीका अनुसरण प्रस्तुत लो वि मे किया है तथा उसकी रचनासे कुछ भिन्नता प्रकट करनेके लिये इस रूपमे श्लोकरचना की गई है[1] ।

इसके अतिरिक्त यहा (२–३) उक्त अभिप्रायको पुष्ट करनेके लिये जो 'उक्त च त्रिलोकप्रज्ञप्ती' कहकर ति प की गाथा दी गई है वह उसका समर्थन न करके उसके विपरीत उक्त जलशिखाके ऊपर उसकी ऊचाईको ७०० यो मात्र ही बतलाती है।

३) ति. प गा ७–११५ मे लोकविभागाचार्योंके मतानुसार सब ही ज्योतिषी देवोकी नगरियोका बाहल्य विस्तारके बराबर निर्दिष्ट किया गया है। यह मत प्रस्तुत लो वि मे नही पाया जाता है। यहा तो श्लोक ६–९ व ६,११-१५ मे सूर्य-चन्द्रादि ज्योतिषियोके विमानोका केवल विस्तार मात्र निर्दिष्ट किया है, उनके बाहल्यका उल्लेख ही नही किया है। हा, ठीक इसके आगे 'पाठान्तर कथ्यते' कहकर श्लोक १६ मे मतान्तरस्वरूपसे सूर्य-चन्द्रादि ज्योतिषियोके विमानोके बाहल्यका प्रमाण अपने अपने विस्तारसे आधा अवश्य कहा गया है। यह मत ति प मे उपलब्ध होता है[2] । इस प्रकार जब प्रस्तुत ग्रन्थमे उक्त ज्योतिषी देवोके विमानोके बाहल्यप्रमाणका कुछ उल्लेख ही नही है तब मतान्तरसे उनके बाहल्यप्रमाणका उल्लेख करना सगत नही प्रतीत होता। ति. प मे चूकि पूर्वमे उक्त विमानोका बाहल्य विस्तारकी अपेक्षा आधा कहा जा चुका था, अत एव वहा लोकविभागाचार्योंके मतानुसार उसको विस्तारके बराबर बतलाना सर्वथा उचित व आवश्यक भी था।

४) ति प गा ९–९ मे लोकविनिश्चय और लोकविभागके अनुसार सब सिद्धोकी अवगाहनाका प्रमाण कुछ कम अन्तिम शरीरके बराबर निर्दिष्ट किया गया है। यह मत प्रस्तुत लो वि (११–६) मे पाया जाता है। परन्तु इसी श्लोकमे उन सिद्धोका अवस्थान जो गव्यूति (कोस) के चतुर्थ भाग (५०० धनुष) मे बतलाया है वह कुछ भिन्न ही प्रतीत होता है व उसकी सगति ५२५ धनुष प्रमाण अवगाहनासे मुक्त होनेवालोके साथ नही बैठती है। ति. प मे इस विषयमे दो मत पाये जाते हैं। उनमे एक मतके अनुसार सिद्धोकी उत्कृष्ट अवगाहना ५२५ धनुष और जघन्य ३½ हाथ[3] तथा दूसरे मतके अनुसार वह उत्कृष्ट ३५० धनुष और जघन्य २⅓ हाथ प्रमाण[4] निर्दिष्ट की गई है। बाहुबली आदि कितने ही ५२५ धनुषकी अवगाहनासे सिद्ध हुए हैं। इसी अभिप्रायसे सम्भवत ५२५ धनुष प्रमाण उनकी उत्कृष्ट अवगाहना कही गई है। दूसरे मतके अनुसार सिद्धोकी वह अवगाहना चूकि अन्तिम शरीरके तृतीय भागसे हीन मानी गई है[5],

---

१ प्रस्तुत लो वि मे द्वितीय विभागके श्लोक ३, ५, ६, ७ और ८ का मिलान क्रमसे हरिवशपुराणके ५, ४३४ से ३८ श्लोकोंसे कीजिये।

२ देखिये ति प ७–३९, ६८, ८५, ९१, ९५, ९८ और १००

३ ति प ९–६ ४. ति प ९–११ ५ ति. प. ९–१०

जिणदिट्ठपमाणाओ होंति पइण्णयतियस्स देवीओ ।
सव्वणिगिट्ठसुराण पि देवीओ वत्तीस पत्तेक्क ॥ ३-१०८

इसका छायानुवाद सिंहसूरर्षिने इस प्रकार किया है--

प्रकीर्णकत्रयस्यापि जिनदृष्टप्रमाणका । देव्य· सर्वनिकृष्टाना द्वात्रिंशदिति भाषिता: ॥ ७-६६,

ति प मे १६ कल्पो विपयक मान्यताके अनुसार उन उन कल्पोमे विमानसख्याके प्ररूपणकी प्रतिज्ञा इस प्रकार की गई है---

जे सोलस कप्पाइ केई इच्छति ताण उवएसे ।
तस्सि तस्सि वोच्छ परिमाणाणि विमाणाण ॥ ८-१७८.

अव इसका छायानुवाद प्रस्तुत ग्रन्थमे देखिये[1]---

ये च षोडश कल्पाश्च केचिदिच्छन्ति तन्मते ।
तस्मिंस्तस्मिन् विमानाना परिमाण वदाम्यहम् ॥ १०-३६

ति प मे प्रथमत आनत-प्राणत और आरण-अच्युत कल्पोके विमानोकी सख्या क्रमसे ४४० और २६० वतलाकर आगे मतान्तरसे इन विमानोकी सख्या इस प्रकार निर्दिष्ट की गई है---

अहवा आणदजुगले चत्तारि सयाणि वरविमाणाणि ।
आरण-अच्चुदकप्पे सयाणि तिण्णि च्चिय हुवंति ॥ ८-१८५

इसी क्रमसे प्रस्तुत ग्रन्थमे भी प्रथमत उनकी सख्या ४४० और २६० वतलाकर मतान्तरसे पुन उसका उल्लेख उसी प्रकारसे किया गया है---

चतु शतानि शुद्धानि आनत-प्राणतद्विके । आरणच्युतयुग्मे च त्रिशतान्यपरे विदु: ॥ १०-४३

---

१ ति प मे इसके पूर्व (८, १६१-७५) १२ कल्पोके आश्रयसे श्रेणीवद्ध, इन्द्रक और प्रकीर्णक विमानोकी सख्याका उल्लेख कर देनेके पश्चात् ही उपर्युक्त गाथा द्वारा १६ कल्पोकी मान्यतानुसार उस विमानसख्याके वर्णन करनेकी प्रतिज्ञा की गई है और तदनुसार उसका पृथक् पृथक् वर्णन किया भी गया है। किन्तु सिंहसूरर्षिकी यह एक विशेषता रही है कि उन्होंने श्लोक १०, १७-१८ द्वारा सख्यानिर्देशके विना १२ कल्पोका निर्देश करके भी ति प के समान इन कल्पोंके आश्रित उन विमानोकी सख्याका कोई उल्लेख नही किया, केवल श्लोक २१ के द्वारा उक्त विमानोकी समुदित सख्याका ही निर्देश कर दिया है। इस प्रकार उन्होने आगे १६ कल्पोके मतभेदका उल्लेख करके तदनुसार जो पृथक् पृथक् विमानसख्याका उल्लेख किया है उसे अप्रासगिक ही समझना चाहिये। इसके अतिरिक्त सातवे और आठवे कल्पका उल्लेख जो उन्होने महाशुक्र और सहस्रार (१०-१८) के नामसे किया है उसका भी निर्वाह वे अन्त तक नही कर सके। उदाहरणार्थ- आगे ७४वे श्लोकमे उन्होने ७वे कल्पका निर्देश शुक्र और ८वे कल्पका शतारयुगलके नामसे किया है। इसी प्रकार आगे भी ७७वे श्लोकमे इन दोनो कल्पोका निर्देश क्रमश शुक्र और शतारके नामसे ही किया है। इस पूर्वापर विरोधका कारण यह है कि इस विपयमे भी दो मत पाये जाते हैं— सर्वार्थसिद्धिकार १२ इन्द्रोमे जहा ७वे इन्द्रका शुक्र और ८वेका शतारके नामसे निर्देश करते हैं (४-१९) वहा ति प के कर्ता उन्ही दोनोका निर्देश महाशुक्र और सहस्रार (८, १४३-४४) के नामसे करते हैं। ति प के कर्ताने आगे भी सर्वत्र इन्ही दोनो नामोका उपयोग किया है। चौदह इन्द्रोकी मान्यताको प्रधानता देनेवाले तत्त्वार्थवृत्तिकार भी जब मूल तत्त्वार्थसूत्रके अनुसार १२ इन्द्रोको स्वीकार करते हैं तव वे भी उक्त दोनोका निर्देश सर्वार्थसिद्धिके समान शुक्र और शतारके नामसे करके महाशुक्र और सहस्रारको दक्षिणेन्द्रानुवर्ती वतलाते है। (देखिये त वा पृ २३३)

ये कुछ थोडे-से ही उदाहरण यहा दिये है। ऐसे अन्य भी बीसो उदाहरण दिये जा सकते है[1]। इससे यह निश्चित है कि प्रस्तुत ग्रन्थकी रचनामे श्री सिहसूरर्षिने तिलोयपण्णत्तीका अत्यधिक उपयोग किया है।

१०. लोकविभाग व हरिवंशपुराण

श्री पुनाटसघीय जिनसेनाचार्य द्वारा विरचित हरिवशपुराण (शक स ७०५) प्रथमानुयोगका एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसके ३ सर्गो (४-६) मे तीन लोकोकी विस्तारसे प्ररूपणा की गई है। श्रीसिहसूर ऋषिने प्रस्तुत लोकविभागकी रचनामे इसका भी पर्याप्त उपयोग किया है। उन्होने प्रथम विभागमे जो द्वितीय जम्बूद्वीपका वर्णन किया है उसमे ह पु. के ५वे सर्गके ३९८-४०२ श्लोक क्रमसे यहाँ ३४६-५० सख्यासे अकित उपलब्ध होते हैं। इसके आगेके श्लोक ४११-१६ भी प्रस्तुत लो वि के प्रथम विभागमे ही क्रमसे ३६५ ७० सख्याकोसे अकित पाये जाते हैं। ये सब श्लोक हरिवशपुराणसे यहाँ प्रायः जैसेके तैसे ले लिये गये है। यदि इनमे कही कोई भेद पाया जाता है तो केवल एक आध शब्दका ही भेद पाया जाता है। उदाहरणार्थ यह श्लोक देखिये--

प्रासादे विजयस्यात्र सिंहासनमनुत्तरम्।
सचामरसितच्छत्रं तत्र पूर्वमुखोऽमरः ॥ ह. पु. ५-४११
प्रासादे विजयस्यात्र सिंहासनमनुत्तरम्।
सचामर च सच्छत्रं तस्मिन् पूर्वमुखोऽमरः ॥ लो. वि. १-३६५

यहाँ मात्र तीसरे चरणमे यत् किंचित् परिवर्तन किया गया है। इससे हरिवशपुराण-कारका जो धवल छत्रसे तात्पर्य था वह यहाँ समाप्त हो गया है। चतुर्थ चरणमे 'तत्र' के स्थानमे 'तस्मिन्' का उपयोग किया गया है।

ह पु के ४१३वे श्लोकके 'मध्यमा दश बोद्धव्या दक्षिणस्या दिशि स्थिता' इस उत्तरार्धमे यहाँ यह परिवर्तन किया गया है-- दश मध्यमिका वेद्या दक्षिणस्या तु सा दिशि। इस परिवर्तनमे 'मध्यमा' जैसे सुन्दर पदके स्थानमे 'मध्यमिका' किया गया है, तथा 'स्थिता' पदका अभिप्राय रह ही गया है।

हरिवशपुराण (५, ३७४-७६) मे कितने ही नामान्तरोसे मेरु पर्वतका जिस प्रकार कीर्तन किया गया है उसी प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थमे भी उन्ही या उन जैसे १६ नामोके द्वारा उसका कीर्तन किया गया है (१, ३२७-२९)।

ठीक इसके आगे ह पु मे जम्बूद्वीपकी जगतीके वर्णनका प्रारम्भ करते हुए उसका उल्लेख इस प्रकारसे किया है--

इति व्यावर्णित द्वीप परिक्षिपति सर्वत । पर्यन्तावयवत्वेन सास्यैव जगती स्थिता ॥
मूले द्वादश मध्येऽष्टौ चत्वार्यग्रे च विस्तृता। अष्टोच्छ्रयावगाढा तु योजनार्धमधो भुवः ॥
ह पु ५,३७७-७८

---

१ जैसे ति. प ४-२५८१ व लो वि ३-२३, ति ५-८२ व लो ४-५०, ति प ५-१६५ व लो वि ४-८८, ति प ८, ४४८-५१ व लो वि १०, ९०-९२ (त्रि सा ४८६-८७), तथा ति. प ८, ४४६-४७ व लो वि १०, २७३-२७५, ति प ८, ५९४ व लो वि १०-३४१, ति. प ८-५०९, ५११ व लो वि १०,२३४-२३५ आदि।

प्रस्तुत ग्रन्थमे भी ठीक उसीके आगे उक्त जगतीका वर्णन इस प्रकारसे प्रारम्भ किया गया है —

द्वादशाष्टौ चतुष्कं च मूलमध्याग्रविस्तृता। जगत्यष्टोच्छ्रया भूमिमवगाढार्धयोजनम् ॥
सर्वरत्नमयी मध्ये वैडूर्यशिखरोज्ज्वला। वज्रमूला च सा द्वीपं परिक्षिपति सर्वतः ॥३,१३०-३१.

इस प्रकार ह पु मे जहाँ उक्त जगतीका प्रथम श्लोकमे ही 'द्वीप परिक्षिपति सर्वत' इस उल्लेखके द्वारा जम्बूद्वीपसे सम्बन्ध प्रदर्शित किया गया है वहाँ प्रस्तुत ग्रन्थमे उसका सम्बन्ध द्वितीय श्लोकमे उसी 'द्वीप परिक्षिपति सर्वतः' के द्वारा जम्बूद्वीपके साथ प्रदर्शित किया गया है। आगे उक्त जगतीके वर्णनमे प्रस्तुत ग्रन्थके ३३१-४२ श्लोक उसी क्रमसे ह पु के ३७९-९० श्लोकोके साथ न केवल अर्थत ही समान हैं, अपि तु शब्दशः भी प्राय (जैसे–श्लोक ३३७-३८ व ३४१-४२ ह पु ३८५-८६ व ३८९-९० आदि) समान हैं[१]।

इन उदाहरणोसे यह भली भाँति सिद्ध है कि प्रस्तुत ग्रन्थकी रचनामे श्री सिंहसूर्षिने न केवल हरिवशपुराणका अनुसरण ही किया है, बल्कि उसके अनेक श्लोकोको विना किसी प्रकारके उल्लेखके प्रस्तुत ग्रन्थके अन्तर्गत भी कर लिया है।

११. लोकविभाग व आदिपुराण

श्री आचार्य जिनसेन स्वामी द्वारा विरचित महापुराण (आदिपुराण व उत्तरपुराण) के तीसरे पर्वमे पीठिकाके व्याख्यानमे कालकी प्ररूपणा की गई है। इस प्ररूपणामे वहाँ सुषम-सुषमा, सुषमा और सुषम-दुषमा कालोमे होनेवाले नर-नारियोकी अवस्थाका विशद वर्णन किया गया है। प्रस्तुत लोकविभागके पाचवे प्रकरणमे उक्त कालका वर्णन करते हुए श्लोक ३८ मे यह कहा गया है कि तृतीय कालमे जव पल्योपमका आठवा भाग ($\frac{1}{8}$) शेष रह जाता है तव चौदह कुलकर और तत्पश्चात् आदि जिनेन्द्र भी उत्पन्न होते हैं। इसके आगे 'उक्त चार्षे' कहकर १३७वे श्लोक तक १०७ श्लोकोके द्वारा १४ कुलकरोकी आयु आदि व उनके समयमे होनेवाली आर्य जनोकी अवस्थाओका वर्णन किया गया है। ये सव ही श्लोक आदिपुराणमे पूर्णरूपमे या विभिन्न पादोके रूपमे पाये जाते हैं। इस वर्णनमे श्री सिंहसूरर्षिने, जैसे इसी प्रकरणमे आगे (पृ ९९) 'उक्त च द्वय त्रिलोकप्रज्ञप्तौ' ऐसा कहकर उद्धृत की जानेवाली गाथाओकी सख्याका भी स्पष्ट उल्लेख कर दिया है, वैसे उन आर्षके श्लोकोकी सख्याका उल्लेख करना आवश्यक नही समझा। इस प्रकरणमे उक्त आदिपुराणके जो श्लोक परिपूर्णरूपमे पाये जाते हैं उनकी तालिका इस प्रकार है—

---

१ इनके अतिरिक्त प्रस्तुत ग्रन्थके ३, १३-२१ श्लोकोका भी ह पु के ५, ५०६-१८ श्लोकोंसे मिलान कीजिये। इनमे भी किसीका पूर्वार्ध तो किसीका उत्तरार्ध प्राय जैसाका तैसा है।

लो वि	८७ पू	६–८(उ)	९–१०	११–१३	४१	४२–४४	४५
आ पु	३रा पर्व	५५–५७	६३–६४	६९–७१	७९	८१–८३	८५

लो वि	४७	४८	४९	५४–५५	५६	५७–६३	६५–७०	७१–७३
आ पु	९०	९२	९३	१०४– ५	१०७	१०९–११५	११८–२३	१२५–२७

लो. वि	७४–७५	७६	७७–७८	७९	८०–८१	८२	८३
आ. पु	१२९–३०	१३२	१३४–३५	१३७	१३९–४०	१४२	१४४

लो वि	८४–८५	८६	८७–८८	८९–९०	९१–१३७
आ. पु	१४६–४७	१४९	१५२–५३	१६४–६५	१८२–२२८

अव ३९, ४०, ४६,५०–५३ और ६४ ये ८ श्लोक रह जाते है। इनको आदिपुराणगत कुछ श्लोकोके पूर्वार्ध-उत्तरार्ध भागोसे या उनके विविध पादोसे पूर्ण किया गया है। जैसे–श्लोक ३९ की पूर्ति आ पु के ७२वे श्लोकके पू और ७६ के पू. भागसे तथा श्लोक ५० की पूर्ति उसके ९४वे श्लोकके पू, ९५वे के प्र पाद और ९६वे के च पादको लेकर की गई है। परन्तु इस प्रकारकी पूर्तिसे पूर्वापर सम्बन्ध टूट गया है। (देखिये पीछे ग्रन्थपरिचय पृ १०)

१२ लोकविभाग व त्रिलोकसार

श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती द्वारा विरचित त्रिलोकसार (शक की १०वी शताब्दिका पूर्व भाग) ग्रन्थमे तीनो लोकोका वर्णन व्यवस्थित रीतिसे किया गया है। वह भी प्रस्तुत ग्रन्थकी रचनाके समय सिंहसूरर्षिके समक्ष रहा है, यह उनके द्वारा नामोल्लेखके साथ उससे उद्धृत की गई गाथाओसे ही सिद्ध है। प्रस्तुत ग्रन्थमे सिंहसूरर्षिके द्वारा उक्त त्रिलोकसारकी लगभग ३९-४० गाथाये उद्धृत की गई हैं। इसके अतिरिक्त उन्होने प्रकृत ग्रन्थकी रचनामे भी इसका पर्याप्त उपयोग ही नही किया, अपि तु उसकी पचासो गाथाओका लगभग छायानुवाद जैसा किया है। इसके लिये यहाँ तुलनात्मक दृष्टिसे कुछ थोडे-से उदाहरण दिये जाते है—

छम्मासद्धगयाण जोइसयाणं समाणदिणरत्ती।
त इसुप पढम छसु पव्वसु तीदेसु तदियरोहिणिए ॥४२१.

यह त्रिलोकसारकी गाथा है। इसका मिलान प्रस्तुत ग्रन्थके इन पद्योसे कीजिये—

षण्मासार्धगतानां च ज्योतिष्काणां दिवानिशम्। समानं च भवेद्यत्र त कालमिषुप विदु. ॥
प्रथम विषुव चास्ति षट्स्वतीतेषु पर्वसु। तृतीयायां च रोहिण्यामित्याचार्या. प्रचक्षते॥६,१५०-५१

यह एक दूसरा उदाहरण देखिये —

जंबूचारधरूणो हरिवस्ससरो य णिसहबाणो य।
इह बाणावट्टं पुण अब्भंतरवीहिवित्थारो॥ ३९२.

इस त्रिलोकसारकी गाथाका प्रस्तुत लो वि के निम्न श्लोकसे मिलान कीजिये—

जम्बूचारधरोनौ हरिभू-निषधाशुगौ। इह बाणौ पुनर्वृत्तमाद्यवीथ्याश्च विस्तृतिः॥६–२११.

यह एक तीसरा भी उदाहरण देखिये ––

जोइसदेवीणाऊ सग-सगदेवाणमद्धय होदि ।
सव्वणिगिट्ठसुराण बत्तीसा होंति देवीओ ।। ४४९,

इसका निम्न श्लोकसे मिलान कीजिये––

आयुर्ज्योतिष्कदेवीना स्व-स्वदेवायुरर्धकम् । सर्वेभ्यश्च निकृष्टाना देव्यो द्वात्रिंशदेव च ।।६-२३५

इस प्रकारसे अन्य (४–२२ त्रि ३५७, ६–१२८ त्रि ३९५, ९, ७-८ त्रि २९७ तथा ९–९ त्रि २९९ आदि) भी कितने ही उदाहरण दिये जा सकते है।

त्रिलोकसारके अन्तमे (गा ९७८–१०१४) अकृत्रिम जिनभवनोका वर्णन किया गया है । उसका अनुसरण करके प्रस्तुत लो वि मे भी सुमेरुके वर्णनमे उन जिनभवनो प्राय उसी रूपसे वर्णन किया गया है । इसमे लो वि के १,२९५-३११ श्लोकोका त्रि सा की ९८४-१०१ गाथाओसे मिलान किया जा सकता है ।

प्रस्तुत ग्रन्थके ८वे विभागमे श्लोक ४६-४७ द्वारा सातवी पृथिवीके ४ श्रेणीबद्ध और १ इन्द्रक इन ५ नारक बिलोके विन्यासको वतलाकर आगे ' उक्त च ' कहते हुए ' मनुष्य-क्षेत्रमान स्यात् ' आदि एक श्लोक दिया गया है, जो पूर्वोक्त विषयसे विषयान्तरको प्राप्त होकर गणितसूत्रके रूपमे ४९ इन्द्रक निलोके विस्तारका सूचक है। यह श्लोक किस ग्रन्थका है, यह ज्ञात नही होता। परन्तु वह त्रिलोकसारकी निम्न गाथाके छायानुवादके समान है––

माणुसखेत्तपमाणं पढम चरिमं तु जबुदीवसमं ।
उभयविसेसे रूऊणिदयभजिदम्हि हाणि-चय ।। १६९

आश्चर्य नही जो ' उक्त ' च कहकर इसी गाथाको वहा देना चाहते हो और अनुवाद कर दिया हो सस्कृतमे । उसका उत्तरार्ध भी शुद्ध उपलब्ध नही है ।

जैन स स सघ
सोलापूर

वालचन्द्र शास्त्री

विषय-सूची

विषय	श्लोकसंख्या

१. प्रथम विभाग

२. द्वितीय विभाग

३. तृतीय विभाग

४. चतुर्थ विभाग

विषय	श्लोकसख्या

७. सातवां विभाग

८. आठवां विभाग

९. नौवां विभाग

१०. दशम विभाग

विषय	श्लोकसख्या
लोकपालोके विमानोके नाम	२७९–८०
गणिकामहत्तरियोके नाम	२८१
गणिकाओकी आयुके साथ कन्दर्पादि देवोकी उत्पत्तिकी सीमा व आयुप्रमाण	२८२–८३
कल्पोमे प्रवीचारकी मर्यादा	२८४
वैमानिक देवोके शरीरकी ऊँचाई	२८५–८७
वमानिक देवोमे लेश्याका विभाग	२८८–८९
वैमानिक देवोंमे विक्रिया व अवधिविषयकी मर्यादा	२९०–९३
वैमानिक देवियोके उत्पत्तिस्थानकी सीमा	२९४–९५
सौधर्म-ऐशान कल्पोमे केवल देविओसे और उभयसे परिपूर्ण विमानोकी सख्या	२९६–९७
वैमानिक देवोके जन्म-मरणका अन्तर	२९८–३०४
इन्द्रादिकोका विरहकाल	३०५–६
अरुण समुद्रसे उद्गत अन्धकार और कृष्णराजियोंका विस्तार	३०७–१४
कृष्णराजियोके मध्यमे लौकान्तिक-सुरालय	३१५–१७
लौकान्तिक देवोके विमान	३१८
उन सारस्वतादि लौकान्तिकोकी सख्या	३१९–२१
तिलोयपण्णत्ती (८,५९७–६३४) के अनुसार अरुण समुद्रके प्रणिधिभागसे उठे हुए अन्धकार और आठ कृष्णराजियोकी प्ररूपणा करते हुए उनके अन्तरालमे उक्त लौकान्तिकोके अवस्थानका निर्देश	पृ.२१२–१५
ईषत्प्राग्भार पृथिवीसे निकली हुई रज्जुओका तिर्यग्लोकमे पतन	३२२–२४
देवोका उत्पन्न होकर स्वर्गीय अभ्युदयका देखना व अवधिज्ञानसे उसे धर्मका फल जानकर प्रथमत जिनपूजामे और पश्चात् विषयोपभोगमे प्रवृत्त होना	३२५–४७
महाकल्याणपूजामे कल्पवासियोका आगमन व कल्पातीतोका वहीसे प्रणाम करना	३४९

११. ग्यारहवां विभाग

विषय	श्लोकसख्या
सिद्धोके निवासभूत ईषत्प्राग्भार पृथिवीका विस्तारादि	१–३
उसका सर्वार्थ इन्द्रकसे अन्तरप्रमाण	४
तनुवातवलयके अन्तमे सिद्धोका अवस्थान	५
सिद्धोकी अवगाहना व उनका ऊर्ध्वगमन	६–८
सिद्धोका विशेष स्वरूप	९–१५
सिद्धोंके स्वाभाविक सुख तथा विषयजन्य सासारिक सुखका स्वरूप	१६–४३
लोककी ऊँचाई व अधोलोकका अन्तिम विस्तार	४४–४५
मध्यलोकके ऊपर कल्पानुसार ऊँचाईका प्रमाण	४६–४७
अपेक्षाकृत अधोलोक व ऊर्ध्वलोकका विस्तार	४७–४९
कैसा जीव सिद्धिको प्राप्त होता है	५०
ग्रन्थकारकी प्रशस्ति	५१–५४

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२३	३	त्साव	वत्सा
२३	१७	आठवी रमणीया	रमणीया, आठवी
४८	३	दर्शवेष	दर्शवैष
४८	२१	प्रदेशोकी हानि करके	प्रदेश जा करके
४८	२२	योजनोकी भी हानि समझना चाहिये	योजनोके क्रमको भी जानना चाहिये
४८	२२–२३	प्रदेशोकी हानि करके	प्रदेश जा करके
४८	२३–२४	प्रकारसे ही जानना चाहिये	प्रकारसे पचानवै अगुल, धनुष और योजन जानेपर वह क्रमसे सोलह अगुल आदि प्रमाण ऊँचा उठा है
५१	३	-ताहत	-ताहतम् ।
५३	१२	क्रिमेण	क्रमेण
५५	१	पूव	पूर्व
६३	२४	आगोके	आगेके
८४	२०	कल्पवृक्षोके मृदगाग	कल्पवृक्षोके साथ मृदगाग
९०	१	तैर्लम्मितो	तैर्लम्भितो
९७	३०	आकएँ	आकरो
९८	१४	शरीरोका	उपस्थित होनेपर आर्योके शरीरका
९८	१५	उपस्थित होनेपर	× × ×
१०१	६	तस्सोसल	तस्सोलस
१२२	६	श्रवि [धनि]	श्रवि [धनि]
१२८	७	वारुणश्चार्यमाचान्यो	वारुणश्चार्यमा चान्यो
१२८	२२	सारमट	सारभट
१३३	९	नक्षत्र	ग्रह
१३६	९	चमरस्रतो	चमरस्तलो
१३७	४	-त्रिशत्तु	-स्त्रिशत्तु
१६७	५	भूतोत्तमा	भूतोत्तमा.
१६७	५	प्रतिच्छनाश्च	प्रतिच्छन्नाश्च
१६७	१२	किंनरोत्तसाः	किंनरोत्तमा
१७०	१०	८०००	८००००
१७०	१२	८००००	८०००
१९३	१	शशी	शची
२१८	१४	रहने	रहनेसे
२२०	४	चोर्ध्वायास्युर्ये	चोर्ध्वायास्तुर्ये

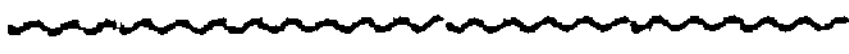
सिंहसूरर्षिविरचित

लोकविभागः



[प्रथमो विभागः]

लोकालोकविभागज्ञान् भक्त्या स्तुत्वा जिनेश्वरान् । व्याख्यास्यामि समासेन लोकतत्त्वमनेकधा ॥ १
क्षेत्रं कालस्तथा तीर्थं प्रमाणपुरुषैः सह । चरितं च महत्तेषां पुराणं पञ्चधा विदुः ॥ २
समन्ततोऽप्यनन्तस्य वियतो मध्यमाश्रितः । त्रिविभागस्थितो लोकस्तिर्यग्लोकोऽस्य[1] मध्यगः ॥ ३
जम्बूद्वीपोऽस्य मध्यस्थो मन्दरस्तस्य मध्यगः । तस्माद्विभागो लोकस्य तिर्यगूर्ध्वोऽधरस्तथा ॥ ४
तिर्यग्लोकस्य बाहल्य मेर्वायामसम स्मृतम् । तस्मादूर्ध्वो[2] भवेदूर्ध्वो ह्यधस्ताव[द]धरो[3]ऽपि च ॥ ५
झल्लरीसदृशो मध्यो वेत्रासनसमोऽधरः । ऊर्ध्वो मृदङ्गसंस्थान इति लोकोऽर्हतोदितः ॥ ६
योजनानां शतं पूर्णं सहस्रगुणितं च तत् । जम्बूद्वीपस्य विस्तारो दृष्टः केवलदृष्टिभिः ॥ ७
१००००० ।



लोक और अलोकके विभागको जाननेवाले तीर्थंकरोकी भक्तिपूर्वक स्तुति करके यहा मैं संक्षेपमे अनेक प्रकारके लोकतत्त्वका व्याख्यान करूगा ॥१॥ क्षेत्र, काल, तीर्थ तथा प्रमाणपुरुषोके साथ उनका महान् चरित्र भी, इस प्रकार पुराण पाच प्रकारका जानना चाहिये ॥ २ ॥ यह लोक जिसका कि चारो ओर अन्त नही है ऐसे अनन्त आकाशके मध्यमे स्थित है । इसके तीन विभाग है– ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यग्लोक (मध्यलोक)। इनमे तिर्यग्लोक इसके मध्यमे स्थित है ॥ ३ ॥ इसके मध्यमे जम्बूद्वीप स्थित है और उसके भी मध्यमे मंदर पर्वत (मेरु) स्थित है । उसीसे लोकके ये तीन विभाग हैं— तिर्यक्, ऊर्ध्व और अधर ॥ ४ ॥ इनमे तिर्यग्लोकका बाहल्य (मुटाई) मेरुकी उचाई (१००००० यो) के बराबर माना गया है । उक्त मेरुके ऊपर ऊर्ध्वलोक और उसके नीचे अधरलोक स्थित है ॥ ५ ॥ मध्यलोक झालरके सदृश, अधरलोक वेत्रासनके समान, तथा ऊर्ध्वलोक मृदग जैसा है । इस प्रकारका यह लोकका आकार अरिहन्त भगवान्के द्वारा कहा गया है ॥ ६ ॥ केवलियोंके द्वारा जम्बूद्वीपका विस्तार सहस्रसे गुणित पूर्ण सौ योजन अर्थात् एक लाख (१०००००) योजन प्रमाण देखा गया है ॥ ७ ॥ उसकी परिधिका

१ प लोकस्स । २ ब 'दूर्ध्वो । ३ ब 'पधरो ।

लक्षस्थानात् क्रमाद् ग्राह्य. सप्त द्वे द्वे षडेककम् । त्रीणि चास्य परिक्षेपो योजनाना प्रमाणत ॥ ८
तिस्रो गव्यूतयश्चान्या अष्टाविंशधनु शतम् । त्रयोदशाङ्गुलानि स्यु: साधिक चार्धमङ्गुलम् ॥ ९

यो ३१६२२७ क्रो ३ ध[1] १२८ अ १३ सा $\frac{1}{2}$ ।

भारत दक्षिणे वर्षे [षं] तत्र हैमवत परम् । हरिवर्पविदेहाश्च रम्यक च हिरण्यवत् ॥ १०
ऐरावत च द्वीपान्ते इति वर्षाणि नामत । भवेयुरत्र सप्तैव षड्वास्यधरपर्वता ॥ ११
हिमवानादित शैल परतश्च महाहिम' । निषधश्च ततो नीलो रुग्मी च शिखरी च ते ॥ १२
हेमार्जुनमयौ शैलौ तपनीयमयोऽपर । वैडूर्यो रजतश्चान्य सौवर्णश्च[2] क्रमात् स्थिता ॥ १३
षड्विंशतिशतानि स्यु: पञ्च योजनसख्यया । एकान्नविंशतेर्भागा षट् च दक्षिणपार्श्वम् ॥ १४

यो ५२६ भा $\frac{6}{19}$ ।

वर्षात्तु द्विगुण शैल. शैलाद्वर्षं च तत्परम् । इत्या विदेहतो विद्यात्ततो हानिश्च तत्समा ॥ १५
जम्बूद्वीपस्य भाग' स्यान्नवत्यात्र शतस्य य' । भारतं त विदु प्राज्ञा सख्यानज्ञानपारगा[3] ॥ १६

प्रमाण अकक्रमसे सात, दो, दो, छह, एक और तीन (३१६२२७) अर्थात् तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन, तीन गव्यूति (कोस), एक सौ अट्ठाईस धनुष और साधिक साढे तेरह अगुल मात्र है– यो ३१६२२७ को ३ ध १२८ अ १३$\frac{1}{2}$ ॥ ८–९ ॥ उक्त जम्बूद्वीपके भीतर दक्षिणकी ओर भारतवर्ष है । उसके आगे हैमवत, हरिवर्ष, विदेह, रम्यक, हिरण्यवत् और द्वीपके अन्तमे ऐरावत; इस प्रकार इन नामोसे सयुक्त सात क्षेत्र तथा ये छह वर्षधर पर्वत है– आदिमे हिमवान् शैल, फिर महाहिमवान्, निपध, नील, रुग्मी और शिखरी ॥१०–१२॥ वे पर्वत क्रमसे सुवर्ण, चादी, तपनीय, वैडूर्य, रजत और सुवर्ण स्वरूपसे स्थित हैं ॥१३॥ दक्षिण पार्श्वभागमे स्थित भरतक्षेत्रका विस्तार पाच सौ छब्बीस योजन और एक योजनके उन्नीस भागोमेसे छह भाग प्रमाण है – ५२६$\frac{6}{19}$ यो ॥१४॥ क्षेत्रसे दूना पर्वत और फिर उससे दूना आगेका क्षेत्र है । यह क्रम विदेह क्षेत्र पर्यंत जानना चाहिये । आगे इसी क्रमसे उनके विस्तारमे हानि होती गई है ॥ १५ ॥ यहा जम्बूद्वीपका जो एक सौ नव्वैवां भाग है उसे सख्याज्ञानके पारगामी विद्वान् भारत वर्ष मानते है ॥ विशेषार्थ– जम्बूद्वीपका विस्तार एक लाख (१०००००) योजन प्रमाण है। उसके उपर्युक्त क्रमसे ये १९० विभाग हुए हैं– १ भरत + २ हिमवान् + ४ हैमवत + ८ महाहिमवान् + १६ हरिवर्ष + ३२ निषध + ६४ विदेह + ३२ नील + १६ रम्यक + ८ रुग्मी + ४ हैरण्यवत + २ शिखरी और + १ ऐरावत = १९० । इसीलिये जम्बूद्वीपके विस्तारमे १९० का भाग देकर लब्धको अभीष्ट क्षेत्र अथवा पर्वतके विभागोसे गुणित करनेपर उसके विस्तारका प्रमाण ज्ञात हो जाता है। जैसे – $\frac{100000 \times 32}{190} = 16842\frac{2}{19}$ यो निषध व नील पर्वतका विस्तार ॥१६॥

---

१ ब द । २ प व सौवराश्चि । ३ प सख्याज्ञानपारगा ।

पूर्वापरायत शैलो भरतस्य तु मध्यग । अन्ताभ्या सागर[1] प्राप्तो विजयार्धो हि नामत ॥ १७
पञ्चविंशतिमुद्विद्ध[2] २५ स्तच्चतुर्थमधोगत. ६¼। पञ्चाशत च विस्तीर्णस्त्रिश्रेणी रजतात्मक ॥१८
योजनानि दशोत्पत्य भूम्या दश च विस्तृते । श्रेण्यौ विद्याधराणा द्वे पर्वतायामसंमिते ॥ १९
पञ्चाशद्दक्षिणश्रेण्या षष्ठिरुत्तरत पुर । तासा नामानि वक्ष्यामि शास्त्रोद्दिष्टविधिक्रमात् ॥ २०
किन्नामित भवेदाद्य तत किन्नरगीतकम्[3] । तृतीय नरगीताख्य[4] चतुर्थं बहुकेतुकम् ॥ २१
पञ्चम पुण्डरीकं च सिंहध्वजमत. परम् । श्वेतध्वज च विज्ञेयं गरुडध्वजमष्टमम् ॥ २२
श्रीप्रभ श्रीधर चैव लोहार्गलमरिंजयम् । वज्रार्गलं च वज्राढच विमोची तु पुरजयम् ॥ २३
शकटादिमुखी प्रोक्ता तथा चैव चतुर्मुखी । बहुमुख्यरजस्का च विरजस्का रथनूपुरम् ॥ २४
मेखलाग्रपुर चैव क्षेमचर्यपराजितम् । कामपुष्पं च विज्ञेयं गगनादिचरी तथा ॥ २५
विनयादिचरी चान्या त्रिंशं शुक्रपुर स्मृतम् । सजयन्ती जयन्ती च विजया वैजयन्तिका ॥ २६
क्षेमंकरं च चन्द्राभ सूर्याभ च पुरोत्तमम् । चित्रकूट महाकूट हेमकूट त्रिकूटकम् ॥ २७
मेघकूटं विचित्रादिकूट वैश्रवणादिकम् । सूर्यादिकपुर चैव तथा चन्द्रपुरं स्मृतम् ॥ २८
स्यान्नित्योद्द्योतिनी चान्या विमुखी नित्यवाहिनी । एता वै दक्षिणश्रेण्या पुरी च सुमुखी तथा ॥ २९
प्राकारगोपुरोत्तुङ्गाः सर्वरत्नमयोज्ज्वलाः । राजधान्योऽत्र विज्ञेयाः प्रोक्ता सर्वज्ञपुङ्गवैः ॥ ३०

विजयार्ध नामक पर्वत भरत क्षेत्रके मध्यमे स्थित है । यह पर्वत पूर्व-पश्चिममे लबायमान होकर अपने दोनो ओरके अन्तिम भागोके द्वारा समुद्रको प्राप्त हुआ है ॥१७॥ उपर्युक्त रजतमय पर्वत पच्चीस (२५) योजन ऊचा, इसके चतुर्थ भाग (६¼यो.) मात्र अवगाहसे सयुक्त और पचास (५०) योजन विस्तीर्ण होता हुआ तीन श्रेणियोसे सहित है ॥१८॥ भूमिसे दस योजन ऊपर जाकर इस पर्वतपर दस योजन विस्तीर्ण दो विद्याधरश्रेणिया है। इनकी लबाई पर्वतकी लबाईके बराबर है ॥१९॥ इन श्रेणियोमेसे दक्षिण श्रेणिमे पचास और उत्तर श्रेणिमे साठ नगर हैं। उनके नामोको शास्त्रोक्त विधिके क्रमसे कहते है– १ किन्नामित २ किन्नरगीत ३ तृतीय नरगीत ४ चतुर्थ बहुकेतुक ५ पाचवा पुण्डरीक ६ सिंहध्वज ७ श्वेतध्वज ८ गरुडध्वज ९ श्रीप्रभ १० श्रीधर ११ लोहार्गल १२ अरिंजय १३ वज्रार्गल १४ वज्राढच १५ विमोची १६ पुरजय (जयपुर) १७ शकटमुखी १८ चतुर्मुखी १९ बहुमुखी २० अरजस्का २१ विरजस्का २२ रथनूपुर २३ मेखलापुर २४ क्षेमचरी (क्षेमपुरी) २५ अपराजित २६ कामपुष्प २७ गगनचरी २८ विनयचरी २९ तीसवा (?) शुक्रपुर ३० सजयन्ती ३१ जयन्ती ३२ विजया ३३ वैजयन्ती ३४ क्षेमकर ३५ चन्द्राभ ३६ सूर्याभ ३७ पुरोत्तम ३८ चित्रकूट ३९ महाकूट ४० हेमकूट ४१ त्रिकूट ४२ मेघकूट ४३ विचित्रकूट ४४ वैश्रवणकूट ४५ सूर्यपुर ४६ चन्द्रपुर ४७ नित्योद्योतिनी ४८ विमुखी ४९ नित्यवाहिनी और ५० सुमुखी, ये पचास नगरिया दक्षिण श्रेणिमे हैं। प्राकार और गोपुरोसे उन्नत, सर्वरत्नमय एव उज्ज्वल इन नगरियोको यहा राजधानी जानना चाहिये, ऐसा

१ आ प सगर। २ आ प °मुद्विद्द्। ३ आ प °नीतकम्। ४ आ प °नीताख्य।

अर्जुनाख्यारुणी चैव कैलासं वारुणी तथा । विद्युत्प्रभं किलिकिलं चूडामणिशशिप्रभम् ।। ३१
वशाल[1] पुष्पचूलं च हंसगर्भं बलाहकम् । शिवकरं च श्रीसौधं चमरं शिवमन्दिरम् ।। ३२
वसुमत्का वसुमती सिद्धार्थकमतः परम् । शत्रुंजयं केतुमालमेकविंशं ततः परम् ।। ३३
सुरेन्द्रकान्तमपरं तथा गगननन्दनम् । अशोका च विशोका च वीतशोका तथा स्मृता ।। ३४
अलका तिलका चैव तिलकं चाम्बरादिकम् । मन्दरं कुमुदं कुन्दं तथा गगनवल्लभम् ।। ३५
दिव्यादितिलकं चान्यद् भूम्यादितिलकं तथा । गन्धर्वादिपुरं चान्यन्मुक्ताहारं च नैमिषम् ।। ३६
अग्निज्वालं महाज्वालं श्रीनिकेतं जयावहम् । श्रीवासं मणिवज्राख्यं भद्राश्वं च धनंजयम् ।। ३७
गोक्षीरफेनमक्षोभ्यं गिर्यादिशिखरं तथा । धरणी धारिणी[2] दुर्गं दुर्दं[र्द्ध]रं च सुदर्शनम् ।। ३८
महेन्द्रादिपुरं चैव विजयादिपुरं तथा । सुगन्धिनी पुरी चान्या वज्रार्धतरसंज्ञकम् ।। ३९
रत्नाकरं च विज्ञेयं तथा रत्नपुरं वरम् । इत्येतान्युत्तरश्रेण्यां षष्ठिरत्र पुराणि तु ।। ४०
दशैव पुनरुत्पत्य चाभियोग्यपुराणि च । नानामणिमयान्यत्र प्रासादभवनानि च ।। ४१
ततः पञ्चोर्ध्वमुत्पत्य शिखरं दशविस्तृतम् । पूर्णभद्रेति सा श्रेणी गिरिनामसुरोऽत्र च ।। ४२
सिद्धायतनकूटं च दक्षिणार्धकमेव च । खण्डकादिप्रपातं च पूर्णभद्रं ततः परम् ।। ४३
विजयार्धकुमारं च मणिभद्रमतः परम् । तामिश्रगुहकं चैवमुत्तरार्धं च भारतम् ।। ४४

सर्वज्ञ देवो द्वारा कहा गया है ।। २०–३० ।। १ अर्जुना २ अरुणी ३ कैलास ४ वारुणी ५ विद्युत्प्रभ ६ किलकिल ७ चूडामणि ८ शशिप्रभ ९ वशाल १० पुष्पचूल ११ हंसगर्भ १२ बलाहक १३ शिवकर १४ श्रीसौध १५ चमर १६ शिवमंदिर १७ वसुमत्का १८ वसुमती १९ सिद्धार्थपुर २० शत्रुंजय २१ इक्कीसवा केतुमाल २२ सुरेन्द्रकान्त २३ गगननन्दन २४ अशोका २५ विशोका २६ वीतशोका २७ अलका २८ तिलका २९ अम्बरतिलक ३० मंदर ३१ कुमुद ३२ कुन्द ३३ गगनवल्लभ ३४ दिव्यतिलक ३५ भूमितिलक ३६ गन्धर्वपुर ३७ मुक्ताहार ३८ नैमिष ३९ अग्निज्वाल ४० महाज्वाल ४१ श्रीनिकेत ४२ जयावह ४३ श्रीवास ४४ मणिवज्र ४५ भद्राश्व ४६ धनंजय ४७ गोक्षीरफेन ४८ अक्षोभ्य ४९ गिरिशिखर ५० धरणी ५१ धारिणी ५२ दुर्ग ५३ दुर्धर ५४ सुदर्शन ५५ महेन्द्रपुर ५६ विजयपुर ५७ सुगन्धिनी ५८ वज्रार्धतर ५९ रत्नाकर और ६० रत्नपुर, इस प्रकार ये साठ नगर यहा उत्तर श्रेणिमे हैं ।। ३१–४० ।। इसके आगे दस ही योजन और ऊपर जाकर आभियोग्यपुर हैं। यहा नाना मणियोसे निर्मित प्रासाद-भवन हैं ।। ४१ ।। उसके ऊपर पाच योजन और जाकर दस योजन विस्तृत शिखर है । वह पूर्णभद्रा नामकी श्रेणि है । यहापर पर्वतके समान नामवाला (विजयार्ध) देव रहता है ।। ४२ ।। सिद्धायतन कूट, दक्षिणार्धभरत कूट, खण्डपपात, पूर्णभद्र, विजयार्धकुमार, मणिभद्र, तामिश्रगुह, उत्तरार्धभरत और अन्तिम वैश्रवण, ये विजयार्धके ऊपर नौ कूट स्थित हैं । इनकी

१ प वैशाल । २ ब दारिणी ।

अन्त्य वैश्रवणाख्यं च सक्रोशं षट्कमुच्छ्रितिः। जाम्बूनदानि सर्वाणि व्यन्तराक्रीडनानि च ।। ४५

यो ६ क्रो १ ।

पादोनक्रोशमुत्तुङ्गं पूर्णं गव्यूतिमायतम् । चैत्य तस्यार्धविस्तीर्णं कूटे प[पू]र्वमुखं स्थितम् ।। ४६

द्वे शते त्रिंशदष्टौ च कलास्तिस्रश्च पार्थवम् । दक्षिणार्धस्य विज्ञेयमुत्तरार्धेऽपि तत्समः ।। ४७

यो २३८ । $\frac{३}{१९}$ ।

शतानां सप्तनवति· साधिका षड्भिरष्टकैः । कलाश्च द्वादशैवोक्ता ज्यार्धस्य भरतस्य वा[१] ।।४८

यो ९७४८ । $\frac{१२}{१९}$ ।

इषुणा हीनविष्कम्भाच्चतुर्भिर्गुणितात् पुन.। बाणेन गुणितान्मूल जीवा स्यादिति भाषिता ।। ४९

षड्गुणितादिषुवर्गाज्जीवावर्गेण संयुतात् । मूलं चापं भवेदेवं भाषित मुनिपुङ्गवैः ।। ५०

उचाई एक कोस सहित छह ($६\frac{१}{४}$) योजन प्रमाण है। ये सब सुवर्णमय कूट व्यन्तर देवोके क्रीडास्थान हैं ।। ४३–४५ ।। [सिद्धायतन] कूटके ऊपर पाद कम एक ($\frac{३}{४}$) कोस ऊचा, पूरा एक कोस आयत और उसका आधा विस्तीर्ण ऐसा पूर्वाभिमुख चैत्यालय स्थित है ।। ४६ ।। दक्षिण भरतार्धका विस्तार दो सौ अडतीस योजन और तीन कला ($२३८\frac{३}{१९}$) प्रमाण जानना चाहिये। उत्तर भरतार्धका भी विस्तार उसीके बराबर है ।। विशेषार्थ– भरत क्षेत्रका विस्तार $५२६\frac{६}{१९}$ योजन है। इसके ठीक बीचमे ५० योजन विस्तृत विजयार्ध पर्वत स्थित है। अत एव भरत क्षेत्रके दो विभाग हो गये हैं। समस्त भरत क्षेत्रके विस्तारमेसे विजयार्धके विस्तारको कम करके शेषको आधा कर देनेपर दक्षिण व उत्तर भरतार्धका विस्तार होता है। यथा– $५२६\frac{६}{१९} - ५० \div २ = २३८\frac{३}{१९}$ ।। ४७ ।। छह अष्टको ($६ \times ८ = ४८$) से अधिक सत्तानबै सौ योजन और बारह कला प्रमाण ($९७४८\frac{१२}{१९}$ यो) अर्ध भरतकी जीवा कही गई है ।।४८।। बाणसे रहित विस्तारको चारसे गुणित करे, पश्चात् उसे बाणसे गुणित करनेपर जो प्राप्त हो उसका वर्गमूल निकाले। इस प्रक्रियासे जीवाका प्रमाण प्राप्त होता है, ऐसा परमागममे कहा गया है ।। उदाहरण– दक्षिण भरतका बाण $\frac{४५२५}{१९}$, वृत्तविस्तार— $\frac{१९०००००}{१९}$, $(\frac{१९०००००}{१९} - \frac{४५२५}{१९}) \times (\frac{४५२५}{१९} \times ४) = \frac{३४३०८०९६५००}{३६१}$, $\sqrt{\frac{३४३०८०९६५००}{३६१}} = \frac{१८५२२४}{१९} = ९७४८\frac{१२}{१९}$ दक्षिण भरतकी जीवा ।।४९।। बाणके वर्गको छहसे गुणित करके प्राप्त राशिमे जीवाके वर्गको मिला देनेपर उसका जो वर्गमूल होगा उतना धनुषका प्रमाण होता है, ऐसा मुनियोमे श्रेष्ठ गणधर आदिकोके द्वारा निर्दिष्ट किया गया है ।।

---

१ ब या ।

शतानि सप्त षट्षष्ठ्या सहस्राणि नवापि च । कला च साधिकैका स्याद्धनुरस्यार्धकस्य यत् ॥ ५१

यो ९७६६ । $\frac{१}{१९}$ ।

शतानि सप्त विंशत्या सहस्रं च दशाहतम् । एकादश कलाश्च ज्या विजयार्धोत्तरश्रिता[1] ॥ ५२

१०७२० । $\frac{११}{१९}$ ।

अयुतं सप्तशत्या च त्रिचत्वारिंशदग्रया । कला पञ्चदशापीति धनुःपृष्ठमिहोदितम् ॥ ५३

१०७४३ । $\frac{१५}{१९}$ ।

चतुर्दश सहस्राणि सप्तत्यग्रं चतुःशतम् । सैकं कलाश्च पञ्चैव भरतज्या निदेशिता ॥ ५४

यो १४४७१ । $\frac{५}{१९}$ ।

चतुर्दश सहस्राणि तथा पञ्चगुणं शतम् । अष्टाविंशतिसंयुक्तमेकादश कला धनुः ॥ ५५

यो १४५२८ । $\frac{११}{१९}$ ।

उच्छ्रितो योजनशतं क्षुल्लको हिमवान् गिरिः । महांश्च हिमवांस्तस्माद् द्विगुणो निषधस्ततः ॥५६

विंशतिश्च चतुष्कं च सहस्राणां शतानि च । नव द्वात्रिंशदग्राणि कलोना ज्या हिमाह्वके ॥ ५७

यो २४९३२ । $\frac{१}{१९}$ ।

उदाहरण– दक्षिण भरतका वाण $\frac{४५२५}{१९}$ यो, उसका वर्ग $\frac{२०४७५६२५}{३६१}$, उसकी जीवाका वर्ग $\frac{३४३०८०९७५०}{३६१}$, $\sqrt{\frac{३४३०८०९७५०}{३६१} + \left(\frac{४५२५}{१९}^{२} \times ६\right)} = \frac{१८५५५५}{१९}$ $= ९७६६\frac{१}{१९}$ यो दक्षिण भरतार्धका धनुष । इसको ग्रन्थकार आगेके श्लोक द्वारा स्वयं निर्दिष्ट करते हैं ॥५०॥ दक्षिण भरतार्धके धनुषका प्रमाण नौ हजार सात सौ छयासठ योजन और साधिक एक कला ($९७६६\frac{१}{१९}$) मात्र है ॥ ५१ ॥ विजयार्धके उत्तरमें जीवाका प्रमाण दशगुणित सहस्र अर्थात् दस हजार सात सौ बीस योजन और ग्यारह कला ($१०७२०\frac{११}{१९}$) मात्र है ॥ ५२ ॥ उसका धनुषपृष्ठ यहां दस हजार सात सौ तेतालीस योजन और पन्द्रह कला ($१०७४३\frac{१५}{१९}$) मात्र कहा गया है ॥ ५३ ॥ भरत क्षेत्रकी जीवा चौदह हजार चार सौ इकहत्तर योजन और पांच कला ($१४४७१\frac{५}{१९}$) प्रमाण निर्दिष्ट की गई है ॥५४॥ उसका (उत्तर भरतका) धनुष चौदह हजार पांच सौ अट्ठाईस योजन और ग्यारह कला ($१४५२८\frac{११}{१९}$) मात्र है ॥ ५५ ॥ क्षुद्र हिमवान् पर्वत एक सौ (१००) योजन ऊंचा है । उससे दूना (२०० यो) महाहिमवान् और उससे भी दूना (४०० यो) ऊंचा निषध पर्वत है ॥ ५६ ॥ हिमवान् पर्वतकी जीवा बीस और चार अर्थात् चौबीस हजार नौ सौ बत्तीस योजनमें एक कलासे रहित ($२४९३१\frac{१८}{१९}$) है [इसका प्रमाण त्रिलोकसारकी माधवचन्द्र त्रैविद्य विरचित टीकामें

---

१ ब श्रिता ।

पञ्चवर्गः सहस्राणां द्वे शते त्रिंशदेव च । चतस्रश्च कला वेद्या हिमवच्चापदण्डके ।। ५८

यो २५२३० । $\frac{४}{१९}$ ।

सिद्धायतनकूटं च हिमवद्भरतादिके । इला गङ्गा श्रिया चैव रोहितास्याख्यमेव च ।। ५९

सिन्धोरपि सुरादेव्या तत्र हैमवत परम् । कूटं वैश्रवणस्यापि रत्नान्येतानि जातितः ।। ६०

पञ्चविंशतिमुद्विद्धं मूले तत्समविस्तृतम् । चतुर्भागोनकं मध्ये अग्रे द्वादश सार्धकम् ।। ६१

१८ । $\frac{३}{४}$ । १२ । $\frac{१}{२}$ ।

सप्तत्रिंशत्सहस्राणि षट्छतानि[1] च सप्तति । चतुष्कं षोडश कला ज्योना हैमवतान्तिमा ।। ६२

यो ३७६७४ । $\frac{१६}{१९}$ ।

अष्टत्रिंशत्सहस्राणि सप्तभिश्च शतै सह । चत्वारिंशच्च तच्चाप कला दश च साधिका ।। ६३

यो ३८७४० । $\frac{१०}{१९}$ ।

त्रिपञ्चाशत्सहस्राणि एकत्रिंशान्यतो नव । शतानि च कला षट् च ज्या महाहिमवद्गिरेः ।। ६४

यो ५३९३१ । $\frac{६}{१९}$ ।

द्वे शते त्रिनवत्यग्रे सप्तपञ्चाशदेव च । सहस्राणि कलाश्चान्या दश तच्चापपृष्ठकम् ।। ६५

यो ५७२९३ । $\frac{१०}{१९}$ ।

सिद्धायतनकूटं च महाहिमवतोऽपि च । ततो पर हैमवतं रोहिताकूटमित्यपि ।। ६६

ह्रीकूटं हरिकान्तायाः हरिवर्षकमेव च । वैडूर्यकूटमन्त्यं च रत्नं पञ्चाशदुच्छ्रयम् ।। ६७

२४९३२$\frac{१}{१९}$ यो बतलाया गया है] ।। ५७ ।। हिमवान् पर्वतके धनुषका प्रमाण पाचका वर्ग अर्थात् पच्चीस हजार दो सौ तीस योजन और चार कला (२५२३०$\frac{४}{१९}$) जानना चाहिये ।। ५८ ।। सिद्धायतनकूट, हिमवान्कूट, भरतकूट, इलाकूट, गगाकूट, श्रीकूट, रोहितास्याकूट, सिन्धुकूट, सुरादेवीकूट, हैमवतकूट, और वैश्रवणकूट, ये हिमवान् पर्वतके ऊपर स्थित ग्यारह कूट जातिसे रत्नमय हैं ।। ५९-६० ।। प्रत्येक कूट पच्चीस योजन उद्वेध (अवगाह) से सहित और उतना (२५ यो) ही मूलमे विस्तृत है । उसका विस्तार मध्यमे चतुर्थ भागसे हीन पच्चीस (१८$\frac{३}{४}$) योजन और ऊपर साढे बारह (१२$\frac{१}{२}$) योजन मात्र है ।। ६१ ।। हैमवत क्षेत्रकी अन्तिम जीवाका प्रमाण सैंतीस हजार छह सौ चौहत्तर योजन और सोलह कला (३७६७४$\frac{१६}{१९}$) से कुछ कम है ।। ६२ ।। उसका धनुष अडतीस हजार सात सौ चालीस योजन और दस कला (३८७४०$\frac{१०}{१९}$ से कुछ अधिक है ।। ६३ ।। महाहिमवान् पर्वतकी जीवा तिरेपन हजार नौ सौ इकतीस योजन और छह कला (५३९३१$\frac{६}{१९}$) प्रमाण है ।। ६४ ।। उसका धनुषपृष्ठ सत्तावन हजार दो सौ तिरानवै योजन और दस कला (५७२९३$\frac{१०}{१९}$) प्रमाण है ।। ६५ ।। सिद्धायतनकूट, महाहिमवान्कूट, हैमवतकूट, रोहिताकूट, ह्रीकूट, हरिकान्ताकूट, हरिवर्षकूट और अन्तिम रत्नमय वैडूर्यकूट, ये आठ कूट महाहिमवान् पर्वतके ऊपर स्थित है । इनमेसे प्रत्येक कूट पचास योजन

---

[1] प वृतानि ।

त्रिसप्ततिसहस्राणि शतानि नव चैककम्। भागास्सप्तदशापि ज्या हरिवर्षोत्तरा स्मृता ॥ ६८

यो ७३९०१। $\frac{17}{19}$।

सहस्राणामशीतिश्च चतुष्कमथ षोडश। चत्वारश्च तथा भागा धनुःपृष्ठमिहोदितम् ॥ ६९

यो ८४०१६। $\frac{4}{19}$।

नवतिश्च सहस्राणि चत्वारि च पुनः शतम्[1]। षट्पञ्चाशच्च सैषा ज्या निषधे द्विकलाधिका ॥७०

यो ९४१५६। $\frac{2}{19}$।

चतुर्विंशं सहस्राणां शतं च त्रिशतानि च। षट्चत्वारिंशदग्राणि कला नव च तद्धनुः ॥ ७१

यो १२४३४६। $\frac{9}{19}$।

चैत्यस्य निषधस्यापि हरिवर्षस्य चापरम्। पूर्वेषां च विदेहानां हरित्कूटं धृतेस्तथा ॥ ७२
सीतोदापरविदेहं रुचकं नवमं भवेत्। सर्वरत्नानि तानि स्युरुच्छ्रयं शतयोजनम् ७३ ॥
दक्षिणार्धस्य यन्मानमाविदेहेभ्य उच्यते। तदेवोत्तरभागस्य यथासंभवमुच्यताम् ॥ ७४
जीवाशोधित[2]जीवार्धं नामतश्चूलिकोच्यते। चापशोधित[2]चापार्धं भवेत्पार्श्वभुजेति च ॥ ७५

ऊंचा है ॥६६–६७॥ हरिवर्ष क्षेत्रकी उत्तर जीवा तिहत्तर हजार नौ सौ एक योजन और सत्तरह भाग (७३९०१ $\frac{17}{19}$) प्रमाण स्मरण की गई है ॥६८॥ इसके धनुषका प्रमाण यहा अस्सी और चार अर्थात् चौरासी हजार सोलह योजन तथा चार भाग (८४०१६$\frac{4}{19}$) प्रमाण कहा गया है ॥६९॥ नब्बै और चार अर्थात् चौरानवै हजार एक सौ छप्पन योजन और दो कला (९४१५६$\frac{2}{19}$), यह निषध पर्वतकी जीवाका प्रमाण है ॥ ७० ॥ इसके धनुषका प्रमाण सौ और चौबीस अर्थात् एक सौ चौबीस हजार तीन सौ छयालीस योजन और नौ कला (१२४३४६$\frac{9}{19}$) मात्र है ॥ ७१ ॥ चैत्य (सिद्ध) कूट, निषधकूट, हरिवर्षकूट, पूर्वविदेहकूट, हरित्कूट, धृतिकूट, सीतोदाकूट, अपरविदेहकूट और नौवा रुचककूट, इस प्रकार ये नौ कूट निषध पर्वतके ऊपर स्थित हैं। वे कूट सर्वरत्नमय हैं। उचाई उनकी सौ योजन मात्र है ॥ ७२–७३ ॥

जम्बूद्वीपके दक्षिण अर्ध भागमे स्थित क्षेत्र-पर्वतादिकोके विस्तारादिका प्रमाण जो विदेह क्षेत्र पर्यन्त यहा कहा गया है उसीको यथासम्भव उसके उत्तर अर्ध भागमे भी कहना चाहिये ॥ ७४ ॥ अधिक जीवामेसे हीन जीवाको कम करके शेषको आधा करनेपर जो प्राप्त हो उसे चूलिका कहा जाता है। इसी प्रकार अधिक धनुषमेसे हीन धनुषको कम करके शेषको आधा करनेपर जो प्राप्त हो उसे पार्श्वभुजा कहा जाता है ॥ ७५ ॥

---

१ आ प पुन स्मृतम्। २ ब शोदित।

सिद्धायतननीले च प्राग्विदेहाख्यक पुन. । सीताकीर्त्योश्च कूटे द्वे नरकान्ताख्यमेव च ॥ ७६
अपरेषां विदेहाना रम्यकं चाष्टम भवेत् अपदर्शनक चैव सममानानि नैषधै. ॥ ७७
सिद्धाख्यं रुग्मिणो रम्यक नारीकूटमेव । बुद्धयाख्च रूप्यकूलाया हैरण्यं मणिकाञ्चनम् ॥७८
सिद्धं शिखरिण. कूटं हैरण्यं रसदेविकम् । रक्ता लक्ष्मी[२] सुवर्णाना रक्तवत्याश्च नामत ॥ ७९
गन्धवत्याश्च नवम नाम्नैरावतमित्यपि । मणिकाञ्चनकूट च समानि हिमवद्गिरे. ॥ ८०
सिद्धाख्यमुत्तरार्ध च तामिस्रगुहक तथा । कूट तु माणिभद्र च विजयार्धकुमारकम् ॥ ८१
कूटं च पूर्णभद्राख्यं प्रपातं खण्डकस्य च । दक्षिणैरावतार्ध च अन्त्य वैश्रवणं शुभम् ॥ ८२
सहस्रमायत पद्मस्तदर्धमपि विस्तृत । योजनानि दशागाढे हिमवन्मूर्धनि ह्रद. ॥ ८३
। १००० ।
महापद्मोऽथ तिगिच्छ केसरी च महानपि। पुण्डरीको ह्रदस्तथाथ गिरिषु द्विगुणा. क्रमात् ॥ ८४

उदाहरण—(१)जैसे विजयार्धकी जीवाका प्रमाण १०७२०$\frac{११}{१९}$ यो है। इसमेसे दक्षिण भरत क्षेत्रकी जीवा ९७४८$\frac{१२}{१९}$ को घटा देनेपर शेष ९७१$\frac{१८}{१९}$ रहते हैं। उसका अर्ध भाग ४८५$\frac{३७}{३८}$ यो. होता है। यह विजयार्धकी चूलिकाका प्रमाण होता है। (२) विजयार्धके धनुष १०७४३$\frac{१५}{१९}$ यो. मेंसे दक्षिण भरत क्षेत्रके धनुष ९७६६$\frac{१}{१९}$ घटाकर शेष (९७७$\frac{१४}{१९}$) को आधा कर देनेपर ४८८$\frac{१७}{१९}$ यो होता है। यह विजयार्धकी पार्श्वभुजाका प्रमाण होता है।

सिद्धायतन, नील, प्राग्विदेह, सीताकूट, कीर्तिकूट, नरकान्ता, अपरविदेह, रम्यक और अपदर्शन, ये निषध पर्वतके ऊपर स्थित कूटोंके समान प्रमाणवाले नौ कूट नील पर्वतके ऊपर स्थित हैं ॥ ७६–७७ ॥ सिद्ध, रुग्मि, रम्यक, नारी, बुद्धि, रूप्यकूला, हैरण्य और मणिकांचन, ये आठ कूट रुग्मि पर्वतके ऊपर स्थित हैं ॥ ७८ ॥ सिद्ध, शिखरी, हैरण्य, रसदेवी, रक्ता, लक्ष्मी, सुवर्ण, रक्तवती, गन्धवती, ऐरावत और मणिकांचन, ये ग्यारह कूट हिमवान् पर्वतके समान शिखरी पर्वतके ऊपर स्थित हैं ॥ ७९–८० ॥ सिद्ध, उत्तरार्ध ऐरावत, तमिस्रगुह, माणिभद्र, विजयार्धकुमार, पूर्णभद्र, खण्डप्रपात, दक्षिण ऐरावतार्ध और अन्तिम वैश्रवण, ये नौ कूट ऐरावत क्षेत्रके विजयार्धके ऊपर स्थित हैं ॥८१–८२॥

हिमवान् पर्वतके ऊपर एक हजार (१०००) योजन लम्बा, इससे आधा अर्थात् पाच सौ (५००) योजन विस्तारवाला और दस (१०) योजन गहरा पद्म नामका तालाब स्थित है ॥८३॥ आगे महाहिमवान् आदि शेष पाच पर्वतोंके ऊपर इससे दूने प्रमाणवाले (उत्तरक

१ प ... [illegible] । २ ... [illegible] ।

योजनोच्छ्रयविष्कम्भं[1] सलिलादर्धमुद्गतम् । गव्यूतिकर्णिकं पद्मं तत्र श्री रत्नवेश्मनि ॥८५
। $\frac{1}{2}$ ।
चत्वारिंशच्छतं चैव सहस्राणामुदाहृतम् । शतं पञ्च दशाग्रं च परिवारं श्रीगृहस्य सः ॥ ८६
। १४०११५ ।
ह्रीर्धृति कीर्तिबुद्धी च लक्ष्मीश्चैव ह्रदालयाः । शक्रस्य दक्षिणा देव्य ईशानस्योत्तरा स्मृता ॥८७
गङ्गा पद्मह्रदात् सिन्धू रोहितास्या च निर्गताः । रोहिच्च हरिकान्ता च महापद्मह्रदात् स्नुते[2]॥८८
निषधाद्धरिच्च सीतोदा महानद्यौ विनिर्गते । सीता च नरकान्ता च प्रस्नुते केसरि[3] ह्रदात् ॥८९
नारी च रूप्यकूला च रुग्मिशैलादधोगते । सुवर्णा च तथा रक्ता रक्तोदापि च षष्ठतः ॥९०
गङ्गावज्रमुखव्यासः क्रोशः षड्योजनानि च । अर्धक्रोशोऽवगाहस्तु सर्वमन्ते दशाहतम् ॥९१
यो ६२ क्रो १ क्रो ५ (?)

तीन दक्षिणके तीनके समान) क्रमशः महापद्म, तिगिंछ, केसरी, महापुण्डरीक और पुण्डरीक ये पाच तालाव स्थित हैं ॥८४॥ पद्म ह्रदमे एक योजन ऊचाई व विस्तारवाला, जलसे आधा ($\frac{1}{2}$) योजन ऊचा और एक कोस विस्तृत कर्णिकासे सयुक्त कमल है। इसके ऊपर रत्नमय भवनमे श्री देवीका निवास है ॥८५॥ श्री देवीके गृहके परिवारस्वरूप वहा एक सौ चालीस हजार अर्थात् एक लाख चालीस हजार एक सौ पन्द्रह (१४०११५) अन्य गृह हैं ॥ ८६ आगे महापद्म आदि ह्रदोमे क्रमसे ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी इन देवियोके भवन हैं। इनमे दक्षिणकी देविया (श्री, ह्री और धृति) सौधर्म इन्द्रकी और उत्तरकी (कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी) देविया ईशान इन्द्रकी स्मरण की गयी है॥८७॥

पद्म ह्रदसे गगा, सिन्धू और रोहितास्या ये तीन महानदियाँ, तथा महापद्म ह्रदसे रोहित् और हरिकान्ता ये दो महानदिया निकली हैं ॥८८॥ निषध पर्वतस्थ ह्रदसे हरित् और सीतोदा महानदिया तथा केसरी ह्रदसे सीता और नरकान्ता महानदिया निकली हैं ॥८९॥ रुग्मि शैलके ऊपर स्थित ह्रदसे नारी और रूप्यकूला तथा छठे ह्रदसे सुवर्णकूला, रक्ता और रक्तोदा ये महानदिया निकली हैं ॥९०॥

गगा नदीका वज्रमय मुखविस्तार एक कोस और छह (६$\frac{1}{4}$) योजन, अवगाह आधा ($\frac{1}{2}$) कोस तथा अन्तिम विस्तार मुखविस्तारसे दसगुना (६२$\frac{1}{2}$ यो) है॥९१॥ यह गगा नदी

१ प ०च्छ्रिय । २ आ प सुते । ३ आ प प्रस्तुते केसरी ।

गत्वा पञ्चशत प्राच्या गङ्गा वर्त्म निवृत्य च । दक्षिणा भरतव्यासे पञ्चवर्गे च तद्गिरेः ॥९२
सक्रोशषट् च विस्तीर्णा बहुला चार्धयोजनम् । जिह्विका वृषभाकारास्त्यायता चार्धयोजनम् ॥९३

यो ६ क्रो १

जिह्विकायां गता गङ्गा पतन्ती श्रीगृहे शुभे । गोशृङ्गसस्थिता भूत्वा पतिता दशविस्तृता ॥९४
कूटाकृतिं दधानस्य श्रीगृहस्योदितद्युते. । कूटान्तस्थितजैनेशप्रतिबिम्बस्य भास्वतः ॥९५
पपातोपरि सा गङ्गा रङ्गत्तुङ्गतरङ्गिणी । स्वस्याम्भोधारया सम्यगभिषेक्तुमना इव ॥९६
जटामुकुटशेखर प्रणतवारिनिर्घोषकम् । नमामि जिनवल्लभ कमलकर्णिकाविष्टरम् ॥९७
योजनाना भवेत् षष्टि. कुण्डस्य दश गाधकम् । मध्ये ऽष्ट विस्तृतो द्वीपो जलाद्द्विक्रोशमुच्छ्रितः॥९८
मूले मध्ये च शिखरे चतुर्द्व्येकानि[1] विस्तृतः । योजनानि दशोद्विद्धो द्वीपे वज्रमयो गिरिः ॥९९

। ४।२।१ ।

पद्म द्रहसे निकलकर पाच सौ योजन पूर्वकी ओर जाती हुई गगाकूटके दो कोस इधरसे दक्षिणकी ओर लौटकर [और फिर पाच सौ तेईस योजन और साधिक आधा कोस पर्वतके ऊपर जाकर] भरत क्षेत्रमे पाचके वर्ग प्रमाण अर्थात् पच्चीस योजन पर्वतसे [उसे छोडकर नीचे गिरती है] । यहापर सवा छह ($६\frac{१}{४}$) योजन विस्तीर्ण, आधा योजन बाहल्यसे संयुक्त, और आधा योजन ही आयत वृषभाकार जिह्विका (नाली) है। इस नालीमे प्रविष्ट होकर वह गगा उत्तम श्रीगृहके ऊपर गिरती हुई गोसींगके आकार होकर दस योजन विस्तारके साथ नीचे गिरी है । ॥९२–९४॥ जो श्रीगृह कूटकी आकृतिको धारण करनेवाला, वृद्धिगत कान्तिसे सहित, कूटके अन्तमे स्थित जिनेन्द्रप्रतिबिम्बसे सयुक्त, तथा प्रभाश्वर है, उसके ऊपर अपनी चचल उन्नत तरगोसे सयुक्त वह गगा मानो अपनी जलधारासे जिनेन्द्र देवका अभिषेक करनेकी इच्छासे ही गिरती है ॥९५–९६॥ यह प्रतिमा जटा, मुकुट एव मालासे सुशोभित, नम्रीभूत जलके निर्घोष (शब्द)से सहित और कमलकी कर्णिकारूप आसनपर विराजमान है। उसके लिये मैं नमस्कार करता हू ॥९७॥

उस कुण्डका विस्तार साठ योजन और गहराई दस योजन है। इसके मध्यमे जलसे दो कोस ऊचा और आठ योजन विस्तृत द्वीप है ॥९८॥ इस द्वीपमे दस योजन ऊचा वज्रमय पर्वत है। उसका विस्तार मूलमे चार, मध्यमे दो और शिखरपर एक योजन मात्र है ॥९९॥

---

१ प चतुर्थद्व्येकानि ।

धनुस्त्रिद्व्येकसहस्रं मूलमध्याग्रविस्तृतम् । पञ्चशत्यर्धमन्तश्च द्विसहस्रोच्छ्रितं गृहम् ॥१००
३००० । २००० । १००० । ७५० । २००० ।
चत्वारिंशद्धनुर्व्यासं तस्माच्च द्विगुणोच्छ्रियम् । वज्रयुग्मकवाटं च द्वारं गिरिगृहस्य[1] च ॥१०१
। ४० । ८० ।
कुण्डाद्दक्षिणतो गत्वा भूमिभागेषु वक्रिता । विजयार्धगुहायां च अष्टयोजनविस्तृता ॥१०२
सहस्रैः सप्तभिर्गङ्गा द्विगुणैः सरितां सह । संगता प्राग्मुखं गत्वा प्राविक्षल्लवणोदधिम् ॥१०३
। १४००० ।
त्रिगव्यूतिं त्रिनवतिं गङ्गातोरणमुच्छ्रितम् । अर्धयोजनगाधं च नदीविस्तारविस्तृतम् ॥१०४
। यो ९३ क्रो ३ । यो ६२ क्रो २ ।
सदृशी गङ्गया सिन्धुः दिग्विभागाद्विना पुनः । जिह्विकादीनि सरितां द्विगुणान्याविदेहतः ॥१०५
तोरणेषु वसन्त्येषु दिक्कुमार्यो वराङ्गनाः । तोरणानां तु सर्वेषामवगाहः समो मतः ॥१०६
द्वे शते[2] सप्ततिं षट् च षट्कलाश्चोत्तरामुखम् । रोहितास्या गिरौ गत्वा पतित्वा श्रीगृहे गता ॥१०७
यो २७६ । $\frac{6}{19}$ ।

श्रीगृहका विस्तार मूलमे तीन हजार, मध्यमे दो हजार और ऊपर एक हजार धनुष प्रमाण तथा अभ्यन्तर विस्तार पाच सौ और उनके आधे अर्थात् साढे सात सौ धनुष प्रमाण है। उसकी ऊचाई दो हजार धनुष मात्र है॥१००॥ वज्रमय कपाटयुगलसे सयुक्त उस श्रीगृहका द्वार चालीस (४०) धनुप विस्तृत और इससे दूना (८०) ऊचा है ॥१०१॥

गगा नदी इस कुण्डसे दक्षिणकी ओर जाकर आगेके भूमिभागोमे कुटिलताको प्राप्त होती हुई विजयार्धकी गुफामे आठ योजन विस्तृत होकर प्रविष्ट होती है ॥१०२॥ अन्तमे वह दुगुने सात अर्थात् चौदह हजार नदियोसे सयुक्त होकर पूर्वकी जाती हुई लवण समुद्रमे प्रविष्ट हुई है॥१०३ समुद्रके प्रवेशस्थानमे तेरानवै योजन और तीन कोस ऊचा, आधा योजन अवगाहसे सहित तथा नदीविस्तारके बराबर विस्तृत गगातोरण है ॥१०४॥ दिग्विभागको छोडकर शेष विस्तार आदिके विषयमे सिन्धु नदी गगाके समान है। इन नदियोकी नाली आदि विदेह पर्यन्त उत्तरोत्तर दूनी दूनी है ॥१०५॥ इन तोरणोके ऊपर दिक्कुमारी वरागनाये (उत्तम महिलायें) निवास करती हैं। सब तोरणोका अवगाह समान माना गया है ॥१०६॥

रोहितास्या नदी हिमवान् पर्वतके ऊपर दो सौ छयत्तर योजन और छह कला

१ आ प गुहस्य। २ आ प शाते।

रोहिच्च षोडशाग्रौ तु पञ्चाग्राणि शतानि हि । आगत्य च कला. पञ्च शतार्धे पतिता गिरेः॥१०८

यो १६०५ । $\frac{५}{१९}$ ।

उदीच्या हरिकान्ता च तावदेव गता गिरौ । सप्राप्य च शते कुण्ड समुद्रं पश्चिमं गता ॥१०९
एकविंशानि चत्वारि सप्तति च शतानि तु । कलां च हरिदागत्य निषधे पतिता भुवि ॥११०

यो ७४२१ । $\frac{१}{१९}$ ।

सीतोदापि ततो गत्वा तावदेव गिरिस्थले[1] । द्विशताच्च भुवं प्राप्य पश्चिमाम्बुनिधिं गता ॥१११
गङ्गा रोहिद्धरित्सीता नारी च सरिदुत्तमा। सुवर्णा च तथा रक्ता पूर्वाः शेषाश्च पश्चिमा॥११२
श्रद्धावान् विजटावाश्च पद्मवानपि गन्धवान् । वृत्तास्ते विजयार्धाख्या मध्य[ध्ये] हैमवतादिषु॥११३
सहस्रविस्तृता मूले मध्ये तत्तुर्यहीनका । शिखरेर्धं सहस्रं तु सहस्रं शुद्धमुच्छ्रिताः ।। ११४

१००० । ७५० । ५०० । १००० ।

ते च शैला महारम्याः नानामणिविभूषिताः। कुक्कुटाण्डप्रकाशाभा दृष्टा केवललोचनैः ॥११५

~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~

($१०५२\frac{१२}{१९}$—५००—२=$२७६\frac{६}{१९}$) उत्तरकी ओर जाकर और फिर नीचे गिरकर श्रीगृहको प्राप्त हुई है ॥१०७॥ रोहित् नदी सोलह सौ पाच योजन और पाच कला ($४२१०\frac{१०}{१९}$–१०००—२=$१६०५\frac{५}{१९}$) प्रमाण आकर हिमवान् पर्वतको पचास योजन छोडती हुई उससे नीचे गिरी है ॥१०८॥ हरिकान्ता नदी भी उत्तरमे उतने ($१६०५\frac{५}{१९}$) ही योजन पर्वतके ऊपर जाकर और फिर सौ योजन पर्वतको छोडकर कुण्डको प्राप्त होती हुई पश्चिम समुद्रमे प्रविष्ट हुई है ॥१०९॥ हरित् नदी चौहत्तर सौ इक्कीस योजन और एक कला प्रमाण $१६८४२\frac{२}{१९}$–२०००—२=$७४२१\frac{१}{१९}$) निपध पर्वतके ऊपर आकर उससे नीचे पृथिवीमे गिरी है ॥११०॥ सीतोदा नदी भी निषध पर्वतके ऊपर उतने ($७४२१\frac{१}{१९}$) ही योजन जाकर और उसे दो सौ योजन छोडकर पृथिवीपर गिरती हुई पश्चिम समुद्रमे प्रविष्ट हुई है ॥१११॥ गगा, रोहित्, हरित्, सीता, नारी, सुवर्णकूला और रक्ता, ये पूर्वकी महानदिया पूर्व समुद्रमे तथा शेप नदिया पश्चिम समुद्रमे प्रविष्ट हुई है॥११२॥

हैमवत आदि (हैमवत, हरि, रम्यक और हैरण्यवत) चार क्षेत्रोके मध्यमे श्रद्धावान्, विजटावान्, पद्मवान् और गन्धवान्, ये विजयार्ध नामसे प्रसिद्ध चार वृत्त (गोलाकार) पर्वत है ॥११३॥ ये पर्वत मूलमे एक हजार योजन विस्तृत, मध्यमे उसके चतुर्थ भागसे हीन अर्थात् साढे सात सौ योजन विस्तृत, शिखरपर पाच सौ योजन विस्तृत और शुद्ध एक हजार योजन ऊचे है ॥११४॥ वे पर्वत अतिशय रमणीय, नाना मणियोसे विभूषित और मुर्गाके अण्डेके

---

१ प गिरिस्थिते ।
~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~

ते नाभिगिरयो नाम्ना तानप्राप्यार्धयोजनात् । प्रदक्षिणगता नद्य उभे मन्दरतोऽपि च ॥११६
शिखरेषु गृहेष्वेषा स्वातिश्चारण एव च । व्यन्तर पद्मनामा च प्रभासश्च वसन्ति ते ॥११७
भरताद्यानि गङ्गाद्या हिमाह्वाद्याश्च पर्वता । धातकीखण्डके द्विद्वि. पुष्करार्धे च सख्यया॥११८
द्वीपान् व्यतीत्य सख्येयान् जम्बूद्वीपोऽन्य इष्यते। तत्र सन्ति पुराण्येषामिह ये वर्णिता सुरा ॥११९
त्रयस्त्रिशत्सहस्राणि षट्छतानि चतुष्कला. । अशीतिश्चतुरग्रा च विदेहाना तु विस्तृति ॥ १२०

यो ३३६८४। $\frac{४}{१९}$।

नीलमन्दरयोर्मध्ये उत्तरा· कुरव स्थिता ।मेरोश्च निषधस्यापि[1] देवाह्वाः कुरव स्मृता ॥१२१
विदेहविस्तृति पूर्वा मन्दरव्यासवर्जिता । तदर्धं कुरुविस्तारो दृष्ट. सर्वज्ञपुगवै ॥१२२
एकादश सहस्राणि शतान्यष्टौ च विस्तृता· । द्विचत्वारिंशदग्राणि कुरवो द्वे कले[2] तथा ॥ १२३

यो ११८४२। $\frac{२}{१९}$।

चत्वारिंशच्छतं त्रीणि सहस्राण्येकसप्तति । चतु.कला नवांशश्च कुरुवृत्त विदुर्बुधा ॥१२४

समान कान्तिवाले हैं, ऐसा केवलज्ञानियोके द्वारा देखा गया है ॥११५॥ वे पर्वत नाभिगिरि इस नामसे प्रसिद्ध हैं। रोहित् और रोहितास्या आदि नदिया इन पर्वतोसे आधा योजन इधर रहकर तथा दो (सीता और सीतोदा) नदिया मदर पर्वतसे आधा योजन इधर रहकर प्रदक्षिण रूपसे चली जाती है ॥११६॥ इन पर्वतोके शिखरोपर स्थित गृहोमे क्रमश स्वाति, चारण, पद्म और प्रभास नामक व्यन्तर देव रहते हैं ॥११७॥ भरतादिक क्षेत्र, गगादिक नदिया तथा हिमवान् आदि पर्वत, ये सब धातकीखण्ड द्वीपमे और पुष्करार्ध द्वीपमे जम्बूद्वीपकी अपेक्षा सख्यामे दूने दूने हैं ॥११८॥

सख्यात द्वीपोको लाघकर दूसरा एक जम्बूद्वीप है। वहापर जिन व्यन्तर देवोंका यहा अभी वर्णन किया गया है उनके पुर हैं ॥११९॥

विदेहक्षेत्रोका विस्तार तेतीस हजार छह सौ चौरासी योजन और चार कला (३३६८४$\frac{४}{१९}$) प्रमाण है ॥१२०॥ नील पर्वत और मेरु पर्वतके मध्यमे उत्तरकुरु स्थित है। मेरु और निषध पर्वतोके मध्यमे देवकुरुओका स्मरण किया गया है ॥१२१॥ पूर्वनिर्दिष्ट विदेहके विस्तारमेसे मदर पर्वतके विस्तारको घटा कर आधा करनेपर कुरुक्षेत्रोका विस्तार होता है, जो कि सर्वज्ञ देवोके द्वारा प्रत्यक्ष देखा गया है ॥१२२॥ कुरुक्षेत्रोका उक्त विस्तार ग्यारह हजार आठ सौ व्यालीस योजन और दो कला (११८४२$\frac{२}{१९}$) प्रमाण है ॥१२३॥ इकत्तर हजार एक सौ तेतालीस योजन और चार कला (७११४३$\frac{४}{१९}$) तथा एक कलाका नौवा अश ($\frac{१}{१९×९}$)इतना

---

१ आ प ०श्चापि। २ प कुले।

यो ७११४३ । $\frac{४}{१९}$ । २ ।

त्रिपञ्चाशत्सहस्राणि ज्या षष्टिश्च चतु.शती । अष्टादशाधिका चापं कलाश्च द्वादशाधिका ॥१२५

५३००० । ६०४१८ । $\frac{१२}{१९}$ ।

मेरो. पूर्वोत्तरस्यां दॅं सीतापूर्वतटात्परम्[1] । आसन्नं नीलशैलस्य स्थलं जम्व्वा प्रकीर्तितम् ॥१२६

अर्धयोजनमुद्दिद्धा उद्वेधाष्टमरुं[2]धिका । वेदिका रत्नसकीर्णा स्थलस्योपरि सर्वत ॥१२७

। $\frac{१}{१६}$ ।

स्थले सहस्रार्धपृथौ[3] मध्येऽष्टबहले पुनः । अन्ते द्विकोशबहले जाम्बूनदमये शुभे ॥१२८

द्वादशाष्टौ च चत्वारि मू[4]लमध्योर्ध्वविस्तृता । पीठिकाष्टोच्छ्रिता तस्या द्वादशाम्बुजवेदिका.॥१२९

द्वियोजनोच्छ्रितस्कन्धा मूले गव्यूतिविस्तृता । अष्टयोजनशाखा सा त्ववगाढार्धयोजनम् ॥१३०

। क्रो १ ।

अश्मगर्भस्थिरस्कन्धा वज्रशाखा मनोरमा । भ्राजते राजितै पत्रैरङ्कुरैर्मणिजातिभि ॥१३१

फलैर्मृदङ्गसकाशैर्जम्बूः स्तू[5]पसमाकृति. । पृथिवीपरिणामा सा जीवावक्रान्तिजातिका (?)॥१३२

कुरुक्षेत्रका वृत्तविस्तार है ॥१२४॥ कुरुक्षेत्रकी जीवाका प्रमाण तिरेपन हजार (५३०००) योजन तथा उसके धनुषका प्रमाण साठ हजार चार सौ अठारह योजन और बारह कला (६०४१८ $\frac{१२}{१९}$) प्रमाण है ॥१२५॥

मेरु पर्वतके पूर्व-उत्तर (ईशान) कोणमे सीता नदीके पूर्व तटपर नील पर्वतके पासमे जंबू वृक्षका स्थल बतलाया गया है ॥१२६॥ इस स्थलके ऊपर सब ओर आधा योजन ऊची और ऊचाईके आठवे भाग ($\frac{१}{१६}$यो)प्रमाण विस्तारवाली रत्नोसे व्याप्त एक वेदिका है॥१२७॥ पाच सौ योजन विस्तारवाले और मध्यमे आठ योजन तथा अन्तमे दो कोस बाहल्यसे सयुक्त उस सुवर्णमय उत्तम स्थलके ऊपर मूलमे, मध्यमे और ऊपर यथाक्रमसे बारह, आठ और चार योजन विस्तृत तथा आठ योजन ऊची जो पीठिका है उसके बारह पद्मवेदिकायें हैं ॥१२८-१२९॥ इस स्थलके ऊपर जो जबू वृक्ष स्थित है उसका स्कध (तना) दो योजन ऊचा, मूलमे एक कोस विस्तृत और आधा योजन अवगाहसे सयुक्त है। उसकी आठ योजन दीर्घ चार शाखाये हैं ॥१३०॥ हरित् मणिमय स्थिर स्कन्धवाला एव वज्रमय शाखाओमे मनोहर वह वृक्ष विविध मणिभेदोसे शोभायमान पत्रो एव अकुरोसे सुशोभित है ॥१३१॥ मृदग जैसे फलोसे स्तूपके समान आकृतिको धारण करनेवाला वह जबू वृक्ष पृथिवीके परिणामस्वरूप . . . (?)॥१३२॥

---

१ प पूर्वोत्तरात्पर । २ ब उद्वेदाष्ट । ३ ब ०र्धं पृथौ । ४ ब मूले । ५ प जंम्बूस्तूप ।

उत्तरस्या तु शाखायामर्हदायतन शुभम् । तिसृष्वन्यासु वेश्मानि यादरा[1] नादराख्ययो ॥१३३
तस्या जम्व्वा अधस्तात्तु त्रिशत विस्तृतानि हि । उच्छ्रितानि शतास्यार्धं भवनान्युक्तदेवयो ॥१३४
आरभ्य बाह्यत शून्यं प्रथमे च द्वितीयके । तृतीयेऽपि च देवानामष्टाधिकशतद्रुमा ॥१३५
चतुर्थे प्राक् च देवीनां चतुर्वृक्षाश्च पञ्चमे । वनं वाप्यश्चतुष्कोण[2]वृत्ताद्या षष्ठके नभ ॥१३६
प्रत्येकं च चतुर्दिक्षु सप्तमे तनुरक्षिणा । सहस्राणा च चत्वारि वृक्षास्तिष्ठन्ति मञ्जुला ॥१३७
। मिलित्वा १६००० ।
सामानिकसुराणा स्युरष्टमे पिण्डिता द्रुमा· । ईशाने चोत्तरे वाते सहस्राणा चतुष्टयम् ॥१३८
नवमे दशमे चैकादशे वह्नौ च दक्षिणे । नैऋत्या त्रिपरिषदामन्तर्मध्यान्तर्वर्तिनाम् ॥१३९
द्वात्रिंशच्च सहस्राणा चत्वारिंशत्तथा पुन । चत्वारिंशत्तथाष्टाग्रा जम्बूवृक्षा यथाक्रमम् ॥१४०
सेनामहत्तराणां च द्वादशे सप्त पश्चिमे । पद्मस्य परिवारेभ्य पञ्चाग्रा मुख्यसयुता ॥१४१
। मुख्यसहितपरि[3]वारवृक्षा १४०१२० ।

उसकी उत्तर दिशागत शाखाके ऊपर उत्तम जिनभवन तथा अन्य तीन शाखाओके ऊपर आदर और अनादर नामक व्यन्तर देवोके भवन हैं ॥१३३॥ उस जवू वृक्षके नीचे तीन सौ योजन विस्तृत और पचास योजन ऊचे उक्त दोनो देवोके भवन हैं ॥१३४॥

उपर्युक्त वारह पद्मवेदिकाओमे वाह्य वेदिकाकी ओरसे प्रारम्भ करके प्रथम और द्वितीय अन्तरालमे शून्य और तृतीय अन्तरालमे देवोके एक सौ आठ वृक्ष हैं॥१३५॥ चतुर्थ अन्तरालमे पूर्व दिशामे देवियोके चार वृक्ष, पचम अन्तरालमे वन व चतुष्कोण एव गोल आदि वापिया तथा छठे अन्तरालमे शून्य है ॥१३६॥ सातवे अन्तरालमे चारो दिशाओमेसे प्रत्येक दिशामे तनुरक्षक देवोके सुन्दर चार हजार वृक्ष स्थित है ॥१३७॥ आठवे अन्तरालमे ईशान, उत्तर और वायु दिशाओमे सामानिक देवोके सव मिलकर चार हजार वृक्ष हैं ॥१३८॥ नौवे, दशवे और ग्यारहवे अन्तरालमे अग्नि, दक्षिण और नैऋत्य दिशाओमे अभ्यन्तर, मध्यम और वाह्य पारिषद देवोके यथाक्रमसे वत्तीस हजार, चालीस हजार और अडतालीस हजार जम्बूवृक्ष हैं ॥१३९–१४०॥ वारहवे अन्तरालमे पश्चिम दिशामे सेनामहत्तरोके सात वृक्ष हैं। पद्मके परिवार पद्मोकी अपेक्षा ये जम्बूवृक्ष एक मुख्य तथा चार अग्रदेवियोके इस प्रकार पाच वृक्षोसे अधिक हैं, अर्थात् वे इन मुख्य वृक्षोसे सहित परिवार वृक्ष १४०१२० हैं ॥१४१॥

१ प व वेश्मनि पादरा० । २ व कोण० । ३ आ सपरिवार° ।

दक्षिणापरतो मेरोः सीतोदापश्चिमे तटे । आसन्न निषधस्यैव स्थल रूप्यमयं शुभम् ॥१४२
तत्र शाल्मलिराख्याता जम्बूसदृशवर्णना । तस्या दक्षिणशाखाया सिद्धायतनमुत्तमम् ॥१४३
शेषासु दिक्षु वेश्मानि त्रीणि तत्र सुरावपि । वेणुश्च वेणुधारी च देवकुर्वधिवासिनौ ॥ १४४
नीलतो दक्षिणस्या तु सहस्रे कूटयुग्मकम् । सीतायाः प्राक्तटे चित्र विचित्रमपरे तटे ॥ १४५
। १००० ।
निषधस्योत्तरस्या च सीतोदायास्तटद्वये । पुरस्ताद्यमकं कूट मेघकूटं तु पश्चिमम् ॥१४६
सहस्रं विस्तृत मूले मध्ये तत्तुर्यहीनकम् । शिखरेऽर्धसहस्र तु सहस्रं शुद्धमुच्छ्रितम् ॥१४७
। १००० । ७५० । ५०० ।
प्रमाणेनैवमेकैक कूटमाहुर्महर्षय । कूटसञ्ज्ञासुरास्तत्र मोदन्ते सुखिन. सदा[1] ॥१४८
सार्धे सहस्रे नीलाद् द्रे[2] नीलनामा ह्रदस्तत । कुरुनामा च चन्द्रश्च तस्मादैरावत परम् ॥१४९
। २५०० ।
माल्यवान् दक्षिणो[णे] नद्या सहस्रार्धान्तराश्च ते । पद्मह्रदसमा मानैरायता दक्षिणोत्तरम् ॥१५०
। ५०० ।

मेरुके दक्षिण-पश्चिममे सीतोदाके पश्चिम तटपर निषध पर्वतके समीपमे उत्तम रजतमय स्थल है ॥१४२॥ वहापर शाल्मलि वृक्षका अवस्थान बतलाया गया है। उसका वर्णन जंबू वृक्षके समान है। उसकी दक्षिण शाखापर उत्तम सिद्धायतन है ॥१४३॥ शेष दिशागत शाखाओ-पर तीन भवन है। उनमे देवकुरु अधिवासी वेणु और वेणुधारी देव रहते है ॥१४४॥ नील पर्वतसे दक्षिणकी ओर हजार (१०००) योजन जाकर सीता महानदीके पूर्व तटपर चित्र और पश्चिम तटपर विचित्र नामक दो कूट है ॥१४५॥ निषध पर्वतकी उत्तर दिशामे भी सीतोदा महानदीके दोनो तटोमेसे पूर्व तटपर यमककूट और पश्चिम तटपर मेघकूट स्थित है ॥१४६॥ इन कूटोका विस्तार मूलमे एक हजार (१०००) योजन, मध्यमे उससे चतुर्थ भाग हीन अर्थात् साढे सात सौ (७५०) योजन और शिखरपर अर्ध सहस्र (५००) योजन प्रमाण है । ऊचाई उनकी शुद्ध एक हजार योजन मात्र है ॥१४७॥ इस प्रकार महर्षि जन उक्त कूटोमेसे प्रत्येक कूटका प्रमाण बतलाते है। उनके ऊपर सदा सुखी रहनेवाले कूटनामधारी देव आनद-पूर्वक रहते हैं ॥१४८॥

नील पर्वतके दक्षिणमे सार्ध दो हजार अर्थात् अढाई हजार (२५००) योजन जाकर नील, कुरु, चन्द्र, उसके आगे ऐरावत और माल्यवान् ये पाच द्रह सीता नदीके मध्यमे है। ये प्रमाणमे पद्मद्रहके समान होते हुए दक्षिण-उत्तर आयत है। इनके मध्यमे पाच सौ (५००)

१ आ प अतोऽग्रे 'निषधस्योत्तरस्या च' इत्यादि श्लोकः (१४६) पुनर्लिखितोऽस्ति। २ आ प नीला द्रे।

निषधादुत्तरस्या च नद्या तु[1] निषधो ह्रद । कुरुनामा च सूर्यश्च सुलसो विद्युदेव च ।। १५१
रत्नचित्रतटा वज्रमूलाश्च विपुला ह्रदा । वसन्ति तेषु नागाना कुमार्य. पद्मवेश्मसु ।। १५२
अर्धयोजनमुद्विद्धं योजनोच्छ्रयविस्तृतम् । पद्म गव्यूतिविपुला कर्णिका तावदुच्छ्रिता ।। १५३
चत्वारिंशच्छत चैव सहस्राणामुदाहृतम् । शत पञ्चदशाग्र च परिवारोऽम्बुजस्य[2] स ।। १५४

। १४०११५ ।

तटद्वये ह्रदाना च प्रत्येक दशसख्यका । काञ्चनाख्याचला सन्ति ते ह्रदाभिमुखस्थिता ।। १५५

उक्त च – [ति. प ४ – २०४९]

एक्केक्कस्स दहस्स य[3] पुव्वदिसाये य अवरदिब्भागे । दह दह कचणसेला[4] जोयणसयमेत्तउच्छेहा ।। १

। १०० ।

शत मूलेषु विपुला मध्ये पञ्चकृतेर्विना । त्वग्रे पञ्चाशत सन्द्राः शतोच्छ्रायाश्च ते समा ।।१५६

। [१००] । ७५ । ५० । १०० ।

आक्रीडावासकेष्वेषा[5] शिखरेषु शुकप्रभाः । देवा काञ्चनका नाम वसन्ति मुदिता सदा ।। १५७

उक्त च – [त्रि सा ६६०, ति प ४–२१२८]

योजनका अन्तर है ।। १४९–१५० ।। निषध पर्वतके उत्तरमे सीतोदा नदीके मध्यमे निषध, कुरु, सूर्य, सुलस और विद्युत् नामके पाच द्रह है ।। १५१ ।। इन विशाल द्रहोके तट रत्नोसे विचित्र हैं । मूल भाग इनका वज्रमय है । उनके भीतर पद्मभवनोमे नागकुमारिया रहती हैं ।। १५२ ।। जलसे पद्मकी ऊचाई आधा योजन है । वह एक योजन ऊचा और उतना ही विस्तृत है । उसकी कर्णिकाका विस्तार एक कोस तथा ऊचाई भी उतनी ही है ।। १५३ ।। उस पद्मके परिवारका प्रमाण एक लाख चालीस हजार एकसौ पन्द्रह (१४०११५) कहा गया है ।। १५४ ।। द्रहोके दोनो तटोमेसे प्रत्येक तटपर दस दस काचन पर्वत हैं जो उक्त द्रहोके अभिमुख स्थित हैं ।। १५५ ।। कहा भी है —

प्रत्येक द्रहके पूर्व दिग्भाग और पश्चिम दिग्भागमे एक सौ (१००) योजन मात्र ऊचे दस दस काचन पर्वत है ।। १ ।।

वे पर्वत मूलमे सौ (१००) योजन, मध्यमे पाचके वर्ग स्वरूप पच्चीससे रहित अर्थात् पचत्तर (७५) योजन और अग्रभागमे पचास (५०) योजन विस्तृत तथा सौ (१००) योजन ऊचे है । यह पमाण समान रूपसे उन सभी पर्वतोका हैं ।। १५६ ।। क्रीडाके आवासरूप इन पर्वतोके शिखरोपर तोताके समान कान्तिवाले काचन देव निवास करते हैं जो सदा प्रमुदित रहते हैं ।। १५७ ।। कहा भी है—

---

१ प नद्यास्तु । २ व ०राबुजस्य । ३ आ प दहस्स ह य । ४ व सोला । ५ प °ष्वेष्वा ।

दहदो गतूणग्गे सहस्सदुग णउदि दोण्णि वे य कला । णदिदारजुदा वेदी दक्खिणउत्तरगभद्दसालस्स॥२
। २०९२ ।
पुव्वावरभागेसु सा गयदंताचलाण सलग्गा । इगिजोयणमुत्तुगा जोयणअद्धस्स वित्थारा ॥ ३ ॥
सीताया उत्तरे तीरे कूटं पद्मोत्तर मतम् । दक्षिणं नीलवत्कूट पुरस्तान्मेरुपर्वतात् ॥ १५८
सीतोदापूर्वतीरस्थ स्वस्तिक कूटमिष्यते । नाम्नाञ्जनगिरि. पश्चान्मेरोर्दक्षिणतश्च ते ॥ १५९
कुमुद दक्षिणे तीरे पलाश पुनरुत्तरे । सीतोदाया महानद्या अपरस्या तु मेरुत. ॥ १६०
पश्चात्पुनश्च सीताया वतंस कूटमिष्यते । पुरस्ताद्रोचनं नाम मेरोरुत्तरतो द्वयम् ॥ १६१
भद्रसालवने तानि समसानानि काञ्चनै. । दिशागजेन्द्रनामानो देवास्तेषु वसन्ति च ॥ १६२
अपरोत्तरतो मेरो· काञ्चनो गन्धमादन । तस्मात्पूर्वोत्तरस्या च वैडूर्यो माल्यवान् गिरिः॥ १६३
पूर्वदक्षिणतो मेरो. सौमनस्यो हि राजत. । विद्युत्प्रभस्तापनीयो दक्षिणापरतस्तत. ॥ १६४
चतुःशतोच्छ्रया नीले निषधे च समागमे । एते पञ्चशतोच्छ्राया मेरुमाश्रित्य पर्वताः ॥ १६५
। ४०० । ५०० ।
उच्छ्रयस्य चतुर्भागमुभयान्तेऽवगाहनम् । ते पञ्चशतविस्तारा देवोत्तरकुरुश्रिता. ॥ १६६

द्रहोके आगे दो हजार बानवै (२०९२) योजन और दो कला जाकर नदीद्वारसे सयुक्त दक्षिण-उत्तर भद्रशाल वनकी वेदी अवस्थित है ॥ २ ॥ पूर्व-पश्चिम भागोमे गजदत पर्वतोसे लगी हुई वह वेदी एक योजन ऊची और आध योजन विस्तृत है ॥ ३ ॥

सीता नदीके उत्तर किनारेपर पद्मोत्तर कूट (पद्मकूट) और उसके दक्षिण किनारेपर नीलवान् कूट स्थित है । ये दोनो कूट मेरु पर्वतके पूर्वमे स्थित है ॥ १५८ ॥ सीतोदा नदीके पूर्व तटपर स्थित स्वस्तिक कूट माना जाता है। अजन नामक पर्वत उसके पश्चिम तटपर स्थित है । ये दोनो दिग्गज पर्वत मेरु पर्वतके दक्षिणमे है ॥१५९॥ सीतोदा महानदीके दक्षिण तटपर कुमुद और उसके उत्तर तटपर पलाश पर्वत है। ये दोनो पर्वत मेरुके पश्चिममे है॥ १६०॥ सीता नदीके पश्चिम तटपर अवतस कूट और उसके पूर्व तटपर रोचन नामक कूट स्थित है । ये दोनो कूट मेरुके उत्तरमे है ॥ १६१ ॥ भद्रशाल वनमे स्थित उन पर्वतोके विस्तार आदिका प्रमाण काचन पर्वतोके समान है । उनके ऊपर दिग्गजेन्द्र नामक देव निवास करते है॥ १६२॥

मेरु पर्वतके पश्चिम-उत्तर (वायव्य) कोणमे सुवर्णमय गन्धमादन पर्वत तथा उसके पूर्वोत्तर (ईशान) कोणमे वैडूर्यमणिमय माल्यवान् पर्वत अवस्थित है ॥ १६३ ॥ मेरुके पूर्व-दक्षिण (आग्नेय) कोणमे रजतमय सौमनस्य पर्वत तथा उसके दक्षिण-पश्चिम (नैर्ऋत्य) कोणमे सुवर्णमय विद्युत्प्रभ पर्वत स्थित है ॥ १६४ ॥ ये पर्वत जहा निषध और नील पर्वतसे संबद्ध है वहा उनकी ऊचाई चार सौ (४००) योजन है। किन्तु मेरुके पासमे उनकी यह ऊचाई क्रमश वृद्धिगत होकर पाच सौ (५००) योजन प्रमाण हो गई है ॥ १६५ ॥ उनका अवगाह दोनो ओर ऊचाईके चतुर्थ भाग प्रमाण है। देवकुरु और उत्तरकुरुके आश्रित इन

त्रिंशत्सहस्राण्यायामो द्वे शते नवसंयुते । षट्कलाश्च समाख्यातास्चतुर्णामपि मानत· ॥ १६७
३०२०९ । $\frac{६}{१९}$ ।

सिद्धायतनकूट च गन्धमादन-कौरवे । गन्धमालिनिकूट च लोहिताक्षमत परम् ॥ १६८
स्फटिकानन्दकूटे च मेरोः प्रभृति तानि तु । अवगाहनतुल्य. स्यात्कूटोच्छ्रायो ऽन्त्ययोर्द्वयो. ॥१६९
सिद्ध च माल्यवन्नाम्ना कूट चोत्तरकौरवम् । कच्छ सागरक चैव रजत पूर्णभद्रकम् ॥ १७०
सीता हरिसह चेति माल्यवत्स्वपि लक्षयेत् । उक्त एवोच्छ्रयो ऽत्रापि नवस्वपि विभागत ॥१७१
सिद्ध सौमनसं कूट देवकुर्वाख्यमुत्तमम् । मङ्गलं विमल चात काञ्चन च वशिष्टकम्[1] ॥ १७२
सिद्ध विद्युत्प्रभ कूट देवकौरवपद्मकम् । तपन स्वस्तिक चैव शतज्वलमत· परम् ॥ १७३

पर्वतोका विस्तार पाच सौ (५००) योजन मात्र है ॥१६६॥ इन चारो ही पर्वतोकी लबाईका प्रमाण तीस हजार दो सौ नौ योजन और छह कला (३०२०९$\frac{६}{१९}$) प्रमाण कहा गया है ॥ १६७ ॥ सिद्धायतनकूट, गन्धमादन, कुरु (उत्तरकुरु), गन्धमालिनी, लोहिताक्ष, स्फटिक और आनन्द-कूट, ये सात कूट मेरु पर्वतसे लेकर गन्धमादन गजदन्त पर्वतके ऊपर स्थित हैं । इनमे प्रथम और अन्तिम इन दो कूटोकी ऊचाईका प्रमाण दोनो ओरके अन्तिम अवगाह (१००, १२५) के बराबर है ॥ १६८–१६९ ॥

विशेषार्थ—गजदन्त पर्वतोकी ऊचाई मेरु पर्वतके पासमे ५०० योजन है । आगे वह क्रमसे हीन होती हुई निषध एव नील पर्वतके समीपमे ४०० यो मात्र रह गई है । इस ऊचाईके अनुसार ही इनके ऊपर स्थित उन कूटोकी भी ऊचाई है । तदनुसार प्रथम कूटकी ऊचाई १२५ यो (पर्वतकी ऊचाईके चतुर्थ भाग प्रमाण) और अन्तिम कूटकी ऊचाई १०० यो मात्र है । बीचके कूटोकी ऊचाई हीनाधिक है । उसके जाननेके लिये यह रीति काममे लायी जाती है– पर्वतके दोनो ओरकी अन्तिम ऊचाईके प्रमाणको परस्पर घटानेपर जो शेष रहे उसमे एक कम गच्छ (९ व ७) का भाग दे । इस प्रकारसे जो लब्ध हो वह हानिके चयका प्रमाण होता है । इसको एक कम अभीष्ट कूटकी सख्यासे गुणित करके प्राप्त राशिको मुखमे मिला देनेपर विवक्षित कूटकी ऊचाईका प्रमाण होता है । जैसे आठवे कूटकी ऊचाईका प्रमाण— (१२५–१००) — (९–१) = ३$\frac{१}{८}$ हानिचय, ३$\frac{१}{८}$ × (८–१) + १०० = १२१$\frac{७}{८}$ योजन ।

सिद्ध, माल्यवान्, उत्तरकुरु, कच्छ, सागर, रजत, पूर्णभद्र, सीता और हरिसह कूट, ये नौ कूट माल्यवान् गजदन्त पर्वतके ऊपर स्थित जानना चाहिये । इन नौ कूटोकी ऊचाईका विभाग पूर्वोक्त क्रमसे यहा भी जानना चाहिये ॥ १७०–१७१ ॥ सिद्ध, सौमनस, देवकुरु, मगल, विमल, काचन और अवशिष्ट, ये सात कूट सौमनस गजदन्तके ऊपर अवस्थित हैं ॥१७२॥ सिद्ध, विद्युत्प्रभ, देवकुरु, पद्म, तपन, स्वस्तिक, शतज्वल, सीतोदाकूट और हरिसम नामक कूट,

---

१ आ प विशिष्ठकम् ।

सीतोदाकूटमपर कूटं हरिसमाख्यकम् । विद्युत्प्रभेषु सर्वेषु त्वेवमेतानि[1] नामभिः ॥ १७४
उभयान्तस्थकूटेषु तेषा देव्यो ह्यनन्तरा । दिक्कुमार्यश्च मध्येषु वसन्त्याक्रीडवेश्मसु ॥ १७५
भोगकरा भोगवती सुभोगा भोगमालिनी । वत्समित्रा सुमित्रा च वारिषेणा बलेति ता ॥ १७६

उक्तं च द्वयम् – [ति. प ४,२१३६–३७]

मेरुगिरिपुव्वदक्खिणपच्छिमये उत्तरम्मि[2] पत्तेक्क । सीदासीदोदाये पच दहा केइ इच्छंति ॥४
ताण उवदेसेण य एक्केक्कदहस्स दोसु तीरेसु । पण पण कचणसेला पत्तेक्क होंति णियमेण ॥५

चित्रकूट. पद्मकूटो नलिनश्चैकशैलक. । शैला पूर्वविदेहेषु सीतानीलान्तरायता ॥ १७७
त्रिकूटो निषध प्राप्तस्तथा वैश्रवणाञ्जनौ । आत्माञ्जनश्च पूर्वाद्या सीता प्राप्य प्रतिष्ठिताः[3] ॥१७८
श्रद्धावान् विजटावाँश्च आशीविषसुखावहौ । अपरेषु विदेहेषु सीतोदानिषधाश्रिताः ॥ १७९
नीलसीतोदयोर्मध्ये चन्द्रमालो गिरि[ः]स्थित । सूर्यमालो नागमालो देवमालश्च नामभि ॥ १८०
नदीतटेषु तूद्विद्धा शतानि खलु पञ्च ते । गजदन्तसमाशेषवर्णनाः परिकीर्तिताः ॥ १८१

इस प्रकार ये नौ कूट विद्युत्प्रभ गजदन्तके ऊपर अवस्थित है॥ १७३–१७४॥ उनके दोनो ओर-के अन्तिम कूटोपर अनन्तर कही जानेवाली व्यन्तर देविया तथा मध्यमे स्थित कूटोपर स्थित क्रीडागृहोमे दिक्कुमारिया निवास करती है । इन उपर्युक्त देवियोके नाम ये हैं– भोगकरा, भोगवती, सुभोगा, भोगमालिनी, वत्समित्रा, सुमित्रा, वारिषेणा और बला ॥१७५–१७६॥ यहा दो गाथाये कही गई है––

मेरु पर्वतके पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर इनमेसे प्रत्येक दिशामे सीता और सीतोदा नदियोके आश्रित पाच द्रह है, ऐसा कितने ही आचार्य मानते हैं । उनके उपदेशके अनुसार प्रत्येक द्रहके दोनो किनारोपर नियमसे पाच पाच काचन पर्वत स्थित है ॥४–५ ॥

चित्रकूट, पद्मकूट, नलिनकूट और एकशैल वे गजदन्त पर्वत पूर्वविदेहोमे सीता महानदी और नील पर्वतके बीचमे लबायमान हैं । निषध पर्वतको प्राप्त त्रिकूट, वैश्रवण, अजन और आत्माजन, ये गजदन्त पर्वत पूर्वादिक्रमसे सीता महानदीको प्राप्त होकर प्रतिष्ठित है'। अभिप्राय यह है कि उपर्युक्त आठ गतदन्त पर्वत प्रदक्षिणक्रमसे पूर्व विदेहक्षेत्रोमे अवस्थित है ॥ १७७–१७८॥ श्रद्धावान्, विजटावान्, आशीविष और सुखावह, ये गजदन्त पर्वत सीतोदा महानदी और निषध पर्वतके आश्रित होकर अपर विदेहक्षेत्रोमे अवस्थित हैं । नील पर्वत और सीतोदाके मध्यमे चन्द्रमाल पर्वत स्थित है । इसी प्रकारसे सूर्यमाल, नागमाल और देवमाल नामक गजदन्त पर्वत भी वहा अवस्थित है ॥ १७९–१८० ॥ इनकी ऊचाई नदीतटके ऊपर पाच सौ योजन प्रमाण है । उनका समस्त वर्णन गन्धमादनादि गजदन्त पर्वतोके समान वतलाया

१ व त्ववमेतानि । २ प उत्तरम्भि । ३ व सीता प्रतिष्ठिता ।

षोडशैव सहस्राणि यष्टकोनशतानि षट् । द्वे कले चायता एते चतु कूटास्तथैकश ॥ १८२
। १९[६]५९२ । २/१९ ।
पर्वताश्रितकूटेषु दिशाकन्या वसन्ति हि । नद्याश्रितेषु कूटेषु अर्हदायतनानि च ॥ १८३
मध्यमेष्वथ कूटेषु व्यन्तराक्रीडनालयाः । अनुपर्वतमायामा कूटाना गदितो बुधै ॥ १८४
द्वाविंशतिसहस्राणि भद्रशालवन स्मृतम् । मेरो पूर्वापर सार्धशते[1] द्वे दक्षिणोत्तरम् ॥ १८५
गव्यूतिमवगाढाश्च गव्यूतिद्वयविस्तृता · । वेदिका योजनोत्सेधा वनात्पूर्वापरस्थिता · ॥१८६
नदी ग्राहवती नीलात्प्रच्युता ह्रदवत्यपि । सीता पङ्कवती चेति वक्षारान्तरसंस्थिता ॥१८७
पूर्वात्तप्तजला नाम्ना[2] तस्या मत्तजला परा । नद्युन्मत्तजला चेति सीता निषधपर्वतात् ॥ १८८
क्षारोदा[3] निषधादेव सीतोदा च विनिर्गता । स्रोतोन्तर्वाहिनी चेति सीतोदा प्रविशन्ति ता ॥१८९
अपरेषु विदेहेषु वपराद् गन्धमालिनी । फेनमालिनिका नीलादूर्मिमालिन्यपि स्नुता ॥ १९०
एता विभङ्गनद्याख्या रोहित्सदृशवर्णना । दिशाकन्या वसन्त्यासा सगमे तोरणालये ॥ १९१
विष्कम्भो मुखे १२½ । प्रवेशे १२५ ।

गया है ॥ १८१ ॥ ये पर्वत सोलह हजार व आठ कम छह सौ अर्थात् सोलह हजार पाच सौ बानवा योजन और दो कला (१६५९२ २/१९) प्रमाण लबे हैं । इनमेसे प्रत्येकके ऊपर चार कूट अवस्थित हैं ॥ १८२ ॥ इनमेसे जो कूट पर्वतके आश्रित हैं उनके ऊपर दिक्कन्याये निवास करती हैं, तथा जो कूट नदीके आश्रित हैं उनके ऊपर जिनभवन स्थित हैं ॥ १८३ ॥ मध्यके कूटोपर व्यन्तर देवोके क्रीडागृह है। इनका आयाम गणधरादिकोके द्वारा पर्वतके आयामके अनुसार कहा गया है ॥ १८४ ॥

भद्रशाल वनका विस्तार मेरुके पूर्व-पश्चिममे बाईस हजार (२२०००) योजन और उसके दक्षिण–उत्तरमे अढाई सौ योजन प्रमाण है॥ १८५॥ भद्रशाल वनके पूर्व और पश्चिममे जो वेदिकाये स्थित हैं उनका अवगाह एक कोस, विस्तार दो कोस, तथा ऊचाई एक योजन प्रमाण हैं ॥ १८६ ॥

ग्राहवती, ह्रदवती और पकवती ये विभगा नदिया नील पर्वतसे निकलकर सीता महानदीको प्राप्त हुई हैं। इनका अवस्थान वक्षारोके मध्यमे है ॥१८७॥पूर्वकी ओरसे तप्तजला नामक दूसरी मत्तजला और तीसरी उन्मत्तजला ये तीन विभगा नदिया निषध पर्वतसे निकलकर सीत महानदीको प्राप्त हुई हैं ॥ १८८ ॥ क्षारोदा, सीतोदा और स्रोतोवाहिनी ये तीन विभगा नदिया निषध पर्वतसे ही निकलकर सीतोदा महानदीमे प्रवेश करती है ॥१८९॥ गन्धमालिनी, फेनमालिनी, और ऊर्मिमालिनी नामक ये तीन विभगा नदिया पश्चिमकी ओरसे अपर विदेहोमे स्थित होती हुई नील पर्वतसे निकलकर सीतोदा महानदीको प्राप्त हुई हैं ॥१९०॥ये उपर्युक्त बारह नदिया विभगा

१ प सार्धं शते । २ आ प जलाख्नाम्ना । ३ प क्षीरोदा ।

कच्छा सुकच्छा महाकच्छा चतुर्थी कच्छकावती । आवर्ता लाङ्गलावर्ता पुष्कला पुष्कलावती ॥ १९२
अपराद्या इमे ज्ञेया विजयाश्चक्रवर्तिनाम् । नीलसीते च संप्राप्ता. प्रादक्षिण्येन भाषिता [1] ॥१९३
त्साव सुवत्सा महावत्सा चतुर्थी वत्सकावती । रम्या सुरम्या रमणीयाष्टमी मङ्गलावती ॥१९४
पद्मा सुपद्मा महापद्मा चतुर्थी पद्मकावती । शङ्खा च नलिना चैव कुमुदासरिते ऽपि च ॥ १९५
वप्रा सुवप्रा महावप्रा चतुर्थी वप्रकावती । गन्धा खलु सुगन्धा च गन्धिला गन्धमालिनी ॥ १९६
सीतानिषधयोर्मध्ये वत्साद्या परिकीर्तिता । पद्माद्या निषधासन्ना वप्राद्या नीलमाश्रिता ॥ १९७
द्वे सहस्रे शते द्वे च देशोनाश्च त्रयोदश । पूर्वापरेण विष्कम्भो दैर्घ्यं वक्षारसमितम् ॥ १९८

। २२१२ । $\frac{७}{८}$ ।

द्वात्रिंशद्विजयार्धाश्च तेषां मध्येषु तत्समा । भारतेन समा मानैर्नवकूटविभूषिताः ॥ १९९
एकश पञ्चपञ्चाशच्छ्रेण्यो. स्युर्नगराणि च । नित्य विद्याधराश्चैव परयोर्द्वीपयोस्तथा ॥ २००

नदीके नामसे प्रसिद्ध है । इनका वर्णन रोहित् नदीके समान है । इनके सगमस्थानमे स्थित तोरणोके ऊपर जो प्रासाद स्थित है उनमे दिक्कन्याये निवास करती है ॥१९१॥ इनका विस्तार मुखमे १२$\frac{१}{२}$ और प्रवेशमे १२५ योजन है ।

कच्छा, सुकच्छा, महाकच्छा, कच्छकावती, आवर्ता, लागलावर्ता, पुष्कला और पुष्कलावती, ये पश्चिमको आदि लेकर प्रदक्षिणक्रमसे स्थित चक्रवर्तियोके विजय नील पर्वत और सीता नदीको प्राप्त है, ऐसा निर्दिष्ट किया गया है ॥ १९२–१९३ ॥ वत्सा, सुवत्सा, महावत्सा, चतुर्थ वत्सकावती, रम्या, सुरम्या, आठवी रमणीया, मगलावती, पद्मा, सुपद्मा, महापद्मा, पद्मकावती, शखा, नलिना, कुमुदा, सरिता, वप्रा, सुवप्रा, महावप्रा, वप्रकावती, गन्धा, सुगन्धा, गन्धिला और गन्धमालिनी, इनमे वत्सा आदि विजय सीता नदी और निषध पर्वतके मध्यमे कहे गये हैं । पद्मा आदिक देश निषध पर्वतके समीपमे तथा वप्रा आदिक देश नील पर्वतके आश्रित है ॥ १९४–१९७ ॥ इनके पूर्वापर विस्तारका प्रमाण कुछ कम दो हजार दो सौ तेरह (२२१२$\frac{७}{८}$) योजन है । लबाई उनकी वक्षार पर्वतोके बराबर (१६५९२$\frac{२}{१९}$ यो) है ॥ १९८ ॥

उन क्षेत्रोके मध्य भागमे क्षेत्रविस्तारके समान लबे (२२१२$\frac{७}{८}$) बत्तीस विजयार्ध पर्वत स्थित है । नौ कूटोसे विभूषित ये विजयार्ध पर्वत प्रमाणमे भरतक्षेत्रस्थ विजयार्धके समान है ॥ १९९ ॥ इनमेसे प्रत्येकके ऊपर दो श्रेणियोमे पचपन पचपन नगरिया है जहा नित्य ही विद्याधरोका निवास है । इसी प्रकार आगेके दो द्वीपो (धातकीखण्ड और पुष्करार्ध) मे भी समझना चाहिये ॥ २०० ॥

---

१ प भाषित ।

क्षेमा क्षेमपुरी नाम्नाऽरिष्टारिष्टपुरी तथा । खड्गा पुनश्च मञ्जूषा त्वोषधी पुण्डरीकिणी ॥२०१
राजधान्य इमा ज्ञेया सीताया उत्तरे तटे । दक्षिणे तु सुसीमा च कुण्डला चापराजिता ॥ २०२
प्रभकरा चतुर्थी स्यात्पञ्चम्यङ्कावती पुरी । पद्मावती शुभेत्यन्या चाष्टमी रत्नसचया ॥ २०३
अश्वसिंहमहापुर्यो विजया च पुरी पुन । अरजा विरजाऽशोका वीतशोकेति चाष्टमी ॥२०४
विजया वैजयन्ती च जयन्त्यन्यापराजिता । चक्रा खड्गा त्वयोध्या च अवध्या[1] चोत्तरे तटे॥२०५
दक्षिणोत्तरतो ह्येता नगर्यो द्वादशायता । नवयोजनविस्तीर्णा हैमप्राकारसवृता ॥ २०६
युक्ता[2] द्वारसहस्रेण तदर्धैरपि चाल्पकै । सप्तभिश्च शतैर्दक्षै रत्नचित्रकवाटकैः ॥ २०७
सहस्र च चतुष्काणा रथ्या द्वादशसगुणा. । एतासामक्षयाश्चैता नगर्यो नान्यनिर्मिता.[3] ॥२०८
गङ्गा सिन्धुश्च विजये प्रसूते नीलपर्वतात् । विजयार्धगुहातीते सीता प्रविशतश्च ते ॥२०९
योजनाष्टकमुद्विद्धे गुहे द्वादशविस्तृते । विजयार्धसमायामे द्वे द्वे च प्रतिपर्वतम् ॥ २१०

। ५० ।

एव षोडश ता नद्यो भारत्या गङ्गया समा. । रक्ता रक्तवतीत्येव निषधात्षोडशागता ॥ २११

क्षेमा, क्षेमपुरी, अरिष्टा, अरिष्टपुरी, खड्गा, मजूषा, ओषधी और पुण्डरीकिणी, ये सीता नदीके उत्तर तटपर स्थित राजधानिया जानना चाहिये । उसके दक्षिण तटके ऊपर सुसीमा, कुण्डला, अपराजिता, प्रभकरा, अकावती, पद्मावती, शुभा और रत्नसचया पुरी ये आठ नगरिया स्थित हैं ॥ २०१–२०३ ॥ अश्वपुरी, सिंहपुरी, महापुरी, विजयापुरी, अरजा, विरजा, अशोका और वीतशोका ये राजधानिया सीतोदाके दक्षिण तटपर स्थित है ॥ २०४ ॥ विजया, वैजयन्ती, जयन्ती, अपरजिता, चक्रा, खड्गा, अयोध्या और अवध्या ये राजधानिया सीतोदाके उत्तर तटपर स्थित हैं ॥ २०५ ॥

ये नगरिया दक्षिण-उत्तरमे बारह योजन आयत और [पूर्व-पश्चिममे] नौ योजन विस्तीर्ण तथा सुवर्णमय प्राकारसे वेष्टित हैं ॥२०६॥ उक्त नगरिया एक हजार गोपुरद्वारोसे, इनसे आधे अर्थात् पाच सौ अल्प द्वारोसे तथा रत्नोसे विचित्र कपाटोवाले सात सौ क्षुद्र-द्वारोसे युक्त है । इन नगरियोमे एक हजार चतुष्पथ और बारह हजार रथमार्ग हैं । ये अविनश्वर नगरिया अन्य किसीके द्वारा निर्मित नही है–अकृत्रिम है ॥ २०७–२०८ ॥

प्रत्येक विजयमे गगा और सिंधु ये दो नदिया नील पर्वतसे उत्पन्न होकर विजयार्ध पर्वतकी गुफाओमेसे जाती हुई सीता महानदीमे प्रविष्ट होती हैं ॥ २०९ ॥ प्रत्येक विजयार्ध पर्वतमे आठ योजन ऊची, बारह योजन विस्तृत तथा विजयार्धके बराबर (५० यो) लबी दो दो गुफायें स्थित हैं ॥ २१० ॥ इस प्रकार वे सोलह गगा-सिन्धु नदिया भारत वर्षकी गगा नदीके समान हैं । इसी प्रकार रक्ता और रक्तवती नामकी सोलह नदिया निषध पर्वतसे निकली हैं ॥२११॥

१ ब अवद्या । २ प युक्त्वा । ३ ब ०निमिता । ४ प प्राविशतश्च ।

अपरेषु विदेहेषु ताभ्यामेव विनिर्गता । तावन्त्य एव तत्संज्ञा. सीतोदा तु विशन्ति ताः ॥२१२
समाख्यास्ताश्च संज्ञाभिरेता ईरन्ति निम्नगा. । चतुर्दश सहस्राणि नद्यास्ताभि[1] सहैकश ॥ २१३
सचतुष्का सहस्राणामशीति कुरुनिम्नगा. । एकैकत्र द्वयोर्नद्योस्तदर्धं च तटे तटे ॥ २१४

। ८४०० ।

चतुर्दश च लक्षाणामष्टाग्रा सप्ततिस्तथा । विदेहद्वयसभूता सर्वा नद्यः प्रकीर्तिताः ॥ २१५
सप्तादश च लक्षाणामयुतानि नवापि च । द्विसहस्रं नवत्यग्र जम्बूद्वीपोद्भवापगा ॥ २१६

। १७९२०९० ।

वैडूर्यवृषभाख्यास्तु पर्वता काञ्चनै समा । ससप्ततिशतं ते च वसन्त्येषु वृषामराः ॥ २१७

। १७० ।

अपर विदेहोमे उन्ही दोनो (नील और निषध) पर्वतोसे निकली हुई गगा-सिन्धु और रक्ता-रक्तवती नामोवाली उतनी (सोलह) ही वे नदिया सीतोदा महानदीमे प्रवेश करती हैं ॥२१२॥ ये नदिया उन नामोसे प्रसिद्ध है। उनमेसे एक एकके साथ सगत होकर चौदह हजार (१४०००) नदिया गमन करती है ॥ २१३ ॥ चार सहित अस्सी अर्थात् चौरासी हजार (८४०००) कुरुक्षेत्रस्थ नदिया उक्त सीता-सीतोदा नदियोमे प्रत्येककी सहायक है। उनमेसे एक एक तटपर आधी (४२०००) नदिया हैं ॥ २१४ ॥ दोनो विदेहक्षेत्रोमे उत्पन्न हुई सब नदिया चौदह लाख अठहत्तर (१४०००७८) कही गई हैं। यथा—१ सीता + १ सीतोदा + इनकी सहायक कुरुक्षेत्रस्थ नदिया १६८००० (८४००० × २) + विभगा नदी १२ + इनकी सहायक नदिया ३३६००० (२८०००×१२)+बत्तीस विजयोकी गगा–सिधु और रक्ता–रक्तोदा नामकी ६४ + इनकी सहायक नदिया ८९६००० (१४०००×६४) = १४०००७८ सब विदेहक्षेत्रस्थ नदिया ॥ २१५ ॥

जम्बूद्वीपमे उत्पन्न हुई समस्त नदिया सत्तरह लाख, नौ अयुत (१०००० × ९) दो हजार अर्थात् बानबै हजार नब्बै (१७९२०९०) है। यथा— भरतक्षेत्रकी गगा–सिन्धु २ + इनकी सहायक नदिया २८००० + हैमवत क्षेत्रकी रोहित्-रोहितास्या २ + इनकी सहायक ५६००० + हरिवर्षकी हरित्–हरिकान्ता २ + इनकी सहायक ११२००० + श्लोक २१५ मे निर्दिष्ट विदेह क्षेत्रकी १४०००७८+रम्यक क्षेत्रकी नारी-नरकान्ता २+इनकी सहायक ११२००० + हैरण्यवत क्षेत्रकी सुवर्णकूला–रूप्यकूला २ + इनकी सहायक ५६०००+ऐरावत क्षेत्रकी रक्ता–रक्तोदा २ + इनकी सहायक २८००० = १७९२०९० ॥ २१६ ॥

कांचन पर्वतोके समान जो वैडूर्यमणिमय वृषभ नामक पर्वत है वे एक सौ सत्तर है—

---

१ प °नंद्या° ।

पूर्वापरविदेहान्ते सश्रित्य लवणोदधिम् । देवारण्यानि चत्वारि नद्योस्तटचतुष्टये ॥ २१८
विस्तृतिर्द्विसहस्र च नवशत्येकविंशति । अष्टादश कलाश्चैषां वेदिका वेदिकासमा ॥ २१९

। २९२१ । १८/१९ ।

विदेहानां स्थितो मध्ये कुरुद्वयसमीपग । नवतिं च सहस्राणा नव चोद्गत्य मन्दर ॥ २२०

। ९९००० ।

तस्यागाध सहस्र च विष्कम्भोऽयुतमत्र तु । नवतिश्च दशान्ये स्युर्योजनैकादशाशका ॥ २२१

। १००० । १००९० । १०/११ ।

एकत्रिंशत्सहस्राणा शताना नवक दश । योजनानि परिक्षेपो द्वौ चात्रैकादशाशकौ ॥ २२२

। ३१९१० । २/११ ।

एकत्रिंशत्सहस्राणि षट्छत विंशति-द्विकम् । योजनाना त्रिगव्यूतिर्द्वे शते द्वादशापि च ॥ २२३
दण्डा हस्तत्रिक भूयोऽप्यङगुलानि त्रयोदश । भद्रसालपरिक्षेपो विष्कम्भोऽयुतमत्र तु ॥ २२४

। ३१६२२ को ३ द २१२ ह ३ अ १३ । १०००० ।

ऊर्ध्वं पञ्चशत गत्वा नन्दन नामतो[1] वनम् । तत्पञ्चशतविस्तार परितो मन्दर स्थितम् ॥ २२५

भरत-ऐरावत १–१, बत्तीस विदेहविजयस्थ ३२, समस्त अढाई द्वीप सम्बन्धी ३४ × ५ = १७० । इनके ऊपर वृषभ नामक देव रहते है ॥ २१७ ॥

पूर्व और अपर विदेह क्षेत्रोमे सीता–सीतोदा नदियोके चार तटोपर लवणोदधिके आश्रित चार देवारण्य स्थित हैं ॥ २१८ ॥ इनका विस्तार दो हजार नौ सौ इक्कीस योजन और अठारह कला (२९२१ १८/१९) प्रमाण है । इनकी वेदिका [भद्रशाल वनकी] वेदिकाके समान (१ योजन ऊची, २ कोस विस्तृत और १ कोस अवगाहवाली) है ॥ २१९ ॥

विदेहोके मध्यमे दोनो कुरुक्षेत्रोके समीपमे निन्यानवै हजार (९९०००) योजन ऊचा मन्दर पर्वत स्थित है ॥ २२० ॥ उसकी नीव एक हजार (१०००) योजन और विस्तार [तलभागमे] दस हजार नब्बै योजन व एक योजनके ग्यारह भागोमेसे दस भाग (१००९० १०/११) प्रमाण है ॥ २२१ ॥ इसकी परिधिका प्रमाण इकतीस हजार नौ सौ दस योजन और एक योजनके ग्यारह भागोमेसे दो भाग (३१९१० २/११ यो) है ॥२२२॥ भद्रसाल वनमे अर्थात् पृथिवीके ऊपर उपर्युक्त मेरुकी परिधि इकतीस हजार छह सौ बाईस योजन,तीन कोस, दो सौ बारह धनुष, तीन हाथ और तेरह अगुल (३१६२२ यो , ३ को , २१२ धनुष, ३ हाथ, १३ अगुल) प्रमाण है। यहा मेरुका विस्तार दस हजार योजन मात्र है ॥ २२३–२२४॥

मेरु पर्वतके ऊपर पाच सौ (५००) योजन जाकर नन्दन वन स्थित है।

---

१ प नन्दनो वामतो ।

नव चात्र सहस्राणि युतानि नवभि शतैः । चतुष्कं च शतस्यार्धं भागा षट्कं च विस्तृतम्॥२२६

। ९९५४ । $\frac{६}{११}$ ।

एकत्रिंशत्सहस्राणि पुनश्चात्र चतुःशतम् । एकोनाशीतिसंयुक्त परिधिर्बाह्यको गिरेः ॥ २२७

पूर्व एव सहस्रोनो विष्कम्भोऽभ्यन्तरो भवेत् । वने च नन्दने मेरो परिक्षेपमतः शृणु ॥ २२८

। ८९५४ । $\frac{६}{११}$ ।

विंशतिश्च पुनश्चाष्टौ सहस्राणि शतत्रयम् । षोडशाग्रं पुनर्विन्ध्या[द्या]दष्टावेकादशांशकाः ॥ २२९

२८३१६ । $\frac{८}{११}$ ।

उसका विस्तार पाच सौ योजन (५००) प्रमाण है । वह मदर पर्वतके चारो ओर अवस्थित है ॥ २२५ ॥ यहा मेरुका विस्तार नौ हजार नौ सौ चौवन (सौ के आधे पचास और चार $\frac{१००}{२}+४$) योजन और छह भाग (९९५४$\frac{६}{११}$) प्रमाण है ॥ २२६ ॥

विशेषार्थ–– मेरुका विस्तार भूमिके ऊपर भद्रशाल वनमे १०००० यो प्रमाण है । यही विस्तार ९९००० योजन ऊपर जाकर क्रमश हीन होता हुआ १००० यो मात्र रह गया है । अतएव 'भूमिमेसे मुखको कम करके शेषको ऊचाईसे भाजित करनेपर हानि-वृद्धिका प्रमाण होता है ' इस नियमके अनुसार यहा हानि-वृद्धिका प्रमाण इस प्रकार प्राप्त होता है–– भूमि १०००० – मुख १००० = ९०००, ऊचाई ९९०००, ९००० – ९९००० = $\frac{१}{११}$ यो. । इतनी मेरुके विस्तारमे एक एक योजनकी ऊचाईपर भूमिकी ओरसे हानि और मुखकी ओरसे वृद्धि होती गई है । अब नन्दन वन चूकि ५०० यो की ऊचाईपर स्थित है अत एव यहा हानिका प्रमाण $\frac{१}{११}$×५०० = $\frac{५००}{११}$ = ४५$\frac{५}{११}$ यो. होगा। इसको भूमि विस्तारमेसे घटा देनेपर उपर्युक्त विस्तार-प्रमाण प्राप्त हो जाता है। जैसे–– १०००० – ४५$\frac{५}{११}$ = ९९५४$\frac{६}{११}$ यो । यही विस्तारप्रमाण मुखकी ओरसे इस प्रकार प्राप्त होगा– ऊपरकी ओरसे नन्दन वन चूकि ९८५०० यो नीचे आकर स्थित है, अत विस्तार वृद्धिका प्रमाण $\frac{९८५००}{११}$ = ८९५४$\frac{६}{११}$ यो होगा । इसे मुखमे जोड देनेसे भी वही विस्तारप्रमाण प्राप्त होता है। यथा –– १००० + ८९५४$\frac{६}{११}$ = ९९५४$\frac{६}{११}$ यो । इसी नियमके अनुसार अन्यत्र भी अभीप्सित स्थानमे उसका विस्तारप्रमाण जाना जा सकता है ।

यहा नन्दन वनके समीप मेरुकी बाह्य (नन्दन वनके विस्तारसहित) परिधिका प्रमाण इकतीस हजार चार सौ उन्यासी (३१४७९) योजन प्रमाण है ॥ २२७ ॥ नन्दन वनके भीतर मेरुका अभ्यन्तर विस्तार एक हजार (५०० × २) योजनोसे रहित पूर्व (९९५४$\frac{६}{११}$) विस्तारके बराबर है–– ९९५४$\frac{६}{११}$ – १००० = ८९५४$\frac{६}{११}$ यो । अब आगे नन्दन वनके भीतर मेरुकी अभ्यन्तर परिधिका कथन करते है, उसे सुनिये ॥ २२८ ॥ वह बीस और आठ अर्थात् अट्ठाईस हजार तीन सौ सोलह योजन और एक योजनके ग्यारह भागोमेसे आठ भाग (२८३१६$\frac{८}{११}$) प्रमाण जानना चाहिये ॥ २२९ ॥

द्विषष्टिं च सहस्राणां गत्वा पञ्चशतं तथा । वनं सौमनसं नाम नन्दनेन समं भवेत् ॥ २३०
चत्वार्यत्र सहस्राणि शते द्वे च द्विसप्तति । अष्टावेकादशांशाश्च[1] विस्तारो बाहिरो[2] गिरेः ॥२३१
[। ४२७२ । $\frac{8}{11}$]
त्रयोदश सहस्राणि शतानामपि पञ्चकम् । एकादश ततः षट् च भागाः परिधिरस्य च ॥ २३२
[१३५११] । $\frac{6}{11}$ ।
तद्बाह्यगिरिविष्कम्भः सहस्रेण विवर्जितः । अभ्यन्तरः स एव स्यादिति संख्याविदां मतः ॥२३३
। ३२७२ । $\frac{8}{11}$ ।
त्रिशत्येकोनपञ्चाशत् सहस्राणि दशैव च । त्रय एकादशांशाश्च परिक्षेपोऽल्पहीनकः ॥ २३४
[१०३४९] । $\frac{3}{11}$ ।
षट्त्रिंशतं सहस्राणां गत्वातः पाण्डुकं वनम् । मेरोर्मूर्धनि विस्तीर्णं सहस्रार्धं षडूनकम् ॥ २३५
शतं त्रीणि सहस्राणि द्विषष्टिर्योजनानि च । परिक्षेपोऽस्य विज्ञेयो मूर्ध्नि वैडूर्यचूलिका ॥ २३६
द्वादशाष्टौ च चत्वारि मूलमध्याग्रविस्तृता । चत्वारिंशतमुद्विद्धा[3] गिरिराजस्य चूलिका ॥ २३७

नन्दन वनसे बासठ हजार पाच सौ (६२५००) योजन ऊपर जाकर सौमनस नामक वन स्थित है जो विस्तारमे नन्दन वनके ही समान है ॥ २३० ॥ यहा मेरु पर्वतका बाह्य विस्तार चार हजार दो सौ बहत्तर योजन और एक योजनके ग्यारह भागोमेसे आठ भाग ($४२७२\frac{8}{11}$) प्रमाण है ॥ २३१ ॥ इसकी परिधि तेरह हजार पाच सौ ग्यारह योजन और एक योजनके ग्यारह भागोमेसे छह भाग ($१३५११\frac{6}{11}$) प्रमाण है ॥ २३२ ॥ यहा मेरु पर्वतका जो बाह्य विस्तार है वही एक हजार योजनो (५०० × २) से कम होकर उसका अभ्यन्तर विस्तार होता है — $४२७२\frac{8}{11}$ − १००० = $३२७२\frac{8}{11}$ यो ॥२३३॥ इसकी परिधिका प्रमाण दस हजार तीन सौ उनचास योजन और एक योजनके ग्यारह भागोमेसे तीन भाग ($१०३४९\frac{3}{11}$) प्रमाण है ॥ २३४ ॥

इस सौमनस वनसे छत्तीस हजार (३६०००) योजन ऊपर जाकर मेरुके शिखरपर पाण्डुक वन स्थित है। इसका विस्तार एक हजारके आधे अर्थात् पाच सौ योजनमे छह योजन कम (४९४) है ॥ २३५ ॥

विशेषार्थ— पाण्डुक वनके समीपमे मेरुका विस्तार एक हजार योजन प्रमाण है। उसके ठीक मध्यमे मेरु पर्वतकी चूलिका स्थित है। उसका विस्तार बारह योजन है। अत एव मेरु पर्वतके उक्त विस्तारमेसे बारह योजन कम करके शेषमे दोका भाग देनेपर पाण्डुक वनका उक्त विस्तार होता है। यथा — ($\frac{१००० - १२}{२}$) = ४९४ यो = (५०० − ६) ।

इसकी परिधिका प्रमाण तीन हजार एक सौ बासठ योजन जानना चाहिये । इसके मस्तकपर वैडूर्यमणिमय चूलिका अवस्थित है ॥ २३६ ॥ यह मेरु गिरीन्द्रकी चूलिका मूलमे

१ आ प दशाश्च । २ ब बहितो । ३ प °शतमु° ।

सप्तत्रिंशत् परिक्षेपो मध्ये पञ्चकृतिस्तथा । साधिका द्वादशाग्रे च चूलिकाया विदुर्बुधा. ॥ २३८
। २५ ।
एकादशसहस्राणि समरुन्द्रः सुदर्शन । नन्दनाख्याद्वनादूर्ध्वं[1] तथा सौमनसादपि ॥ २३९
मुखभूम्योर्विशेषस्तु पुनरुत्सेधभाजित. । भूमुखाभ्या क्रमाद्धानिश्चयश्च भवति ध्रुवम् ॥ २४०
एकेनैकादशांशेन[2] गुणितेष्टे मुखे युते । भूम्या वा शोधिते[3] व्यासो मेरोरिष्टप्रदेशके ॥ २४१
एकेन पञ्चमाशेन गुणितेष्टे मुखे युते । भूम्यां शोधिते[3] व्यासो चूलिकेष्टप्रदेशके ॥ २४२

बारह, मध्यमे आठ और ऊपर चार योजन विस्तृत है । ऊचाई उसकी चालीस योजन मात्र है ॥ २३७ ॥ विद्वानोके द्वारा उस चूलिकाकी परिधिका प्रमाण पाण्डुक वनके समीपमे सैंतीस (३७) योजन, मध्यमे पाचके वर्ग प्रमाण अर्थात् पच्चीस (५ × ५ = २५) योजन और ऊपर बारह (१२) योजनसे कुछ अधिक बतलाया गया है ॥ २३८ ॥ यह सुदर्शन मेरु नन्दन वनसे तथा सौमनस वनसे भी ऊपर ग्यारह हजार (११०००) योजनप्रमाण समान विस्तार-वाला है ॥ २३९ ॥

भूमिमेसे मुखको कम करके शेषको ऊचाईसे भाजित करनेपर जो लब्ध हो वह निश्चयसे भूमिकी ओरसे हानिका तथा मुखकी ओरसे वृद्धिका प्रमाण होता है ॥ २४० ॥ एक बटे ग्यारह ($\frac{1}{11}$) से अभीष्ट ऊचाईके प्रमाणको गुणित करनेपर जो प्राप्त हो उसे मुखमे मिला देने अथवा भूमिमेसे कम करनेपर इष्ट स्थानमे मेरुका विस्तार जाना जाता है ॥२४१॥

उदाहरण– भूमि १०००० यो, मुख १००० यो, ऊचाई ९९००० यो । अत एव $\frac{10000 - 1000}{99000} = \frac{1}{11}$ यो, यह हानि–वृद्धिका प्रमाण हुआ । अब यदि हम उदाहरणस्वरूप सौमनस वनके समीपमे मेरुके विस्तारको जानना चाहते हैं तो वह उपर्युक्त विधानके अनुसार इस प्रकार प्राप्त हो जाता है– भूमिसे सौमनस वनकी ऊचाई ५०० + ६२५०० = ६३००० योजन है । अत एव पूर्व विधिके अनुसार हानिका प्रमाण जो $\frac{1}{11}$ प्राप्त हुआ है उसको इस ऊंचाईके प्रमाणसे गुणित करनेपर $\frac{1}{11} \times ६३००० = \frac{63000}{11} = ५७२७\frac{3}{11}$ यो प्राप्त होते है। इनको भूमिके प्रमाणमेसे कम कर देनेपर सौमनस वनके समीप मेरुका विस्तार प्राप्त हो जाता है । यथा– $१०००० - ५७२७\frac{3}{11} = ४२७२\frac{8}{11}$ यो । इस प्रमाणको यदि मुखकी ओरसे लाना चाहते है तो वह इस प्रकारसे प्राप्त होगा– ऊपरकी ओरसे सौमनस वन ३६००० यो नीचा है । अत एव वृद्धिका प्रमाण $\frac{1}{11} \times ३६००० = \frac{36000}{11} = ३२७२\frac{8}{11}$ यो हुआ । इसको मुखमे मिला देनेसे भी वही प्रमाण प्राप्त होता है । यथा– $१००० + ३२७२\frac{8}{11} = ४२७२\frac{8}{11}$ यो ।

एक पचमागसे चूलिकाकी अभीष्ट ऊचाईको गुणित करनेपर जो प्राप्त हो उसको मुखमे मिला देने अथवा भूमिमेसे कम कर देनेपर अभीष्ट स्थानमे चूलिकाके विस्तारका प्रमाण प्राप्त होता है ॥ २४२ ॥

१ प ०ख्यावनादूर्ध्वं । २ प ०नेका० । ३ व शोदिते ।

एकादशप्रदेशेषु एकस्मान्मूलतो भवेत् । हानिरङ्गुलकिष्क्वाद्यादेव स्यादिति निश्चितम् ॥ २४३
प्रथमो हरितालश्च ततो वैडूर्यसंनिभः । सर्वरत्नमयश्चान्य ऊर्ध्वं वज्रमयस्ततः ॥ २४४
परिधि पद्मवर्णश्च षष्ठो लोहितवर्णक । मेरोरिमे परिक्षेपभेदा भूम्या भवन्ति ते ॥ २४५
षोडशैव सहस्राणि सहस्रार्धं च विस्तृता । प्रत्येक षट्परिक्षेपा सप्तम पादपैः स्मृत ॥ २४६
सप्तमस्य परिक्षेपभेदा एकादशोदिताः । भद्रसालवन चान्यन्मानुषोत्तरक वनम् ॥ २४७
देवानामथ नागानां भूतानां रमणानि च । वनान्येतानि पञ्च स्युर्भद्रसालवने स्फुटम् ॥ २४८
नन्दन च वन चोपनन्दन नन्दने वने । सौमनसवन चोपसौमनसमिति द्वयम् ॥ २४९
सौमनसवने स्याच्च पाण्डुकं चोपपाण्डुकम् । पाण्डुकाख्यवने स्यातामिति बाह्याद् भवन्ति ते ॥२५०

उदाहरण– चूलिकाका भूविस्तार १२ यो, मुखविस्तार ४ यो और ऊचाई ४० यो है । अत एव $\frac{१२-४}{४०} = \frac{१}{५}$ यो, यह हानि-वृद्धिका प्रमाण हुआ । अब यदि हम २० योजनकी ऊचाईपर चूलिकाके विस्तारको जानना चाहते है तो वह इस प्रकार प्राप्त हो जाता है— $\frac{१}{५} \times २० = \frac{२०}{५} = ४$ यो, इसे भूमिमेसे कम कर देनेपर $१२ - ४ = ८$ यो प्राप्त होते हैं । यही २० यो की ऊचाईपर चूलिकाका विस्तारप्रमाण है । चूकि यह विस्तार चूलिकाके मध्यका है अत एव ऊपरकी ओरसे नीचाई भी २० यो ही होती है । इसलिये वृद्धिका प्रमाण भी पूर्वोक्त ४ यो ही रहेगा । इसे मुखमे मिला देनेसे भी वही प्रमाण प्राप्त होता है — $४ + ४ = ८$ यो ।

यहा विस्तारमे मूलत एक प्रदेशसे लेकर ग्यारह प्रदेशोपर एक प्रदेशकी हानि हुई है । इसी प्रकारसे मूलत ग्यारह अगुलोपर एक अगुलकी तथा ग्यारह किष्कुओपर एक किष्कु आदिकी भी हानि होती गई है, यह निश्चित है ॥ २४३ ॥

मेरु पर्वतकी छह परिधियोमेसे प्रथम परिधि हरितालमयी, दूसरी वैडूर्यमणि जैसी, तीसरी सर्वरत्नमयी, चौथी वज्रमयी, पाचवी पद्मवर्ण और छठी लोहितवर्ण है । मेरुके जो ये परिधिभेद है वे भूमिसे होते हैं ॥ २४४–२४५ ॥

इन छह परिधियोमे प्रत्येक परिधिका विस्तार सोलह हजार और एक हजारके आधे योजन अर्थात् साढे सोलह हजार (१६५००) योजन प्रमाण है । सातवी परिधि वृक्षोसे की गई है ॥ २४६ ॥ सातवी परिधिके ग्यारह भेद कहे गये हैं– १ भद्रसाल वन २ मानुषोत्तर वन ३ देवरमण ४ नागरमण और ५ भूतरमण, ये पाच वन स्पष्टतया भद्रसाल वनमे हैं । ६ नन्दनवन और ७ उपनन्दन वन ये दो वन नन्दन वनमे है । ८ सौमनस वन और ९ उपसौमनस वन ये दो वन सौमनस वनमे है । तथा १० पाण्डुक और ११ उपपाण्डुक वन ये दो वन पाण्डुक नामक वनमे हैं । वे सब बाह्य भागसे हैं ॥ २४७–२५० ॥

मेरुर्वज्रमयो मूले[1] सहस्रं योजनानि सः । एकषष्टिसहस्राणि सर्वरत्नमयस्तत ॥ २५१
अष्टात्रिंशत्सहस्राणि ततो हेममयोऽपि च । भवेदिति विनिर्दिष्ट परमागमकोविदैः ॥ २५२
माणा[ना]ख्य चारणाख्यं च गन्धर्वं भवनं तथा। चित्राख्यं भवनं चैव[2] नन्दने दिक्चतुष्टये॥२५३
त्रिंशद्योजनविस्तार. पुन पञ्चाशदुच्छ्रय । नवतिश्च परिक्षेपो वृत्तस्य भवनस्य च ॥ २५४
प्रथमे भवने सोमो यमश्चारणसज्ञके । गन्धर्वे वरुणो देव कुबेरश्चित्रनामके ॥ २५५
देव्यः कोटित्रय सार्धमेकैकस्य समीपगा । लोकपाला इमे ताभिः रमन्ते दिक्षु सर्वदा ॥ २५६

। ३५००००००।

वज्र वज्रप्रभ नाम्नो सुवर्णाख्य च तत्प्रभम् । वने सौमनसे सन्ति भवनान्येतानि पूर्वत. ॥ २५७
मानं नन्दनसंस्थानादर्धं च तदिहेष्यते । लोकपाला इमे चात्र तावतीपरिवारिताः[3] ॥ २५८

। वि १५ उ २५ प ४५ ।

लोहित चाञ्जन तेषा हारिद्रमथ[4] पाण्डुरम् । पाण्डुके चार्धमानानि तावत्कन्यानि लक्षयेत्॥२५९

। वि ७ । $\frac{1}{2}$ । उ १२ । $\frac{1}{2}$ । प २२ । $\frac{1}{2}$ ।

वह मेरु पर्वत मूल भाग (नीव)मे एक हजार (१०००) योजन वज्रमय, उसके ऊपर इकसठ हजार (६१०००) योजन सर्वरत्नमय, तथा उसके ऊपर अडतीस हजार (३८०००) योजन सुवर्णमय है, ऐसा परमागमके पारगामियो द्वारा निर्दिष्ट किया गया है— १००० + ६१००० + ३८००० = १००००० यो ॥ २५१–५२ ॥

नन्दन वनके भीतर चारो दिशाओमे मान, चारण, गन्धर्व और चित्र नामक चार भवन स्थित हैं ॥ २५३ ॥ इन गोलाकार भवनोमेसे प्रत्येकका विस्तार तीस योजन, ऊचाई पचास योजन और परिधि (स्थूल) नव्वै योजन प्रमाण है ॥ २५४ ॥ इनमेसे प्रथम भवनमे सोम, दूसरे चारण नामक भवनमे यम, गन्धर्व भवनमे वरुण देव और चित्र नामक भवनमे कुबेर लोकपाल रहता है ॥ २५५ ॥ इनमेसे एक एकके समीपमे रहनेवाली साढे तीन करोड (३५००००००) देविया होती हैं । पूर्वादिक दिशाओमे स्थित ये लोकपाल उनके साथ सर्वदा रमण करते हैं ॥ २५६ ॥

वज्र, वज्रप्रभ सुवर्ण और सुवर्णप्रभ नामक ये चार भवन पूर्वादिक क्रमसे सौमनस वनमे विद्यमान हैं ॥२५७॥ नदन वनमे स्थित भवनोकी अपेक्षा इन भवनोका प्रमाण आधा (विस्तार १५ यो , ऊंचाई २५ यो , परिधि ४५ यो) माना जाता है । यहा भी ये लोकपाल उतनी ही देवियोसे परिवेष्टित रहते हैं ॥ २५८ ॥ लोहित, अजन हारिद्र और पाण्डुर ये चार भवन पाण्डुक वनमे स्थित हैं । उनका प्रमाण सौमनस वनके भवनोकी अपेक्षा आधा है– विस्तार ७$\frac{1}{2}$, ऊचाई १२$\frac{1}{2}$, परिधि २२$\frac{1}{2}$ यो. । देवकन्याये उतनी ही जानना चाहिये ॥ २५९ ॥

---

१ प मूले । २ आ ब चैव । ३ आ प तावतीपरिवारिता. । ४ आ हन्द्रिमय ।

स्वयंप्रभविमानेश: सोम: पूर्वदिशाधिप: । स्थानकेषु विमानानां षट्कानां षट्सु भोजक: ॥२६०

। ६६६६६६ । उक्तं च [ति. प. ८, २९७]—

छल्लक्खा छावट्ठी सहस्सया छस्सयाणि छासट्ठी[1] ।

सक्कस्स दिगिंदाणं विमाणसंखा य पत्तेक्कं ॥ ४ ॥

वस्त्रैराभरणैर्गन्धैः पुष्पैर्वाहनविस्त[ष्ट]रैः । रक्तवर्णैर्युतः सर्वैः सार्धपल्यद्विकस्थितिः ॥ २६१

वरारिष्टविमानेशो यमो दक्षिणदिक्पतिः । पूर्ववत्कृष्णनेपथ्यः सार्धपल्यद्विकस्थितिः ॥ २६२

जलप्रभविमानेशो वरुणश्चापरापतिः । सोमवत्पीतनेपथ्यो न्यूनपल्यत्रिकस्थितिः ॥ २६३

वल्गुप्रभविमानेशः कुबेरश्चोत्तरापतिः । सोमवच्छुक्लनेपथ्यो न्यूनपल्यत्रिकस्थितिः ॥ २६४

नन्दने बलभद्राख्ये मेरोरुत्तरपूर्वतः । कूटे तन्नामको देवो मानं काञ्चनकैः समे ॥ २६५

नन्दनं मन्दरं चैव निषधं हिमवत्पुनः । रजतं रुचकं चापि ततः सागरचित्रकम् ॥ २६६

वज्राख्यमष्टमं कूटं द्वे द्वे स्यातां चतुर्दिशम् । नन्दने दिक्कुमारीणां सहस्रार्धोद्गतानि च ॥२६७

स्वयंप्रभ विमानका अधिपति और पूर्वदिशाका स्वामी सोम नामक लोकपाल छह स्थानोंमें स्थित छह अंकों प्रमाण अर्थात् छह लाख छयासठ हजार छह सौ छयासठ (६६६६६६) विमानोंका उपभोक्ता है ॥ २६० ॥ कहा भी है–

सौधर्म इन्द्रके लोकपालोंमेंसे प्रत्येक लोकपालके विमानोंकी संख्या छह लाख छयासठ हजार छह सौ छयासठ है ॥ ४ ॥

यह सोम नामक लोकपाल लाल वर्णवाले सब वस्त्र, आभरण, गन्ध, पुष्प, वाहन और विस्त[ष्ट]रों (आसनों) से संयुक्त होता है । आयु उसकी अढाई पल्योपम प्रमाण होती है ॥ २६१ ॥ उत्तम अरिष्ट विमानका स्वामी यम नामक लोकपाल दक्षिण दिशाका अधिपति होता है । पूर्वके समान उसकी वेषभूषा कृष्णवर्ण और आयु अढाई पल्योपम प्रमाण होती है ॥ २६२ ॥ जलप्रभ विमानका अधीश्वर वरुण नामक लोकपाल पश्चिम दिशाका स्वामी होता है । सोम लोकपालके समान उसकी वेषभूषा पीतवर्ण और आयु कुछ कम तीन पल्योपम प्रमाण होती है ॥ २६३ ॥ वल्गुप्रभ विमानका अधिपति कुबेर नामक लोकपाल उत्तर दिशाका स्वामी होता है । सोम लोकपालके समान उसकी वेषभूषा शुक्लवर्ण और आयु कुछ कम तीन पल्योपम प्रमाण होती है ॥ २६४ ॥

नन्दन वनमें मेरुके उत्तर-पूर्व (ईशान) में बलभद्र नामक कूट स्थित है । इसका प्रमाण कांचन पर्वतोंके समान है । उसके ऊपर कूट जैसे नामवाला (बलभद्र) देव रहता है ॥ २६५ ॥

नन्दन, मंदर, निषध, हिमवान्, रजत, रुचक, सागरचित्र और आठवां वज्र नामक कूट, इस प्रकार ये दो दो कूट नन्दन वनके भीतर चारों दिशाओंमें दिक्कुमारियोंके स्थित हैं । इनकी ऊंचाई एक हजारके आधे अर्थात् पांच सौ (५००) योजन प्रमाण है । विस्तार उनका

---

१ आ ब छावट्ठी ।

मूले तूच्छ्रयरुन्द्राणि मध्ये पञ्चघनाद्विना । पञ्चाशद् द्वे शते चाग्रे कूटमानानि तेष्विमाः ॥२६८
। ५०० । ३७५ । २५० ।
मेघकरा मेघवती सुमेघा मेघमालनी । तोयधरा[1] विचित्रा च पुष्पमालाप्यनिन्दिता ॥ २६९
वापीत्युत्पलगुल्मा च नलिना चोत्पलेति च । उत्पलोज्ज्वलसंज्ञा च मेरोस्ताः पूर्वदक्षिणे ॥२७०
मयूरहंसक्रौञ्चाद्यैर्यन्त्रैर्नित्यमलङ्कृताः[2] । मणितोरणसयुक्ता रत्नसोपानपङ्क्तय ॥ २७१
तासा पञ्चाशदायामस्तदर्धमपि विस्तृति । दशावगाढ प्रासादस्तासा मध्ये शचीपतेः ॥ २७२
एकत्रिंशत्सगव्यूतिर्द्विषष्टिः सार्धयोजना । आयामविस्तृती तुङ्गस्तस्य गाधोऽर्धयोजनम् ॥ २७३
आ ३१ क्रो १ । वि ३१ क्रो १ । उ ६२ क्रो २ । अ क्रो २ ।
उक्त च द्वय त्रिलोकप्रज्ञप्तौ [४, १९४९–५०] —
पोक्खरणीण मज्झे सक्कस्स हवे विहारपासादो । पणवणकोसुत्तुगो तद्दलरुदो णिरुवमाणो ॥ ५
१२५ । ६२ । १/२ ।
एक्कं कोस गाढो सो णिलवो विविहकेदुरमणिज्जो । तस्सायामपमाणे उवएसो णत्थि अम्हाण ॥६
सिंहासन तु तन्मध्ये शक्रस्यामिततेजस. । चत्वारि लोकपालानामासनानि चतुर्दिशम् ॥ २७४

मूलमे ऊचाई समान (५०० यो), मध्यमे पाचके घन अर्थात् एक सौ पच्चीस (५ × ५ × ५ = १२५) योजनोके विना ऊचाईके बराबर (५०० – १२५ = ३७५ यो) तथा ऊपर दो सौ पचास (२५०) योजन प्रमाण है । उनके ऊपर ये देविया रहती है— मेघकरा, मेघवती, सुमेघा, मेघमालिनी, तोयधरा, विचित्रा, पुष्पमाला और अनिन्दिता ॥ २६६–२६९ ॥

वहा मेरुके पूर्व-दक्षिण (आग्नेय) भागमे उत्पलगुल्मा, नलिना, उत्पला और उत्पलोज्वला नामकी चार वापिया स्थित है ॥ २७० ॥ वे मयूर, हस और क्रौच आदि यत्रोसे सदा सुशोभित, मणिमय तोरणोसे सयुक्त, तथा रत्नमय सोपानो (सीढियो) की पक्तियोसे सहित हैं ॥ २७१ ॥ उनका आयाम पचास (५०) योजन, विस्तार इससे आधा (२५ यो) और गहराई दस (१०) योजन प्रमाण है। उनके मध्यमे इन्द्रका भवन अवस्थित है ॥ २७२ ॥ इस प्रासादका आयाम और विस्तार एक कोस सहित इकतीस ($३१\frac{१}{४}$) योजन, ऊचाई साढे बासठ ($६२\frac{१}{२}$) योजन, और गहराई आधा योजन (२ कोस) मात्र है॥ २७३ ॥ त्रिलोकप्रज्ञप्तिमे कहा भी है —

वापियोके मध्यमे सौधर्म इन्द्रका विहारप्रासाद स्थित है । उस अनुपम प्रासादकी ऊचाई पाचके घन अर्थात् एक सौ पच्चीस (५ × ५ × ५ = १२५) कोस और विस्तार इससे आधा ($६२\frac{१}{२}$ कोस) है ॥ ५ ॥ अनेक प्रकारकी ध्वजाओसे रमणीय वह प्रासाद एक कोस गहरा है । उसके आयामके प्रमाण विषयक उपदेश हमे उपलब्ध नही है ॥ ६ ॥

उक्त प्रासादके मध्यमे अपरिमित तेजके धारक सौधर्म इन्द्रका सिंहासन है । उसके

१ व तोयदरा । २ प क्रौचाद्यै° ।

पूर्वोत्तरस्या तस्यैव चापरोत्तरतस्तथा । सामानिकाना देवाना रम्यभद्रासनानि च ।। २७५

४२००० । ४२००० ।

अष्टानामग्रदेवीना पुरो भद्रासनानि च । आसन्नपरिषत्तस्य सासना पूर्वदक्षिणे ।। २७६

८ । १२००० ।

मध्यमा दक्षिणस्या च बाह्या चापरदक्षिणे । त्रयस्त्रिंशच्च तत्रैव पश्चात् सैन्यमहत्तरा ।।२७७

१४००० । १६००० । ३३ ।

चतसृष्वात्मरक्षाणा दिक्षु भद्रासनानि च । उपास्यमानस्तैरिन्द्र आस्ते पूर्वमुख· सुखम् ।। २७८

८४००० । ८४००० । ८४००० । ८४००० ।

उक्त च त्रिलोकप्रज्ञप्तौ [४, १९५१–६१]—

सीहासणमइरम्म सोहम्मिदस्स भवणमज्झम्मि । तस्स य चउसु दिसासु चउपीढा लोयवालाण ।।७

सोहम्मिदासणदो दक्खिणभायम्मि कणयणिम्मिविद । सिंहासण विराजदि मणिगणखचिद पडिंदस्स।।

सिंहासणस्स पुरदो अट्ठाण होति अग्गमहिसीण । बत्तीससहस्साणि वियाण[1] पवराइ पीढाइ[2] ।।९

८ । ३२००० ।

चारो ओर लोकपाल देवोके चार आसन स्थित हैं ।। २७४।। उसीकी पूर्वोत्तर (ईशान) दिशा तथा पश्चिमोत्तर (वायव्य) दिशामे सामानिक देवोके रमणीय भद्रासन अवस्थित हैं – ईशानमे ४२०००, वायव्यमे ४२००० ।। २७५ ।। आठ (८) अग्र देवियोके भद्रासन इन्द्रके आसनके सामने है । उसके पूर्व-दक्षिण (आग्नेय) भागमे आसनसहित अभ्यन्तर परिषदके देव (१२०००) बैठते है ।।२७६।। उसकी दक्षिण दिशामे मध्यम परिषद् (१४०००) के तथा पश्चिम-दक्षिण (नैऋत्य) कोणमे बाह्य परिषद् (१६०००)के देव बैठते हैं, उसी दिशा भागमे त्रायस्त्रिंश (३३) देव विराजते हैं । सेनामहत्तर देव इन्द्रके सिहासनके पीछे स्थित रहते हैं ।। २७७ ।। आत्मरक्ष देवोके भद्रासन चारो दिशाओमे (पूर्वमे ८४०००, दक्षिणमे ८४०००, पश्चिममे ८४०००, उत्तरमे ८४०००) स्थित होते हैं । उन सब देवोसे सेवमान सौधर्म इन्द्र उपर्युक्त सिंहासनके ऊपर पूर्वाभिमुख होकर सुखपूर्वक स्थित रहता है ।। २७८ ।। त्रिलोक-प्रज्ञप्तिमे कहा भी है —

उस भवनके मध्यमे अतिशय रमणीय सौधर्म इन्द्रका सिंहासन स्थित है । उसकी चारो दिशाओमे चार आसन लोकपाल देवोके हैं ।। ७ ।। सौधर्म इन्द्रके आसनसे दक्षिण भागमे सुवर्णसे निर्मित और मणिसमूहसे खचित प्रतीन्द्रका सिंहासन विराजमान है ।।८।। मध्य सिंहासनके आगे आठ (८) अग्र महिषियोके बत्तीस हजार (३२०००) उत्तम आसन जानना

१ प्रतिषु 'पियाण' । २ प्रतिपु 'पीडाइ' ।

पवणीसाण दिसासु पासे सिंहासणस्स चुलसीदी । लक्खाणि वरपीढा[1] हवंति सामाणिय-
। ८४००००० । सुराणं ॥ १०

तस्सग्गिदिसाभागे बारसलक्खाणि पढमपरिसाए । पीढाणि होंति कंचणरइदाणि रयण-
। १२००००० । खचिदाइ ॥ ११

दक्खिणदिसाविभागे मज्झिमपरिसामराण पीढाणि । रम्माइ रायते[2] चोद्दसलक्खप्पमाणाणि ॥ १२
। १४००००० ।

णइरिदिदिसाविभाए बाहिरपरिसामराण पीढाणि । कचणरयणमयाणि सोलसलक्खाणि
। १६००००० । चिट्ठंति ॥ १३

तत्थ य दिसाविभाए तेत्तीससुराण होंति तेत्तीसा । वरपीढाणि णिरंतरपुरतमणि-
किरणणियराणि ॥ १४

सिंहासणस्स पच्छिमभागे चिट्ठंति सत्तपीढाणि । छक्कं महत्तराणं महत्तरीए हवे एक्कं ॥ १५
। ६ । १ ।

सिंहासणस्स चउसु वि दिसासु चिट्ठंति अंगरक्खाण । चउरासीदिसहस्सा पीढाणि विचित्त-
। ८४००० । रूवाणि ॥ १६

सिंहासणम्मि[3] तस्सि पुव्वमुहे पइसिदूण[4] सोहम्मो । विविहविणोदेण जुदो पेच्छइ सेवागदे देवे ॥ १७

भृङ्गा भृङ्गनिभा चान्या कज्जला कज्जलप्रभा । दक्षिणापरतस्त्वेताः पुष्करिण्यस्तथाविधाः ॥ २७९

चाहिये ॥ ९ ॥ मध्य सिंहासनके पासमे वायव्य और ईशान दिशाओमे सामानिक देवोके चौरासी लाख (८४०००००) उत्तम आसन होते है ॥ १० ॥ उसके आग्नेय दिशाभागमे प्रथम परिषद्के सुवर्णसे रचित और रत्नोसे खचित बारह लाख (१२०००००) आसन होते है ॥ ११ ॥ उसके दक्षिण दिशा विभागमे मध्यम पारिषद देवोके रमणीय चौदह लाख (१४०००००) प्रमाण आसन विराजमान है ॥ १२ ॥ नैर्ऋत्य दिशा विभागमे बाह्य पारिषद देवोके सुवर्ण एव रत्नमय सोलह लाख (१६०००००) आसन स्थित हैं ॥ १३ ॥ उसी दिशाविभागमे त्रायस्त्रिश देवोके निरतर प्रकाशमान मणियोके किरणसमूहसे व्याप्त तेतीस (३३) उत्तम आसन स्थित हैं ॥ १४ ॥ मध्य सिंहासनके पश्चिम दिशाभागमे सात (७) आसन अवस्थित है । इनमे छह (६) आसन तो छह सेनामहत्तरोके और एक (१) महत्तरीका है ॥ १५ ॥ मध्य सिंहासनकी चारो ही दिशाओमे अगरक्षक देवोके विचित्र रूपवाले चौरासी हजार (८४०००) आसन स्थित है ॥ १६ ॥ उस पूर्वाभिमुख सिंहासनपर बैठकर सौधर्म इन्द्र अनेक प्रकारके विनोदके साथ सेवामे आये हुए देवोको देखता है ॥ १७ ॥

भृगा, भृगनिभा, कज्जला और कज्जलप्रभा ये उसी प्रकारकी चार वापिकायें दक्षिण-

---

१ आ प पीटा । २ ति प कचणरयणमयाणि । ३ आ °सणविमि, प °सणविगि । ३ आ प पुमुहे वइ°, प पुम्मुहे वइ° ।

श्रीकान्ता श्रीयुता चन्द्रा तत श्रीमहितेति च । श्रीपूर्वनिलया चैव ईशानस्यापरोत्तरे ॥ २८०
नलिनोत्तरपूर्वस्यां तथा नलिनगुल्मिका। कुमुदाथ कुमुदाभा चैव सौमनसेऽपि च ॥ २८१
चूलिकोत्तरपूर्वस्या पाण्डुका विमला शिला । पाण्डुकम्बलनामा च रक्तान्या रक्तकम्बला ॥ २८२
विदिक्षु क्रमशो हैमी राजती तापनीयिका। लोहिताक्षमयी चैता अर्धचन्द्रोपमा शिला. ॥ २८३
अष्टोच्छ्रया शत दीर्घा रुन्द्रा पञ्चाशत[1] च ता. । शिले पाण्डुकरक्ताख्ये दीर्घे पूर्वापरेण च ॥ २८४
द्वे पाण्डुकम्बलाख्या च रक्तकम्बलसंज्ञिका। दक्षिणोत्तरदीर्घे ताश्चास्थिरस्थिरभूमुखा ॥ २८५
धनु पञ्चशत दीर्घं मूले तावच्च विस्तृतम्। अग्रे तदर्धविस्तार एकशोऽत्रासनत्रयम् ॥ २८६
शक्रस्य दक्षिण तेषु वीशानस्योत्तर स्मृतम्। मध्यम जिनदेवाना तानि पूर्वमुखानि च ॥ २८७
भारता. पाण्डुकाया तु रक्तायामौत्तरा जिनाः। पाण्डुकम्बलसज्ञाया पश्चाद्वैदेहका जिना ॥ २८८
पूर्ववैदेहकाश्चापि रक्तकम्बलनामनि। इन्द्रैर्बाल्येऽभिषिच्यन्ते तेषु सिंहासनेषु तु ॥ २८९

पश्चिम (नैऋत्य) कोणमे अवस्थित है ॥ २७९ ॥ श्रीकान्ता, श्रीचन्द्रा, श्रीमहिता और श्रीनिलया ये ईशान इन्द्रकी चार वापिकाये पश्चिम-उत्तर (वायव्य) दिशाभागमे स्थित हैं ॥ २८० ॥ नलिना, नलिनगुल्मिका, कुमुदा और कुमुदाभा ये चार वापिकाये उत्तर-पूर्व (ईशान) कोणमे स्थित है। इसी प्रकारसे ये वापिकाये सौमनस वनमे भी अवस्थित हैं ॥ २८१ ॥

चूलिकाके उत्तर-पूर्व (ईशान) भागमे निर्मल पाण्डुका शिला स्थित है। पाण्डुकम्बला, रक्ता और रक्तकम्बला नामकी ये तीन शिलाये इसी क्रमसे विदिशाओ (आग्नेय, नैऋत्य एव वायव्य) मे स्थित हैं। इनमे पाण्डुका शिला सुवर्णमय, पाण्डुकम्बला रजतमय, रक्ता तपनीय-मय और रक्तकम्बला लोहिताक्षमयी है। ये सब शिलाये आकारमे अर्धचन्द्रके समान है ॥ २८२–८३ ॥ वे शिलाये आठ (८) योजन ऊची, सौ (१००) योजन आयत और पचास (५०) योजन विस्तृत है। इनमे पाण्डुका और रक्ता नामकी दो शिलायें पूर्व-पश्चिम आयत तथा पाण्डुकम्बला और रक्तकम्बला नामकी दो शिलाये दक्षिण-उत्तर आयत है। वे शिलायें अस्थिर भूमि और स्थिर मुखवाली है ॥ २८४-८५ ॥ इनमेसे प्रत्येक शिलाके ऊपर तीन तीन आसन स्थित हैं। इनकी दीर्घता (ऊचाई) पाच सौ (५००) धनुष और मूलमे विस्तार भी उतना (५०० धनुष) ही है। उपरिम विस्तार उनका इससे आधा (२५० धनुष) है ॥ २८६ ॥ उनमे दक्षिण सिंहासन सौधर्म इन्द्रका, उत्तर ईशान इन्द्रका, और मध्यम जिनदेवो (तीर्थंकरो) का है। वे आसन पूर्वमुख अवस्थित हैं ॥ २८७ ॥ पाण्डुका शिलाके ऊपर भरत क्षेत्रमे उत्पन्न हुए तीर्थंकरोका, रक्ता शिलाके ऊपर औत्तर अर्थात् ऐरावत क्षेत्रमे उत्पन्न तीर्थंकरोका, पाण्डुकम्बला नामक शिलाके ऊपर अपरविदेहवर्ती तीर्थंकरोका, तथा रक्तकम्बला नामक शिलाके ऊपर पूर्व विदेहवर्ती तीर्थंकरोका अभिषेक बाल्यावस्थामे उन सिंहासनोके ऊपर इन्द्रो द्वारा किया जाता है ॥ २८८–८९ ॥

१ प पंचशत ।

दैर्घ्यं योजनपञ्चाशद्विस्तारस्तस्य चार्धकम्। सप्तत्रिंशद्द्विभागश्च चैत्यस्योच्छ्रय इष्यते ॥ २९०
३७।½।
चतुर्योजनविस्तारं द्वारमष्टोच्छ्रय पुन । तनुद्वारे च तस्यार्धमाने क्रोशावगाढकम् ॥ २९१
सौमनसेषुकारेषु मानुषोत्तरकुण्डले। वक्षारकुलशैलेषु रुचकाद्रौ च मञ्जुले ॥ २९२ ॥ त्रिकम्
अष्टौ दीर्घो द्विविस्तारश्चत्वारि च समुच्छ्रित.। गव्यूतिमवगाढश्च देवच्छन्दो मनोहरः ॥ २९३
रत्नस्तम्भधृतश्चारुसूर्यादिमिथुनोज्ज्वलः । नानापक्षिमृगाणां च युग्मैर्नित्यमलङ्कृतः ॥ २९४
अष्टोत्तरशतं गर्भगृहाणि जिनमन्दिरे। तत्र स्फटिकरत्नोद्घपीठाणि रुचिराणि तु ॥ २९५
अष्टोत्तरशतं तत्र पर्यङ्कासनमाश्रिता । जिनार्चा[1] रत्नमय्य स्युर्धनुःपञ्चशतोन्नता. ॥ २९६
द्वात्रिंशन्नागयक्षाणां मिथुनप्रतियातना[2]। चामराङ्कितहस्ता स्यु' प्रत्येक रत्ननिर्मिता' ॥ २९७
सनत्कुमारसर्वाह्णयक्षयो प्रतिबिम्बके । श्रीदेवीश्रुतदेव्योश्च प्रतिबिम्बे जिनपार्श्वयो. ॥ २९८
भृङ्गारकलशादर्शा वीजनं ध्वजचामरे। सुप्रतिष्ठातपत्रे चेत्यष्टौ सन्मङ्गलान्यपि ॥ २९९



सौमनस वन, इपुकार पर्वत, मानुषोत्तर पर्वत, कुण्डल गिरि, वक्षार पर्वत, कुलाचल और रमणीय रुचक पर्वत, इनके ऊपर स्थित जिनभवनकी लबाई पचास (५०) योजन, विस्तार उससे आधा (२५ योजन) तथा ऊचाई सैतीस योजन और एक योजनके द्वितीय भाग (३७½ यो) प्रमाण मानी जाती है। [प्रत्येक जिनभवनमे एक महाद्वार और दो क्षुद्रद्वार होते है।] उसके महाद्वारका विस्तार चार (४) योजन और ऊचाई आठ (८) योजन प्रमाण होती है। क्षुद्रद्वारोका प्रमाण महाद्वारकी अपेक्षा आधा होता है। जिनभवनका अवगाढ (नीव) एक कोस मात्र होता है॥ २९०-९२ ॥

जिनभवनका मनोहर देवच्छद आठ (८) योजन लबा, दो (२) योजन विस्तीर्ण, चार (४) योजन ऊचा तथा एक कोस अवगाहवाला होता है॥ २९३ ॥ उक्त देवच्छद रत्नमय खम्भोके आश्रित, सुन्दर सूर्यादिके युगलोसे उज्ज्वल, तथा अनेक पक्षियो एव मृगोके युगलोसे नित्य ही अलकृत होता है॥ २९४ ॥

जिनमन्दिरमे एक सौ आठ (१०८) गर्भगृह और उनमे स्फटिक एव रत्नोसे प्रशस्त रमणीय सिहासन होते है॥ २९५ ॥ वहा पर्यंक आसनके आश्रित अर्थात् पद्मासनसे स्थित और पाच सौ धनुष ऊची एक सौ आठ (१०८) रत्नमयी जिनप्रतिमाये विराजमान होती है॥ २९६॥ वहा हाथोमे चामरोको धारण करनेवाली व प्रत्येक रत्नोसे निर्मित ऐसी बत्तीस नाग-यक्षोके युगलोकी मूर्तिया होती है॥ २९७ ॥ प्रत्येक जिनबिम्बके दोनो पार्श्वभागोमे सनत्कुमार और सर्वाह्ण यक्षोके तथा श्रीदेवी और श्रुतदेवीके प्रतिबिम्ब होते है॥ २९८ ॥ भृगार, कलश, दर्पण, वीजना, ध्वजा, चामर, सुप्रतिष्ठ और छत्र, ये आठ उत्तम मगलद्रव्य है। रत्नोसे उज्ज्वल वे

---

१ प जिनार्च्या । २ ब प्रतिमातना.।

अष्टोत्तरशत तानि मङ्गलानि पृथक् पृथक् । रत्नोज्ज्वलानि राजन्ते प्रतिमोभयपार्श्वयो ॥ ३००
देवच्छन्दाग्रमेदिन्या[1] मध्ये श्रीजैनमन्दिरम् । द्वात्रिंशत्सहस्राणि कलशा सौवर्णराजता[2] ॥ ३०१
पार्श्वयोश्च महाद्वार प्रत्येकं द्विहतानि[3] च । षट्सहस्राणि राजन्ते घटाना धूपसभृताम् ॥ ३०२
महाद्वारस्य बाह्ये च पार्श्वयोरुभयो. पृथक् । चत्वारि च सहस्राणि लम्बन्ते रत्नमालिका ॥ ३०३
तद्रत्नमालिकामध्ये लम्बन्ते हेममालिका । त्रिहताष्टसहस्राणि मिलित्वा कान्तिभासुरा ॥ ३०४
। २४००० ।
कानकाः कलशा हेममालिका धूपसद्घटाः । द्विगुणाष्टसहस्राणि प्रत्येक मुखमण्डपे ॥ ३०५
मधुरक्षणक्षणारावा मुक्तारत्नविनिर्मिताः[4] । सकिंकिणीकास्तन्मध्ये राजन्ते घण्टिकाचया ॥ ३०६
क्षुल्लकद्वारयोरग्रे मणिमालादिसर्वकम् । महाद्वारोक्तसर्वेषामर्धमान प्रचक्षते ॥ ३०७
वसत्याः पृष्ठभागे च मणिमालाष्टसहस्रकम् । त्रिगुणाष्टसहस्राणि लम्बन्ते हेममालिकाः ॥ ३०८
अस्त्यग्रे जिनवासस्य मञ्जुलो मुखमण्डप[5] । ध्वजादिभिश्च संयुक्तस्तस्मात्प्रेक्षणमण्डप ॥ ३०९

मंगलद्रव्य प्रतिमाओके उभय पार्श्वभागोमे पृथक् पृथक् एक सौ आठ (१०८) विराजमान होते हैं ॥ २९९-३०० ॥

जिनमदिरके मध्यमे देवच्छदकी अग्रभूमि (वसति) मे सुवर्णमय व रजतमय वत्तीस हजार (३२०००) घट होते हैं ॥३०१ ॥ प्रत्येक महाद्वारके दोनो पार्श्वभागोमे दोसे गुणित छह हजार अर्थात् वारह हजार (१२०००) धूपसे परिपूर्ण घट (धूपघट) विराजमान होते है ॥ ३०२ ॥ महाद्वारके वाहिर दोनो पार्श्वभागोमे पृथक् पृथक् चार चार हजार रत्नमालायें लटकती रहती है ॥ ३०३ ॥ उन रत्नमालाओके वीचमे कान्तिसे देदीप्यमान सव मिलकर तीनसे गुणित आठ हजार अर्थात् चौवीस हजार (२४०००) सुवर्णमालायें लटकती रहती है ॥३०४ ॥

मुखमण्डपमे सुवर्णमय कलश, हेममाला और धूपघट इनमेसे प्रत्येक द्विगुणित आठ हजार अर्थात् सोलह हजार (१६०००) होते हैं ॥३०५॥ मुखमण्डपके मध्यमे मधुर झनझन ध्वनिसे सयुक्त, मोती व रत्नोसे निर्मित और क्षुद्र घटियोसे सहित ऐसे घटाओके समूह विराजमान होते हैं ॥ ३०६ ॥ क्षुद्रद्वारोंके आगे स्थित उपर्युक्त मणिमाला आदिका प्रमाण महाद्वारके विषयमे कही गई उन सवसे आधा आधा कहा जाता है ॥ ३०७ ॥ वसतीके पृष्ठ भागमे आठ हजार (८०००) मणिमालाये और तीनसे गुणित आठ हजार अर्थात् चौबीस हजार (२४०००) सुवर्णमालायें लटकती होती हैं ॥ ३०८ ॥

जिनालयके आगे ध्वजा आदिकोसे सयुक्त रमणीय मुखमण्डप तथा उमके आगे

१ प देवग्रछदाग्रमेदिन्या । २ प राजिता । ३ प द्विहितानि । ४ प युक्तारत्न° । ५ आ प मटप ।

आस्थानमण्डपस्तस्मात् स्तूपा नव पुर पुर । द्वादशाम्बुजवेदीभिर्जिनसिद्धार्चाभिरन्विताः[1] ।। ३१०
ततो द्वादशवेदीभिर्जिनसिद्धार्चाभिरन्वितौ। चैत्यसिद्धार्थवृक्षौ स्तस्ततोऽपि च महाध्वजा. ।।३११
तत्पुरो जिनवासः स्याच्चतुर्दिक्ष्वपि तस्य च। चतस्रो वापिका मुक्तमत्स्याद्या निर्मलाम्भसः।। ३१२
तत्पुरोभयपार्श्वे च वीथ्याः प्रासादयुग्मकम्। तत्पुरस्तोरण रम्यं तस्मात्प्रासादयोर्द्वयम्।। ३१३
सर्वाण्येतानि संवेष्ट्य हैमी वेदी मनोरमा। राजते केतुभिस्तुङ्गैश्चर्याट्टालकादिभिः।। ३१४
तत्पुरश्च चतुर्दिक्षु रत्नस्तम्भाग्रसस्थिताः। मन्दगन्धवहाधूता राजन्ते दशधा ध्वजाः ।।३१५

सिंहगजवृषभखगपतिशिखिशशिरविहंसकमलचक्राङ्का ।
अष्टोत्तरशतसख्याः पृथक् पृथक् क्षुल्लकाश्च[2] तत्प्रमिता ।। ३१६

चतुर्दिक्षु महाध्वजा ४३२०। क्षुल्लकध्वजा[3] ४६६५६०। समस्तध्वजा ४७०८८०।

प्रेक्षणमण्डप होता है ।। ३०९ ।। इस पेक्षणमण्डपके आगे आस्थानमण्डप और उसके भी आगे जिन व सिद्धोकी प्रतिमाओसे तथा वारह पद्मवेदिकाओसे सयुक्त नौ स्तूप होते हैं ।।३१०।। उनके आगे बारह वेदियो एव जिन व सिद्ध प्रतिमाओसे सयुक्त चैत्यवृक्ष और सिद्धार्थवृक्ष होते है। उनके भी आगे महाध्वजाये होती है ।। ३११ ।। उनके आगे जिनभवन और उसकी चारो ही दिशाओमे मत्स्य आदि जलजन्तुओसे रहित निर्मल जलवाली चार वापिकाये होती है ।। ३१२ ।। उनके आगे वीथीके उभय पार्श्वभागमे प्रासादयुगल, उसके आगे रमणीय तोरण और उसके आगे दो प्रासाद होते हैं।। ३१३ ।।

इन सबको वेष्टित करके स्थित मनोहर सुवर्णमय वेदी उन्नत ध्वजाओ, चर्या (मार्गों) व अट्टालयोसे सुशोभित होती है ।। ३१४ ।। उसके आगे चारो दिशाओमे रत्नमय खम्भोके अग्रभागमे स्थित और मन्द वायुसे कम्पित दस प्रकारकी ध्वजायें विराजमान होती है ।। ३१५ ।। सिह, गज, बैल, गरुड, मयूर, चन्द्र, सूर्य, हस, कमल, और चक्रसे चिह्नित वे ध्वजायें सख्यामे अलग अलग एक सौ आठ (१०८) होती है। क्षुद्र ध्वजाये भी पृथक् पृथक् उतनी मात्र (१०८-१०८) होती है ।। ३१६ ।।

सिंहादिसे अंकित उन दस प्रकारकी महाध्वजाओमेसे एक दिशागत प्रत्येक ध्वजाकी सख्या १०८ है, अत एक दिशागत दस प्रकारकी समस्त ध्वजाओकी १०८ × १० = १०८० हुईं, चारो दिशाओकी इन ध्वजाओकी सख्या १०८० × ४ = ४३२० हुई। इनमे एक एक महाध्वजाके आश्रित उपर्युक्त दस प्रकारकी क्षुद्रध्वजाएं भी प्रत्येक १०८-१०८ है, अत एक एक महाध्वजाके आश्रित क्षुद्रध्वजाओकी सख्या १० × १०८ × १०८ = ११६६४०, चारो दिशाओमे स्थित क्षुद्रध्वजाओकी समस्त सख्या ११६६४०×४=४६६५६०, महाध्वजा ४३२० + क्षुद्रध्वजा ४६६५६० = ४७०८८०, यह चारो दिशाओमे समस्त ध्वजाओकी सख्या हुई।

१ प सिद्धार्थाभिरन्विता । २ आ प क्षुल्लुकाश्च । ३ आ प क्षुल्लुक° ।

ध्वजावनिं च सवेष्ट्य हैमी वेदी विराजते। योजनप्रमितोत्तुङ्गा क्रोशार्धव्याससयुता ॥ ३१७
ततोऽशोकवनं रम्य सप्तच्छदवनं तथा। चम्पकाख्यवन चारु चूताभिख्य वन महत् ॥ ३१८
ते[1] प्रागारभ्य तिष्ठन्ति प्रादक्षिण्येन तानि च। वनप्रणिधिमध्ये च मानस्तम्भो विभाति च ॥ ३१९
सवेष्ट्य तद्वन रम्यो रत्नसालो विराजते। चतुर्गोपुरसयुक्तश्चर्याट्टालादिसयुत ॥ ३२०
योजनाना शत दीर्घं तदर्धं चापि विस्तृतम्। पञ्चसप्ततिमुद्विद्धमर्धयोजनगाधकम् ॥ ३२१
द्वारमस्याष्टविस्तार षोडशोच्छ्रयमुच्यते। तदर्धमाने द्वे चान्ये तनुद्वारे प्रकीर्तिते ॥ ३२२
एवमानानि चत्वारि भद्रसाले चतुर्दिशम्। नन्दनेऽपि च चत्वारि भाद्रसाले[2] समानि च ॥३२३
सौमनसार्धमानानि पाण्डुकायतनानि च। अर्हदायतनान्येव सर्वमेरुषु लक्षयेत् ॥ ३२४
विजयार्धेषु सर्वेषु जम्बूशाल्मलिवृक्षयो.। जिनवासप्रमाणानि भारतेन समानि च ॥ ३२५
कूटाना पर्वताना च भवनाना महीरुहाम्। वापीनामपि सर्वासा वेदिका स्थलवद्भवेत् ॥ ३२६

ध्वजाभूमिको वेष्टित करके सुवर्णमय वेदिका विराजती है। इसकी ऊचाई एक योजन और विस्तार आध कोस प्रमाण होता है ॥ ३१७ ॥ वेदिकाके आगे रमणीय अशोकवन, सप्तच्छदवन, सुन्दर चम्पक नामक वन तथा आम्र नामक वन, ये चार विशाल वन होते है ॥ ३१८ ॥ वे वन पूर्व दिशाको प्रारम्भ करके प्रदक्षिणक्रमसे स्थित होते हैं। वनके ठीक मध्यमे मानस्तम्भ सुशोभित होता है ॥ ३१९ ॥ उस वनको वेष्टित करके रमणीय रत्नमय प्राकार विराजमान होता है। वह प्राकार चार गोपुरद्वारोसे सयुक्त तथा चर्यालय एव अट्टालय आदिकोसे सयुक्त होता है ॥ ३२० ॥

सौ (१००) योजन लबा, उससे आधा (५० यो) विस्तृत, पचत्तर (७५) योजन ऊचा, और आध योजन मात्र गहराईसे सयुक्त ऐसा जो उत्कृष्ट जिनभवन होता है उसका मुख्य द्वार आठ योजन विस्तीर्ण और सोलह योजन ऊचा कहा जाता है। उसके अन्य दो लघु-द्वार मुख्य द्वारकी अपेक्षा आधे प्रमाणवाले कहे गये हैं। इस प्रकारके प्रमाणवाले चार जिनभवन भद्रसाल वनमे चारो दिशाओमे सुशोभित है। भद्रसाल वनमे स्थित इन जिनभवनोके ही समान नन्दन वनमे भी चार जिनभवन विराजमान है। सौमनस वनमे स्थित पूर्वोक्त जिनायतनोकी अपेक्षा आधे प्रमाणवाले पाण्डुक वनके जिनायतन है। इसी प्रकार सब (५) मेरुओके ऊपर स्थित जिनभवन समझना चाहिये ॥ ३२१–२४ ॥ सब विजयार्धो और जम्बू एव शाल्मलि वृक्षोके ऊपर स्थित जिनालयोके प्रमाण भरतक्षेत्रस्थ विजयार्ध आदिके ऊपर स्थित जिनालयोके समान है [आयाम १ कोस, विस्तार आधा ($\frac{1}{2}$) कोस ऊचाई पौन ($\frac{3}{4}$) कोस, मुख्य द्वारकी ऊचाई ३२० धनुष और विस्तार १६० धनुष] ॥ ३२५

कूटो, पर्वतो, भवनो, वृक्षो और सब वापियोके भी स्थलके समान वेदिका हुआ करती है ॥ ३२६

१ आ प 'ते' नास्ति। २ प भद्रसाले।

मन्दरो गिरिराजश्च मेरुश्च प्रियदर्शनः। रत्नोच्चयो लोकनाभिर्मनोरम्यः सुदर्शनः ॥ ३२७
दिशादिरुत्तमोस्तश्च[1] सूर्यावर्तः स्वयंप्रभः। वतङ्को लोकमध्यश्च सूर्यावरण एव च ॥ ३२८
एवं षोडशभिः शैलः कीर्त्यते नामभिः शुभैः। वज्रमूलो मणिशिख स्वर्णमध्यो गुणान्वितः ॥३२९
द्वादशाष्टौ चतुष्कं च मूलमध्याग्रविस्तृता। जगत्यष्टोच्छ्रया भूमिमवगाढार्धयोजनम् ॥ ३३०

।१२।८।४।

सर्वरत्नमयी मध्ये वैडूर्यशिखरोज्ज्वला। वज्रमूला च सा द्वीप परिक्षिपति सर्वत. ॥३३१
धनुःपञ्चाशतं रुन्द्रा मूलेऽग्रेऽपि च वेदिका। जाम्बूनदमयी मध्ये गव्यूतिद्वयमुद्गता ॥ ३३२
तस्या अभ्यन्तरे बाह्ये वनं हेमशिलातलम्। रम्य च वापिकाश्चित्रा प्रासादास्तत्र सन्ति च ॥३३३
शत सार्धशतं द्विशत विस्तृता धनुषा क्रमात्। हीनमध्योत्तमा वाप्यो गाढा स्व दशम च ता.॥३३४

१०।१५।२०।

पञ्चाशतं शत पञ्चसप्तति धनुषा क्रमात्। विस्तृता आयता उच्चा प्रासादास्तत्र हीनका ॥३३५
विस्तृता धनुषां षट् च द्वारो द्वादश चोद्गता.। अवगाढा पुनर्भूमि शुद्ध दण्डचतुष्टयम् ॥३३६

।१२।

वह पर्वत १ मन्दर २ गिरिराज ३ मेरु ४ प्रियदर्शन (शिलोच्चय) ५ रत्नोच्चय ६ लोकनाभि ७ मनोरम ८ सुदर्शन ९ दिशादि १० उत्तम ११ अस्त (अच्छ) १२ सूर्यावर्त १३ स्वयप्रभ १४ वतक (अवतंस) १५ लोकमध्य और १६ सूर्यावरण, इन सोलह शुभ नामोसे कहा जाता है। अनेक गुणोसे सयुक्त इस मेरु पर्वतका मूल भाग वज्रमय, शिखर मणिमय और मध्यभाग सुवर्णमय है॥ ३२७ – ३२९ ॥

क्रमसे मूलमे बारह (१२) मध्यमे आठ (८) और उपरिम भागमे चार (४) योजन विस्तृत आठ (८) योजन ऊची तथा आध ($\frac{1}{2}$) योजन भूमिगत अवगाह (नीव) से सयुक्त जो जगती (वेदिका) मध्यमे सर्वरत्नमयी होकर वैडूर्यमणिमय शिखरसे उज्ज्वल एव वज्रमय मूलभागसे सहित है वह द्वीप (जम्बूद्वीप) को चारो ओरसे वेष्टित करती है ॥ ३३० – ३३१ ॥ उसके मध्यभागमे जो सुवर्णमयी वेदिका है वह मूल व उपरिम भागमे भी पाच सौ (५००) धनुष विस्तृत तथा दो कोस ऊची है ॥३३२॥ उस वेदिकाके अभ्यन्तर और बाह्य भागमे सुवर्णमय शिलातलसे सयुक्त रमणीय वन, वापिकाये और विचित्र प्रासाद है ॥ ३३३ ॥ यहा स्थित वापियोमे हीन वापियोका विस्तार सौ (१००) धनुष, मध्यम वापियोका विस्तार डेढ सौ (१५०) धनुष और उत्तम वापियोका विस्तार दो सौ (२००) धनुष प्रमाण है। उनकी गहराई अपने विस्तारके दसवे भाग (१०, १५, २० धनुष) प्रमाण है ॥ ३३४ ॥

वहा वेदिकाके ऊपर जो हीन (जघन्य) प्रासाद स्थित है वे क्रमसे पचास (५०) धनुष विस्तृत, सौ (१००) धनुष आयत और पचत्तर (७५) धनुष ऊचे है ॥ ३३५ ॥ इनके द्वारोका विस्तार छह (६) धनुष, ऊचाई बारह (१२) धनुष, और भूमिमे अवगाह शुद्ध चार

१ ब °मोऽस्तच्च।

द्विगुणास्त्रिगुणाश्च स्युर्व्यासायामोद्गमैस्तत.[1] । मध्यमा उत्तमाश्चैषां द्विद्विद्वारं सगाधकम् ॥३३७

मध्यमप्रासादस्य वि १०० आ २०० उ १५० द्वारस्य वि १२ आ २४ उ ८

उत्कृष्टप्रासादस्य वि १५० आ ३०० उ २२५ द्वारस्य वि १८ आ ३६ उ १२ ।

मालावली[ल्ली]सभासञ्ज्ञा कदल्यासनवीक्षणा । वीणागर्भलताजाला. शिलाचित्रप्रसाधना.[2]॥३३८

उपस्थानगृहाश्चैव मोहनाख्याश्च सर्वत । गृहा रत्नमया रम्या वानान्तरसुरोषिताः ॥ ३३९

हंसक्रौञ्चमृगेन्द्राख्यैर्गजैर्मकरनामभि । प्रवालगरुडाख्यैश्च स्फटिकप्रणतोन्नतं[3] ॥ ३४०

दीर्घस्वस्तिकवृत्तैश्च पृथुलेन्द्रासनैरपि । गन्धासनैश्च रत्नाद्यैर्युक्ता देवमनोहरै ॥ ३४१

विजय वैजयन्त च जयन्तमपराजितम् । तोरणानि तु संज्ञाभि. पूर्वादिषु चतुर्दिशम् ॥ ३४२

तत्पञ्चशतविस्तार द्व्यर्धविस्तारमुच्छ्रितम् । प्रासादोऽत्र द्विविस्तारस्तोरणे चतुरुच्छ्रय ॥ ३४३

[५००] । ७५० ।

उक्त च त्रिलोकसारे [८९२] –

विजयं च वैजयंत जयतमपराजिय च पुव्वादी । दारचउक्काणुदओ[4] अडजोयणमद्धवित्थारो ॥१८

(४) धनुप मात्र है ॥ ३३६ ॥ इन हीन प्रासादोकी अपेक्षा मध्यम प्रासादोके विस्तार, आयाम और ऊचाईका प्रमाण दूना, तथा उत्तम प्रासादोके विस्तार, आयाम और ऊचाईका प्रमाण उनसे तिगुना है । उनके गहराई सहित जो दो दो द्वार हैं वे जघन्य प्रासादोके द्वारोसे प्रमाणमे दूने दूने हैं ॥ ३३७ ॥ मध्यम प्रासादका विस्तार १००, आयाम २००, उत्सेध १५०, द्वारका विस्तार १२, ऊचाई २४, अवगाढ ८। उत्कृष्ट प्रासादका भी विस्तार १५०, आयाम ३००, उत्सेध २२५, द्वारका भी विस्तार १८, ऊंचाई ३६, अवगाढ १२ धनुष ।

मालागृह, वल्लीगृह, सभागृह नामक, कदलीगृह, आसनगृह, प्रेक्षणगृह, वीणागृह, गर्भगृह, लतागृह, जालगृह (?), शिलागृह (?), चित्रगृह, प्रसाधनगृह, उपस्थानगृह और मोहनगृह, ये सब ओर स्थित रमणीय रत्नमय गृह व्यन्तर देवोसे अधिष्ठित हैं ॥ ३३८–३९ ॥ वे प्रासाद देवोके मनको हरनेवाले हस, क्रौंच व सिह नामक आसनोंसे, गज जैसे आसनोसे, मगर जैसे आसनोसे, प्रवाल एव गरुड नामक आसनोसे, स्फटिक मणिमय उन्नत आसनोसे, दीर्घ, स्वस्तिक व गोल आकारवाले आसनोसे, विशाल इन्द्रासनोसे, तथा रत्नादिनिर्मित गन्धासनोसे भी सयुक्त है ॥ ३४०–४१ ॥

पूर्वादि चारो दिशाओमे क्रमश विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित इन सञ्ज्ञाओसे युक्त चार तोरणद्वार स्थित हैं ॥३४२॥ इनमेसे प्रत्येक तोरणद्वार पाच सौ (५००) योजन विस्तृत और विस्तारसे डेढगुना अर्थात् साढे सात सौ ($५०० \times \frac{३}{२} = ७५०$) योजन ऊचा है । उसके ऊपर जो प्रासाद स्थित है उसका विस्तार दो योजन और ऊचाई चार योजन मात्र है ॥ ३४३ ॥ त्रिलोकसारमे भी कहा है—

विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित ये चार द्वार पूर्वादिक दिशाक्रमसे अवस्थित हैं। इन चारो द्वारोकी ऊचाई आठ योजन और विस्तार उससे आधा अर्थात् चार योजन है ॥१८॥

१ आ प °द्गमस्तत । २ ब प्रसादना । ३ प प्रतोन्नतं । ४ आ °णुदवो, प °णदवो ।

उक्त च त्रिलोकप्रज्ञप्तौ [४–७३] पाठान्तरम् –

विजयादिदुवाराणं पंचसया जोयणाणि वित्थारा। पत्तेक्कं उच्छेहो सत्तसयाणि च पण्णासा ॥१९

इति केचिद्वदन्ति। वि ५०० उ ७५०।

तोरणाख्या. सुरास्तेषु द्वीपस्य परिधिर्विना। तोरणैः स चतुर्भक्तस्तोरणान्तरमुच्यते ॥ ३४४

।७८५५। (?)

द्वीपान् व्यतीत्य सख्येयान्[1] जम्बूद्वीपोऽन्य इष्यते। पूर्वस्यां तस्य[2] वज्राया विजयस्य पुरं वरम्॥३४५

तद् द्वादश सहस्राणि विस्तृतं वेदिकावृतम्। चतुस्तोरणसंयुक्तं सुचिर सर्वतोऽद्भुतम्॥ ३४६

त्रिलोकप्रज्ञप्तिमे भी कहा है —

विजयादिक द्वारोमेसे प्रत्येकका विस्तार पाच सौ (५००) योजन और ऊचाई सात सौ पचास (७५०) योजन प्रमाण है॥ १९॥ इस प्रकार कोई आचार्य कहते है।

उन तोरणद्वारोके ऊपर उनके ही नामवाले अर्थात् विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित नामक देव रहते है। तोरणद्वारोसे रहित जम्बूद्वीपकी परिधिको चारसे भाजित करनेपर इन तोरणद्वारोका अन्तर कहा जाता है॥ ३४४॥

विशेषार्थ– जम्बूद्वीपकी बाह्य परिधिका प्रमाण ३१६२२७ योजनसे कुछ अधिक (३ कोस, १२८ धनुष १३ अगुल ५ जौ १ यूक १ लिक्षा आदि) है। यदि हम स्थूलतासे (कोस आदिको छोडकर) ३१६२२७ योजन मात्र परिधिको ग्रहणकर उक्त द्वारान्तरालको निकालते है तो वह इस प्रकार प्राप्त होता है—

ज द्वी की परिधि ३१६२२७ यो, लोकविभागके अनुसार प्रत्येक द्वारका विस्तार ५०० यो. है, अतः $\frac{३१६२२७-(५००\times४)}{४}=७८५५६\frac{३}{४}$ यो, यह जगतीके बाह्य भागमे उपर्युक्त विजयादिक द्वारोमे एक द्वारसे दूसरे द्वारके बीचका अन्तर प्रमाण हुआ। अभ्यन्तर भागमे जम्बूद्वीपकी परिधिका प्रमाण ३१६१५२ यो है। अत एव $\frac{३१६१५२-(५००\times४)}{४}=७८५३८$ यो; यह अभ्यन्तर भागमे उक्त द्वारोके बीच अन्तरालका प्रमाण हुआ। तिलोयपण्णत्ती (४, ४३) और त्रिलोकसार (८९२) आदिके अनुसार उक्त द्वारोमे प्रत्येक द्वारका विस्तार मात्र ४ यो. ही है। अत इस मतके अनुसार उक्त अन्तरप्रमाण इस प्रकार होगा — $\frac{३१६२२७-(४\times४)}{४}=७९०५२\frac{३}{४}$ यो, यह बाह्य अन्तर हुआ। $\frac{३१६१५२-(४\times४)}{४}=७९०३४$ यो, यह अभ्यन्तर अन्तर हुआ।

इस जम्बूद्वीपसे सख्यात द्वीपोको लाघकर एक दूसरा जम्बूद्वीप माना जाता है। उसकी पूर्व दिशामे वज्रा पृथिवीके ऊपर विजय देवका उत्तम पुर है॥ ३४५॥ वह बारह हजार (१२०००) योजन विस्तृत, वेदिकासे वेष्टित, चार तोरणोसे सयुक्त, अविनश्वर और सब ओरसे आश्चर्यजनक है॥ ३४६॥

---

१ ब सख्येया। २ प 'स्यान्तस्य।

उक्तं च त्रिलोकप्रज्ञप्तौ [५–१८१]–

उच्छेहजोयणेण पुरिओ बारससहस्सरुंदाओ। जिणभवणभूसियाओ उववणवेदीहि जुत्ताओ ॥२०

साष्टभाग त्रिकं चाग्रे मूले तत्तु चतुर्गुणम्। तत्प्राकारस्य विस्तारस्तस्य गाधोऽर्धयोजनम् ॥३४७

यो ३।१/८।१२१/२।

सप्तत्रिंशत्पुन. सार्धा हेमप्राकार उद्गम.। गोपुराणां चतुर्दिक्षु प्रत्येकं पञ्चविंशतिः ॥ ३४८

समस्तगोपुराणि १००।

एकत्रिंशत्सगव्यूतिर्व्यासो गोपुरसद्मन। उच्छ्रयो द्विगुणस्तस्माद् गाध स्यादर्धयोजनम् ॥ ३४९

३१ को १। ६२ को २।

भूमिभि सप्तदशभि प्रासादा गोपुरेषु तु। सर्वरत्नसमाकीर्णा जाम्बूनदमयाश्च ते ॥ ३५०

तत्प्राकारस्य मध्येऽस्ति रम्य राजाङ्गण तति। योजनाना द्वादशशतं रुन्द्र गव्यूतिरस्य तु ॥३५१

सहस्रार्धधनुर्व्यासा गव्यूतिद्वयमुद्गता। चतुर्गोपुरसयुक्ता वेदिका तस्य सर्वतः ॥ ३५२

राजाङ्गणस्य मध्येऽस्ति प्रासादो रत्नतोरण। द्विषष्ठियोजनं क्रोशद्वितीय तस्य चोन्नतिः ॥३५३

तदर्धविस्तृतिर्गाढो द्विक्रोशं द्वारमस्य तु। [1]चतुरष्टयोजनव्यासतुङ्गं वज्रकवाटकम् ॥ ३५४

प्रासादस्य चतुर्दिक्षु प्रासाद पृथगेकश.। प्रासादा जातजातास्ते षट्पर्यन्तचतुर्गुणा ॥ ३५५

त्रिलोकप्रज्ञप्तिमे कहा भी है –

जिनभवनोसे विभूषित और उपवन व वेदीसे सयुक्त उन नगरियोका विस्तार उत्सेध योजनसे बारह हजार (१२०००) योजन प्रमाण है ॥ २० ॥

उस पुरीके प्राकारका विस्तार उपरिम भागमे आठवे भागसे सहित तीन (३१/८) योजन तथा मूलमे उससे चौगुणा अर्थात् साढे बारह १२१/२ योजन प्रमाण है। गहराई उसकी आध योजन प्रमाण है ॥ ३४७ ॥ इस सुवर्णमय प्राकारकी ऊचाई साढे सैंतीस (३७१/२) योजन प्रमाण है। चारो दिशाओमेसे प्रत्येक दिशामे इसके पच्चीस (२५) गोपुरद्वार हैं। ये सब गोपुरद्वार चारो दिशाओमे १०० हैं ॥ ३४८ ॥ गोपुरस्थ प्रासादका विस्तार एक कोस सहित इकतीस (३११/४) योजन, ऊचाई उससे दूनी (६२१/२ यो) और गहराई आध (१/२) योजन प्रमाण है ॥ ३४९ ॥ गोपुरद्वारोके ऊपर जो सत्तरह भूमियो (खण्डो) से सयुक्त प्रासाद हैं वे सर्वरत्नोंसे व्याप्त एव सुवर्णमय हैं ॥ ३५० ॥

उस प्राकारके मध्यमे रमणीय राजाङ्गण है जिसका विस्तार बारह सौ (१२००) योजन और बाहल्य आधा कोस मात्र है ॥ ३५१ ॥ उसके सब ओर पाच सौ (५००) धनुष विस्तृत, दो कोस ऊची और चार गोपुरद्वारोसे सयुक्त वेदिका है ॥ ३५२ ॥ राजाङ्गणके मध्यमे रत्नमय तोरणसे सयुक्त एक प्रासाद स्थित है। उसकी ऊचाई बासठ योजन और दो कोस (६२१/२यो), विस्तार उससे आधा (३११/४ यो.) तथा गहराई दो (२) कोस प्रमाण है। उसका वज्रमय कपाटोसे सयुक्त द्वार चार योजन विस्तृत और आठ योजन ऊचा है ॥ ३५३-५४ ॥

उस प्रासादकी चारो दिशाओमे पृथक् पृथक् एक एक अन्य प्रासाद अवस्थित हैं। इस प्रकार उत्तरोत्तर मण्डलगत वे प्रासाद छह (छठे मण्डल) तक चौगुणे हैं ॥ ३५५ ॥

१ प चतुरस्यमो०।

प्रासादानां प्रमाणं च मण्डलं च भणाम्यतः। मुख्यप्रासाद एकश्च चत्वारः प्रथममण्डले ॥ ३५६
द्वितीये षोडश प्रोक्ताश्चतुःषष्टिस्तृतीयके। ततश्चतुर्गुणाः प्रोक्ता चतुर्थे पञ्चमे ततः ॥ ३५७
चतुर्गुणाः स्युः प्रासादाः षष्ठे तेभ्यश्चतुर्गुणाः। उत्सेधादिमितो[1] वक्ष्ये प्रासादानां यथाक्रमम् ॥ ३५८
मुख्यप्रासादमानास्ते प्रथमावरणद्वये। व्यासोत्सेधावगाढैस्तु तृतीये च चतुर्थके ॥ ३५९

यो ३१ को १। यो ६।२ को १।२

तदर्धमानाः प्रासादा. पञ्चमे षष्ठके पुनः। तदर्धमानका प्रोक्ताः केवलज्ञानलोचनैः ॥ ३६०
प्रासादानां च सर्वेषां प्रत्येकं वेदिका भवेत्। नानारत्नसमाकीर्णा विचित्रा च मनोरमा ॥३६१
मुख्यप्रासादके वेदी प्रथमे[2] मण्डलद्वये। धनुःपञ्चशतव्यासगव्यूतिद्वयमुद्गता ॥ ३६२
तृतीये च चतुर्थे च तदर्धव्यासतुङ्गता। मण्डले पञ्चमे षष्ठे तदर्धोत्सेधरुन्ध्रिका ॥ ३६३
गुणसंकलनरूपेण स्थितानि भवनानि च। चतु.शतयुत पञ्चसहस्रं चैकषष्ठिकम् ॥ ३६४
प्रासादे विजयस्यात्र सिंहासनमनुत्तरम्। सचामरं च सच्छत्र तस्मिन् पूर्वमुखोऽमरः ॥ ३६५

आगे इन प्रासादोके प्रमाण और मण्डलका कथन करते हैं– मुख्य प्रासाद एक है। आगे प्रथम मण्डलमे चार (४), द्वितीयमे सोलह (१६), तृतीयमें चौसठ (६४), चतुर्थ मण्डलमे इनसे चौगुणे (२५६), पचम मण्डलमे उनसे चौगुणे (२५६ × ४ = १०२४) तथा छठे मण्डलमें उनसे भी चौगुणे (१०२४ × ४ = ४०९६) प्रासाद हैं। आगे इन प्रासादोके उत्सेध आदिका कथन यथाक्रमसे करते है ॥ ३५६–३५८ ॥

प्रथम दो मण्डलोमे जो प्रासाद स्थित हैं उनके विस्तारादिका प्रमाण मुख्य प्रासादके समान (विस्तार ३१$\frac{1}{4}$ यो., ऊचाई यो ६२$\frac{1}{2}$, अवगाह को २) है। तृतीय और चतुर्थ मण्डलके प्रासाद विस्तार, उत्सेध और अवगाढमे उपर्युक्त प्रासादोकी अपेक्षा आधे प्रमाणवाले है। इनसे आधे प्रमाणवाले पाचवे और छठे मण्डलके प्रासाद हैं, ऐसा केवलज्ञानियोके द्वारा निर्दिष्ट किया गया है ॥ ३५९–६० ॥

इन सब प्रासादोमेसे प्रत्येक प्रासादके नाना रत्नोसे व्याप्त एक एक विचित्र मनोहर वेदिका है ॥३६१॥ मुख्य प्रासाद तथा प्रथम दो मण्डलोके प्रासादोकी वेदी पाच सौ (५००) धनुष विस्तृत और दो कोस ऊची है ॥३६२॥ तृतीय और चतुर्थ मण्डलके प्रासादोकी वेदीका विस्तार व ऊचाई उससे आधी है। इससे भी आधे विस्तार व ऊचाईसे सयुक्त पांचवे और छठे मण्डलके प्रासादोकी वेदी है ॥३६३॥

गुणसकलन रूपसे अर्थात् उत्तरोत्तर चौगुणे चौगुणे क्रमसे स्थित वे भवन पाच हजार चार सौ इकसठ है— १ + ४ + १६ + ६४ + २५६ + १०२४ + ४०९६ = ५४६१ ॥३६४॥

यहाँ विजयदेवके प्रासादमे चामरो और छत्रसे सहित विजयदेवका अनुपम सिंहासन

१ प उत्सेदादि। २ आ प मुख्यप्रासादके मानास्ते प्रथमावरणद्वये वेदी प्रथमे।

उत्तरस्यां सहस्राणि षट् सामानिकसंज्ञिनाम् । विदिशोश्च पुरा षट् स्युरग्रदेव्यो हि सासनाः[1] ॥३६६
आसन्नाष्टौ सहस्राणि परिषत्पूर्वदक्षिणा । दश मध्यमिका वेद्या दक्षिणस्या तु सा दिशि ॥३६७
द्वादशैव सहस्राणि वाह्या सापरदक्षिणा । आसनेष्वपरस्या तु सप्त सैन्यमहत्तरा ॥ ३६८
अष्टादश सहस्राणि यात्मरक्षाश्चतुर्दिशम् । तासु दिक्षु च तावन्ति तेषा भद्रासनानि च ॥ ३६९
अष्टादश सहस्राणि देव्यस्तत्परिवारिकाः । विजय. सेव्यमानस्तै.[2] पल्य जीवति साधिकम् ॥ ३७०
विजयादुत्तरस्या च सुधर्मा नामत. सभा । सार्धद्वादशदीर्घा सा तदर्धं चापि विस्तृता ॥ ३७१
योजनानि नवोद्विद्धा गाढा गव्यूतिमीरिता । उत्तरस्या ततश्चापि तावन्मानो जिनालय ॥ ३७२
अपरोत्तरतस्तस्मादुपपातसभा शुभा । प्रासादात्प्रथमात्पूर्वा त्वभिषेकसभा ततः ॥ ३७३
अलकारसभा पूर्वा ततो मन्त्रसभा पुरः । सुधर्मासममानाश्च सभा सर्वप्रविस्तरैः ॥ ३७४
पञ्च चैव सहस्राणि चत्वार्येव शतानि च । सप्तषष्टिश्च ते सर्वे प्रासादा विजयालये ॥ ३७५

स्थित है । वह उसके ऊपर पूर्वाभिमुख होकर विराजमान होता है ॥३६५॥ इसके उत्तर तथा दो विदिशाओ (वायव्य और ईशान) मे सामानिक सज्ञावाले देवोके छह हजार (६०००) सिंहासन हैं । मुख्य सिंहासनके पूर्वमे अपने अपने आसन सहित छह अग्र देविया स्थित रहती हैं ॥३६६॥ उसके पूर्व-दक्षिण (आग्नेय) कोणमे अभ्यन्तर परिषदके आठ हजार (८०००), दक्षिण दिशामे मध्यम परिषदके दस हजार (१००००), और दक्षिण-पश्चिम (नैर्ऋत्य) कोणमे वाह्य परिषदके बारह हजार (१२०००) सिंहासन स्थित है। मुख्य सिंहासनकी पश्चिम दिशामे स्थित आसनोके ऊपर सात सेनामहत्तर विराजते हैं । मुख्य सिंहासनकी चारो दिशाओमे अठारह हजार (१८०००) आत्मरक्ष देव विराजते है, उनके भद्रासन उन्ही दिशाओमे उतने (१८०००) ही होते है ॥ ३६७–६९ ॥ उसकी पारिवारिक देविया अठारह हजार (१८०००) होती हैं । उपर्युक्त उन सब देवोसे उपास्यमान विजय देव साधिक एक पल्य तक जीवित रहता है ॥ ३७० ॥

विजयदेवके प्रासादसे उत्तर दिशामे साढे बारह (१२½) योजन लबी और उससे आधी (६¼ यो) विस्तृत सुधर्मा नामकी सभा है ॥ ३७१ ॥ उस सुधर्मा सभाकी ऊचाई नौ योजन और गहराई एक कोस प्रमाण कही गई है । इसके उत्तरमे उतने ही प्रमाणवाला एक जिनालय है ॥ ३७२ ॥ उसके पश्चिमोत्तर (वायव्य) कोणमे उत्तम उपपादसभा है । प्रथम प्रासादके पूर्वमे अभिषेकसभा, उसके पूर्वमे अलकारसभा, और उसके आगे मत्रसभा स्थित है । ये सब सभाभवन विस्तारमे सुधर्मा सभाके समान प्रमाणवाले हैं ॥ ३७३–७४ ॥ विजयभवनके आश्रित वे सब प्रासाद सख्यामे पाच हजार चार सौ सडसठ (५४६७) हैं ॥३७५॥

---

१ प धासना । २ ब विजयस्यैवमानस्तैः ।

राजाङ्गणस्य बाह्ये च परिवारसुधाशिनाम्[1]। स्फुरद्ध्वजपताकाः[2] स्यु प्रासादा मणितोरणाः ।।
तन्नगराद्बहिर्गत्वा पञ्चविंशतियोजनम्। अशोकं सप्तपर्णं च चम्पकं चूतनामकम् ।। ३७७
पूर्वाद्यानि च चत्वारि वनान्येव तु मानत.। द्वादशैव सहस्राणि योजनानां तदायतिः ।। ३७८
विस्तारश्च सहस्रार्धं तन्मध्येऽशोकपादपः। जम्बूपीठार्धमाने च जम्बूमानार्धवान् स्थित. ।।३७९
चतस्र प्रतिमास्तस्य पादपस्य चतुर्दिशम्। रत्नमय्यो जिनेन्द्राणामशोकेनातिपूजिताः ।। ३८०
तस्मात्पूर्वोत्तरस्यां तु वशोकाख्यपुरस्य च। प्रासादो विजयस्येव मानतोऽशोक सेवितः ।। ३८१
विजयेन समा शेषा वैजयन्तादयस्त्रय। परिवारालयायुर्भिः स्वदिक्षु नगराण्यपि ।। ३८२

वर्णा यथा पञ्च सुरेन्द्रचापे यथा रसो वा लवण समुद्रे।
औष्ण्य रवेश्चन्द्रमसश्च शैत्यं तदाकृतिश्चाकृतका भवन्ति ।।३८३
प्रासादशैलद्रुमसागराद्याः [3]वर्णस्वभावाकृतिमानभेदैः।
अकृत्रिमा वैस्रसिकास्तथैव लोकानुभावान्नियता हि भावाः ।। ३८४

।। इति लोकविभागे जम्बूद्वीपविभागो नाम प्रथम प्रकरणं समाप्तम् ।। १ ।।

विशेषार्थ— मण्डलाकारसे स्थित प्रासादोकी सख्या पीछे ५४६१ वतलायी जा चुकी है। इसमे (१) सुधर्मा सभा, (२) जिनालय, (३) उपपादसभा, (४) अभिषेकसभा, (५) अलंकारसभा और (६) मंत्रसभा, इन ६ भवनोकी सख्याके और मिला देनेपर सब भवनोका प्रमाण ५४६७ हो जाता है।

राजागणके वाह्य भागमे भी परिवार देवोके ध्वजा-पताकाओसे प्रकाशमान और मणिमय तोरणोसे सयुक्त प्रासाद है ।। ३७६ ।। उस नगरके बाह्यमे पच्चीस (२५) योजन जाकर अशोक, सप्तपर्ण, चम्पक और आम्र नामक चार वन क्रमश पूर्वादिक दिशाओमे स्थित है। ये प्रमाणसे वारह हजार (१२०००) योजन आयत और पाच सौ (५००) योजन विस्तृत है। उसके मध्यमे जम्बूवृक्षकी पीठसे आधे प्रमाणवाली पीठके ऊपर जम्बूवृक्षकी ऊचाई आदिके प्रमाणसे आधे प्रमाणवाला अशोकवृक्ष स्थित है ।। ३७७–७९ ।। उस अशोक वृक्षकी चारो दिशाओमे अशोक नामक देवसे अतिशय पूजित रत्नमयी चार जिनेन्द्रप्रतिमाये विराजमान है ।। ३८० ।। अशोक वृक्षकी पूर्वोत्तर (ईशान) दिशामे अशोक नामक देवका प्रासाद है। अशोक देवसे सेवित वह प्रासाद प्रमाणमे विजय देवके प्रासादके समान है ।। ३८१ ।।

शेष जो वैजयन्त आदि तीन देव हैं वे परिवार, भवन और आयुमे विजय देवके समान हैं। उनके नगर भी अपनी अपनी दिशाओमे स्थित हैं ।। ३८२ ।।

जिस प्रकार इन्द्रधनुषमे पाच वर्ण, समुद्रमे खारा रस, सूर्यमे उष्णता और चन्द्रमामे शीतलता तथा उनकी आकृति ये सब अकृत्रिम (स्वाभाविक) होते हैं, उसी प्रकार प्रासाद, पर्वत, वृक्ष और समुद्र आदि पदार्थ वर्ण, स्वभाव, आकृति एव प्रमाण आदि भेदोसे अकृत्रिम या स्वाभाविक होते हैं। ठीक ही है— लोकके प्रभावसे पदार्थ नियत स्वभाववाले होते है ।। ३८३–८४ ।।

इस प्रकार लोकविभागमे जम्बूद्वीपविभाग नामक प्रथम प्रकरण समाप्त हुआ ।।१।।

---

१ ब सुदाशिनाम्। २ प ध्वजा°। ३ प वर्णास्व°।

[द्वितीयो विभागः]

क्षुधातृषादिभिर्दोषैर्वर्जितान् जिनगपुङ्गवान् । नत्वा वाब्ध्यादिविस्तार व्याख्यास्यामि समासत. ॥१
द्वीपाद्द्विगुणविस्तारः समुद्रो लवणोदक. । द्वीपमेनं परिक्षिप्य चक्रे नेमिरिव स्थित· ॥ २
दशैवेष सहस्राणि[1] मूलेऽग्रेऽपि पृथुर्मत । सहस्रमवगाढो गामूर्ध्वं[2] स्यात् षोडशोच्छ्रितः ॥ ३

उक्तं च त्रिलोकप्रज्ञप्तौ [४–२४००]–

चित्तोपरिमतलादो कूडायारेण उवरि वारिणिही । सत्तसयजोयणाइ उदएण णहम्मि[3] चिट्ठेदि ॥१
देशोना नव च त्रीणि एकमेकं तथाष्टकम् । पञ्चैक च परिक्षेप स्थानकैर्लवणोदधे ॥ ४
प्रदेशान् पञ्चनवर्ति गत्वा देशमधोगतः । एवमङ्गुलहस्तादीन् जगत्या योजनानि च ॥ ५
पञ्चाग्रां नवर्ति देशान् गत्वा देशांश्च षोडश । उच्छ्रितोऽङ्गुलखण्डाद्यानेवमेव समुच्छ्रित ॥ ६

क्षुधा और तृषा आदि दोषोसे रहित जिनेन्द्रोको नमस्कार करके मैं सक्षेपसे सब समुद्रोमे आदिभूत लवणसमुद्रके विस्तार आदिका वर्णन करूगा ॥ १ ॥

जम्बूद्वीपकी अपेक्षा दुगुणे विस्तारवाला लवणोदक समुद्र इस द्वीपको घेरकर चक्र (पहिया) मे नेमिके समान स्थित है । अर्थात् जैसे नेमि (हाल) चक्रको सब ओरसे वेष्टित करती है वैसे ही लवण समुद्र जम्बूद्वीपको सब ओरसे वेष्टित करके स्थित है ॥२॥ वह मूलमे और ऊपर भी दस ही हजार (१००००) योजन पृथु (विस्तृत) माना गया है। इसकी गहराई पृथिवीके ऊपर एक हजार (१०००) योजन और [सम जलभागसे] ऊपर ऊचाई सोलह योजन प्रमाण है ॥३॥ त्रिलोकप्रज्ञप्तिमे कहा भी है–

यह समुद्र चित्रा पृथिवीके उपरिम तलसे ऊपर आकाशमे सात सौ (७००) योजन ऊचा होकर कूटके आकारसे स्थित है ॥ १ ॥

लवण समुद्रकी परिधि कुछ कम नौ, तीन, एक, एक, आठ, पाच और एक (१५८११३९) इन स्थानको (अको) के क्रमसे पन्द्रह लाख इक्यासी हजार एक सौ उनतालीस योजन प्रमाण है ॥ ४ ॥ लवण समुद्र जगतीसे पचानवै प्रदेशोकी हानि करके एक प्रदेश नीचे गया है। इसी प्रकारसे अगुल, हस्तादिक और योजनोकी भी हानि समझना चाहिये ॥ ५ ॥ वह पचानवै प्रदेशोकी हानि करके सोलह प्रदेश ऊपर गया है । इसी प्रकारसे ही ऊपर अगुल और धनुष आदिकी भी हानि जानना चाहिये ॥ ६ ॥

विशेषार्थ—लवण समुद्रका विस्तार समभूमिपर २००००० योजन है। यह विस्तार क्रमसे उत्तरोत्तर हीन होकर १००० योजन नीचे जानेपर १०००० यो मात्र रह गया है। इसी क्रमसे उत्तरोत्तर हीन होकर वह १६००० योजन ऊपर भी जाकर १०००० यो मात्र रह गया है। इस विस्तारमे किस क्रमसे हानि हुई है, यह यहा निर्दिष्ट किया है। हानि-वृद्धिके प्रमाणको जाननेके

---

१ प दशवेश' । २ आ प गादूर्ध्वं । ३ आ प उदयेण ण ण हम्मि ।

एकादश सहस्राणि यमवास्यां गतोच्छ्रयः । ततः पञ्च सहस्राणि पौर्णिमास्यां[1] विवर्धते ॥ ७
पञ्चानां तु सहस्राणां भागः पञ्चदशो हि य । स भवेत् क्रमशो वृद्धिः शुक्लपक्षे दिने दिने ॥ ८
अधस्तात्खलु संक्षिप्तो द्रोणीवोर्ध्वं विशालकः । भूमौ व्योम्नि विपर्यासः समुद्रो नौसमो द्विधा ॥ ९

लिये साधारणत यह नियम है— भूमिमेसे मुखको कम करके शेषमे ऊचाईका भाग देनेपर जो लब्ध हो उतना भूमिकी ओरसे हानि और मुखकी ओरसे वृद्धिका प्रमाण होता है । यहा भूमिका प्रमाण २०००००, मुखका प्रमाण १००००और ऊचाईका प्रमाण १००० यो है । अतएव उक्त प्रक्रियाके करनेपर प्रकृत हानि-वृद्धिका प्रमाण इस प्रकार आता है– $\frac{200000 - 10000}{1000} = \frac{190}{1}$ यो , यह दोनो तटोकी ओरसे होनेवाली हानि-वृद्धिका प्रमाण है । इसे आधा कर देनेपर एक ओरसे होनेवाली हानि-वृद्धिका प्रमाण इतना होता है – $\frac{190}{2} = ९५$ यो । इसका अभिप्राय यह हुआ कि लवणसमुद्रके सम जलतल भागसे १ योजन नीचे जानेपर उसके विस्तारमे क्रमश' एक ओरसे ९५ यो की हानि हो जाती है। इसी क्रमसे एक प्रदेश नीचे जाकर ९५ प्रदेशोकी, १ अगुल नीचे जाकर ९५ अगुलोकी, तथा १ हाथ आदि नीचे जाकर ९५ हाथो आदिकी भी हानि समझ लेना चाहिये । इस हानिप्रमाणको लेकर जितने योजन नीचेका विस्तार जानना अभीष्ट हो उतने योजनोसे उसे गुणित करके जो प्राप्त हो उसे भूमिके प्रमाणमेसे घटा देनेपर अभीष्ट विस्तारका प्रमाण प्राप्त हो जाता है —–

उदाहरण—यदि हमे १२५ यो नीचे जाकर उक्त विस्तारका प्रमाण जानना अभीष्ट है तो वह उक्त प्रक्रियाके अनुसार इस प्रकार आ जाता है— $\frac{95}{1} \times १२५ = ११८७५$ यो । जलशिखाके उपरिम विस्तारमे हानि-वृद्धिका प्रमाण इस प्रकार होगा– भूमि २०००००, मुख १००००, ऊचाई १६०००, $\frac{200000 - 10000}{16000} = \frac{190}{16}$ यो । एक ओरसे होनेवाली हानि-वृद्धि $\frac{190}{32}$ यो । इसके आश्रयसे अभीष्ट ऊचाईके ऊपर पूर्वोक्त क्रमके अनुसार ही विस्तारकी हानिको ले आना चाहिये ।

अमावास्याके दिन उक्त जलशिखाकी ऊचाई ग्यारह हजार (११०००) योजन होती है । पूर्णिमाके दिन वह उससे पाच हजार योजन बढ जाती है (११००० + ५००० = १६०००) ॥ ७ ॥ पाच हजारका जो पन्द्रहवा भाग है ($\frac{16000 - 11000}{15} = \frac{5000}{15}$) उतनी शुक्ल पक्षमे क्रमश प्रतिदिन उसकी ऊचाईमे वृद्धि होती है ॥ ८ ॥ समुद्र भूमिमे नीचे नावके समान सक्षिप्त होकर क्रमसे ऊपर विस्तीर्ण हुआ है । आकाशमे उसकी अवस्था इससे विपरीत है, अर्थात् वह नीचे विस्तीर्ण होकर क्रमसे ऊपर सकुचित हुआ है । इस प्रकारसे वह एक नावके ऊपर विपरीत क्रमसे रखी गई दूसरी नावके समान है ॥ ९ ॥ कहा भी है—

---

१ ब पौर्णमास्या ।

उक्त च [.]

सक्षिप्तोऽम्बुधिरूर्ध्वाधश्चित्राप्रणिधौ विशालकः । अधोमुखबहित्रं वा बहित्रोपरिसस्थितम् ॥ २

मध्ये तस्य समुद्रस्य पूर्वादौ वडवामुखम् । कदम्बक च पातालमुत्तर यूपकेसरम् ॥ १०

मूले मुखे च विस्तार सहस्राणि दशोदित. । गाधमध्यमविस्तारौ मूलाद्दशगुणौ स्मृतौ ॥ ११

बाहल्यं तु सहस्रार्धं कुड्य वज्रमयं च तत् । तान्यरञ्जनतुल्यानि भाषितानि जिनोत्तमै. ॥ १२

पातालाना तृतीये तु ऊर्ध्वे भागे सदा जलम् । मूले वायुर्घनो नित्य क्रमान्मध्ये जलानिलौ[1] ॥१३

तृतीयभाग ३३३३३ । $\frac{1}{3}$ ।

पौर्णिमास्या[2] भवेद्वायु तस्य पञ्चदशक्रमात् । पूर्यते सलिलैर्भाग' कृष्णपक्षे दिने दिने ॥ १४

२२२२ । $\frac{2}{3}$ ।

विदिक्ष्वपि च चत्वारि समपातालकानि हि । मुखे मूले सहस्रं च मध्ये दशगुण तत ॥ १५

सहस्राणि दशागाढ पञ्चाशत्कुड्यरुन्द्रता[3] । तेषा तृतीयभागेषु ३३३३।$\frac{1}{3}$। पूर्ववज्जलमारुतौ ॥१६

प्रतिदिन जलवायुहानि-वृद्धि २२२ । $\frac{2}{3}$ ।

समुद्र ऊपर नीचे सक्षिप्त और चित्रा पृथिवीके प्रणिधि भागमे विस्तीर्ण है। इसलिये उसका आकार एक नावके ऊपर स्थित अधोमुख दूसरी नावके समान है ॥ २ ॥

उस समुद्रके मध्य भागमे पूर्वादिक दिशाओके क्रमसे वडवामुख, कदम्बक, पाताल, और उत्तरमे यूपकेसर नामक चार पाताल हैं ॥१०॥ इन पातालोका विस्तार मूलमे और मुखमे दस हजार योजन प्रमाण कहा गया है। इनकी गहराई और मध्यविस्तार मूलविस्तारकी अपेक्षा दसगुणा ($१०००० \times १० = १०००००$ यो) माना गया है ॥ ११ ॥ पातालोकी वज्रमय भित्तिका बाहल्य पाच सौ (५००) योजन प्रमाण है। वे पाताल जिनेन्द्रोके द्वारा अरंजन (घटविशेष)के समान कहे गये है ॥१२॥ पातालोके उपरिम त्रिभाग(३३३३३$\frac{1}{3}$) मे सदा जल रहता है। उनके मूल भागमे नित्य घना वायु और मध्यमे क्रमसे जल व वायु दोनो रहते हैं ॥ १३ ॥ उनके मध्यम भागमे पन्द्रह दिनोके क्रमसे पौर्णमासीके दिन केवल वायु रहता है, वही मध्यम त्रिभाग कृष्ण पक्षमे प्रतिदिन क्रमश जलसे पूर्ण किया जाता है ॥ १४ ॥ यहा प्रतिदिन होनेवाली जल-वायुकी हानि-वृद्धिका प्रमाण २२२२$\frac{2}{3}$ यो है।

विदिशाओमे भी इनके समान चार मध्यम पाताल स्थित हैं। उनका विस्तार मुख और मूल भागमे एक हजार (१०००) योजन तथा मध्यमे उससे दसगुणा (१००००) है ॥ १५ ॥ उनकी गहराई दस हजार (१००००) योजन तथा भित्तिका विस्तार पचास (५०) योजन है। उनके तीन तृतीय भागो (३३३३$\frac{1}{3}$ यो)मे पूर्व पातालोके समान जल, वायु और जल-वायु स्थित है ॥ १६ ॥ प्रतिदिन होनेवाली जल-वायुकी हानि-वृद्धिका प्रमाण २२२$\frac{2}{3}$ यो है।

१ प जलानिधौ । २ आ पौर्णमास्या ब पूर्णमास्या । ३ ब रुध्रता ।

अष्टास्वन्तरदिक्ष्वन्यत्तत. क्षुल्लसहस्रकम् । दशभागसम मानैस्त्रिभागैरपि पूर्ववत् ॥ १७

त्रिभागः ३३३ । । प्रतिदिन जल-वायुहानि-वृद्धि २२।$\frac{2}{9}$ ।

नगराणा सहस्र तु द्विचत्वारिंशताहत । [1]वेलंधरभुजगानामन्तर्भागाभिरक्षिणाम् ॥ १८

नगराणा सहस्र तु वष्टाविंशतिताडितम् । अग्रोदक धारयतां नागानामिति वर्ण्यते ॥ १९

नगराणां सहस्रं [तु] द्विसप्ततिसमाहतम् । रक्षितॄणा बहिर्भागं समुद्रस्येति भाष्यते ॥ २०

त्रिलोकसारे उक्त च द्वयम् [९०३–९०४]

[1]वेलधरभुजगविमाणाण सहस्साणि बाहिरे सिहरे । अन्ते बाहत्तरि अडवीसं बादालय लवणे ॥ ३

७२०००।२८०००।४२०००।

विशेषार्थ— मध्यम पातालोकी गहराईका प्रमाण १०००० यो है, अत उसके एक तृतीय भागका प्रमाण हुआ $\frac{१००००}{३}$ = ३३३३$\frac{1}{3}$ यो । अब यदि मध्यम त्रिभागके भीतर १५ दिनोमे इतनी (३३३३$\frac{1}{3}$ यो) जल व वायुकी हानि-वृद्धि होती है तो वह १ दिनमे कितनी होगी, इस प्रकार ३३३३$\frac{1}{3}$ मे १५ का भाग देनेपर १ दिनमे होनेवाली हानि-वृद्धिका उपर्युक्त प्रमाण प्राप्त हो जाता है। यथा— ३३३३$\frac{1}{3}$ = $\frac{१००००}{३}$, १५ = $\frac{४५}{३}$, $\frac{१००००}{३}$ – $\frac{४५}{३}$ = २२२$\frac{2}{9}$ यो । इसी प्रकार उत्तम पातालो और जघन्य पातालोके मध्यम त्रिभागमे भी प्रतिदिन होनेवाली जल-वायुकी हानि-वृद्धिका प्रमाण ले आना चाहिये ।

उपर्युक्त उत्तम और मध्यम पातालोके मध्यमे आठ अन्तर दिशाओमे दूसरे एक हजार (१०००) जघन्य पाताल स्थित है। इनके विस्तार आदिका प्रमाण मध्यम पातालोकी अपेक्षा दसवे भाग मात्र है। इनके भीतर भी तीन तीन त्रिभागो और उनमे स्थित जल-वायुके क्रमको पूर्ववत् ही समझना चाहिये ॥ १७ ॥ त्रिभाग ३३३$\frac{1}{3}$ यो , प्रतिदिन जल-वायुकी हानि-वृद्धि २२$\frac{2}{9}$ यो ।

अभ्यन्तर भागका रक्षण करनेवाले (जबूद्वीपकी ओर प्रविष्ट होनेवाली वेलाकी रक्षा करनेवाले) वेलधर नागकुमार देवोके नगर ब्यालीससे गुणित एक हजार अर्थात् ब्यालीस हजार (४२०००) प्रमाण हैं ॥ १८ ॥ अग्रोदक (जलशिखा) को धारण करनेवाले नागकुमार देवोके नगर अट्ठाईससे गुणित एक हजार अर्थात् अट्ठाईस हजार (२८०००) कहे जाते है ॥ १९ ॥ समुद्रके बाह्य भाग (धातकीखण्ड द्वीपकी ओरकी वेला) की रक्षा करनेवाले नागकुमार देवोके नगर बहत्तर हजार (७२०००) प्रमाण है, ऐसा कहा जाता है ॥ २० ॥ त्रिलोकसारमे इस सम्बन्धमे दो (९०३ – ९०४) गाथाये भी कही गई हैं —

लवण समुद्रके बाह्य भागमे, शिखरपर और अभ्यन्तर भागमे क्रमसे वेलधर नागकुमार देवोके बहत्तर हजार (७२०००), अट्ठाईस हजार (२८०००) और ब्यालीस (४२०००)

१ ब वेलदर° ।

दुतडादो सत्तसय दुकोसअहिय च होइ सिहरादो ।
णयराणि हु गयणतले जोयणदसगुणसहस्साणि[1] ॥ ४ ॥
७०० क्रो २ । १०००० ।

द्वीपमेन द्वितीय चाऽऽश्रित्य नगराणि तु । मध्येऽपि च समुद्रस्य समुद्र साधु रक्षताम् ॥ २१
द्वौ द्वौ च पर्वतौ प्रोक्तौ पातालाना च पार्श्वयो । अन्तराणि च तेषा तु शृणु नामानि चैव तु ॥२२
एक शतसहस्र च सहस्राणि च षोडश । योजनस्य यथातत्त्व पर्वतान्तरमुच्यते ॥ २३
द्विचत्वारिंशतं गत्वा सहस्राणा तटात्परम् । पुरस्तात्सागरे तुल्यौ वडवामुखतो गिरी ॥ २४
उत्तर. कौस्तुभो नाम्ना कौस्तुभासस्तु दक्षिण । सहस्रमुद्गतौ शुभ्रावर्धकुम्भसमाकृती ॥ २५
राजतौ वज्रमूलौ च नानारत्नमयाग्रकौ । तन्नामानौ सुरावत्र विजयस्येव[2] वर्णना ॥ २६
उदकश्चोदवासश्च दक्षिणस्या च पर्वतौ । शिवश्च शिवदेवश्च तत्र च व्यन्तरामरौ ॥ २७
शखोऽथ च महाशख शखवर्णो च पश्चिमौ । उदकश्चोदवासश्च नामतोऽत्र सुरावपि ॥ २८

विमान स्थित है ॥ ३ ॥ ये नगर दोनो तटोसे सात सौ (७००) योजन जाकर तथा शिखरसे दो कोस अधिक सात सौ (७००$\frac{1}{2}$) योजन जाकर आकाशतलमे स्थित हैं। इनका विस्तार दस हजार (१००००) योजन प्रमाण है ॥ ४ ॥

वे नगर इस जबूद्वीपका तथा द्वितीय (धातकीखण्ड) द्वीपका भी आश्रय करके स्थित है । समुद्रके मध्यमे भी वे नगर अवस्थित हैं। इनमे रहनेवाले नागकुमार समुद्रकी भली भाति रक्षा करते है ॥ २१ ॥

पातालोके दोनो पार्श्वभागोमे जो दो दो पर्वत कहे गये है उनके अन्तरो और नामोको सुनिये ॥ २२ ॥ इन पर्वतोका अन्तर आगमानुसार एक लाख सोलह हजार (११६०००)योजन प्रमाण कहा जाता है ॥ २३ ॥ तटसे ब्यालीस हजार (४२०००) योजन आगे समुद्रमे जाकर वडवामुख पातालके उत्तर भागमे कौस्तुभ और उसके दक्षिण भागमे कौस्तुभास नामक दो समान विस्तारवाले पर्वत स्थित है । ये दोनो रजतमय धवल पर्वत एक हजार (१०००) योजन ऊंचे, अर्ध घटके समान आकारवाले, वज्रमय मूलभागसे सयुक्त तथा नाना रत्नमय अग्रभागसे सुशोभित है। इनके ऊपर जो उन्हीके समान नामवाले (कौस्तुभ-कौस्तुभास) दो देव रहते हैं उनका वर्णन विजय देवके समान है ॥ २४–२६ ॥

दक्षिणमे भी उदक और उदवास नामके दो पर्वत स्थित हैं। उनके ऊपर शिव और शिवदेव नामके दो व्यन्तर देव रहते हैं ॥२७॥ शखके समान वर्णवाले शख और महाशख नामके दो पर्वत पश्चिमकी ओर स्थित है। इनके ऊपर भी उदक और उदवास नामके दो देव रहते है॥२८॥

१ मुद्रितत्रिलोकसारे तु ' गुणसहस्सवासाणि ' पाठोऽस्ति । २ प विजयास्येव ।

दकश्च दकवासश्चोत्तरस्यां गिरी तयोः। लोहितो लोहिताङकश्च कौस्तुभेन समाश्च ते ॥ २९

उक्त च त्रिलोकप्रज्ञप्तौ [४, २४५७]–

बादाल सहस्साणि जोयणया जलहिदोतडाहितो ।

पविसिय खिदिविवराण पासेसुं होंति अट्ठगिरी[1] ॥ ५ ॥

आयुर्वेश्मपरीवारैर्विजयेन समा इमे। स्वस्या दिशि च जम्ब्वाख्ये तेषां स्युर्नगराणि च ॥ ३०

उक्त च त्रिलोकप्रज्ञप्तौ [४, २४७०]–

एदाण देवाण णयरीओ अवरजबुदीवम्मि। होति णियणियदिसाए अवराजिदणयरसारिच्छा ॥ ६

द्वादशैव सहस्राणि तटाद् गत्वापरोत्तरे। सहस्र द्वादशाभ्यस्त विस्तृतः सर्वत. समः ॥ ३१

नामतो गौतमो द्वीपो देवस्तस्य च गौतमः। स च कौस्तुभवद्वेद्य परिवारायुरादिभिः ॥ ३२

प्राच्यां दिशि समुद्रेऽस्मिन् द्वैप्या एकोरुका नरा । अपाच्या सविषाणाश्च प्रतीच्यां च सवालका॰ ॥

अभाषका उदीच्या च विदिक्षु शशकर्णका॰[2] । एकोरुकनराणा च वामदक्षिणभागयो॰ ॥ ३४

क्रमेण हयकर्णाश्च सिहवक्त्रा कुमानुषा.। पूर्वापरे विषाणिभ्य. शष्कुलीकर्णका नरा ॥ ३५

दक और दकवास नामके दो पर्वत उत्तरमे है। उनके ऊपर लोहित और लोहिताक नामके देव रहते हैं जो कौस्तुभ देवके समान है ॥ २९ ॥ त्रिलोकप्रज्ञप्तिमे कहा भी है—

समुद्रके दोनो तटोसे ब्यालीस हजार (४२०००) योजन जाकर पातालोके पार्श्व-भागोमे आठ पर्वत स्थित है ॥ ५ ॥

उपर्युक्त पर्वतोके ऊपर रहनेवाले ये देव आयु, भवन और परिवारकी अपेक्षा विजय देवके समान हैं। जबू नामक द्वीपके भीतर अपनी दिशामे उनके नगर भी स्थित है ॥ ३० ॥ त्रिलोकप्रज्ञप्तिमे कहा भी है—

इन देवोकी नगरिया द्वितीय जवूद्वीपके भीतर अपनी अपनी दिशामे स्थित है । वे नगरिया अपराजित देवकी नगरियोके समान हैं ॥ ६ ॥

समुद्रतटसे बारह हजार (१२०००) योजन जाकर पश्चिम-उत्तर (वायव्य) कोणमे बारह हजार (१२०००) योजन विस्तृत और सब ओरसे समान गौतम नामका द्वीप स्थित है। उसका अधिपति जो गौतम नामका देव है वह परिवार और आयु आदिसे कौस्तुभ देवके समान है, ऐसा जानना चाहिये॥३१-३२॥ इस समुद्रके भीतर पूर्व दिशामे रहनेवाले अन्तरद्वीपज मनुष्य एक ऊरुवाले, दक्षिण दिशामे रहनेवाले सीगोसे सहित, पश्चिम दिशामे रहनेवाले सवालक अर्थात् वालोसे सयुक्त (पूछवाले), उत्तर दिशामे रहनेवाले गूगे, तथा विदिशाओमे रहनेवाले मनुष्य शशकर्ण अर्थात् खरगोशके समान कानवाले होते हैं। इनमे एक ऊरुवाले मनुष्योके वाम और दक्षिण पार्श्वभागोमे क्रमसे घोडेके समान कानोवाले और सिहके समान मुखवाले कुमानुष रहते है। सीगवाले मनुष्योके

---

१ ब अट्ठ होति गिरी। २ ब °र्णिका.।

श्वानास्या कपिवक्त्राश्च लाङ्गुलुभयपार्श्वयो । पार्श्वयोः शष्कुलीकर्णा अभाषाणा च भाषिता ॥
घूककालमुखाश्चापि हिमवत्पूर्वपश्चिमे । गोमुखा मेषवक्त्राश्च विजयार्धोभयान्तयो ॥ ३७
मेघविद्युन्मुखा पूर्वापरयोः शिखरिणो गिरे. । दर्पणास्या गजास्याश्च विजयार्धोभयान्तयो. ॥३८
तटात्पञ्चशत गत्वा दिक्षु चान्तरदिक्षु च । विदिक्षु च सपञ्चाशत् षट्च्छत गिरिपार्श्वयो ॥ ३९

५०० । ५५० । [६००] ।

अन्तरेष्वन्तरद्वीपा शतरुन्द्रास्तु दिग्गता । तत्पाद शैलपार्श्वस्था व्यस्ता पञ्चाशतं परे ॥ ४० ।

। २५ ।

सत्येकगमने पञ्चनवत[तिं]स्तुङ्ग इष्यते $\frac{1}{95}$ । षोडशाहत उर्ध्वे स $\frac{16}{95}$ प्रकृते किं भवेरिति ॥ ४१
त्रैराशिके द्वयोर्योगे जलस्थद्वीपतुङ्गता । एकयोजनतुङ्गास्ते जलोपरि सवेदिका. ॥ ४२

पूर्वापर पार्श्वभागोमे शष्कुली जैसे कानोवाले कुमानुष रहते है । पूछवालोके उभय पार्श्वभागोमे श्वानमुख और वानरमुख कुमानुष रहते हैं । तथा गूगे मनुष्योके दोनो पार्श्वभागोमे शष्कुलीकर्ण मनुष्य कहे गये है ॥ ३३–३६ ॥ हिमवान् पर्वतके पूर्वभागमे घूकमुख, उसके पश्चिम भागमे कालमुख तथा विजयार्धके उभय पार्श्वभागोमे क्रमश गोमुख और मेषमुख कुमानुष रहते हैं ॥ ३७ ॥ शिखरी पर्वतके पूर्वापर पार्श्वभागोमे मेघमुख और विद्युन्मुख तथा विजयार्धके उभय प्रान्तभागोमे दर्पणमुख और गजवदन कुमानुष रहते है ॥ ३८ ॥

दिशाओ और अन्तर दिशाओमे जो कुमानुषद्वीप स्थित है वे समुद्रतटसे पाच सौ (५००) योजन आगे जाकर है । विदिशाओमे स्थित वे द्वीप समुद्रतटसे पचास सहित पाच सौ अर्थात् साढे पाच सौ (५५०) योजन, तथा पर्वतोके उभय पार्श्वभागोमे स्थित वे द्वीप समुद्रतटसे छह सौ (६००) योजन आगे जाकर है ॥ ३९ ॥

अन्तरालोमे स्थित अन्तरद्वीपो और दिशागत अन्तरद्वीपोका विस्तार सौ (१००) योजन, पर्वतीय पार्श्वभागोमे स्थित द्वीपोका उनके चतुर्थ भाग प्रमाण अर्थात् पच्चीस (२५) योजन, और दूसरे दिशागत द्वीपोका विस्तार पचास (५०) योजन मात्र है ॥ ४० ॥

यदि एक योजन जानेपर जलकी ऊचाई नीचे एक योजनके पचानवैवे भाग ($\frac{1}{95}$) तथा वही ऊपर इससे सोलहगुणी ($\frac{16}{95}$) मानी जाती है तो प्रकृतमे (५००, ५००, ५५० और ६०० योजन जानेपर) वह कितनी होगी, इस प्रकार त्रैराशिक करनेसे प्राप्त दोनो राशियोका योग करनेपर अभीष्ट जलस्थ द्वीपकी ऊचाई प्राप्त होती है । वे द्वीप जलके ऊपर एक योजन ऊचे और वेदिकासे सयुक्त हैं ॥ ४१–४२ ॥

विशेषार्थ — लवण समुद्रका विस्तार सम भूभागपर २०००००योजन और नीचे तलभागमे १०००० योजन है । गहराई (जलकी ऊचाई) उसकी १००० यो मात्र है । इस प्रकार क्रमश हानि होकर उसके विस्तारमे दोनो ओरसे १९०००० योजनकी हानि हुई है । इसे आधा करनेपर

शैलाग्राभिमुखा द्वीपा. पार्श्वयोस्ते विषाणिनाम् । अभाषाणा च चत्वारः शशकाः पूर्वपश्चिमा ॥४३
धातकीखण्डमासन्नास्तथा तावन्त एव च २४ । षडभ्यस्ताष्टकाः स्युस्ते ४८ स्युरष्टादशकुलालया ॥

एक ओरकी विस्तारहानिका प्रमाण ९५००० योजन होता है । अब यदि ९५००० यो की विस्तारहानिमे जलकी ऊचाई १००० यो हे तो वह १ योजनकी विस्तारहानिमे कितनी होगी, इस प्रकार त्रैराशिक करनेसे १ यो की विस्तारहानिमे जलकी ऊचाईका प्रमाण इतना प्राप्त होता है — $\frac{१००० \times १}{९५०००} = \frac{१}{९५}$ यो । अब चूकि समुद्रतटसे दिशागत द्वीप ५०० यो, अन्तरदिशागत ५०० यो, विदिशागत ५५० यो और पर्वतीय पार्श्वभागगत द्वीप ६०० यो की दूरीपर जाकर स्थित है, अतएव $\frac{१}{९५}$ को क्रमश उपर्युक्त चार राशियोसे गुणित करनेपर उन द्वीपोके पास जलकी ऊचाईका प्रमाण क्रमश निम्न प्रकार प्राप्त होता है – $\frac{१}{९५} \times ५०० = ५\frac{५}{१९}$ यो दि द्वीप और अन्तर दि द्वीप, $\frac{१}{९५} \times ५५० = ५\frac{१५}{१९}$ यो विदि द्वीप, $\frac{१}{९५} \times ६०० = ६\frac{६}{१९}$ यो पर्वतीय द्वीप । यह सम भूभागसे नीचेकी ऊचाईका प्रमाण हुआ । ऊपर जलशिखापर उनका जलोत्सेध इस प्रकार है—

सम भूभागसे ऊपर जलशिखाकी ऊचाई १६००० यो. है । अब जब ९५००० यो विस्तारकी हानिमे जलकी ऊचाईका प्रमाण १६००० यो है तब वह १ यो विस्तारकी हानिमे कितना होगा, इस प्रकार पूर्वोक्त रीतिसे त्रैराशिक द्वारा वह इतना प्राप्त होता है — $\frac{१६००० \times १}{९५०००} = \frac{१६}{९५}$ यो । इसको क्रमश उपर्युक्त द्वीपोकी दूरीसे गुणित करनेपर उन उन द्वीपोके पास जल शिखाकी ऊचाईका प्रमाण निम्न प्रकार प्राप्त होता है— $\frac{१६}{९५} \times ५०० = ८४\frac{४}{१९}$ यो दिशागत व अन्तरदिशागत, $\frac{१६}{९५} \times ५५० = ९२\frac{१२}{१९}$ यो विदिशागत, $\frac{१६}{९५} \times ६०० = १०१\frac{१}{१९}$ यो पर्वतीय पार्श्वस्थ द्वीपोके पास जलशिखाकी ऊचाई । अब चूकि जलके ऊपर भी ये द्वीप १ योजन प्रमाण ऊचे है अत एव क्रमसे अपने अपने द्वीपोके पासकी नीचे और ऊपरकी सम्मिलित जलकी ऊचाईमे १ योजनको और मिला देनेपर यथाक्रमसे अपने अपने स्थानमे इन द्वीपोकी ऊचाईका प्रमाण निम्न प्रकार प्राप्त होता है— $५\frac{५}{१९} + ८४\frac{४}{१९} + १ = ९०\frac{९}{१९}$ यो, यह दिशागत और अन्तरदिशागत द्वीपोकी ऊचाईका प्रमाण है । $५\frac{१५}{१९} + ९२\frac{१२}{१९} + १ = ९९\frac{८}{१९}$ यो, यह विदिशागत द्वीपोकी ऊचाईका प्रमाण है । $६\frac{६}{१९} + १०१\frac{१}{१९} + १ = १०८\frac{७}{१९}$, यह पर्वतीय पार्श्वभागोमे स्थित द्वीपोकी ऊचाईका प्रमाण है ।

पर्वतोके अग्रभागोके अभिमुख जो द्वीप है वे विषाणियो तथा अभाषकोके दोनो पार्श्वभागोमे है । चार शशक द्वीप पूर्व-पश्चिममे है (?) ॥ ४३ ॥ जितने अन्तरद्वीप जबूद्वीपकी ओर लवण समुद्रमे स्थित है उतने ही वहा धातकीखण्ड द्वीपके निकट भी स्थित है । इस प्रकार दोनो ओरके वे सब द्वीप छहसे गुणित आठ अक प्रमाण अर्थात् अडतालीस (४८) है । वे सब द्वीप

उक्त च त्रिलोकप्रज्ञप्तौ [४, २४७८-८८]–

दीवा लवणसमुद्दे अडदाल कुमाणुसाण चउवीस। अब्भतरम्मि भागे तेत्तियमेत्ता य बाहिरए ॥ ७

२४।४८।

चत्तारि चउदिसासु चउविदिसासु हवति चत्तारि।
अतरदिसासु अट्ठ य अट्ठ य गिरिपणिधिठाणेसुं ॥ ८ ॥

४।४।८।८।

पचसयजोयणाणि गतूण जबुदीवजगदीदो। चत्तारि होति दीवा दिसासु विदिसासु तम्मेत्त ॥ ९

।५००।

पण्णाहियपचसया गतूणं होति अतरा दीवा। छस्सयजोयणमेत्त गच्छिय गिरिपणिधिगददीवा ॥

५५०।६००।

एक्कसय पणवण्णा पण्णा पणुवीस जोयणा कमसो। वित्थारजुदा ताण एक्केक्का होदि तडवेदी ॥

१०० । ५५ । ५० । २५ ।

ते सव्वे वरदीवा वणसडेहि दहेहि रमणिज्जा। फलकुसुमभारभजिदरसेहिं[1] (?) महुरेहि सलिलेहिं ॥

एकोरुगलगुलिगा[2] वेसणिगा भासगा य णामेहिं। पुव्वादीसु दिसासु चउदीवाण कुमाणुसा होति॥

सक्कुलिकण्णा कण्णप्पावरणा लबकण्णससकण्णा। अग्गिदिसादिसु कमसो चउदीवकुमाणुसा एदे॥

एकोरुक आदि अठारह कुलो (कुमानुषो) के निवासस्थानभूत है ॥ ४४ ॥ त्रिलोकप्रज्ञप्ति-मे कहा भी है–

लवण समुद्रमे कुमानुषोके अडतालीस (४८) द्वीप है। इनमे चौबीस (२४) अभ्यन्तर भागमे और उतने ही वे वाह्य भागमे भी है ॥ ७ ॥ उनमे चार दिशाओमे चार, चार विदिशाओमे चार, अन्तरदिशाओमे आठ, तथा हिमवान्, शिखरी और दो विजयार्ध इन चार पर्वतोके पार्श्वभागमे आठ, इस प्रकार सब द्वीप चौबीस है ॥ ८ ॥ जबूद्वीपकी जगतीसे समुद्रमे पाच सौ (५००) योजन जाकर चार द्वीप दिशाओमे और उतने मात्र (५००) योजन जाकर चार द्वीप विदिशाओमे स्थित है ॥ ९ ॥ अन्तरद्वीप जगतीसे पाच सौ पचास (५५०) योजन जाकर तथा पर्वतोके प्रणिधि-भागोमे स्थित द्वीप उससे छह सौ (६००) योजन जाकर हैं ॥ १० ॥ वे द्वीप क्रमसे एक सौ (१००), पचवन (५५), पचास (५०) और पच्चीस (२५) योजन प्रमाण विस्तृत है। उनमेसे प्रत्येक द्वीपके तटवेदी है ॥ ११ ॥ वे सब उत्तम द्वीप फलो और फूलोके भारसे भग होनेवाले (?) वनखण्डोसे तथा मधुर जलयुक्त द्रहोसे रमणीय हैं ॥ १२ ॥ पूर्वादिक चार दिशाओमे स्थित चार द्वीपोके कुमानुष क्रमश नामसे एकोरुक, लागूलिक, वैषाणिक और अभाषक होते है ॥ १३ ॥ आग्नेय आदि चार विदिशाओमे स्थित चार द्वीपोके ये कुमानुष क्रमसे शष्कुलिकर्ण, कर्णप्रावरण,

---

१ ब भजिय°। २ ब लगलिगा।

सिहस्ससाणहयरिउवराहसद्दूलघूयकपिवदणा। सक्कुलिकण्णेक्कोरुगपहुदीण अंतरेसु ते कमसो ।।

मच्छमुहा कालमुहा हिमगिरिपणिधीए[1] पुव्वपच्छिमदो।

मेसमुहगोमुहक्खा दक्खिणवेअड्ढपणिधीए[1] ।। १६।।

पुव्वावरेण सिहरिप्पणिधीए[1] मेघविज्जुमुहणामा। आदसणहत्थिमुहा उत्तरवेअड्ढपणिधीए[1] १७

मिथुनोत्पत्तिकास्ते च नवचत्वारिंशता दिनै.। नवयौवनसंपन्ना[2] द्विसहस्रधनु.प्रमाः ।। ४५

।४९।

शर्करारसतोऽत्युद्धा भूमिरेकोरुकाशनम्। गुहालयाश्च ते सर्वे पल्यायुष इति स्मृताः ।। ४६

प्रियङ्गुश्यामका वर्णे शेषा वृक्षनिवासिनः। तेषां सर्वोपभोगाश्च कल्पवृक्षोद्भवाः[3] सदा ।। ४७

चतुर्थकालाहाराश्च रोगशोकविर्वाजिता.। भवनत्रितये चैते जायन्तेऽत्र मृता अपि ।। ४८

जम्बूद्वीपजगत्यैव समुद्रजगती समा। अभ्यन्तरे शिलापट्टं वनं बाह्ये तु वर्णितम् ।। ४९

लवणादिकविष्कम्भश्चतुस्त्रिद्विकताडितः। त्रिलक्षोनः क्रमेण स्यु. बाह्यमध्यादिसूचयः ।। ५०

लवकर्ण और शशकर्ण होते है ।। १४ ।। शष्कुलीकर्ण और एकोरुक आदि कुमानुपोके अन्तरालोमे स्थित वे कुमानुष क्रमसे सिंहमुख, अश्वमुख, श्वानमुख, हयरिपु (सिहमुख), वराहमुख, शार्दूलमुख, घूकमुख और वानरमुख होते हैं ।। १५ ।। हिमवान् पर्वतकी प्रणिधिमे पूर्व-पश्चिम भागोमे मत्स्यमुख और कालमुख, दक्षिण विजयार्धकी प्रणिधिमे मेषमुख और गोमुख नामक, शिखरी पर्वतकी प्रणिधिमे पूर्व-पश्चिमकी ओर मेघमुख और विद्युन्मुख तथा उत्तर विजयार्धकी प्रणिधिमे आदर्शन-मुख और हस्तिमुख कुमानुप रहते है ।। १६–१७ ।।

इन द्वीपोमे जो कुमानुष रहते है वे युगल रूपसे उत्पन्न होकर उनचास (४९) दिनमे नवीन यौवनसे सम्पन्न हो जाते हैं। इनके शरीरकी ऊचाई दो हजार (२०००) धनुष प्रमाण होती है ।। ४५ ।। उनमे एक ऊरुवाले कुमानुप शक्करके समान रससे सयुक्त भूमि (मिट्टी)का भोजन करते और गुफाओमे रहते है। उन सबकी आयु एक पल्य प्रमाण होती है ।। ४६ ।। प्रियगु पुष्पके समान वर्णवाले शेष कुमानुष वृक्षोके मूल भागमे रहते हैं। उनके सब उपभोग सदा कल्पवृक्षोसे उत्पन्न होते है ।। ४७ ।। चतुर्थ कालसे अर्थात् एक दिनके अन्तरसे भोजन करनेवाले तथा रोग-शोकसे रहित ये कुमानुष यहा मृत्युको प्राप्त होकर भवनत्रिक देवोमे उत्पन्न होते हैं ।।४८।।

समुद्रकी जगती जबूद्वीपकी जगतीके ही समान है। उसके अभ्यन्तर भागमे शिलापट्ट और बाह्य भागमे वन बतलाया गया है ।। ४९ ।।

लवणोद आदि विवक्षित द्वीप या समुद्रके विस्तारको चार, तीन और दोसे गुणित करके प्राप्त राशिमेसे तीन लाख कम कर देनेपर क्रमसे उसकी बाह्य, मध्य और आदि सूचीका प्रमाण होता है ।। ५० ।।

१ ब पणिदीये। २ प योजनस॰। ३ प ॰द्भव. ।

ल बा ५००००० । म ३००००० । आ १००००० । दा [धा] बा १३००००० । म ९००००० । आ ५००००० । का बा २९००००० । म २१००००० । आ १३००००० । पु बा ६१००००० । म ४५००००० । आ २९००००० ।

[1]बाह्यसूचीकृतश्चान्त:सूचीवर्गेण हीनका: । जम्बूप्रमाणखण्डानि लक्षवर्गेण भाजिता ॥ ५१

ल २४ । दा (धा) १४४ । का ६७२ । पु २८८० ।

विशेषार्थ— मण्डलाकारसे स्थित द्वीप-समुद्रोमे विवक्षित द्वीप अथवा समुद्रके एक दिशासे दूसरी दिशा तकके समस्त विस्तारप्रमाणको सूची कहा जाता है । वह आदि, मध्य और बाह्यके भेदसे तीन प्रकारकी है । उपर्युक्त करणसूत्रमे इन्ही तीन सूचियोके प्रमाणको लानेकी विधि बतलायी गई है । यथा— विवक्षित द्वीप या समुद्रके विस्तारको ४ से गुणित करके उसमेसे ३००००० योजन कम कर देनेपर शेप उसकी बाह्य सूचीका प्रमाण होता है । जैसे– लवण समुद्रका विस्तार २००००० यो प्रमाण है । इसे ४ से गुणित करनेपर २००००० × ४ = ८००००० प्राप्त होते हैं । इसमेसे ३००००० घटा देनेपर शेष ८००००० – ३००००० = ५००००० यो रहते हैं, यह लवण समुद्रकी बाह्य सूची (मध्यगत जबूद्वीपके विस्तार सहित दोनो ओरके लवण समुद्रका सम्मिलित विस्तार) का प्रमाण हुआ— २००००० + १००००० + २००००० = ५००००० योजन । लवण समुद्रके उपर्युक्त विस्तारको ३ से गुणित करके उसमेसे ३००००० कम कर देनेपर उसकी मध्य सूची (लवण समुद्रके एक दिशागत मध्य भागसे दूसरी दिशागत मध्य भाग तक) का प्रमाण होता है । यथा– २००००० × ३ – ३००००० = ३००००० यो । उक्त विस्तारप्रमाणको २ से गुणित करके ३००००० कम कर देनेपर उसकी आदि सूची (उसके एक दिशागत अभ्यन्तर तटसे दूसरी दिशागत अभ्यन्तर तट तक) का प्रमाण होता है । यथा —२००००० × २ – ३००००० = १००००० यो । पूर्ववर्ती द्वीप अथवा समुद्रकी जो बाह्य सूचीका प्रमाण है वही उसके आगेके द्वीप अथवा समुद्रकी अभ्यन्तर सूचीका प्रमाण होता है । जैसे लवण समुद्रकी बाह्य सूचीका प्रमाण जो ५००००० यो है वही उससे आगेके धातकीखण्ड द्वीपकी अभ्यन्तर सूचीका प्रमाण होगा । लवण समुद्रकी बाह्य सूची ५००००० यो, मध्यम सूची ३००००० यो, आदि सूची १००००० यो । धातकीखण्ड द्वीपकी बा बा १३००००० यो, म ९००००० यो., आ ५००००० यो । कालोद समुद्रकी बा २९००००० यो म २१००००० यो, आ १३००००० यो । पुष्करद्वीपकी बा ६१००००० यो, म ४५००००० यो, आ. २९००००० योजन ।

बाह्य सूचीके वर्गको अभ्यन्तर सूचीके वर्गसे हीन करके शेषमे एक लाखके वर्गका भाग देनेपर जो लब्ध हो उतने [विवक्षित द्वीप अथवा समुद्रके] जबूद्वीपके बराबर खण्ड होते हैं ॥ ५१ ॥

---

१ आ प बाह्यसूती° ।

द्वीपार्णवा ये लवणोदकाद्या एकैकशस्तु द्विगुणाः क्रमेण।
पूर्वं परिक्षिप्य समन्ततोऽपि स्थिताः समानाह्वयमण्डलैस्ते ॥५२

॥ इति लोकविभागे लवणसमुद्रविभागो[1] नाम द्वितीयं प्रकरणम् ॥२॥

विशेषार्थ— जबूद्वीपका जितना क्षेत्रफल है उसके बराबर प्रमाणसे विवक्षित द्वीप अथवा समुद्रके कितने खण्ड हो सकते है, इसका परिज्ञान करानेके लिये प्रकृत करणसूत्र प्राप्त हुआ है। उसका अभिप्राय यह है कि विवक्षित द्वीप या समुद्रकी बाह्य सूचीका जो प्रमाण है उसका वर्ग कीजिये और फिर उसमेसे उसीकी अभ्यन्तर सूचीके वर्गको घटा दीजिये। इस प्रकारसे जो शेप रहे उसमे १००००० के वर्गका भाग देनेपर प्राप्त राशि प्रमाण विवक्षित द्वीप या समुद्रके जंबूद्वीपके बराबर खण्ड होते हैं। यथा — लवण समुद्रकी बाह्य सूची ५००००० यो और अभ्यन्तर सूची १०००००यो प्रमाण है, अत $(५००००० ^{२} - १००००० ^{२}) \div १००००० ^{२} = २४$, इस प्रकार जबूद्वीके प्रमाणसे लवणसमुद्रके २४ खण्ड प्राप्त होते है। धा द्वीप $(१३००००० ^{२} - ५००००० ^{२}) \div १००००० ^{२} = १४४$ खण्ड। कालोद $(२९००००० ^{२} - १३००००० ^{२}) - १००००० ^{२} =$ ६७२। पुष्कर द्वीप $(६१००००० ^{२} - २९००००० ^{२}) - १००००० ^{२} = २८८०$ खण्ड।

लवणोदक समुद्रको आदि लेकर जो द्वीप और समुद्र है उनमेसे प्रत्येक क्रमसे पूर्व पूर्वकी अपेक्षा दूने दूने विस्तारवाले हैं। वे पूर्वके द्वीप अथवा समुद्रको चारो ओरसे घेरकर समान सज्ञा-वाले मण्डलोसे स्थित है॥५२॥

इस प्रकार लोकविभागमे लवणसमुद्रविभाग नामक द्वितीय प्रकरण समाप्त हुआ॥२॥

---

१ ब लवणार्णवविभागो।

[तृतीयो विभागः]

नाम्नान्यो धातकीखण्डो द्वितीयो द्वीप उच्यते। मेरो पूर्वपरावत्र द्वौ मेरू परिकीर्तितौ ॥ १
इष्वाकारौ[1] च शैलौ द्वौ मेरोरुत्तरदक्षिणौ। सहस्र विस्तृतावेतौ द्वीपव्याससमायतौ ॥ २
अवगाढोच्छ्रयाभ्या च निषधेन समौ मतौ। सर्वे वर्षधराश्चात्र स्वै स्वैर्गाधोच्छ्रयै समा ॥ ३
क्षेत्रस्याभिमुख क्षेत्र शैलानामपि चाद्रय। इष्वाकारास्तु[2] चत्वारो भरतैरावतान्तरे ॥ ४
हिमवत्प्रभृतीनां च पूर्वो द्विगुण इष्यते। द्वादशानामपि व्यासस्तथा[3] पुष्करसञ्ज्ञके ॥ ५
द्विचतुष्कमथाष्टौ च अष्टौ सप्त च[4] रूपकम्। धातकीखण्डशैलाना व्यास[5] सक्षेप इष्यते ॥ ६
। १७८८४२।

दूसरा द्वीप नामसे धातकीखण्ड कहा जाता है। यहा मेरु (सुदर्शन) के पूर्व और पश्चिममे दो मेरु कहे गये हैं ॥ १ ॥ यहापर मेरुके उत्तर और दक्षिणमे दो इष्वाकार पर्वत स्थित है। ये एक हजार योजन विस्तृत और द्वीपके विस्तारके बराबर (४ लाख यो) आयत हैं ॥ २ ॥ ये दोनो इष्वाकार पर्वत अवगाढ और ऊचाईमे निषध पर्वतके समान माने गये है। यहापर सब पर्वत अपने अपने अवगाढ और ऊचाईमे जबूद्वीपस्थ पर्वतोके समान हैं ॥ ३ ॥ धातकीखण्ड द्वीपमे क्षेत्रके अभिमुख (सामने) क्षेत्र और पर्वतोके अभिमुख पर्वत स्थित हैं। किन्तु चार (दो धातकीखण्ड और दो पुष्करार्ध द्वीपके) इष्वाकार पर्वत भरत और ऐरावत क्षेत्रोके अन्तरमे स्थित है ॥ ४ ॥ हिमवान् आदिक बारह कुलपर्वतोका विस्तार पूर्व (जबूद्वीपस्थ हिमवान् आदि) से दूना माना जाता है। उसी प्रकार पुष्करार्ध नामक द्वीपमे भी इन पर्वतोका विस्तार जबूद्वीपकी अपेक्षा दूना है ॥ ५ ॥ धातकीखण्डमे स्थित पर्वतोका विस्तार सक्षेपमे अकक्रमसे दो, चार, आठ, आठ, सात और एक (१७८८४२) अर्थात् एक लाख अठत्तर हजार आठ सौ व्यालीस यो माना जाता है ॥ ६ ॥

विशेषार्थ — जबूद्वीपमे उपर्युक्त हिमवान् आदि पर्वतोका विस्तार क्रमसे इस प्रकार है— हिम १०५२$\frac{१२}{१९}$ + म हि ४२१०$\frac{१०}{१९}$ + निषध १६८४२$\frac{२}{१९}$ + नील १६८४२$\frac{२}{१९}$ + रुक्मि ४२१०$\frac{१०}{१९}$ + शिखरी १०५२$\frac{१२}{१९}$ = ४४२१०$\frac{१०}{१९}$ यो। अब चूकि धातकीखण्डमे इन पर्वतोका विस्तार जबूद्वीपकी अपेक्षा दूना दूना है, अतएव उसे दूना करनेसे इतना होता है—४४२१०$\frac{१०}{१९}$ × २ = ८८४२१$\frac{१}{१९}$ यो। इसके अतिरिक्त धातकीखण्डमे ये पर्वत २-२ हैं, तथा वहा १०००

---

१ प ईष्वाकारौ। २ प ईष्वा°। ३ आ प व्यास तथा। ४ ब सप्तक। ५ आ प व्यास°।

आदिमध्यान्तपरिधिष्वद्रिरुद्धक्षितिं पुनः । शोधयित्वावशेषश्च सर्वभूव्यासमेलनम् ॥ ७

अभ्यन्तरपरिधौ पर्वतरहितक्षेत्रं १४०२२९७। मध्यम २६६७२०८। बाह्य ३९३२११९।

भरताभ्यन्तरविष्कम्भश्चतुरेक षट्कषट्ककम् । योजनाना नवद्व्येकमंशा द्व्येकद्विकस्य[1] च ॥ ८

६६१४ । $\frac{१२९}{२१२}$ ।

एकमष्टौ च पञ्च द्वे चैकमङ्कक्रमेण च । षट्त्रिंशद्भागका मध्यो विष्कम्भो भरतस्य च ॥ ९

सप्त द्विकृति पञ्चाष्टावेकमङ्कक्रमेण च । पञ्चपञ्चैककं भागा बाह्यविष्कम्भ इष्यते ॥ १०

त्रिस्थानभरतव्यासाद् वृद्धिर्हैमवतादिषु । चतुर्गुणा विदेहान्त ततो हानिरनुक्रमात् ॥ ११

है २६४५८[$\frac{९२}{२१२}$] ५०३२४[$\frac{१४४}{२१२}$] ७४१९०[$\frac{१९६}{२१२}$] ह १०५८३३[$\frac{१५६}{२१२}$]२०१२९८[$\frac{१५२}{२१२}$]
२९६७६३[$\frac{१४८}{२१२}$] वि ४२३३३४[$\frac{२००}{२१२}$] ८०५१९४[$\frac{१८४}{२१२}$] ११८७०५४[$\frac{१६८}{२१२}$]

यो विस्तारवाले २ इष्वाकार पर्वत भी अवस्थित है, इसीलिये उपर्युक्त राशिको २ से गुणित करके उसमे २००० योजनको मिला देनेपर उक्त पर्वतरुद्ध क्षेत्रका प्रमाण प्राप्त हो जाता है-- (८८४२१$\frac{१}{१९}$ × २) + (१००० × २) = १७८८४२$\frac{२}{१९}$ यो । इसमे यहा $\frac{२}{१९}$ की विपक्षा नही की गई है ।

धातकीखण्ड द्वीपकी आदि, मध्य और बाह्य परिधियोमेसे पर्वतरुद्ध क्षेत्रको कम कर देनेपर शेष सब क्षेत्रोका सम्मिलित विस्तार होता है ॥ ७ ॥ उसकी अभ्यन्तर परिधिमे पर्वत-रहित क्षेत्र १४०२२९७ यो , मध्यम परिधिमे २६६७२०८ यो और बाह्य परिधिमे ३९३२११९ यो (यहा यह पूर्णसख्या $\frac{१७}{१९}$ को एक अक मानकर निर्दिष्ट की गई है।)

भरत क्षेत्रका अभ्यन्तर विस्तार अकक्रमसे चार, एक, छह और छह अर्थात् छह हजार छह सौ चौदह योजन और एक योजनके दो सौ बारह भागोमेसे एक सौ उनतीस भाग प्रमाण (६६१४$\frac{१२९}{२१२}$ यो) है॥ ८ ॥ भरतका मध्य विस्तार अकक्रमसे एक, आठ, पाच, दो और एक अर्थात् बारह हजार पाच सौ इक्यासी योजन और योजनके दो सौ बारह भागोमेसे छत्तीस भाग प्रमाण (१२५८१$\frac{३६}{२१२}$ यो) है ॥ ९ ॥ भरत क्षेत्रका बाह्य विस्तार अकक्रमसे सात, दोका वर्ग अर्थात् चार, पाच, आठ और एक अर्थात् अठारह हजार पाच सौ सैतालीस योजन और एक योजनके दो सौ बारह भागोमेसे एक सौ पचवन भाग प्रमाण (१८५४७$\frac{१५५}{२१२}$ यो) है ॥१०॥ भरत क्षेत्रके उपर्युक्त तीन प्रकार विस्तारकी अपेक्षा हैमवत आदिक क्षेत्रोके विस्तारमे विदेह क्षेत्र तक चौगुणी वृद्धि हुई है, आगे उसी क्रमसे हानि होती गई है ॥ ११ ॥

विशेषार्थ— धातकीखण्ड द्वीपकी अभ्यन्तर परिधि १५८११३९, मध्यम परिधि २८४६०५०, और बाह्य परिधि ४११०९६१ योजन प्रमाण है। इनमेसे पर्वतरुद्ध क्षेत्र (१७८-८४२$\frac{२}{१९}$ यो) को घटा देनेपर क्रमश. उन तीन परिधियोमे क्षेत्ररुद्ध क्षेत्र इतना होता है--

---

१ प ब द्वेकद्विकस्य ।

भरतादिभुवामाद्य रुन्द्रमपनीय बाह्यके । चतुर्लक्षैर्हृते हानिवृद्धी ईप्सितदेशके[1] ॥ १२
गिरयोऽर्धतृतीयस्था[2] द्रुमवक्षारवेदिका । अवगाढा विना मेरु स्वोच्चयस्य चतुर्थकम् ॥ १३
विस्तृतानि हि कुण्डानि स्वावगाहं तु षड्गुणम् । ह्रदनद्योऽवगाहाच्च पञ्चाशद्गुणविस्तृता ॥ १४
६०।१२०।२४०
उद्गतं स्वावगाहं तु चैत्य सार्धशताहतम् । जम्ब्वातुल्या समाख्याता दशाप्यत्र महाद्रुमाः ॥ १५
सरः कुण्डमहानद्यस्तथा पद्मह्रदा अपि । अवगाहैः समाः पूर्वैर्व्यासैर्द्विर्द्विगुणाः परे ॥ १६

अ प १४०२२९६ $\frac{१७}{१९}$, म प २६६७२०७ $\frac{१७}{१९}$, बा प ३९३२११८ $\frac{१७}{१९}$ । अब यहा भरतादि क्षेत्रोके विस्तारप्रमाणकी शलाकायें इस प्रकार हैं--भरत १ × हैमवत ४ + हरिवर्ष १६ + विदेह ६४ + रम्यक १६ + हैरण्यकवत ४ + ऐरावत १ = १०६, यह एक ओरकी शलाओका प्रमाण हुआ। इसी क्रमसे दूसरी ओरकी भी इतनी ही शलाकाओको ग्रहण करके पूर्व शलाकाओमे मिला देनेपर सब शलाकायें १०६ × २ = २१२ होती हैं। अब विवक्षित क्षेत्रके विस्तारको लानेके लिये धातकीखण्डकी पर्वतरुद्ध क्षेत्रसे रहित विवक्षित (अभ्यन्तर आदि) परिधिमे २१२ का भाग देकर लब्धको अभीष्ट क्षेत्रकी शलाकाओसे गुणित कर देनेपर विवक्षित क्षेत्रका विस्तार। आ जाता है। जैसे- $\frac{१४०२२९६\frac{१७}{१९}}{२१२}$ × १ = ६६१४ $\frac{१२९}{२१२}$ यो , भरतका अभ्यन्तर विस्तार। $\frac{२६६७२०७\frac{१७}{१९}}{२१२}$ × १ = १२५८१ $\frac{३६}{२१२}$ यो , भरतका मध्य विस्तार। $\frac{३९३२११८\frac{१७}{१९}}{२१२}$ × १ = १८५४७ $\frac{१५५}{२१२}$ यो , भरतका वाह्य विस्तार। हैमवत २६४५८ $\frac{९२}{२१२}$, ५०३२४ $\frac{१४४}{२१२}$, ७४१९० $\frac{१९६}{२१२}$ हरि १०५८३३ $\frac{१५६}{२१२}$, २०१२९८ $\frac{१५२}{२१२}$, २९६७६३ $\frac{१४८}{२१२}$ । विदेह ४२३३३४ $\frac{२००}{२१२}$, ८०५१९४ $\frac{१८४}{२१२}$, ११८७०५४ $\frac{१६८}{२१२}$ ।

भरतादिक क्षेत्रोके वाह्य विस्तारमेसे अभ्यन्तर विस्तारको कम करके शेषमे चार लाखका भाग देनेपर इच्छित स्थानमे हानि-वृद्धिका प्रमाण प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

अढाई द्वीपमे मेरु पर्वतको छोडकर शेष जो पर्वत, वृक्ष, वक्षार और वेदिकायें स्थित हैं उनका अवगाढ अपनी ऊचाईके चतुर्थ भाग ($\frac{१}{४}$) प्रमाण है ॥ १३ ॥ कुण्डोका विस्तार अपने अवगाहसे छह गुणा (जैसे- १० × ६ = ६०, २० × ६ = १२०, ४० × ६ = २४०) तथा द्रह और नदियोका विस्तार अपने अवगाहसे पचासगुणा है ॥ १४ ॥

चैत्य वृक्षकी ऊचाई अपने अवगाहसे डेढसौगुणी होती है। अढाई द्वीपोमे स्थित दस ही महावृक्ष जबूवृक्षके समान कहे गये हैं ॥ १५ ॥ तालाव, कुण्ड, महानदिया तथा पद्मह्रद भी, ये अवगाहकी अपेक्षा पूर्व अर्थात् जबूद्वीपस्थ तालाव आदिके समान हैं। परन्तु विस्तारमे वे जबूद्वीपके तालाब आदिसे दूने दूने हैं ॥ १६ ॥

[1] हानिर्वृद्धिरीप्सित°] २ प तृतीयस्या ।

विजयार्धश्च चैत्यानि वृषभा नाभिपर्वता । चित्रकूटादयश्चैते तदा काञ्चननामका ॥ १७
दिशागजेन्द्रकूटानि वक्षारा वेदिकादय । उच्छ्रयव्यासगाधैस्ते समा द्वीपत्रये मताः ॥१८

उक्त च द्वयम् [ति प ४-२५४७, २७९१]—

मोत्तूण मेरुगिरिं सव्वणगा कुडपहुदि दीवदुगे । अवगाढवासपहुदी केई इच्छति[1] सारिच्छा ॥ १
मुक्का मेरुगिरिंद कुलगिरिपहुदीणि[2] दीवतिदयम्मि । वित्थारुच्छेहसमा[3] केई एव परूवेति ॥ २
अर्धयोजनमुद्विद्धा व्यस्ताः पञ्चधनु शतम् । सर्वेषामपि कुण्डाना वेदिका रत्नतोरणा ॥ १९
अशीतिश्च सहस्राणि चत्वारि च समुच्छ्रयः । चतुर्णामपि मेरूणां परयोर्द्वीपयोस्तथा ॥ २०

।८४०००।

सहस्रमवगाढाश्च मेदिनीं सर्वमेरवः । दशैव स्युः सहस्राणि चतुर्णां मूलपार्थवम् ॥ २१

१०००।१००००।

एकयोजनगते मूलाद् व्यासे क्षुल्लकमेरव । हीयन्ते षड्दशांशानां भूम्याश्च दशमांशकम् ॥ २२

$\frac{6}{10}$।$\frac{1}{10}$।

केचित् क्षुल्लकमेरूणामिच्छन्ति तलरुन्द्रकम् । पञ्चनवतिं शतानां च मूलाद्धानिर्दशांशकम् ॥ २३

९५०० ।$\frac{1}{10}$।

विजयार्ध, चैत्य वृक्ष, वृषभ पर्वत, नाभि पर्वत, चित्रकूटादिक (यमक पर्वत), काचन नामक पर्वत, दिग्गजेन्द्र कूट, वक्षार और वेदिका आदि, ये सब ऊचाई, विस्तार तथा अवगाहकी अपेक्षा तीन द्वीपोमे समान माने गये हैं ॥ १७–१८ ॥ इस विषयमे दो गाथायें भी कही गई है–

मेरु पर्वतको छोडकर शेष सब पर्वत और कुण्ड आदि अवगाह एव विस्तार आदिकी अपेक्षा दोनो (जबू और धातकीखण्ड) द्वीपोमे समान है, ऐसा कितने ही आचार्य स्वीकार करते है ॥ १ ॥ मेरु पर्वतको छोडकर शेष कुलपर्वत आदि तीन (जबू, धातकीखण्ड और पुष्करार्ध) द्वीपोमे विस्तार व ऊचाईकी अपेक्षा समान है, ऐसा कितने ही आचार्य प्ररूपण करते है ॥ २ ॥

सब ही कुण्डोके आध योजन ऊची और पाच सौ (५००) धनुप प्रमाण विस्तृत ऐसी रत्नमय तोरणोसे सहित वेदिकाये होती है ॥ १९ ॥

आगोके दो द्वीपो (धातकीखण्ड और पुष्करार्ध) मे चारो ही मेरु पर्वतोकी ऊचाई अस्सी और चार अर्थात् चौरासी हजार (८४०००) योजन प्रमाण है ॥२०॥ सब मेरु पर्वत पृथिवीमे एक हजार (१०००) योजन गहरे है । मूल भागमे चार मेरु पर्वतोका विस्तार दस ही हजार (१००००) योजन प्रमाण है॥२१॥क्षुद्र मेरु मूल भागसे एक योजन ऊपर जाकर विस्तारमे छह दस भागो ($\frac{6}{10}$) से हीन तथा पृथिवीसे एक योजन ऊपर जाकर दसवे भाग ($\frac{1}{10}$) से हीन होते गये हैं ॥ २२ ॥ क्षुद्र मेरुओका तलविस्तार पचानवैं सौ (९५००) योजन प्रमाण होकर उसमे मूलकी अपेक्षा दसवे भाग ($\frac{1}{10}$) की हानि हुई है, ऐसा कुछ आचार्य स्वीकार करते है ॥ २३ ॥

---

१ आ प केईच्छति । २ व कुलपहुदीणि ३ ति प °रुच्छेहसमो ।

एकत्रिंशत्[1] सहस्राणि षट्छत विंशतिर्द्विकम्[2] । साधिकं च त्रिगव्यूति मूले परिधिरुच्यते ॥ २४

। ३१६२२ क्रो ३।

विष्कम्भा नवसहस्राणि चतु शतयुतानि हि । महीतलेषु मेरूणामुक्ता सर्वज्ञपुगवै ॥ २५

त्रिंशदेव सहस्राणि त्रिशतोनानि मानत । पञ्चविंशतियुक्तानि परिधिर्धरणीतले ॥ २६

।२९६२५ [२९७२५]।

सहस्रार्धं योजनानि भुवो गत्वा च तिष्ठति । शतपञ्चकविस्तार नन्दन वनमेव च ॥ २७

।५००।

सहस्राणि नव त्रीणि शतान्यर्धशत तथा । सनन्दनस्य विष्कम्भो मेरोर्भवति सख्यया ॥ २८

विशेषार्थ — क्षुद्र मेरुओके तलविस्तारके विषयमे दो मत हैं – (१) कितने ही आचार्योका अभिमत है कि चारो क्षुद्र मेरुओका विस्तार तल भागमे १०००० यो, पृथिवीपृष्ठपर ९४०० यो और ऊपर शिखरपर १००० यो मात्र है। उनका पृथिवीमे अवगाह १००० यो और ऊपर ऊचाई ८४००० यो प्रमाण है। इस मतके अनुसार तलभागमे लेकर पृथिवीपृष्ठ तक एक एक योजन जानेपर $\frac{६}{१०}$ भागोकी विस्तारमे हानि होती गई है। यथा – (१००००–९४००) ÷ १००० = $\frac{६}{१०}$ यो। इसके ऊपर शिखर तक उक्त विस्तारमे एक एक योजन जानेपर मात्र $\frac{१}{१०}$ यो की हानि हुई है। वह इस प्रकारसे – (९४०० – १०००) – ८४००० = $\frac{१}{१०}$ यो। (२) दूसरे आचार्योका अभिमत है कि इन क्षुद्र मेरुओका विस्तार पृथिवीतलमे ९५०० यो है। इसके ऊपर वह क्रमश हीन होकर शिखरपर मात्र १००० यो ही रह गया है। इस मतके अनुसार पृथिवीतलसे ऊपर एक एक योजन जाकर सर्वत्र समान रूपसे उसके विस्तारमे $\frac{१}{१०}$ यो की हानि होती गई है। यथा–(९५००–१०००)–(१०००+८४०००)=$\frac{१}{१०}$ यो

इन मेरु पर्वतोकी परिधिका प्रमाण मूलमे इकतीस हजार छह सौ बाईस योजन और तीन कोससे कुछ अधिक कहा जाता है — $\sqrt{१००००^२ \times १०}$ = ३१६२२$\frac{३}{४}$ योजनसे कुछ अधिक ॥ २४ ॥ सर्वज्ञ देवोके द्वारा उन मेरु पर्वतोका विस्तार पृथिवीतलपर नौ हजार चार सौ (९४००) योजन प्रमाण कहा गया है ॥२५॥ पृथिवीतलके ऊपर इन मेरु पर्वतोकी परिधि तीन सौसे रहित और पच्चीससे सहित तीस हजार अर्थात् उनतीस हजार सात सौ पच्चीस योजन प्रमाण है ॥ २६ ॥ –

$\sqrt{९४००^२ \times १०}$= २९७२५ यो। अधिकसे

पृथिवीसे इन मेरु पर्वतोके ऊपर हजारके आधे अर्थात् पाच सौ (५००) योजन जाकर पाच सौ (५००) योजन विस्तृत नन्दन वन स्थित है ॥ २७ ॥ नन्दन वनसे सहित इन मेरुओका विस्तार नौ हजार तीन सौ और सौके आधे अर्थात् पचास [९४००–($\frac{१}{१०}$×५००)=९३५०]

---

१ प त्रिंशत । २ प द्विकम् ।

सहस्राणि खलु त्रिशत्सहस्रार्धाधृ[दृ]ते[1] पुन । परिधि. सप्तषष्ठिश्च मेरोर्नन्दनबाहिर ।। २९
अष्टावेव सहस्राणि पञ्चाशत् त्रिशत पुन· । विष्कम्भो नन्दनस्यान्तो मेरोर्विद्भिरुदाहृत· ।। ३०
षड्विंशतिसहस्राणि पञ्चाग्रं च चतु शतम् । नन्दनाभ्यन्तरो मेरोः परिधि परिकीर्तितः ।। ३१
ततो गत्वा सहस्राणां पञ्चपञ्चाशत पुन । चार्धं पञ्चशतं व्यासं वन सौमनसं भवेत् ।। ३२
सौमनसे गिरव्यासस्त्रिशताष्टशत[2] बहि । परिधिर्द्वादशाभ्यस्तसहस्र[3]साधिकषोडशम्[4] ।।३३
तस्याभ्यन्तरविष्कम्भः शून्य शून्याष्टकद्विकम् । सख्याया परिधिश्चान्तश्चतुःपञ्चाष्टकाष्टकम् ।। ३४

२८०० । ८८५४ ।

ततोऽष्टाविंशतिं गत्वा सहस्राणा च षट्कक-[5] । हीनपञ्चशतव्यास पाण्डुकाख्य वन भवेत् ।।३५

२८००० । ४९४ ।

शत त्रीणि सहस्राणि द्विषष्टच्येक च गोरुतम् । साधिकं परिधिश्चाग्रे मेरूणामिति कीर्तित. ।। ३६
समरुन्द्रा नन्दनादूर्ध्वमयुत क्षुल्लकमेरवः । तत पर क्रमाद्धानिरेवं सौमनसादपि ।। ३७

योजन प्रमाण है ।। २८ ।। नन्दन वनके समीपमे इन मेरुओकी बाह्य परिधिका प्रमाण सहस्रार्ध अर्थात् पाच सौसे कम तीस हजार और सडसठ (२९५६७) योजन है ।। २९ ।। विद्वानोके द्वारा नन्दन वनके भीतर (नन्दन वनसे रहित) मेरुका विस्तार आठ हजार तीन सौ पचास (८३५०) योजन प्रमाण कहा गया है ९३५० – (५०० + ५००) = ८३५० यो ।।३० ।। नन्दन वनके भीतर मेरुकी अभ्यन्तर परिधिका प्रमाण छव्वीस हजार चार सौ पाच (२६४०५) योजन निर्दिष्ट किया गया है ।। ३१ ।।

नन्दन वनसे पचपन हजार पाच सौ (५५५००) योजन ऊपर जाकर पाच सौ (५००) योजन विस्तृत सौमनस वन स्थित है ।। ३२ ।। सौमनस वनके समीपमे मेरु पर्वतका बाह्य विस्तार अडतीस सौ (३८००) योजन और उसकी परिधि बारह हजार सोलह (१२०१६) योजनसे कुछ अधिक है ।। ३३ ।। उसका अभ्यन्तर विस्तार अकक्रमसे शून्य, शून्य, आठ और दो अर्थात् दो हजार आठ सौ (२८००) योजन तथा उसकी अभ्यन्तर परिधि चार, पाच, आठ और आठ इन अकोके क्रमसे जो सख्या (८८५४) प्राप्त हो उतने योजन प्रमाण है ।।३४।।

सौमनस वनसे अट्ठाईस हजार (२८०००) योजन ऊपर जाकर छह (चूलिकाका अर्ध विस्तार) से कम पाच सौ (४९४) योजन विस्तृत पाण्डुक वन है ।। ३५ ।। शिखरपर मेरुओकी परिधि तीन हजार एक सौ वासठ योजन और एक कोस (३१६२$\frac{1}{4}$यो) से कुछ अधिक कही गई है ।। ३६ ।। क्षुद्र मेरु नन्दन वनसे ऊपर दस हजार (१००००) योजन तक समान विस्तारवाले तथा इसके ऊपर क्रमश हीन विस्तारवाले है । विस्तारका यह क्रम सौमनस वनके ऊपर भी जानना चाहिये ।। ३७ ।।

१ व °सहस्रार्धधृते । २ व त्रिसहस्राष्टशत । ३ आ प परिधिद्वादशा° । ४ प षोडशः । ५ आ प पट्कक ।

भद्रसालवनं भौ[भू]मौ मेखलाया च नन्दनम् । तत सौमनस चैव शिखरे पाण्डुक वनम् ॥ ३८
शिला[1] पुष्करिणी कूट भवनान्यपि चूलिका । समानि सर्वमेरूणा चैत्यानीति विनिश्चितम् ॥ ३९
एक षण्णवक शून्यमेकमेक कृतिद्व[र्द्व]यो । स्थानकै परिधिर्बाह्यो भवेद्धातकिषण्डके ॥ ४०

। ४११०९६१ ।

धातकीखण्डमावृत्य स्थित कालोदकार्णव । पुरत. पुष्करद्वीपस्तस्मात्तत्परिवारक ॥ ४१
पञ्च शून्य च षट् शून्य सप्तैक नव च क्रमात् । कालोदकसमुद्रस्य बाह्यः परिधिरुच्यते ॥ ४२

। ९१७०६०५ ।

कालोदकसमुद्राद्या समाग्रच्छिन्नतीरका । सहस्रमवगाढाश्च वेदिकाद्वयसवृता. ॥ ४३
कालोदकसमुद्रस्य पूर्वे झषमुखा नरा । दक्षिणे हयकर्णा स्यु पश्चिमे पक्षिवक्त्रका ॥ ४४
उत्तरे गजकर्णाश्च क्रोडकर्णा विदिग्गता । इन्द्रेशानान्तराद्यासु अष्टास्वन्तरदिक्षु च ॥ ४५
गवोष्ट्रकर्णा मार्जारबिडालास्या भवन्ति च । कर्णप्रावरणाश्छागमार्जारोतुमुखा क्रमात् ॥ ४६
विजयार्धाग्रत [2] शिशुमारास्या मकरास्यका । कालोदकसमुद्रस्य पूर्वापरयो स्थिता ॥ ४७

उपर्युक्त चार वनोमे भद्रशाल वन भूमिपर, नन्दन तथा सौमनस वन मेखलाके ऊपर, तथा पाण्डुक वन शिखरपर अवस्थित है ॥ ३८ ॥ सब मेरुओको शिलाये, वापिकाये, कूट, भवन, चूलिका और जिनभवन, ये सब विस्तारादिमे निश्चयसे समान हैं ॥ ३९ ॥

धातकीखण्ड द्वीपकी बाह्य परिधि एक, छह, नौ, शून्य, एक, एक तथा दोका वर्ग (४) इन अकोके अनुसार इकतालीस लाख दस हजार नौ सौ इकसठ (४११०९६१) योजन प्रमाण है ॥ ४० ॥

धातकीखण्ड द्वीपको घेरकर कालोदक समुद्र स्थित है । उसके आगे उसको वेष्टित करनेवाला पुष्करद्वीप अवस्थित है ॥ ४१ ॥ कालोदक समुद्रकी बाह्य परिधिका प्रमाण अक-क्रमसे पाच, शून्य, छह, शून्य, सात, एक और नौ (९१७०६०५) अर्थात् इक्यानवै लाख सत्तर हजार छह सौ पाच योजन प्रमाण कहा जाता है ॥ ४२ ॥ कालोदक समुद्रको आदि लेकर आगेके सब समुद्र टाकीसे उकेरे गयेके समान तीरवाले, हजार योजन गहरे, और दो वेदिकाओसे वेष्टित हैं ॥ ४३ ॥

कालोदक समुद्रके पूर्वमे रहनेवाले कुमानुष मत्स्यमुख, दक्षिणमे अश्वकर्ण, पश्चिममे पक्षिमुख और उत्तरमे गजकर्ण है । विदिशाओमे स्थित वे कुमानुष शूकरकर्ण हैं । पूर्व और ईशानके अन्तर्भाग आदि रूप आठ अन्तर्दिशाओमे स्थित उक्त कुमानुष आकारमे क्रमश इस प्रकार हैं — गोकर्ण, उष्ट्रकर्ण, मार्जारमुख, बिडाल (मार्जार) मुख, कर्णप्रावरण, छाग (बकरा) मुख, मार्जारमुख और मार्जारमुख ॥४४–४६॥ कालोदक समुद्रके पूर्वापर भागोमे स्थित विजयार्ध पर्वतके आगे स्थित अन्तरद्वीपोमे रहनेवाले कुमानुष शिशुमारमुख व मकरमुख हैं ॥ ४७ ॥

---

१ ब शिला । २ । आ प °र्धागत ।

वृकास्या व्याघ्रवक्त्राश्च तथा हिमवदग्रतः । ऋक्षास्याश्च शृगालास्याः स्थिताः शृङ्गिनगाग्रत ॥
द्वीपिकास्याश्च भृङ्गारमुखा रूप्यनगाग्रत । बाह्यतोऽभ्यन्तरायाश्च जगत्या अन्तराश्रिताः ॥ ४९
दिगन्तरदिशाद्वीपाः सार्धपञ्चशत तटात् । सौकरा षट्छतानीत्वा इतरे सार्धषट्छतम् ॥ ५०
५५० । ६०० । [६५०]
दिग्गता द्विशतव्यासा शतव्यासा विदिग्गता । शेषाः पञ्चशत व्यस्ता द्वीपा कालोदके स्थिता ॥५१
वर्णाहारगृहायुर्भि समा गत्या च लावणै । द्वीपानामवगाहस्तु जलान्त स्यात्सहस्रकम् ॥ ५२
उक्त च जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तौ [११–५४]—
कोसेक्कसमुत्तुंगा पलिदोवमआउगा समुद्दिट्ठा । आमलयपमाहारा चउत्थभत्तेण पारन्ति ॥ ३
चतुर्विंशतिरन्तस्थास्तावन्तश्च बहिःस्थिताः । एते तु लवणोदस्थैः सह षण्णवति [1] स्मृताः ॥ ५३
तृतीय. पुष्करद्वीप. पुष्कराख्यद्रुमध्वजः [2] । पृथु शतसहस्राणि षोडशेति निर्दशित ॥ ५४
। १६०००००।
चत्वारिंशच्च पञ्चापि नियुतानि प्रमाणतः । मानुषक्षेत्रविस्तार सार्धद्वीपद्वय च तत् ॥ ५५
। ४५०००००।

हिमवान् पर्वतके आगे वृकमुख और व्याघ्रमुख तथा शृंगी (शिखरी) पर्वतके आगे ऋक्ष (रीछ)-मुख और शृगालमुख कुमानुष स्थित है ॥ ४८ ॥ विजयार्ध पर्वतके आगे बाह्य और अभ्यन्तर जगतीके अन्तरालमे द्वीपिकमुख और भृंगारमुख कुमानुष स्थित है ॥ ४९ ॥

दिशागत और अन्तरदिशागत द्वीप समुद्रतटसे पाच सौ पचास (५५०) योजन, सौकर द्वीप छह सौ (६००) योजन और इतर (विदिशागत) द्वीप साढे छह सौ (६५०) योजन जाकर स्थित है ॥ ५० ॥ कालोदक समुद्रमे स्थित इन द्वीपोमे दिग्गागत दो सौ (२००) योजन, विदिशागत सौ (१००) योजन ओर शेष द्वीप पाच सौ (५००) योजन विस्तृत है ॥ ५१ ॥ इन द्वीपोमे रहनेवाले कुमानुष वर्ण, आहार, गृह, आयु और गतिसे भी लवण समुद्रमे स्थित द्वीपोमे रहनेवाले कुमानुषोके समान है। उन द्वीपोका अवगाह जलके भीतर एक हजार योजन मात्र है ॥ ५२ ॥ जबूद्वीपप्रज्ञप्तिमे कहा भी है —

अन्तरद्वीपोमे रहनेवाले वे कुमानुष एक कोस ऊचे, पल्योपम प्रमाण आयुवाले, तथा आवलेके बराबर आहारके ग्राहक होकर चतुर्थभक्त (एक दिनके अन्तर)से भोजन करते है ॥३॥

कालोदक समुद्रके भीतर चौवीस (२४) द्वीप अभ्यन्तर भागमे स्थित है तथा उतने (२४) ही उसके बाह्य भागमे भी स्थित है। लवणोद समुद्रमे स्थित अन्तरद्वीपोके साथ ये सब द्वीप छ्यानबै (९६) माने गये है॥ ५३ ॥

पुष्कर नामक वृक्षसे चिह्नित तीसरा पुष्करद्वीप है। इसका विस्तार सोलह लाख (१६०००००) योजन प्रमाण बतलाया गया है ॥ ५४ ॥ मनुष्यलोकका विस्तार चालीस और पाच अर्थात् पैतालीस लाख (४५०००००) योजन प्रमाण है। वह मनुष्यलोक अढाई द्वीपस्वरूप

---

१ आ प पण्णवति । २ आ प ध्रुमध्वज ।

सप्त द्विक चतुष्क च शून्य शून्य च सप्तकम् । एकमेक च मध्य. स्यात्परिधि पुष्करार्धके ॥ ५६
। ११७००४२७ ।
पुष्करार्धस्य[1] बाह्ये च परिधिर्नवचतुष्टयम् । द्विक शून्य त्रिक द्वे च चतुष्क चैकमिष्यते ॥ ५७
। १४२३०२४९ ।
चतु सहस्र द्विशत दशक दश चाशका । एकान्नविंशतेर्व्यास पुष्करे हिमवद्गिरे ॥ ५८
४२१० । $\frac{१०}{१९}$ ।
चतुर्गुणा च वृद्धिश्चा[2] निषधाद्धानिश्च नीलत । द्वीपार्धव्यासदीर्घाश्च शैला शेषश्च पूर्ववत् ॥५९
चत्वार्यष्टौ च षट्क च पञ्चक पञ्चक त्रिकम् । पर्वतैरवरुद्ध च क्षेत्र स्यात्पुष्करार्धके ॥ ६०
। ३५५६८४ ।
आदिमध्यान्तपरिधिष्वद्रिरुद्धक्षितिं पुन । शोधयित्वावशेषश्च सर्वभूव्यासमेलनम् ॥ ६१
अभ्यन्तरपरिधौ पर्वतरहितक्षेत्र ८८१४९२१ । मध्यम ११३४४७४० । बाह्य १३८७४५६५ ।
भरताभ्यन्तरविष्कम्भो नवसप्तेष्वेकवार्धय । त्रिसप्ततिशत भागा द्वादश द्विशतस्य च ॥ ६२
। ४१५७९ । $\frac{१७३}{२१२}$

है ॥ ५५ ॥ सात, दो, चार, शून्य, शून्य, सात, एक और एक, इतने अकोके क्रमसे जो सख्या (११७००४२७) हो उतने योजन प्रमाण पुष्करार्ध द्वीपकी मध्य परिधि है ॥ ५६ ॥ अकक्रमसे नौ, चार, दो, शून्य, तीन, दो, चार और एक (१४२३०२४९) इतने योजन प्रमाण पुष्करार्ध द्वीपकी बाह्य परिधि मानी जाती है ॥ ५७ ॥

पुष्करार्ध द्वीपमे हिमवान् पर्वतका विस्तार चार हजार दो सौ दस योजन और एक योजनके उन्नीस भागोमे दस भाग (४२१०$\frac{१०}{१९}$ यो) प्रमाण है ॥ ५८ ॥ आगेके पर्वत निषध पर्वत पर्यंत उत्तरोत्तर चौगुणे विस्तारवाले है। फिर नील पर्वतसे आगे इसी क्रमसे उनके विस्तारमे हानि होती गई है। इन पर्वतोकी लबाई पुष्करार्ध द्वीपके विस्तार (८ लाख यो) के बराबर है। शेष वर्णन पहिलेके समान है ॥ ५९ ॥

अकक्रमसे चार, आठ, छह, पाच, पाच और तीन (३५५६८४) इतने योजन प्रमाण क्षेत्र पुष्करार्ध द्वीपमे पर्वतोसे अवरुद्ध है ॥ ६० ॥ पुष्करार्ध द्वीपकी आदि, मध्य और अन्त परिधियोके प्रमाणमेसे पर्वतरुद्ध क्षेत्रके कम कर देनेपर शेष सब क्षेत्रोका सम्मिलित विस्तार होता है ॥ ६१ ॥ अभ्यन्तर परिधिमे पर्वतरहित क्षेत्र ८८१४९२१ यो , मध्यम परिधिमे ११३४४७४० यो और बाह्य परिधिमे वह १३८७४५६५ यो है। भरतक्षेत्रका अभ्यन्तर विस्तार नौ, सात, इषु (पाच), एक और समुद्र अर्थात् चार इन अकोके क्रमसे जो सख्या उपलब्ध हो उतने योजन और एक योजनके दो सौ बारह भागोमे एक सौ तिहत्तर भाग (४१५७९$\frac{१७३}{२१२}$ यो)

१ आ प पुष्कपुष्क° । २ प वृद्धिश्च ।

मध्यव्यासो द्विक चैक पञ्चकं त्रीणि पञ्चकम् । नवनवशत[1] भागा द्वादश द्विशतस्य च ॥६३

। ५३५१२ । $\frac{१९९}{२१२}$ ।

षट् चतुष्क चतुष्क च पञ्चक षट्कमशकाः । त्रयोदशबहिर्व्यासो द्वादश द्विशतस्य च ॥ ६४

६५४४६ । $\frac{१३}{२१२}$ ।

त्रिस्थानभरतव्यासाद् वृद्धिर्हैमवतादिषु । चतुर्गुणा विदेहान्त ततो हानिरनुक्रमात् ॥ ६५

है १६६३१९ । $\frac{५६}{२१२}$ । २१४०५१ । $\frac{१६०}{२१२}$ । २६१७८४ । $\frac{५२}{२१२}$ । ह ६६५२७७ । $\frac{१२}{२१२}$
८५६२०७ $\frac{४}{२१२}$ । १०४७१३६ । $\frac{२०८}{२१२}$ । वि २६६११०८ । $\frac{४८}{२१२}$ । ३४२४८२८ । $\frac{१६}{२१२}$ ।
४१८८५४७ । $\frac{२१६}{५१२}$ (?) ।

पुष्करद्वीपमध्यस्थ प्राकारपरिमण्डल.[2] । मानुषोत्तरनामा तु सौवर्ण. पर्वतोत्तम· ॥ ६६
[3]शतं सप्तदशाभ्यस्तमेकविंशमथोच्छ्रित । अन्तश्छिन्नतटो बाह्य पार्श्व तस्य क्रमोन्नतम् ॥ ६७

। १७२१ ।

प्रमाण है – पुष्करार्धकी अभ्यन्तर परिधि ९१७०६०५, पर्वतरुद्ध क्षेत्र ३५५६८४, (९१७०६०५ –३५५६८४–२१२×१)=४१५७९ $\frac{१७३}{२१२}$ यो. ॥ ६२ ॥ उसका मध्य विस्तार अकक्रमसे दो, एक, पाच, तीन और पाच (५३५१२) इतने योजन और एक योजनके दो सौ बारह भागोमे नौ, नौ और सौ अर्थात् एक सौ निन्यानबै भाग प्रमाण है— पु द्वी मध्य परिधि ११७००४२७ यो , (११७००४२७ – ३५५६८४) ÷ (२१२ × १) = ५३५१२ $\frac{१९९}{२१२}$ यो ॥ ६३ ॥ उसका बाह्य विस्तार अक क्रमसे छह, चार, चार, पाच और छह (६५४४६) इतने योजन और एक योजनके दो सौ बारह भागोमेसे तेरह भाग प्रमाण है– पु द्वी बाह्य परिधि १४२३०२४९, (१४२३०२४९ – ३५५६८४)–२१२×१ = ६५४४६ $\frac{१३}{२१२}$ यो ॥ ६४ ॥

उपर्युक्त प्रकारसे जो भरतक्षेत्रका तीन स्थानोमे विस्तार बतलाया गया है उससे विदेह पर्यंत हैमवत आदि क्षेत्रोमे उत्तरोत्तर चौगुणी वृद्धि हुई है । विदेहसे आगेके क्षेत्रोके विस्तारमे उसी क्रमसे हानि होती गई है ॥ ६५ ॥ हैमवत क्षेत्रका अ विस्तार १६६३१९ $\frac{५६}{२१२}$ म वि २१४०५१ $\frac{१६०}{२१२}$, बा वि २६१७८४ $\frac{५२}{२१२}$ । हरिवर्ष अ वि ६६५२७७ $\frac{१२}{२१२}$, म वि ८५६२०७ $\frac{४}{२१२}$, बा वि १०४७१३६ $\frac{२०८}{२१२}$ । विदेह अ वि २६६११०८ $\frac{४८}{२१२}$, म वि ३४२४८२८ $\frac{१६}{२१२}$, बा वि ४१८८५४७ $\frac{१९६}{२१२}$ ।

पुष्कर द्वीपके बीचमे जो मानुषोत्तर नामक सुवर्णमय उत्तम पर्वत स्थित है वह कोटके घेरेके समान है ॥ ६६ ॥ वह पर्वत सत्तरह सौ इक्कीस (१७२१) योजन ऊचा है । उसका अभ्यन्तर तट टाकीसे छेदे गयेके समान और बाह्य पार्श्वभाग क्रमसे ऊचा है ॥ ६७ ॥ इस

---

१ ब नवनवतिशत । २ प मण्डले । ३ प 'शत सप्तदशा' इत्यादिश्लोको नास्ति ।

मूले सहस्र द्वाविंश चतुर्विंश चतु शतम् । अग्रे मध्ये च विस्तारस्त[द्]द्वयार्धमिति[1] स्मृत ॥ ६८

। ७२३ ।

त्रीण्येक सप्तषट्त्रीणि द्वे चत्वार्येकक भवेत् । साधिक च परिक्षेपो मानुषोत्तरपर्वते ॥ ६९

। १४२३६७१३ ।

सहस्र त्रिशत त्रिंशद्दण्डा स्युर्हस्त एकक. । दशाङ्गुलानि पञ्चैव जवाश्चाधिकमानकम् ॥ ७०

। हृ १ अं १० ज ५ ।

अर्धयोजनमुद्विद्धा पादगोरुतविस्तृता । वेदिका शिखरे तस्य चतुर्दशगुहश्च स ॥ ७१

। द २५०० ।

चतुर्दश महानद्यो बाह्या गत्वार्धपुष्करे । गुहासु पुष्करोद च गता' कालोदकं परा ॥ ७२
त्रीणि त्रीणि तु कूटानि प्रत्येक दिक्चतुष्टये । पूर्वयोर्विदिशोश्चैव तान्यष्टादश पर्वते ॥ ७३
सर्वेषु तेषु कूटेषु गरुडेन्द्रपुराणि[2] तु । गिरिकन्याकुमाराश्च वसन्ति गरुडान्वया ॥ ७४
षडग्नीशानकूटेषु सुपर्णकुलसभवा: । कुमारा: शेषकूटेषु दिक्कुमार्यो वसन्ति च ॥ ७५
तस्य दिक्ष्वपि चत्वारि यर्हदायतनानि[3] हि । नैषधै' सममानानि इष्वाकारगिरिष्वपि ॥ ७६

पर्वतका विस्तार मूलमे एक हजार बाईस (१०२२) योजन, ऊपर शिखरपर चार सौ चौबीस (४२४) योजन और मध्यमे उन दोनोके अर्धभाग अर्थात् सात सौ तेईस (१०२२+४२४= ७२३) योजन प्रमाण माना गया है ॥ ६८ ॥ मानुषोत्तर पर्वतकी परिधि अकक्रमसे तीन, एक, सात, छह, तीन, दो, चार और एक (१४२३६७१३) इतने योजनसे कुछ अधिक है ॥ ६९ ॥ परिधिकी इस अधिकताका प्रमाण एक हजार तीन सौ तीस धनुष, एक हाथ, दस अगुल और पाच जौ है– दण्ड १३३०, हाथ १, अगुल १०, जौ ५ ॥ ७० ॥ इस पर्वतके शिखर-पर जो वेदिका स्थित है वह आधा योजन ऊची और पाव कोससे सहित एक कोस (दण्ड २५००) विस्तृत है । यह पर्वत चौदह गुफाओसे सयुक्त है ॥ ७१ ॥ पुष्करार्ध द्वीपमे स्थित बाह्य चौदह नदियाँ इन गुफाओमेसे जाकर पुष्करोद समुद्रको प्राप्त हुई हैं और शेष चौदह नदियाँ कालोदक समुद्रको प्राप्त हुई है ॥ ७२ ॥

इस पर्वतके ऊपर चारो दिशाओमेसे प्रत्येक दिशामे तीन तीन तथा पूर्व दो विदिशाओ (ईशान व आग्नेय) मे भी तीन तीन कूट स्थित हैं । इस प्रकार उसके ऊपर सब अठारह (१८) कूट स्थित हैं ॥ ७३ ॥ उन सब कूटोके ऊपर गरुडेन्द्रके नगर हैं जिनमे गरुड-वशीय गिरिकन्याये और गिरिकुमार रहते हैं ॥७४॥ उनमेसे अग्नि और ईशान कोणके कूटोपर सुपर्ण (गरुड) कुलमे उत्पन्न हुए कुमार (सुपर्णकुमार) तथा शेष कूटोके ऊपर दिक्कुमारिया रहती है ॥ ७५ ॥ उक्त पर्वतकी चारो दिशाओमे चार अर्हदायतन (जिनभवन) स्थित हैं जो

---

१ ब तद्वयोर्धमिति । २ प गरुणेन्द्र' । ३ आ प चत्वारिहर्यदा' ।

विविधरत्नमयानतिभासुरान्
सुरसहस्रनुतार्चितरक्षितान् ।
जिनगृहान् द्विकहीनचतुःशता-
नभिनमामि[1] नरक्षितिसंश्रितान् ।। ७७

इति लोकविभागे मानुषक्षेत्रविभागो नाम तृतीय प्रकरणं समाप्तम् ।। ३ ।।

विस्तारादिमे निषध पर्वतके ऊपर स्थित जिनभवनोके समान हैं । इसी प्रकारके जिनभवन इष्वाकार पर्वतोके ऊपर भी स्थित है ।। ७६ ।।

मध्य लोकमे जो अनेक प्रकारके रत्नमय जिनभवन स्थित है वे अतिशय देदीप्यमान होते हुए हजारो देवोके द्वारा नमस्कृत, पूजित एव रक्षित है । उन सबकी सख्या दो कम चार सौ (३९८) है । उन सबको मैं नमस्कार करता हू ।। ७७ ।।

इस प्रकार लोकविभागमे मानुषक्षेत्र विभाग नामक तृतीय प्रकरण समाप्त हुआ ।।३।।

---

१ ब शतारभिनमामि

[चतुर्थो विभागः]

जम्बूद्वीप समुद्रश्च [1]लावणस्तस्य वाहिरः । द्वीपश्च धातकीखण्ड [2] कालोदः पुष्करस्तथा ।। १
पुष्कर परिवृत्यास्थात् [3] पुष्करोदस्तु सागर । वारुणीवरनामा च द्वीपस्तन्नामसागर ।। २
तत क्षीरवरो द्वीप सागरश्च तदाह्वय. । ततो घृतवरो द्वीपो घृतोदश्चापि सागर ।। ३
तत क्षौद्रवरो द्वीपस्तन्नामैव च सागर । नन्दीश्वरस्ततो द्वीपः सागरश्च तदाह्वय. [4] ।। ४
अरुणो नामतो द्वीपोऽरुणाभासवरश्च स । कुण्डलो नामतो द्वीपस्तत शङ्खवरोऽपि च ।। ५
रुचकोऽत परो द्वीपो भुजगोऽपि च नामत । द्वीप कुशवरो नाम्ना तत क्रौञ्चवरोऽपि च ।। ६
जम्बूद्वीपादयो द्वीपा नामत षोडशोदिता. । द्वीपनामान एव स्यु पुष्करोदादिसागरा [5] ।। ७
असख्येयाँस्ततोऽतीत्य द्वीपो नाम्ना मन शिल । हरितालश्च सिन्दूर [6] श्यामकोऽञ्जन एव च ।।८
द्वीपो हिङ्गुलिकाह्वश्च तस्माद् रूप्यवर परः । सुवर्णवर इत्यन्यस्ततो वज्रवरोऽपि च ।। ९
वैडूर्यवरसज्ञश्च ततो नागवरोऽपि च । ततो भूतवरो [7] द्वीपस्ततो यक्षवर पर ।। १०
ततो देववरो द्वीपस्ततोऽहीन्द्रवर पर । स्वयभूरमणश्चान्त्य सागरास्तत्सनामका [8] ।।११
षोडशैते वहिर्द्वीपा भाषिता नामभिर्जिनै । असख्येयाश्च मध्यस्था शुभाख्या द्वीपसागरा ।। १२

सब द्वीपोके मध्यमे जबूद्वीप है और उसके वाह्य भागमे लवण समुद्र है । उसके आगे धातकीखण्ड द्वीप व कालोदक समुद्र है । तत्पश्चात् पुष्करद्वीप और उसके आगे पुष्करद्वीपको घेरकर पुष्करोद समुद्र स्थित है। इसके आगे वारुणीवर द्वीप और उसीके नामका समुद्र, क्षीरवर द्वीप और उसीके नामका समुद्र, उसके आगे घृतवर द्वीप, घृतवर समुद्र, क्षौद्रवर द्वीप, क्षौद्रवर समुद्र, नन्दीश्वर द्वीप, नन्दीश्वर समुद्र, इसके आगे अपने [अपने नामवाले समुद्रोसे सयुक्त] अरुण द्वीप, अरुणाभासवर द्वीप, कुण्डल द्वीप, शखवर द्वीप, रुचक द्वीप, भुजग द्वीप, कुशवर द्वीप और क्रौचवर द्वीप, इस प्रकार जबूद्वीप आदि नामोंसे प्रसिद्ध ये सोलह (१६) द्वीप कहे गये है । पुष्करोद समुद्रको आदि लेकर आगेके सब समुद्र अपने अपने द्वीप जैसे नामवाले है ।।१-७।।

इसके आगे असख्यात द्वीप-समुद्रोको लाघकर मन शिल नामक द्वीप स्थित है । उसके आगे क्रमश हरिताल, सिन्दूर, श्यामक, अजन, हिंगुलिक, रूप्यवर, सुवर्णवर, वज्रवर, वैडूर्यवर, नागवर, भूतवर, यक्षवर, देववर, अहीन्द्रवर और अन्तिम स्वयम्भूरमण द्वीप, इस प्रकार ये सोलह (१६) द्वीप अपने अपने नामवाले सोलह समुद्रोसे सयुक्त होते हुए वाह्य भागमे स्थित हैं। जिन भगवान्ने इन्हे इन नामोसे कहा है । क्रौंचवर समुद्र और मन शिल द्वीपके मध्यमे स्थित जो असख्यात द्वीप-समुद्र हैं वे भी उत्तम नामोवाले हैं ।। ८-१२ ।।

---

१ प लवणा° । २ आ ब षण्ड । ३ प वृत्यास्स्यात् । ४ आ ब तदाह्वक । ५ प सागर । ६ आ प सिंधूर. । ७ आ प °वरौ । ८ प °स्ततनामका ।

वारुणीलवणस्वादौ घृतक्षीररसावपि । असामान्यरसा एते कालान्त्यौ केवलोदकौ ॥ १३
मधुमिश्रजलास्वादस्तृतीयः पुष्करोदक । शेषा इक्षुरसास्वादा असंख्येया[1] महार्णवाः ॥ १४

उक्तं च त्रिलोकसारे [३१९]--

लवण वारुणितियमिदि कालदुगतिमसयभुरमणमिदि। पत्तेयजलसुवादा अवसेसा होति उच्छुरसा॥

लवणाब्धौ[2] च कालोदे स्वयभूरमणोदधौ । जीवा जलचरा. सन्ति न च शेषेषु वार्धिषु ॥ १५
[3]व्यतीतद्वीपवार्धिभ्यो विस्तारे चक्रवालके । एकेन नियुतेनैको द्वीपोऽब्धिर्वातिरिच्यते ॥ १६
मन्दरार्धाद् गता[4] रज्जुरर्धा प्राप्तान्त्यवारिधे । अन्त तदर्धमस्यान्तस्तथा द्वीपेऽर्णवेऽपरे ॥ १७
आद्यार्धितार्धरज्जुश्च स्वयंभूरमणोदधे । तटात्पर सहस्राणां गत्वाऽस्थात्पञ्चसप्ततिम् ॥ १८

। ७५००० ।

वारुणीवर, लवणोद, घृतवर और क्षीरवर ये चार समुद्र स्वादमे असामान्य रस अर्थात् अपने अपने नामोके अनुसार रसवाले है। कालोदक समुद्र और अन्तिम स्वयम्भूरमण समुद्र ये दो समुद्र केवल जलके स्वादवाले हैं। तीसरा पुष्करोदक समुद्र मधुमिश्रित जलके स्वादसे सयुक्त, तथा शेष असख्यात समुद्र इक्षुरसके समान स्वादवाले है ॥ १३-१४ ॥ त्रिलोकसारमे भी कहा है —

लवणसमुद्र और वारुणीत्रिक अर्थात् वारुणीवर, क्षीरवर और घृतवर ये तीन समुद्र प्रत्येकजलस्वाद अर्थात् अपने अपने नामके अनुसार स्वादवाले हैं। कालोदक और पुष्करवर ये दो तथा अन्तिम स्वयम्भूरमण ये तीन समुद्र सामान्य जलके स्वादसे सयुक्त है। शेष सब समुद्रोका स्वाद इक्षुरसके समान है ॥ १ ॥

लवणसमुद्र, कालोदक और स्वयम्भूरमण समुद्रमे जलचर जीव है। शेष समुद्रोमे जलचर जीव नही है ॥ १५ ॥ मण्डलाकार विस्तारमे विगत द्वीप-समुद्रोके विस्तारकी अपेक्षा आगेके द्वीप अथवा समुद्रका विस्तार एक लाख योजनसे अधिक होता है ॥ १६ ॥

उदाहरण-- जैसे जबूद्वीप, लवणसमुद्र, धातकीखण्ड और कालोदक समुद्र इन विगत द्वीप-समुद्रोका विस्तार १५ लाख योजन प्रमाण (१+२+४+८=१५ लाख) है, अत एव आगेके पुष्कर द्वीपका विस्तार इससे एक लाख योजनसे अधिक होकर सोलह (१६) लाख योजन प्रमाण होगा।

मन्दर पर्वतके अर्ध (मध्य) भागसे गई हुई अर्ध राजु अन्तिम (स्वयम्भूरमण) समुद्रके अन्त भागको प्राप्त हुई है। उसका (अर्ध राजुका) आधा भाग इसी समुद्रके भीतर [अभ्यन्तर तटसे ७५००० यो आगे जाकर] प्राप्त होता है। यही क्रम पिछले द्वीप और समुद्रमे समझना चाहिये ॥१७॥ प्रथम वार अर्धित अर्ध राजुका आधा भाग स्वयम्भूरमण समुद्रके अभ्यन्तर तटसे

१ प असख्येय । २ आ प लवणाब्धौ । ३ प व्यतीत्य° । ४ प मन्दार्धागता ।

स्वद्विभागयुतामस्थात्सहस्राणा पञ्चसप्ततिम् । खण्डिता सा तटाद् गत्वा द्वीपस्यापरस्य च ॥१९

। ११२५०० ।

स्वद्वयशपादसंयुक्त पञ्चसप्ततिसहस्रकम् । पश्चिमाब्धेस्ततटाद् गत्वा खण्डिता सा पुन स्थिता ॥

। १३१२५० ।

अभ्यन्तरतटादेवमात्मार्धाङ्घ्रचष्टमादिभि । युता तावत्सहस्राणा गत्वास्थात् पञ्चसप्ततिम् ॥२१

। १४०६२५ । इत्यादि ।

सूच्यङ्गुलस्य सख्यातरूपयुक्छेदमानका । याव्द् द्वीपार्णवा यन्ति ततोऽस्थात् सार्धलक्षकम् ॥२२

। १५०००० ।

पतितौ लवणे च्छेदौ[1] द्वौ[2] चैको भरतान्त्यके । निषधे चैकच्छेदो[3] द्वौ छेदौ च कुरुष्वपि ॥ २३

आगे पचत्तर हजार (७५०००) योजन जाकर स्थित हुआ है ॥१८॥ उसका भी अर्ध भाग स्वयम्भूरमण द्वीपके अभ्यन्तर तट (वेदिका) से आगे अपने द्वितीय भागसे सहित पचत्तर हजार अर्थात् एक लाख साढे बारह हजार ($७५००० + \frac{७५०००}{२} = ११२५००$) योजन जाकर स्थित हुआ है॥१९॥ उसका अर्ध भाग पिछले समुद्रके अभ्यन्तर तटसे आगे अपने द्वितीय भाग और चतुर्थ भागसे सहित पचत्तर हजार अर्थात् एक लाख इकतीस हजार दो सौ पचास ($७५००० + \frac{७५०००}{२} + \frac{७५०००}{४} = १३१२५०$) योजन जाकर स्थित हुआ है ॥ २० ॥ इसी प्रकारसे उत्तरोत्तर अर्धित राजुका अर्ध भाग यथाक्रमसे पिछले द्वीप-समुद्रोकी अभ्यन्तर वेदिकासे आगे अपने अर्ध (द्वितीय), पाद (चतुर्थ) और आठवे आदि भागोसे सहित पचत्तर हजार (यथा – $७५००० + \frac{७५०००}{२} + \frac{७५०००}{४} + \frac{७५०००}{८} = १४०६२५$ इत्यादि) योजन जाकर स्थित हुआ है ॥ २१ ॥ इस प्रकार सख्यात अकोसे सयुक्त सूच्यगुलके अर्धच्छेद प्रमाण द्वीप-समुद्रो तक उपर्युक्त क्रमसे राजुके अर्धच्छेद द्वीप-समुद्रमे पडते जाते है। तत्पश्चात् लवणसमुद्र तक शेष सब द्वीप-समुद्रोमे वे डेढ लाख (जैसे – ६४ लाख, ३२ लाख, १६ लाख और ८ लाख) के क्रमसे गिरते है ॥ २२ ॥ लवण समुद्रमे दो अर्धच्छेद, भरतक्षेत्रके अन्तमे एक, निषध पर्वतपर एक, और दो अर्धच्छेद कुरुक्षेत्रमे भी पडे है (?) ॥ २३ ॥

विशेषार्थ– वृत्ताकार समस्त मध्यलोकका विस्तार एक राजु प्रमाण माना गया है। वह मेरु पर्वतके मध्य भागसे स्वयम्भूरमण समुद्र तक आधा राजु एक ओर तथा उसी मेरुके मध्य भागसे स्वयम्भूरमण समुद्र तक आधा राजु दूसरी ओर है। इस अर्ध राजुके यदि उत्तरोत्तर अर्धच्छेद किये जावे तो उनके पडनेका क्रम इस प्रकार होगा– राजुको आधा करनेपर उसका वह अर्ध भाग मेरुके मध्य भागसे लेकर अन्तिम स्वयम्भूरमण समुद्रके अन्तमे जाकर पडता है। फिर उसका (अर्ध राजुका) आधा भाग इसी स्वयम्भूरमण समुद्रकी अभ्यन्तर वेदिकासे आगे ७५००० योजन जाकर इसी समुद्रके भीतर पडता है। इसका कारण यह है कि इस वृत्ताकार मध्य लोकके विस्तारमे पिछले समस्त द्वीप-समुद्रोके विस्तारकी अपेक्षा आगेके द्वीप

१ आ प लवणे छेदौ। २ ब 'द्वौ'नास्ति। ३ प छेदौ।

द्वीपस्य प्रथमस्यास्य व्यन्तरोऽनादरः प्रभुः । सुस्थिरो लवणस्यापि प्रभासप्रियदर्शनौ ॥ २४
कालश्चैव महाकाल. कालोदे दक्षिणोत्तरौ । पद्मश्च पुण्डरीकश्च पुष्कराधिपती सुरौ ॥ २५
चक्षुष्मॉश्च सुचक्षुश्च मानुषोत्तरपर्वते । द्वौ द्वावेव सुरौ वेद्यौ द्वीपे तत्सागरेऽपि च ॥ २६
श्रीप्रभश्रीधरौ देवौ वरुणो वरुणप्रभ· । मध्यश्च मध्यमश्चोभौ वारुणीवरसागरे ॥ २७

अथवा समुद्रका विस्तार एक लाख योजनसे अधिक होता गया हे (देखिये पीछे श्लोक १६)। उदाहरणके लिये यदि हम कल्पना करे कि अन्तिम स्वयम्भूरमण समुद्रका विस्तार ३२ लाख योजन है तो फिर समस्त द्वीप-समुद्रोका विस्तार निम्न प्रकार होगा – ५०००० (अर्ध जबू-द्वीप) + २ लाख + ४ लाख + ८ लाख + १६ लाख + ३२ लाख यो = ६२५०००० यो । यह मेरुके मध्य भागसे लेकर एक ओरके समस्त मध्य लोकका कल्पित अर्ध राजु प्रमाण विस्तार हुआ । अब यदि हम इसका अर्ध भाग करते है तो वह ६२५००००/२ = ३१२५००० यो. (राजुका दूसरा अर्ध भाग) होता है । अब चूंकि स्वयम्भूरमण समुद्रसे पूर्वके सब द्वीप-समुद्रोका उक्त कल्पित विस्तार ५०००० + २ लाख +४ लाख +८ लाख +१६ लाख = ३०५०००० यो ही है, अत एव यह राजुका दूजरा अर्ध भाग स्वयम्भूरमण समुद्रके पूर्ववर्ती स्वयम्भूरमण द्वीपमे नही पडता है, किन्तु वह स्वयम्भूरमण समुद्रमे उसकी अभ्यन्तर वेदिकासे ३१२५०००–३०५०००० = ७५००० यो आगे जाकर पडता है । अब उसको भी आधा करनेपर वह ३१२५०००/२ = १५६२५०० यो (राजुका तृतीय अर्ध भाग) होता है । सो वह स्वयम्भूरमण द्वीपमे उसकी अभ्यन्तर वेदिकासे आगे १५६२५००–(५०००० + २ लाख + ४ लाख + ८ लाख) = ११२५०० = (७५००० + ७५०००/२) इतने योजन आगे जाकर पडता है । अब इसका भी अर्ध भाग करनेपर वह १५६२५००/२ = ७८१२५० यो (राजुका चतुर्थ अर्ध भाग) होता है । सो वह स्वयम्भूरमण द्वीपके पूर्ववर्ती अहीन्द्रवर समुद्रके भीतर उसकी अभ्यन्तर वेदिकासे आगे ७८१२५० – (५०००० + २ लाख + ४ लाख) = १३१२५० = (७५००० + ७५०००/२ + ७५०००/४) इतने योजन जाकर पडता हे । इसी क्रमसे आगेके क्रमको भी समझ लेना चाहिये । इस क्रमसे अहीन्द्रवर समुद्रके पूर्ववर्ती प्रत्येक द्वीप और समुद्रमे क्रमसे उक्त अर्ध राजुका एक एक अर्धच्छेद पडता हुआ लवण समुद्रमे जाकर दो अर्धच्छेद पडते है । यहॉ उदाहरणस्वरूप अर्ध राजु और उसके अर्ध अर्ध भागोकी जो कल्पना की गई है तदनुसार यथार्थको ग्रहण करना चाहिये ।

इस प्रथम द्वीप तथा लवणसमुद्रका स्वामी क्रमसे अनादर नामका व्यन्तर देव और सुस्थिर (सुस्थित) देव ये दो व्यन्तर देव है । [धातकीखण्ड द्वीपके अधिपति] प्रभास और प्रियदर्शन नामके दो व्यन्तर देव है ॥ २४ ॥ दक्षिण व उत्तर भागमे स्थित काल और महाकाल नामक व्यन्तर देव कालोद समुद्रके तथा पद्म और पुण्डरीक नामक दो देव पुष्कर द्वीपके अधिपति है ॥ २५ ॥ चक्षुष्मान् और सुचक्षु नामके दो व्यन्तर देव मानुषोत्तर पर्वतके अधिपति है। इस प्रकार दो दो देव आगेके द्वीप और समुद्रमे भी जानना चाहिये। श्रीप्रभ ओर श्रीधर नामके दो व्यन्तर देव पुष्करवर समुद्रके, वरुण और वरुणप्रभ नामके दो व्यन्तर देव वारुणीवर द्वीपके, तथा मध्य और मध्यम नामके दो देव वारुणीवर समुद्रके अधिपति है ॥ २६–२७ ॥ पाण्डुर

पाण्ड[ण्डु]र· पुष्पदन्तश्च विमलो विमलप्रभ । [1]सुप्रभस्य[श्च] घृताख्यस्य उत्तरश्च महाप्रभ ॥२८
कनक· कनकाभश्च पूर्णः पूर्णप्रभस्तथा । गन्धश्चान्यो[2] महागन्धो नन्दी नन्दिप्रभस्तथा ॥ २९
भद्रश्चैव सुभद्रश्च अरुणश्चारुणप्रभ । सुगन्ध सर्वगन्धश्च अरुणोदे तु सागरे ॥ ३०
एव द्वीपसमुद्राणा द्वौ द्वावधिपती स्मृतौ । दक्षिण प्रथमोक्तोऽत्र द्वितीयश्चोत्तरापति ॥ ३१
चतुरशीतिश्च लक्षाणि त्रिषष्टिशतकोटय[3] । [4]नन्दीश्वरवरद्वीपविस्तारस्य प्रमाणकम् ॥ ३२

। १६३८४०००००० ।

कोटीना त्रिशत सप्तविंशति पञ्चषष्टिकम् । लक्षाणा च प्रमामन्त सूच्यास्तस्य विदुर्बुधा ॥ ३३
त्रीणि पञ्च च सप्तैव द्वे शून्य द्वे च रूपकम् । षट् त्रीणि गगन चैकमन्त परिधिरुच्यते ॥ ३४

। १०३६१२०२७५३ ।

कोटीना पञ्चपञ्चाशच्छतषट्क[5] त्रिकाधिकम्[6] । त्रिशल्लक्षाणि तद्द्वीपबाह्यसूचीप्रमा भवेत् ॥

। ६५५३३०००००० ।

शून्य नवैक चत्वारि पञ्च त्रीणि त्रिक द्विकम् । सप्त शून्य द्विक तस्य परिधिर्बाह्य उच्यते ॥ ३६

। २०७२३३५४१९० ।

और पुष्पदन्त, विमल और विमलप्रभ, घृतद्वीपके दक्षिणमे सुप्रभ और उत्तरमे महाप्रभ, आगे कनक और कनकाभ, पूर्ण और पूर्णप्रभ, गन्ध और महागन्ध, नन्दी और नन्दिप्रभ, भद्र और सुभद्र तथा अरुण और अरुणप्रभ, [ये दो दो देव क्रमसे क्षीरवर द्वीप, क्षीरवर समुद्र, घृतवर द्वीप, घृतवर समुद्र, इक्षुरस (क्षौद्रवर) द्वीप, इक्षुरस (क्षौद्रवर) समुद्र, नन्दीश्वर द्वीप, नन्दीश्वर समुद्र और अरुण द्वीप, इन द्वीप-समुद्रोके अधिपति है ।] सुगन्ध और सर्वगन्ध नामके दो व्यन्तर देव अरुणोद समुद्रके अधिपति हैं ॥ २८–३० ॥ इस प्रकार द्वीप-समुद्रोके दो दो व्यन्तर देव अधिपति माने गये है । इनमे यहाँ प्रथम कहा गया देव दक्षिण दिशाका तथा दूसरा देव उत्तर दिशाका अधिपति है ॥ ३१ ॥

नन्दीश्वर द्वीपके विस्तारका प्रमाण एक सौ तिरेसठ करोड चौरासी लाख (१६३८४००००००) योजन है ॥ ३२ ॥ विद्वान् गणधर आदि उसकी अभ्यन्तर सूचीका प्रमाण तीन सौ सत्ताईस करोड पैंसठ लाख योजन बतलाते है — १६३८४०००००० × २ − ३०००००= ३२७६५०००००० ॥ ३३ ॥ उसकी अभ्यन्तर परिधि अकक्रमसे तीन, पाच, सात, दो, शून्य, दो, एक, छह, तीन, शून्य और एक (१०३६१२०२७५३) अर्थात् एक हजार छत्तीस करोड बारह लाख दो हजार सात सौ तिरेपन योजन प्रमाण कही गई है ॥ ३४ ॥ उस द्वीपकी बाह्य सूचीका प्रमाण छह सौ पचपन करोड तेतीस लाख योजन है – १६३८४०००००० × ४ – ३०००००= ६५५३३०००००० ॥ ३५ ॥ उसकी बाह्य परिधि अकक्रमसे शून्य, नौ, एक, चार, पाच, तीन, तीन, दो, सात, शून्य और दो (२०७२३३५४१९०) इतने योजन प्रमाण कही जाती है ॥ ३६ ॥

---

१ आ प 'सुप्रभस्य[श्च]घृता–' इत्याद्युत्तरार्धभागो नास्ति । २ आ प गन्धा' । ३ आ प कोदय । ४ ब उत्तरार्धभागोऽयं तत्र नास्ति । ५ आ प 'शत्शतषटक । ६ आ प त्रिकादिकम् ।

तस्य मध्येऽञ्जना. शैलाश्चत्वारो दिक्चतुष्टये। सहस्राणामशीतिश्च चत्वारि च नगोच्छ्रितिः ॥३७
। ८४००० ।
उच्छ्रयेण समो व्यासो मूले मध्ये च मूर्धनि। सहस्रमवगाहश्च वज्रमूला प्रकीर्तिता ॥ ३८
पूर्वाञ्जनगिरेर्दिक्षु नन्दा नन्दवतीति च। नन्दोत्तरा नन्दिषेणा इति प्राच्यादिवापिका ॥ ३९
एकैकनियुतव्यासा मुखमध्यान्तमानत [1]। नानारत्नजटा वाप्यो वज्रभूमिप्रतिष्ठिता ॥ ४०
। १००००० ।
अरजा विरजा चान्या अशोका वीतशोकका। दक्षिणस्याञ्जनस्याद्रे पूर्वाद्याशाचतुष्टये ॥ ४१
विजया वैजयन्ती च जयन्त्यन्यापराजिता। अपरस्याञ्जनस्याद्रे पूर्वाद्याशाचतुष्टये ॥ ४२
रम्या च रमणीया च सुप्रभा चापरा भवेत्। उत्तरा सर्वतोभद्रा इत्युत्तरगिरिश्रिता ॥ ४३
कमलकह्लारकुमुदै सुरभीकृतदिक्तटै [2]। युक्ता सर्वाश्च वाप्यस्ता मुक्ता जलचरै सदा ॥ ४४
अशोक सप्तपर्णं च चम्पक चूतमेव च। चतुर्दिशं तु वापीना प्रतितीर वनान्यपि ॥ ४५
व्यस्तानि नियुतार्धं च नियुत चायतानि तु। सर्वाण्येव वनान्याहुर्वेदिकान्तानि सर्वत ॥ ४६
५०००० । १००००० ।

उस द्वीपके मध्यमे चारो दिशाओमे चार अजन पर्वत है। इन पर्वतोकी ऊचाई चौरासी हजार (८४०००) योजन प्रमाण है ॥ ३७ ॥ इन पर्वतोका विस्तार मूल, मध्य और शिखरपर भी उचाईके बराबर (८४०००) तथा अवगाह एक हजार (१०००) योजन मात्र है। इनका मूल भाग वज्रमय कहा गया है ॥ ३८ ॥

पूर्वदिशागत अजनगिरिकी पूर्वादिक दिशाओमे क्रमसे नन्दा, नन्दवती, नन्दोत्तरा और नन्दिषेणा (नन्दिघोषा) नामकी चार वापिकाये है ॥ ३९ ॥ इन वापियोका विस्तार मूलमे, मध्यमे और अन्तमे एक लाख (१०००००) योजन प्रमाण है। उक्त वापियाँ अनेक रत्नोसे खचित और वज्रमय भूमिपर प्रतिष्ठित है ॥ ४० ॥ दक्षिण अजनपर्वतकी पूर्वादि दिशाओमे अरजा, विरजा, अशोका और वीतशोका नामकी चार वापिकाये स्थित है ॥ ४१ ॥ पश्चिम अजनपर्वतकी पूर्वादिक दिशाओमे क्रमसे विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और अपराजिता नामकी चार वापिकाये स्थित है ॥ ४२ ॥ उत्तर दिशागत अजनपर्वतके आश्रित पूर्वादि क्रमसे रम्या, रमणीया, सुप्रभा और सर्वतोभद्रा नामकी चार वापिकाये है ॥ ४३ ॥ दिङमण्डलको सुवासित करनेवाले कमल, कल्हार और कुमुद पुष्पोसे युक्त वे सब वापिकाये सदा जलचर जीवोसे रहित हैं ॥ ४४ ॥

वापियोके प्रत्येक किनारेपर चारो दिशाओमे अशोक, सप्तपर्ण, चम्पक और आम्र ये चार वन स्थित हैं ॥४५॥ सब ही वन आधा लाख (५००००) योजन विस्तृत, लाख (१०००००) योजन आयत और अन्तमे सब ओर वेदिकासे सयुक्त कहे जाते हैं ॥ ४६ ॥

---

१ आ प मध्यास्त° । २ ब दिकटै ।

षोडशानां च वापीनां मध्ये दधिमुखाद्रयः । सहस्राणि दशोद्विद्धास्तावत्सर्वत्र विस्तृताः ॥ ४७
। १०००० ।
सहस्रगाढके वज्रमयाः श्वेताश्च वर्तुलाः । तेषामुपरि वेद्यः स्युर्वनानि विविधानि च ॥ ४८
वापीनां बाह्यकोणेषु दृष्टा रतिकराद्रय[1] । समा दधिमुखैर्हैमाः सर्वे द्वात्रिंशदेव ते ॥ ४९
उक्तं च [ति. प ५, ६९-७०] —
जोयणसहस्सवासा तेत्तियमेत्तोदया य पत्तेक्कं । अड्ढाइज्जसयाइं अवगाढा रतिकरा गिरिणो ॥
ते चउ-चउकोणेसुं एक्केक्कदहस्स होंति चत्तारि । लोयविणिच्छ[1] [य]कत्ता एवं णियमा परुवेंति ॥
द्वीपस्य विदिशास्वन्ये चत्वारोऽञ्जनपर्वताः । समा रतिकरैस्तेऽपि इति सर्वज्ञदर्शनम् ॥ ५०
सर्वेषु तेषु शैलेषु द्विपञ्चाशज्जिनालयाः । भद्रसालैः समा मानैस्तान् भक्त्या स्तौमि सर्वदा ॥ ५१
प्रतिवत्सरमाषाढे कार्तिके फाल्गुनेऽपि च । अष्टमीतिथिमारभ्य पूर्णिमान्तं सुरैः सह ॥ ५२
सौधर्मचमरेशानवैरोचनसुरेश्वराः । प्राच्यपाचीप्रतीचीषु उदीच्यां क्रमशो मुदा ॥ ५३
द्वौ द्वौ यामौ जिनेन्द्राणां महाविभवसंयुताः । प्रादक्षिण्येन कुर्वन्ति महाभक्त्या महामहम् ॥ ५४
नन्दीश्वरात्परो द्वीपश्चारुणो नाम कीर्तितः । तस्यारुणवरोऽब्धिश्च विस्तारोऽस्य निशम्यताम् ॥

सोलह वापियोंके मध्यमे दस हजार (१००००) योजन ऊंचे और सब जगह उतने (१००००) ही योजन विस्तृत दधिमुख पर्वत स्थित है ॥ ४७ ॥ एक हजार (१०००) योजन अवगाहके भीतर वज्रमय वे पर्वत वर्णसे शुक्ल व गोल आकारसे संयुक्त है। उनके ऊपर वेदिया और अनेक प्रकारके वन है ॥ ४८ ॥

वापिकाओके बाह्य कोनोमे दधिमुख पर्वतोके समान सुवर्णमय रतिकर पर्वत देखे गये हैं। वे सब पर्वत बत्तीस (३२) ही हैं ॥ ४९ ॥ कहा भी है —

रतिकर पर्वतोमेसे प्रत्येक एक हजार (१०००) योजन विस्तृत, उतने (१००० यो) मात्र ऊंचे और अढाई सौ (२५०) योजन प्रमाण अवगाहसे संयुक्त है ॥ २ ॥ वे रतिकर पर्वत नियमसे प्रत्येक वापीके चार चार कोनोमे चार हैं, ऐसा लोकविनिश्चय ग्रन्थके कर्ता बतलाते है ॥ ३ ॥

नन्दीश्वर द्वीपकी विदिशाओमे अन्य चार अंजनपर्वत है। वे भी रतिकर पर्वतोके समान हैं, ऐसा सर्वज्ञका दर्शन है ॥ ५० ॥

उन सब पर्वतोके ऊपर बावन जिनालय है जो प्रमाणमे भद्रसाल वनमे स्थित जिनालयोके समान है। मैं सदा उन जिनालयोकी भक्तिपूर्वक स्तुति करता हू ॥ ५१ ॥ प्रतिवर्ष यहा आषाढ, कार्तिक और फाल्गुन मासमे [शुक्ल पक्षमे] अष्टमीसे लेकर पूर्णिमा तक अर्थात् अष्टाह्निक पर्वमे अन्य देवोके साथ सौधर्म, चमर, ईशान और वैरोचन ये चार इन्द्र हर्षित होकर क्रमसे पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशामे महाविभूतिके साथ भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणक्रमसे दो दो पहर तक जिनेन्द्रोकी महामह पूजाको करते है ॥ ५२–५४ ॥

नन्दीश्वर द्वीपके आगे अरुण नामका द्वीप कहा गया है, उसको वेष्टित करके अरुणवर

१ आ प विणिच्छे ।

पञ्चभ्य खलु शून्येभ्य परं द्वे सप्त चाम्बरम् । एकं त्रीणि च रूप च चक्रवालस्य पार्थवम् ॥ ५६

। १३१०७२००००० ।

अरिष्टाख्योऽन्धकारोऽस्माद् दूरमुद्गत्य सागरात् । आच्छाद्य चतुर कल्पान् ब्रह्मलोकं समाश्रितः॥

मृदङ्गसदृशाकारा. कृष्णराज्यश्च सर्वतः । यमकावेदिकातुल्या अष्टौ तस्य बहि स्थिता ॥ ५८

देवा अल्पर्द्धयस्तस्मिन् दिग्मूढाश्चिरमासते । महर्द्धिकप्रभावेन सह यान्ति न चान्यथा ॥ ५९

द्वीपस्य कुण्डलाख्यस्य कुण्डलाद्रिस्तु मध्यम । पञ्चसप्ततिमुद्विद्ध सहस्राणा महागिरि ॥ ६०

मानुषोत्तरविष्कम्भाद् व्यासो दशगुणस्य च । तस्य षोडशकूटानि चत्वारि प्रतिदिश क्रमात् ॥६१

१०२२० । ७२३० । ४२४० ।

वज्रं वज्रप्रभ चैव कनक कनकप्रभम् । रजत रजताभ च सुप्रभ च महाप्रभम् ॥ ६२

अङ्कमङ्कप्रभ चेति मणिकूट मणिप्रभ । रुचक रुचकाभं च[1] हिमवन्मन्दराख्यकम् ॥ ६३

नान्दनै सममानेषु वेश्मान्यपि समानि तै । जम्बूनाम्नि च तेऽन्यस्मिन् विजयस्येव वर्णना ॥ ६४

चैत्यान्यनादिसिद्धानि मध्ये तुल्यानि नैषधै । दिक्षु चत्वार्यनादित्व यथा ससारमोक्षयो. ॥ ६५

समुद्र स्थित है । इस समुद्रका विस्तार कहा जाता है, उसे सुनिये ॥ ५५ ॥ पाच शून्योके आगे दो, सात, शून्य, एक, तीन और एक (१३१०७२०००००) इन अकोके क्रमसे जो सख्या प्राप्त हो उतने योजन मात्र मण्डलाकारसे स्थित उक्त समुद्रका विस्तार जानना चाहिये ॥ ५६ ॥ इस समुद्रसे दूर ऊपर उठा हुआ अरिष्ट नामका अन्धकार प्रथम चार कल्पोको आच्छादित करके ब्रह्मलोक (पाचवा कल्प) को प्राप्त हुआ है ॥ ५७ ॥ मृदगके समान आकारवाली आठ कृष्ण-राजिया उसके बाह्य भागमे सब ओर यमका वेदिकाके समान स्थित है ॥ ५८ ॥ उस सघन अन्धकारमे अल्पर्द्धिक देव दिशाभेदको भूलकर चिर काल तक स्थित रहते है । वे यहासे दूसरे महर्द्धिक देवोके प्रभावसे उनके साथ निकल पाते है, अन्य प्रकारसे नही निकल सकते है ॥५९॥

आगे कुण्डल नामक ग्यारहवे द्वीपके मध्यमे कुण्डल पर्वत स्थित है । वह महापर्वत पचत्तर हजार(७५०००)योजन ऊचा है। विस्तार उसका मानुषोत्तर पर्वतसे दसगुणा है (मूल विस्तार १०२२×१०=१०२२०, मध्य विस्तार ७२३×१०=७२३०, शिखर विस्तार (४२४ ×१०=४२४० यो) । उसके ऊपर सोलह कूट है जो निम्न क्रमसे प्रतिदिशामे चार चार है– वज्र, वज्रप्रभ, कनक, कनकप्रभ, रजत, रजताभ, सुप्रभ, महाप्रभ, अक, अकप्रभ, मणिकूट, मणिप्रभ, तथा रुचक, रुचकाभ, हिमवान् और मन्दर ॥ ६०–६३ ॥ ये कूट विस्तारादिके प्रमाणमे नन्दन वनमे स्थित कूटोके समान है । यहाँ जो भवन है वे भी नन्दनवनके भवनोके समान हैं । उनका वर्णन दूसरे जवूद्वीपमे स्थित विजय देवके नगरोके समान है ॥ ६४ ॥

उक्त कूटोके मध्यमे दिशाओमे अनादिसिद्ध चार जिनभवन है जो निषध पर्वतस्थ जिनभवनोके समान हैं । इनकी अनादिता ऐसी है जैसी कि ससार और मोक्षकी ॥ ६५ ॥

---

१ ब 'च' नास्ति

तदन्तः सिद्धकूटानि दिक्षु चत्वारि मानतः । समानि नैषधैस्तत्र चत्वारश्च जिनालयाः ॥ ६६
पाठान्तरम् ।

तस्य दिक्षु च चत्वारि विदिक्षु च महागिरे । अष्टावायतनान्याहुः सममानानि नैषधैः ॥ ६७

उक्तं च [ति. प. ५,१२८] –

तग्गिरिवरस्स होंति उ[1] दिसिविदिसासु जिणिंदकूडाणि । पत्तेक्कं एक्केक्कं केई एवं परूवेंति ॥

द्वीपस्त्रयोदशो नाम्ना रुचकस्तस्य मध्यमः । अद्रिश्च वलयाकारो रुचकस्तापनीयकः ॥ ६८
महाञ्जनगिरेस्तुल्यो विष्कम्भेणोच्छ्रयेण च । तस्य मूर्धनि पूर्वस्यां कूटाश्चाष्टाविति स्मृताः ॥६९
कनकं काञ्चनं कूटं तपनं स्वतिकं दिशः । सुभद्रमञ्जनं मूलं चाञ्जनाद्यं च वज्रकम् ॥ ७०
उच्छ्रितानि सहस्रार्धं मूले तावत्प्रथूनि च । तदर्धमग्रे रुन्द्राणि गौतमस्येव चालयाः ॥ ७१
विजयाद्याश्चतस्रश्च नन्दा नन्दवतीति च । नन्दोत्तरा नन्दिषेणा तेष्वष्टौ दिक्सुरस्त्रियः ॥ ७२
स्फटिकं रजतं चैव कुमुदं नलिनं पुनः । पद्मं च शशिसंज्ञं च ततो वैश्रवणाख्यकम् ॥ ७३
वैडूर्यमष्टकं कूटं पूर्वकूटसमानि च । दक्षिणस्यामथैतानि दिक्कुमार्योऽत्र च स्थिताः ॥ ७४
इच्छा नाम्ना समाहारा सुप्रतिज्ञा यशोधरा । लक्ष्मी शेषवती चान्या चित्रगुप्ता वसुंधरा ॥ ७५

उनके मध्यमे दिशाओमे चार सिद्धकूट हैं जो प्रमाणमे निषध पर्वतके ऊपर स्थित सिद्धकूटके समान हैं। उनके ऊपर चार जिनालय हैं ॥ ६६ ॥ पाठान्तर।

उस महापर्वतकी दिशाओमे चार और विदिशाओमे चार, इस प्रकार आठ जिनायतन है जो प्रमाणमे निषधपर्वतस्थ जिनभवनके समान है ॥ ६७ ॥ कहा भी है –

उस गिरीन्द्रकी दिशाओ और विदिशाओमे प्रत्येकमे एक एक जिनेन्द्रकूट है, ऐसा कितने ही आचार्य निरूपण करते हैं ॥ ४ ॥

तेरहवा द्वीप रुचक नामका है। उसके मध्यमे तपाये हुये सुवर्णके समान कान्तिवाला वलयाकार रुचक नामका पर्वत स्थित है ॥ ६८ ॥ वह विस्तार और ऊचाईमे महान् अजनगिरिके समान (८४००० यो) है। उसकी शिखरके ऊपर पूर्व दिशामे ये आठ कूट माने गये हैं– कनक, काचन, तपन, स्वस्तिक, सुभद्र, अजन, अजनमूल और वज्र ॥६९–७०॥ ये कूट सहस्रके आधे अर्थात् पाच सौ (५००) योजन ऊचे और मूलमे उतने (५०० यो) ही विस्तृत है। शिखरपर उनका विस्तार उससे आधा (२५०) हैं। इनके ऊपर जो प्रासाद स्थित हैं वे गौतम देवके प्रासादोके समान है ॥ ७१ ॥ इन कूटोके ऊपर उक्त प्रासादोमे विजया आदि (वैजयन्ती, जयन्ती और अपराजिता) चार तथा नन्दा, नन्दवती, नन्दोत्तरा और नन्दिषेणा ये आठ दिक्कुमारी देविया रहती हैं ॥ ७२ ॥

स्फटिक, रजत, कुमुद, नलिन, पद्म, शशी नामक (चन्द्र), वैश्रवण और वैडूर्य ये आठ कूट पूर्वदिशागत कूटोके ही समान होकर दक्षिण दिशामे स्थित है। इन कूटोके ऊपर निम्न दिक्कुमारी देविया स्थित हैं– इच्छा, समाहार, सुप्रतिज्ञा, यशोधरा, लक्ष्मी, शेषवती, चित्रगुप्ता और वसुंधरा ॥ ७३–७५ ॥

१ ति प. 'उ' नास्ति

अमोघं स्वस्तिकं कूटं मन्दरं च तृतीयकम् । ततो हैमवतं कूटं राज्यं राज्योत्तमं ततः ॥ ७६
चन्द्रं सुदर्शनं चेति अपरस्यां तु लक्षयेत् । रुचकस्य गिरीन्द्रस्य मध्ये कूटानि तेष्विमाः ॥ ७७
इलादेवी सुरादेवी पृथिवी पद्मवत्यपि । एकनासा नवमिका सीता भद्रेति चाष्टमी ॥ ७८
विजयं वैजयन्तं च जयन्तमपराजितम् । कुण्डलं रुचकं चैव रत्नवत्सर्वरत्नकम् ॥ ७९
अलवूषा मिश्रकेशी तृतीया पुण्डरीकिणी । वारुण्याशा च सत्या च ह्री श्रीश्चैतेषु देवताः ॥ ८०
पूर्वा गृहीत्वा भृङ्गारान् दक्षिणा दर्पणान् परान् । अपरा[1] आतपत्राणि चामराण्युत्तमाङ्गना[2]:॥
दिशाकुमार्यो द्वात्रिंशत्सादराः कृतमण्डना । जिनानां जन्मकालेषु सेवार्थमुपयान्ति ताः ॥ ८२
पूर्वे तु विमलं कूटं नित्यालोकं स्वयंप्रभम् । नित्योद्योतं तदन्तः स्युस्तुल्यानि गृहमानकैः ॥ ८३
कनका विमले कूटे दक्षिणे च शतह्रदा । ततः कनकचित्रा च सौदामिन्युत्तरे स्थिता ॥ ८४
अर्हतां जन्मकालेषु दिशा उद्द्योतयन्ति ताः । श्रीवत्स्वपरिवाराद्यैः सर्वा एता इति स्मृताः ॥८५
वैडूर्यं रुचकं कूटं मणिकूटं च पश्चिमम् । राज्योत्तमं तदन्तः स्युः पूर्वमानसमानि च ॥ ८६ ॥

अमोघ, स्वस्तिक, तीसरा मन्दर, हैमवत, राज्य, राज्योत्तम, चन्द्र और सुदर्शन, ये आठ कूट रुचक पर्वतके मध्यमे पश्चिम दिशामे स्थित जानना चाहिये । उनके ऊपर ये दिक्कुमारिकायें निवास करती हैं– इलादेवी, सुरादेवी, पृथिवी, पद्मवती, एकनासा, नवमिका, सीता और आठवी भद्रा ॥ ७६–७८ ॥

विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित, कुण्डल, रूचक, रत्नवान् और सर्वरत्न, ये आठ कूट उसके ऊपर उत्तर दिशामे स्थित हैं ॥ ७९ ॥ इनके ऊपर ये आठ दिक्कुमारी देविया रहती हैं– अलवूसा, मिश्रकेशी, तृतीय पुण्डरीकिणी, वारुणी, आशा, सत्या, ह्री और श्री ॥ ८० ॥

इनमेसे पूर्वदिशामे स्थित उक्त आठ दिक्कुमारिकाये झारियोको, दक्षिणदिशागत आठ देविया उत्तम दर्पणोको, पश्चिमदिशावासिनी छत्रोको, तथा उत्तरदिशाकी आठ दिक्कन्याये चामरोको ग्रहण कर, इस प्रकार वे सुसज्जित बत्तीस (३२) दिक्कुमारिकाये तीर्थकरोके जन्म कल्याणकोमे सविनय सेवा करनेके लिये उपस्थित होती है ॥ ८१–८२ ॥

उक्त कूटोके अभ्यन्तर भागमे पूर्व [आदि दिशाओमे क्रमसे] विमल कूट, नित्यालोक, स्वयंप्रभ और नित्योद्योत ये चार कूट स्थित हैं । वे सब गृहमानोसे समान हैं ॥ ८३ ॥ इनमेसे विमल कूटके ऊपर कनका, दक्षिण कूटके ऊपर शतह्रदा, पश्चिम कूटके ऊपर कनकचित्रा और उत्तर कूटके ऊपर सौदामिनी देविया स्थित हैं ॥ ८४ ॥ वे देविया तीर्थंकरोके जन्मकालोंमे दिशाओको उद्योतित करती है । ये सब देविया परिवार आदिमे श्रीदेवीके समान मानी गई है ॥ ८५ ॥

उनके भी अभ्यन्तर भागमे वैडूर्य, रुचककूट, मणिकूट और अन्तिम राज्योत्तम ये चार

१ ब आपरा । २ ['त्तराङ्गना]

रुचका रुचककीर्तिश्च कान्ता रुचकादिका । रुचकैव प्रभान्त्यान्या[1] जातिकर्मसमापिका ॥ ८७
तत्कूटाभ्यन्तरे दिक्षु चत्वारः सिद्धकूटकाः । पूर्वमानसमा मानैश्चत्वारोऽत्र जिनालयाः ॥ ८८
विदिक्षु दिक्षु चाप्यस्य अष्टास्वन्तरदिक्षु च । चैत्यानि षोडशेऽष्टानि समान्यपि च नैषधैः ॥ ८९

उक्तं च [ति. प. ५,१६६]

दिसिविदिसतरभागे चउ चउ अट्ठाणि सिद्धकूडाणि । उच्छेहप्पहुदीए णिसहसमा केइ इच्छन्ति ॥५
स्वयम्भूरमणो द्वीपश्चरमस्तस्य मध्यगः । सहस्रमवगाढश्च गिरिरस्ति स्वयप्रभ. ॥ ९०
रत्नांशुद्योतिताशस्य तस्य वेदीयुतस्य च । विष्कम्भोत्सेधकूटाना मान दृष्टं जिनेश्वरैः ॥ ९१
मानुषोत्तरशैलश्च कुण्डलो रुचकाचल । स्वयप्रभाचलश्चैते वलयाकृतयो मता ॥ ९२

इति लोकविभागे समुद्रविभागो नाम चतुर्थप्रकरण समाप्तम् ॥ ४ ॥

कूट स्थित है । इनका प्रमाण पूर्व कूटोके समान है ॥ ८६ ॥ उनके ऊपर रुचका, रुचककीर्ति, रुचककान्ता और रुचकप्रभा ये चार दिक्कुमारिकायें रहती है जो तीर्थंकरोके जातकर्मको समाप्त किया करती हैं ॥ ८७ ॥

उन कूटोके अभ्यन्तर भागमे पूर्वादिक दिशाओमे चार सिद्धकूट स्थित है । इनके ऊपर पूर्वोक्त जिनभवनोके समान प्रमाणवाले चार जिनभवन हैं ॥८८॥ इसकी दिशाओंमे, विदिशाओमे और आठ अन्तर्दिशाओमे भी सोलह चैत्यालय स्वीकार किये गये हैं जो प्रमाणमे निषधपर्वतस्थ जिनभवनोके समान है ॥ ८९ ॥ कहा भी है —

रुचक पर्वतके ऊपर दिशाओमे चार, विदिशाओमे चार और अन्तर्दिशाओमे आठ इस प्रकार सोलह सिद्धकूट स्थित हैं जो ऊचाई आदिमे निषध पर्वतके सिद्धकूटके समान हैं, ऐसा कुछ आचार्य स्वीकार करते है ॥ ५ ॥

अन्तिम द्वीप स्वयम्भूरमण है । उसके मध्यमे एक हजार योजन अवगाहवाला स्वयप्रभ पर्वत स्थित है ॥ ९० ॥ रत्नकिरणोसे दिशाओको प्रकाशित करनेवाले एव वेदीसे सयुक्त उस पर्वतके विस्तार, ऊचाई और कूटोका प्रमाण जितना जिनेन्द्रोके द्वारा देखा गया है उतना जानना चाहिये । अभिप्राय यह है कि उसका उपदेश नष्ट हो चुका है ॥९१ ॥ मानुषोत्तर शैल, कुण्डलगिरि, रुचक पर्वत और स्वयप्रभाचल ये चार पर्वत वर्तुलाकार माने गये हैं ॥ ९२ ॥

इस प्रकार लोकविभागमे समुद्रविभाग नामका चौथा प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

---

१ व प्रभान्त्यन्या ।

[पञ्चमो विभागः]

अनाद्यनिधनं काल सवृत्तं सर्वपर्ययैः । पश्यतः प्रणिपत्येशान् वक्ष्ये कालगतिक्रमम् ॥ १
कालोऽवसर्पिणीत्येक उत्सर्पिण्यपरोऽपि च । एते समाहृते कल्पो विभागा द्वादशानयोः ॥ २
सुषमा सुषमान्ता च द्वितीया सुषमेति च । सुषमा दुःषमान्तान्या सुषमान्ता च दुःषमा ॥ ३
पञ्चमी दु.षमेत्येव समा षष्ठचतिदु.षमा । विभागा अवसर्पिण्यामितरस्यां विपर्ययः ॥ ४
चतस्रश्च ततस्तिस्रो द्वे च तासा क्रमात् स्मृता । सागरोपमकोटीनां कोटयो वै तिसृणामपि ॥ ५
सा ४००००००००००००००। सा ३००००००००००००००। सा २००००००००००००००।
द्विचत्वारिंशता न्यूना सहस्रैरब्दसख्यया । कोटीकोटी भवेदेका चतुर्थ्यां तु प्रमाणत. ॥ ६
सा १००००००००००००००। ४२०००।
पञ्चम्यब्दसहस्राणामेकविंशतिरेव सा । तावत्येव समा षष्ठी कोटीकोटयो दशैव ताः ॥ ७
२१०००। २१०००। सा १० को २।
आदावाद्यसमायाश्च नरा उद्यद्रविप्रभाः । आहरन्त्यष्टमे भक्तं त्रिगव्यूतिसमुच्छ्रिताः ॥ ८
प्रारम्भे च द्वितीयाया नराः पूर्णशशिप्रभा । आहरन्ति च षष्ठेऽन्नं द्विगव्यूतिसमुच्छ्रया ॥ ९

समस्त पर्यायोसे उपलक्षित अनादि-निधन कालको देखनेवाले जिनेन्द्रोको नमस्कार करके कालकी गतिके क्रमका वर्णन करता हू॥ १ ॥ एक अवसर्पिणी और दूसरा उत्सर्पिणी इस प्रकारसे सामान्यरूपसे कालके दो भेद है। इन दोनोको सम्मिलितरूपमे कल्प काल कहा जाता है। इन दोनोके बारह (६+६) विभाग है ॥ २ ॥ सुषमासुषमा, दूसरा सुषमा, सुषमादुःषमा, दु.षमासुषमा, पाचवा दु षमा और छठा अतिदु षमा, इस प्रकार ये छह अवसर्पिणी कालके विभाग है। उत्सर्पिणी कालके विभाग इनसे विपरीत (अतिदु षमा, दु षमा, दु षमासुषमा, सुषमा-दु षमा, सुषमा और सुषमासुषमा) है ॥ ३–४ ॥ इनमे प्रथम तीन कालोका प्रमाण यथाक्रमसे चार, तीन और दो कोडाकोडि सागरोपम माना गया है– सुषमासुषमा४०००००००००००००० सागरोपम, सुषमा ३०००००००००००००० सा, सुषमदु षमा २०००००००००००००० सा. ॥ ५ ॥ चतुर्थ (दु षमसुषमा) कालका प्रमाण ब्यालीस हजार वर्ष कम एक कोडाकोडि सागरोपम है १०००००००००००००० सा – ४२००० वर्ष ॥ ६ ॥ पाचवे (दु षमा) कालका प्रमाण इक्कीस हजार (२१०००) वर्ष मात्र ही है। इतने ही(२१०००)वर्ष प्रमाण छठा काल भी है। इस प्रकारसे उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीके उक्त छहो कालोका प्रमाण सम्मिलितरूपसे दस (१०) कोडाकोडि सागरोपम मात्र होता है ॥ ७ ॥

प्रथम कालके प्रारम्भमे उदित होते हुए सूर्यके समान प्रभावाले मनुष्य तीन कोस शरीरकी ऊचाईसे सहित होते हुए अष्टम भक्तमे अर्थात् चौथे दिन आहार ग्रहण करते है॥८॥ द्वितीय कालके प्रारम्भमे मनुष्योकी प्रभा पूर्ण चन्द्रके समान और शरीरकी ऊचाई दो कोस प्रमाण

आदावपि तृतीयायाः प्रियङ्गुश्यामवर्णका । चतुर्थभक्तेनाहारमेकां गव्यूतिमुच्छ्रिता. ॥ १०
षट्पञ्चाशच्छते द्वे च तथाष्टाविंशति शतम् । चतुःषष्ठि क्रमात्तासु नराणां ष[पृ]ष्ठकण्डका. ११
२५६ । १२८ । ६४ ।
जीवितं त्रीणि पल्यानि द्वे चैकं च क्रमागतम् । मानुषा मिथुनान्येव कल्पवृक्षोपजीविन. ॥ १२
मृदङ्गभृङ्गरत्नाङ्गाः पानभोजनपुष्पदाः । ज्योतिरालयवस्त्राङ्गाः कल्पागैर्दशधा[1] द्रुमाः ॥ १३
उक्तं च [ति. प. ४–३४२, ८२९]—
पाणगतूरिअगा भूसणवत्थग भोयणगा य । आलयदीवियभायणमालातेअंगआदि[2] कप्पतरू ॥१
पुष्कर पटह भेरीं दुन्दुभि पणवादि च । वीणावंशमृदङ्गाश्च दध[द]ते तूर्यपादपा. ॥ १४
भृङ्गारकलशस्थालीस्थालवृत्तकशुक्तिकाः[3] । कुचाकरकपात्राणि,[4] ददते[5] भृङ्गसंज्ञका ॥ १५
नराणां षोडशविध स्त्रीणामपि चतुर्दश । विविधमाभरणं नित्य रत्नाङ्गा ददते[5] शुभम् ॥ १६
वीर्यसाररसोपेतं सुगन्धिप्रीतिपूरकम् । द्वात्रिंशद्भेदकं पानं सूयन्ते पानपादपा. ॥ १७
षोडशान्नविधीन् सृष्टानु[नो]दनस्य च षोडश । चतुर्दशविधान् सूपान् स्वाद्य त्वष्टोत्तर शतम् ॥

होती है । वे षष्ठ भक्तमे अर्थात् दो दिनके अन्तरसे आहार ग्रहण करते है ॥९॥ तीसरे कालके प्रारम्भमे प्रियगु पुष्पके समान प्रभावाले मनुष्य एक कोस प्रमाण शरीरकी ऊचाईसे सहित होते हुए चतुर्थ भक्तसे अर्थात् एक दिनके अन्तरसे आहार करते हैं ॥ १० ॥

उन तीन कालोमे मनुष्योकी पृष्ठास्थिया क्रमसे दो सौ छप्पन (२५६), एक सौ अट्ठाईस (१२८) और चौसठ (६४) होती हैं ॥ ११ ॥ इन कालोमे मनुष्योकी आयुका प्रमाण यथाक्रमसे तीन पल्य, दो पल्य और एक पल्य होता है । उक्त कालोमे मनुष्य युगलरूपसे ही उत्पन्न होकर कल्पवृक्षोसे आजीविका करते हैं अर्थात् उन्हे समस्त भोगोपभोगकी सामग्री कल्पवृक्षोसे ही प्राप्त होती है ॥ १२ ॥ इन तीन कालोमे कल्पवृक्षोके मृदगाग (तूर्यांग), भृगाग (भाजनाग), रत्नाग (भूपणाग), पानाग (मद्याग), भोजनाग, पुष्पाग (मालाग), ज्योतिरग, आलयाग और वस्त्राग ये दस प्रकारके वृक्ष होते है ॥ १३ ॥ कहा भी है ––

पानाग, तूर्यांग, भूषणाग, वस्त्राग, भोजनाग, आलयाग, दीपाग, भाजनाग, मालाग और ज्योतिरग, इस तरह वे कल्पवृक्ष दस प्रकारके है ॥ १ ॥

तूर्यांग कल्पवृक्ष पुष्कर, पटह, भेरी, दुदुभि, पणव (ढोल) आदि, वीणा, वासुरी और मृदग वाद्योको देते हैं ॥१४॥ भृग नामक कल्पवृक्ष भृगार, कलश, थाली, थाल, वृत्तक, शुक्तिक, कुच और करक (जलपात्र), इन पात्रोको देते हैं ॥ १५ ॥ रत्नाग कल्पवृक्ष पुरुषोके सोलह प्रकारके और स्त्रियोके चौदह प्रकारके उत्तम विविध आभरणोको नित्य ही देते है ॥ १६ ॥ पानाग कल्पवृक्ष वीर्यवर्धक श्रेष्ठ रससे सयुक्त, सुगन्धित और प्रीतिको पूर्ण करनेवाले बत्तीस प्रकारके पानको उत्पन्न करते है ॥ १७ ॥ भोजनाग कल्पवृक्ष सोलह प्रकारके स्वादिष्ट अन्न

१ प कल्पागैं । २ आ प अगमादि । ३ आ प व शुकिका । ४ प पत्राणि । ५ व दधते ।

त्रिषष्टि त्रिशतं भेदान् शाकानां रसनप्रियान् । चक्रवर्त्यन्नतो मृष्टान् ददते भोजनद्रुमाः ।। १९
वल्लीगुल्मद्रुमोद्भूत सहस्राहतषोडश । विध वर्णद्वयं पुष्प मालाङ्गागाः फलन्ति च ।। २०
चन्द्रसूर्यप्रभावन्तो द्योतयन्तो दिशो दश । कुर्वाणा सततालोक ज्योतिरङ्गा[1] वसन्ति च ।। २१
नन्द्यावर्तादिकद्व्यष्टभेदान् प्रासादकान् शुभान् । रत्नहेममयान् नित्यं ददते[2] चालयाङ्गकाः ।।२२
क्षौमकौशेयकार्पासपट्टचीनादिभि समम् । वस्त्र चित्र मृदुश्लक्ष्ण वस्त्राङ्गा ददते[2] द्रुमा. ।। २३
मूलपुष्पफलैरिष्टैर्वल्लीगुल्मक्षुपद्रुमा । कल्पागा परितः सन्ति रम्यच्छाया मनोरमाः ।। २४
दिवसैरेकविंशत्या पूर्यन्ते यौवनेन च । प्रमाणयुक्तसर्वाङ्गा द्वात्रिंशल्लक्षणाङ्किताः ।। २५
मार्दवार्जवसपन्ना सत्यमृष्टसुभाषिता । मृदङ्गमेघनि स्वाना नवसहस्रेभविक्रमाः ।। २६
प्रकृत्या धीरगम्भीरा निपुणा स्थिरसौहृदा. । अदृष्टललिताचारा. प्रसन्ना प्रीतिबुद्धयः ।। २७
क्रोधलोभभयद्वेषमानमत्सरवर्जिता । ईर्ष्यासूयापवादाना न विदन्ति सदा रसम् ।। २८
सेवादु.ख परैर्निन्दा ईप्सितस्यानवापनम् । प्रियेभ्यो विप्रयोगश्च तिसृष्वपि समासु[3] न ।। २९

भेदोको, सोलह प्रकारके ओदन (भात) को, चौदह प्रकारकी दालोको, एक सौ आठ प्रकारके स्वाद्य भोजनको तथा रसना इन्द्रियको प्रिय ऐसे तीन सौ तिरेसठ (३६३) शाकके भेदोको, इस प्रकार चक्रवर्तीके अन्नसे स्वादिष्ट भोजनोको देते हैं ।।१८–१९।। मालाग वृक्ष वेलो, झाडियो एव वृक्षोसे उत्पन्न सोलह हजार (१६०००) प्रकारके पुष्पोको उत्पन्न करते है।।२०।। चन्द्र एव सूर्य जैसी प्रभासे सयुक्त होकर दस दिशाओको प्रकाशित करनेवाले ज्योतिरग वृक्ष निरन्तर प्रकाश करते हुए स्थित रहते है ।।२१।। आलयाग जातिके कल्पवृक्ष नद्यावर्त आदि सोलह प्रकारके रत्नमय एव सुवर्णमय उत्तम भवनोको नित्य ही प्रदान करते हैं ।। २२ ।। वस्त्राग वृक्ष क्षौम (सनका वस्त्र), कौशेय (रेशमी), कार्पास (कपासनिर्मित) वस्त्र तथा चीनदेशीय आदि वस्त्रोके साथ कोमल एवं चिक्कण विचित्र वस्त्रोको देते है ।। २३ ।। वल्ली, गुल्म (झाडी), क्षुप (छोटी शाखाओ एव मूलोवाला) और द्रुम (वृक्ष) रूप रमणीय छायावाले मनोहर कल्पवृक्ष वहा अभीष्ट मूलो, पुष्पोऔर फलोके साथ सव ओर होते है ।। २४ ।।

इन तीन कालोमे प्रमाणयुक्त सव अवयवोसे सयुक्त तथा वत्तीस लक्षणोसे चिह्नित नर-नारी इक्कीस (२१) दिनोमे यौवनसे परिपूर्ण हो जाते है। ये नर-नारी मार्दव एव आर्जवसे सहित, सत्य व मधुर भापण करनेवाले, मृदग अथवा मेघके समान ध्वनिसे सयुक्त, नौ हजार (९०००) हाथियोके वरावर पराक्रमसे सहित, स्वभावत धीर और गम्भीर, निपुण, स्थिर सौहार्दसे सम्पन्न, अदृष्ट ललित आचारवाले, प्रसन्न, प्रीतिबुद्धि तथा क्रोध, लोभ, भय, द्वेष, मान एव मत्सरतासे रहित होते हैं । वे ईर्ष्या, असूया और परनिन्दाके आनन्दको कभी नही जानते है ।। २५–२८ ।।

तीनो ही कालोमे उन नर-नारियोके सेवाका दुख, परनिन्दा, अभीष्टकी अप्राप्ति तथा

१ प रिंगा । २ व दधते । ३ प तिसृस्वपि सभासु ।

न राजानो न पाखण्डा[1] न चोरा नापि शत्रवः[2]। न कर्माणि न शिल्पानि न दारिद्र्य न चामया ॥
सूरूपाः सुभगा नार्यो गीतवादित्रपण्डिताः[3]। एकभर्तृसुखा नित्य नि प्रयोजनसौहृदा ॥ ३१
रत्नैराभरणैर्दीप्ता गन्धमाल्यविभूषिताः। दिव्यवस्त्रसमाच्छन्ना रतिरागपरायणा ॥ ३२
अन्योऽन्यवी[क्ष]णासक्ता अन्योऽन्यस्यानुवर्तिन । अन्योऽन्यहितमिच्छन्तोऽन्योन्य[4] न त्यजन्ति ते ॥ ३३
क्षुतकासितमात्रेण त्यक्त्वान्ते जीवितं स्वकम् । सौधर्मव्यन्तराद्येषु जायन्तेऽल्पकषायिण ॥ ३४

उक्त च त्रिलोकसारे [७८६,७८९–९१] –

वदरक्खामलयप्पमकप्पदुमदिण्णदिव्वआहारा[5]। वरपहुदितिभोगभुमा मंदकसाया विणीहारा ॥
जादजुगलेसु दिवसा सग सग अगुट्ठलेहरगिदये[6]। अथिरथिरगदिकलागुणजोव्वणदंसणगहे जति ॥
तद्दपढीगमादिमसंहदिसठाणमज्जणामजुदा । सुलहेसु वि णो तित्ती तेसि पच्चक्खविसएसु ॥४
चरमे खुदजभवसा णरणारि विलीय सरदमेह वा। भवणतिगामी मिच्छा सोहम्मदुजाइणो सम्मा ॥

प्रिय पदार्थोका वियोग नही होता ॥ २९ ॥ इन कालोमे न राजा होते हैं, न पाखण्डी होते है, न चोर होते है, न शत्रु होते हैं, न कर्म (कृषि आदि) होते हैं, न शिल्पकार्य होते हैं, न दरिद्रता होती है, और न रोग भी होते है ॥ ३० ॥

इन कालोमे स्त्रियाँ सुन्दर रूपसे सहित, सुभग, गीत व वादित्रमे निपुण सदा एक ही पतिके सुखका अनुभव करनेवाली, नि स्वार्थ सौहार्दसे सम्पन्न, रत्नो व आभरणोसे देदीप्यमान, सुगन्धित मालाओसे विभूषित, दिव्य वस्त्रोसे अलकृत और रतिरागमे परायण होती हैं ॥३१–३२॥ परस्परके दर्शनमे आसक्त, परस्परकी इच्छानुसार प्रवृत्ति करनेवाले और परस्परके हितके इच्छुक वे युगल एक दूसरेको नही छोडते हैं ॥३३॥ अन्तमे वे (नर-नारी) क्रमश छीक और जृभा मात्रसे अपने जीवितको छोडकर अल्प कषायसे सयुक्त होनेके कारण सौधर्मादिक विमानवासी देवोमे अथवा व्यन्तरादिकोमे उत्पन्न होते हैं ॥ ३४ ॥ त्रिलोकसारमे कहा भी है–

उत्तम आदि तीन भोगभूमियोमे उत्पन्न हुए नर-नारी क्रमसे बेर, बहेडा और आवलेके प्रमाण कल्पवृक्षोसे दिये गये दिव्य आहारके करनेवाले, मन्दकषायी और मल-मूत्रसे रहित होते है ॥ २ ॥ इन उत्पन्न हुए युगुलोमे अगूठेके चूसने, उठकर खडे होने, अस्थिर गमन, स्थिर गमन, कला-गुणग्रहण, यौवनग्रहण और सम्यग्दर्शनग्रहणमे सात सात दिन व्यतीत होते हैं। अर्थात् वे उनचास (४९) दिनमे यौवनको प्राप्त होकर सम्यग्दर्शनग्रहणके योग्य हो जाते हैं ॥ ३ ॥ उन दम्पतियोके प्रथम (वज्रर्षभवज्रनाराच) सहनन और प्रथम (समचतुरस्र) सस्थान होता है। आर्य इस नामसे सयुक्त उन दम्पतियोको पचेन्द्रियजनित विषयोके सुलभ होनेपर भी तृप्ति नही होती है ॥ ४ ॥ अन्तमे वे नर-नारी क्रमसे छीक और जृभाके वश शरत्कालीन मेघके समान विलीन होकर यदि मिथ्यादृष्टि हुए तो भवनत्रिक देवोमे और यदि सम्यग्दृष्टि हुए तो सौधर्मादिक देवोमे उत्पन्न होते हैं ॥ ५ ॥

१ प पाखडा । २ ब नपि च शत्रव । ३ ब नीतवादित्र° । ४ [°न्त अन्योन्य] ५ आ प आहारो ६ आ प रग्गिदये ।

पञ्चस्वद्रिषु नीलेषु निषधेषु कुरुष्वपि । वर्धमानोभयान्ताभ्यां प्रथमा नियु [य] ता समा ।। ३५
हिमवद्रुग्मिशैलेषु रम्यकेषु हरिष्वपि । वर्धमानोभयान्ताभ्या द्वितीया नियु [य] ता समा ।। ३६
शृङ्गिक्षुल्लहिमाह्वेषु तत्पार्श्वासु च भूमिषु । तृतीया तु समा नित्यमन्तरद्वीपकेषु च ।।३७
पल्योपमाष्टमे भागे जायन्ते कुलकृन्नरा[१] । चतुर्दश परस्तेभ्य आदिराजोऽपि जायते ।। ३८

उक्त चार्षे [आ. पु ३,५५-५७; ३-६३ आदि]—

ततस्तृतीयकालेऽस्मिन् व्यतिक्रामत्यनुक्रमात् । पल्योपमाष्टभागस्तु यदास्मिन् परिशिष्यते ।। ६
कल्पानोकहवीर्याणा क्रमादेव परिच्युतौ । ज्योतिरङ्गास्तदा वृक्षा गता मन्दप्रकाशताम् ।। ७
पुष्पदन्तावथाषाढ्यां पौर्णिमास्या[२] स्फुरत्प्रभौ । सायाह्ने प्रादुरास्ता तौ गगनोभयभागयो. ।। ८
प्रतिश्रुतिरितिख्यातस्तदाकुलधरोऽग्रिमः । बिभ्रल्लोकातिगं तेजः प्रजाना नेत्रमुद्बभौ[३] ।। ९
पल्यस्य दशमो भागस्तस्यायुर्जिनदेशितम् । धनु सहस्रमुत्सेधः शतैरधिकमष्टभिः ।। १०
अदृष्टपूर्वौ तौ दृष्ट्वा स भीतान् भोगभूमिजान् । भीतेर्निर्वर्तयामास तत्स्वरूपमिति ब्रुवन् ।। ११
एतौ तौ प्रतिदृश्येते सूर्यचन्द्रमसौ ग्रहौ । ज्योतिरङ्गप्रभापायात् कालह्रासवशोद्भवात् ।। १२

पाच नील पर्वतोपर, पाच निषधपर्वतोपर और पाच कुरुक्षेत्रोमे भी वर्धमान उभय अन्तोसे प्रथम (सुषमासुषमा) काल नियत है ।। ३५ ।। हिमवान् पर्वतोपर, रुक्मि पर्वतोपर, रम्यक क्षेत्रोमे और हरिक्षेत्रोमे भी वर्धमान उभय अन्तोसे द्वितीय (सुषमा) काल नियत है ।। ३६ ।। शिखरी पर्वतोपर, क्षुद्र हिमवान् पर्वतोपर उनकी पार्श्वभूमियो (हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्रो) मे तथा अन्तरद्वीपोमे भी सदा तृतीय (सुषमादुषमा) काल रहता है ।। ३७ ।। तृतीय कालमे पल्योपमका आठवा भाग ($\frac{1}{8}$) शेष रह जानेपर [भरत और ऐरावत क्षेत्रोके भीतर] चौदह (१४) कुलकर पुरुष उत्पन्न होते है । उनके पश्चात् भरतक्षेत्रमे आदिनाथ भी जन्म लेते है ।। ३८ ।। आर्ष (आदिपुराण)मे कहा भी है —

तत्पश्चात् अनुक्रमसे इस तृतीय कालके बीतनेपर जब उसमे पल्योपमका आठवा भाग ($\frac{1}{8}$) शेष रहता है तब क्रमसे कल्पवृक्षोकी शक्तियोके क्रमश क्षीण हो जानेपर ज्योतिरग कल्पवृक्ष मदप्रकाशरूपताको प्राप्त हो जाते हैं ।। ६–७ ।। तदनन्तर आषाढी पूर्णिमाके दिन सायंकालमे आकाशके उभय (पूर्व-पश्चिम) भागोमे प्रभासे प्रकाशमान वे पुष्पदन्त (सूर्य व चन्द्र) प्रकट हुए ।। ८ ।। उस समय अलौकिक तेजको धारण करनेवाला प्रतिश्रुति इस नामसे प्रसिद्ध प्रथम कुलकर प्रजाके नेत्रके समान सुशोभित हुआ ।। ९ ।। जिन भगवान्के द्वारा उसकी आयु पल्यके दसवे भाग ($\frac{1}{10}$)प्रमाण तथा शरीरकी ऊचाई एक हजार आठ सौ (१८००) धनुष मात्र निर्दिष्ट की गई है ।। १० ।। उस प्रतिश्रुति कुलकरने पूर्वमे कभी न देखे गये उन सूर्य-चन्द्रको देखकर भयभीत हुए प्रजाजनके भयको उक्त सूर्य-चन्द्रके स्वरूपको इस प्रकारसे बतलाकर दूर किया ।।११।। ये सूर्य-चन्द्र ग्रह अब कालकी हानिके प्रभावसे ज्योतिरग जातिके कल्पवृक्षोकी

१ प °कुलकिन्नरा । २ ब पौर्णमास्या । ३ आ पु नेत्रवद्बभौ ।

सदाप्यधिनभोभागं[1] भ्राम्यतोऽमू महाद्युती। न वस्ताभ्यां भयं किंचिदतो मा भैष्ट भद्रकाः॥१३
इति तद्वचनात्तेषा प्रत्याश्वासो महानभूत् । मनौ याते दिवं तस्मिन् काले गलति च क्रमात् ॥ ३९
मन्वन्तरमसंख्येयवर्षकोटीर्व्यतीत्य च । सन्मति सन्मतिर्नाम्ना द्वितीयोऽभून्मनुस्तदा ॥ ४०
तस्यायुरममप्रख्यमासीत्संख्येयहायनम् । सहस्रं त्रिशतीयुक्तमुत्सेधो धनुषा मत. ॥ ४१
नभोऽङ्गणमथापूर्य तारकाः प्रचकाशिरे । नात्यन्धकारकलुषा वेला प्राप्य तमीमुखे ॥ ४२
अकस्मात्तारका दृष्ट्वा स भ्रान्तान् भोगभूभुव' । भीतिर्विचलयामास प्राणिहत्येव योगिनः ॥ ४३
स सन्मतिरनुध्याय क्षण प्रावोचतार्यकान् । नोत्पातः कोऽप्यय भद्रास्तन्मागात् भियो वशम् ॥४४
ज्योतिश्चक्रमिद शश्वद् व्योममार्गे कृतस्थिति[2] । स्पष्टतामधुनायातं ज्योतिरङ्गप्रभाक्षयात् ॥४५
ज्योतिर्ज्ञानस्य बीजानि सोऽन्ववोचद्विदावर' । अथ तद्वचनादार्या जाता सपदि निर्भया ॥ ४६
ततोऽन्तरमसख्येया. [3]कोटीरुल्लङ्घ्य वत्सरान् । तृतीयो मनुरत्रासीत् क्षेमकरसमाह्वय ॥ ४७
अटटप्रमितं तस्य बभूवायुर्महौजस । देहोत्सेधश्च चापानाममुष्यासीच्छताष्टकम् ॥ ४८

प्रभाके विनष्ट हो जानेसे आकाशमे दिखने लगे हैं ॥ १२ ॥ अतिशय तेजके धारक वे दोनो सदा ही आकाशमे भ्रमण करते हैं । उनसे आप लोगोको कुछ भी भय नही होना चाहिये । अत एव हे भद्र पुरुपो ! आप लोग इनसे भयभीत न हो ॥ १३ ॥

प्रतिश्रुति कुलकरके इन वचनोसे उन भोगभूमिज प्रजाजनोको वडी सान्त्वना मिली । इस कुलकरके स्वर्गस्थ होनेके पश्चात् क्रमसे कालके व्यतीत होनेपर असख्यात करोड वर्षोको विताकर उत्तम बुद्धिका धारक सन्मति नामका दूसरा कुलकर हुआ ॥ ३९-४० ॥ उसकी आयु अममके वरावर असख्यात वर्ष और शरीरकी ऊचाई एक हजार तीन सौ (१३००) धनुप प्रमाण थी ॥ ४१ ॥ एक दिन रात्रिमे जब वेला (काल) सघन अन्धकारसे मलिन नही हुई थी तब तारागण आकाशरूपी आगनको पूर्ण करके प्रकाशित हुए ॥ ४२ ॥ उस समय अकस्मात् ताराओको देखकर उत्पन्न हुए भयने उन भोगभूमिजोको इस प्रकार विचलित कर दिया जैसे कि प्राणिहिंसा योगियोको विचलित कर देती है ॥ ४३ ॥ तब सन्मति कुलकरने क्षणभर विचार कर उन आर्योसे कहा कि हे भद्र पुरुषो ! यह कोई उपद्रव नही प्राप्त हुआ है । इसलिये आप लोग उनसे भयको प्राप्त न हो ॥ ४४ ॥ निरन्तर आकाशमार्गमे अवस्थित रहनेवाला यह ज्योतिर्मण्डल इस समय ज्योतिरग जातिके कल्पवृक्षोकी प्रभाके क्षीण हो जानेसे स्पष्टतया दृष्टि-गोचर होने लगा है ॥ ४५ ॥ विद्वानोमे श्रेष्ठ उस सन्मति कुलकरने उन्हे ज्योतिषी देवो विषयक ज्ञानके कुछ बीज भी बतलाये । उसके इस कथनसे आर्यगण शीघ्र ही भयसे निर्मुक्त हो गये॥४६॥

तत्पश्चात् असख्यात करोड वर्ष मात्र अन्तरको विताकर यहा क्षेमकर नामका तीसरा कुलकर हुआ ॥ ४७ ॥ उस महान् तेजस्वी कुलकरकी आयु अटट प्रमाण और शरीरकी ऊचाई

१ ब तदाप्यधि॰ । २ आ प कृतस्थिति । ३ आ प कोटि ।

पुरा किल मृगा भद्रा· प्रजाना हस्तलालिताः । तदा तु विकृतिं[1] भेजुर्व्यात्तास्या भीषणस्वनाः[2] ॥
तेषा विक्रियया सान्तर्गर्जया तत्रसुः प्रजाः । इमे भद्रमृगाः पूर्वं संवसन्तोऽनुपद्रवाः ॥ ५०
इदानी तु विना हेतो शृङ्गैरभिभवन्ति न· । इति तद्वचनाज्जातसौहार्दो मनुरब्रवीत् ॥ ५१
कर्तव्यो नैषु विश्वासो बाधा कुर्वन्त्युपेक्षिताः । इत्याकर्ण्य वचस्तस्य परिजह्रुस्तदा मृगान् ॥ ५२
मन्वन्तरमसख्येया· समाकोटीर्विलङ्घ्य च । अग्रेसरः सतामासीन्मनु· क्षेमंधराह्वय· ॥ ५३
त्रुटिताब्दमित तस्य बभूवायुर्महात्मन· । शतानि सप्त चापाना सप्ततिः[3] पञ्च चोच्छ्रितिः[4] ॥ ५४
यदा प्रबलता याता पाकसत्त्वा महाक्रुध· । तदा लकुटयष्ट्याद्यैः[5] स रक्षाविधिमन्वशात् ॥ ५५
पुनर्मन्वन्तर तत्र सजात पूर्ववत् क्रमात् । मनु· सीमंकरो जज्ञे प्रजाना पुण्यपाकतः ॥ ५६
कमलप्रमित तस्य बभूवायुर्महाधियः । शतानि सप्त पञ्चाशदुच्छ्रयो[6] धनुषा मतः ॥ ५७
कल्पाङ्घ्रिपा यदा जाता विरला मन्दका फलै· । तदा तेषु विसंवादो बभूवैषा परस्परम् ॥ ५८

आठ सौ (८००) धनुष मात्र थी ॥ ४८ ॥ जो भद्र मृग (पशु) पहिले प्रजाके हाथो द्वारा परिपालित थे वे उस समय मुह फाडकर भयानक शब्दको करते हुए विकारको प्राप्त हो चुके थे ॥ ४९ ॥ उनके इस अन्तर्गर्जना युक्त विकारसे प्रजाजन भयभीत होने लगे । [तब उन्होने क्षेमकर कुलकरसे निवेदन किया कि] ये भद्र मृग पहिले यहा विना किसी प्रकारके उपद्रवके रहते थे । किन्तु अब वे अकारण ही हम लोगोको सीगोसे अभिभूत करते है । इस प्रकारके उन आर्योके वचनोसे सौहार्दको प्राप्त होकर वह कुलकर बोला कि अब इनके विषयमे विश्वास न करो, इनकी यदि उपेक्षा की जायगी तो वे बाधा पहुचा सकते हैं । तब उसके इन वचनोको सुनकर आर्य जन उन मृगोका परिहार करने लगे ॥ ५०–५२ ॥

अनन्तर असख्यात करोड वर्षो प्रमाण मन्वन्तरका अतिक्रमण करके सज्जनोमे श्रेष्ठ क्षेमधर नामका चौथा कुलकर उत्पन्न हुआ ॥ ५३ ॥ उस महात्माकी आयु त्रुटित वर्ष प्रमाण और शरीरकी ऊचाई सात सौ पचत्तर (७७५) धनुष मात्र थी ॥ ५४ ॥ जब ये क्रूर प्राणी अतिशय क्रोधित होकर प्रबलता (क्रूरता) को प्राप्त होने लगे तब क्षेमधर कुलकरने उनसे दण्ड व लाठी आदिकोके द्वारा अपनी रक्षा करनेकी विधि बतलायी ॥ ५५ ॥

तत्पश्चात् पहिलेके समान क्रमसे असख्यात करोड वर्षो प्रमाण मन्वन्तर हुआ, अर्थात् क्षेमधर कुलकरके स्वर्गस्थ हो जानेपर असख्यात करोड वर्षो तक कोई कुलकर नही हुआ । उसके पश्चात् प्रजाजनोके पुण्योदयसे सीमकर नामका पाचवा कुलकर उत्पन्न हुआ ॥५६॥ उस महाबुद्धिमान् कुलकरकी आयु 'कमल' प्रमाण और शरीरकी ऊचाई सात सौ पचास (७५०) धनुष मात्र मानी गई है ॥ ५७ ॥ उस समय जब कल्पवृक्ष विरल हो गये अर्थात् जहा तहा सख्यामे वे थोडे-से रह गये तथा फलोसे मन्द भी पड गये तब उनके विषयमे इन आर्यगणोके बीच

१ प विहृतिं । २ प भीषणा° । ३ आ प सप्ततिं । ४ आ प पचकोच्छ्रितिम् । ५ आ प यष्टाद्यै । ६ आ ब °दुच्छ्रायो ।

ततो मनुरसौ मत्वा वाचा सीमविधिं व्यधात् । अत. सीमंकराख्या तैर्लम्भितोऽन्वर्थता गताम् ॥
पुनर्मन्वन्तरं प्राग्वदतिलङ्घ्य महोदयः । मनु सीमधरो नाम्ना समजायत पुण्यधी· ॥ ६०
नलिनप्रमितायुष्को नलिनास्येक्षणद्युति । धनुषा पञ्चवर्गाग्रमुच्छ्रित शतसप्तकम् ॥ ६१
अत्यन्तविरला जाता· क्ष्माजा मन्दफला यदा । नृणा महान्[1] विसवादः केशाकेशि तदावृधत्[2] ॥६२
क्षेमवृत्ति ततस्तेषा मन्वान स मनुस्तदा । सीमानि तरुगुल्मादिचिह्नितान्यकरोत् कृती ॥ ६३
ततोऽन्तरमभूद्भूयोऽप्यसख्या वर्षकोटय· । तदन्तरव्यतिक्रान्तावभूद्विमलवाहन· ॥ ६४
पद्मप्रमितमस्यायु· पद्माश्लिष्टतनोरभूत् । धनु·शतानि सप्तैव तनूत्सेधोऽस्य वर्णित ॥ ६५
तदुपज्ञ गजादीना बभूवारोहणक्रम । कुदाराङ्कुशपर्याणमुखभाण्डाद्युपक्रमै·[3] ॥ ६६
पुनरन्तरमत्रासीदसख्येयाब्दकोटय. । ततोऽष्टमो मनुर्जातश्चक्षुष्मानिति शब्दित· ॥ ६७

परस्परमे विवाद होने लगा ॥ ५८ ॥ तब उस कुलकरने इस विवादको देखकर वचन मात्रसे उनकी सीमाका विधान बना दिया, अर्थात् उनके उपयोगके लिये उसने कुछ अलग अलग वृक्षोका निर्देश कर दिया । इसी कारण उन आर्यगणोने इसका 'सीमकर' यह सार्थक नाम प्रसिद्ध कर दिया ॥ ५९ ॥

तत्पश्चात् फिरसे पहिलेके ही समान असख्यात करोड वर्षो तक कोई कुलकर नही हुआ । तब कही इतने अन्तरके पश्चात् महान् अभ्युदयसे सम्पन्न पवित्रबुद्धि सीमधर नामका छठा कुलकर उत्पन्न हुआ ॥ ६० ॥ कमलके समान मुख एव नेत्रोकी कान्तिसे सुशोभित उस कुलकरकी आयु 'नलिन' प्रमाण तथा शरीरकी ऊचाई पाचके वर्ग (५×५=२५) से अधिक सात सौ (७२५) धनुष मात्र थी ॥ ६१ ॥ उस समय जब कल्पवृक्ष बहुत ही थोडे रह गये और उनकी फलदानशक्ति भी अतिशय मन्द पड गई तब उन भोगभूमिज मनुष्योके बीच केवल महाविसवाद ही नही छिडा, बल्कि आपसमे एक दूसरेके बालोको खीचकर मार पीटकी भी वृद्धि होने लगी ॥ ६२ ॥ तब उस विद्वान् कुलकरने उन आर्योके कल्याणको महत्त्व देकर उक्त कल्पवृक्षोकी सीमाओको – जिन्हे सीमकर कुलकरने वचन मात्रसे ही बद्ध किया था – अन्य वृक्ष एव झाडी आदिकोसे चिह्नित कर दिया ॥ ६३ ॥

तत्पश्चात् फिरसे भी असख्यात करोड वर्ष प्रमाण मन्वन्तर हुआ, तब कही इतने अन्तरके बीत जानेपर विमलवाहन नामका सातवा कुलकर प्रादुर्भूत हुआ ॥ ६४ ॥ लक्ष्मीसे आलिंगित ऐसे सुन्दर शरीरको धारण करनेवाले इस कुलकरकी आयु 'पद्म' प्रमाण तथा शरीरकी ऊचाई सात सौ (७००) धनुष मात्र कही गई है ॥ ६५ ॥ इस समय विमलवाहन कुलकरके उपदेशानुसार कुदार, अकुश, पलान और मुखभाण्ड (तोबरा) आदिकी प्रवृत्तिपूर्वक हाथी आदिकोकी सवारी प्रारम्भ हो गई थी ॥ ६६ ॥

इसके पश्चात् यहा फिरसे भी असख्यात करोड वर्ष प्रमाण अन्तर हुआ, तब कही

---

१ आ प महा । २ आ ब 'केशि तदा वृदत्, प 'केशि वृदत् । ३ ब कुथाराकुश° ।

पद्माङ्गप्रमितायुष्कश्चापाना पञ्चसप्ततिम् । षट्छतान्यप्युदग्रश्रीरुच्छ्रिताङ्गो बभूव सः ॥ ६८
तस्य कालेऽभवत्तेषा क्षण पुत्रमुखेक्षणम् । अदृष्टपूर्वमार्याणा महदुत्रासकारणम् ॥ ६९
तत' सपदि संजातसाध्वसानार्यकास्तदा । तद्याथात्म्योपदेशेन स सत्रासमथो[यौ]ज्झयत् ॥ ७०
पुनरप्यन्तर तावद्वर्षकोटीर्विलङ्घ्य सः । [1]यशस्वानित्यभून्नाम्ना यशस्वी नवमो मनुः ॥ ७१
कुमुदप्रमित तस्य परमायुर्महीयसः । षट्छतानि च पञ्चाशद्धनूंषि वपुरुच्छ्रितिः ॥ ७२
तस्य काले प्रजा ज'यमुखालोकपुरस्सरम् । कृताशिषः क्षणं स्थित्वा लोकान्तरमुपागमन् ॥ ७३
ततोऽन्तरमतिक्रम्य तत्प्रायोग्याब्दसमितम् । अभिचन्द्रोऽभवन्नाम्ना चन्द्रसौम्याननो मनु. ॥ ७४
कुमुदाङ्गप्रमायुष्को ज्वलन्मकुटकुण्डलः । पञ्चवर्गाग्रषट्चापशतोत्सेध' स्फुरत्तनु ॥ ७५
तस्य काले प्रजास्तोकमुख वीक्ष्य सकौतुकम् । आशास्य क्रीडन चक्रुर्निशि चन्द्राभिदर्शनैः ॥ ७६
पुनरन्तरमुल्लङ्घ्य तत्प्रायोग्यसमाशतैः । चन्द्राभ इत्यभूत् ख्यातश्चन्द्रास्य कालविन्मनुः ॥ ७७

चक्षुष्मान् नामका आठवा कुलकर उत्पन्न हुआ ॥ ६७ ॥ वह उन्नत शोभाका धारक कुलकर 'पद्माग' प्रमाण आयुसे सयुक्त तथा छह सौ पचत्तर (६७५) धनुप गात्र ऊचे शरीरवाला था ॥६८॥ उसके समयमे जिन आर्यगणोने [प्रसवके साथ ही मरणको प्राप्त हो जानेके कारण] पहिले कभी सन्तानका मुख नही देखा था वे अब क्षणभर जीवित रहकर उसका मुख देखने लगे थे। यह उन्हे महान् भयका कारण बन गया था ॥ ६९ ॥ इस कारण उस समय चक्षुष्मान् कुलकरने शीघ्र ही भयसे सत्रस्त उन आर्यगणोको सन्तानविषयक यथार्थताका उपदेश देकर उनके भयको दूर कर दिया था ॥ ७० ॥

उसके बाद फिरसे भी उतने (असख्यात) करोड वर्षो प्रमाण कुलकरविच्छेदको विताकर यशस्वान् नामका कीर्तिशाली नौवा कुलकर उत्पन्न हुआ ॥७१॥ उस तेजस्वी महापुरुषकी उत्कृष्ट आयु 'कुमुद' प्रमाण और शरीरकी ऊचाई छह सौ पचास (६५०) धनुष मात्र थी ॥ ७२॥ उसके समयमे प्रजाजन सन्तानके मुखको देखकर और क्षणभर स्थित रहकर 'जीव, नन्द' आदि आशीर्वचनोको कहते हुए परलोकको प्राप्त होते थे ॥ ७३ ॥

तत्पश्चात् उसके योग्य अर्थात् असख्यात करोड वर्षो प्रमाण कुलकरविच्छेदको विताकर चन्द्रमाके समान सौम्य मुखवाला अभिचन्द्र नामका दसवा कुलकर हुआ ॥७४॥ चमकते हुए मुकुट एव कुण्डलोसे विभूषित वह कुलकर 'कुमुदाग' प्रमाण आयुका धारक तथा पाचके वर्ग (२५) से अधिक छह सौ (६२५) धनुष मात्र ऊचे देदीप्यमान शरीरसे सुशोभित था ॥ ७५ ॥ उसके समयमे प्रजाजन कौतूहलपूर्वक सन्तानके मुखको देखकर और आशीर्वाद देकर रात्रिमे चन्द्रमा आदिको दिखाते हुए उसको खिलाने लगे थे ॥ ७६ ॥

तत्पश्चात् फिर भी उसके योग्य सैकडो वर्षो प्रमाण मनुविच्छेदको लाधकर चन्द्रके समान सुन्दर मुखवाला समयज्ञ (समयकी गतिका जानकार) चन्द्राभ नामक ग्यारहवा प्रसिद्ध

१ आ ब यशस्वान्नित्य° ।

[1]नयुतप्रमितायुष्को विलसल्लक्षणोज्ज्वलः । धनुषां षट्छतान्युच्चः प्रोद्यदर्कसमद्युतिः ॥ ७८
तस्य कालेऽतिसंप्रीताः पुत्राशासनदर्शनैः । सुतैः सह स्म जीवन्ति दिनानि कतिचित्प्रजाः ॥ ७९
मरुद्देवोऽभवत्कान्तः कुलधृत्तदनन्तरम् । स्वोचितान्तरमुल्लङ्घ्य प्रजानामुत्सवो दृशाम् ॥ ८०
शतानि पञ्च पञ्चाग्रां सप्तर्ति च समुच्छ्रितिः । धनूंषि [2]नयुताङ्गायुर्विवस्वानिव भास्वरः ॥८१
तस्य काले प्रजा दीर्घं प्रजाभिः स्वाभिरन्विताः । प्राणिषुस्तन्मुखालोकतदङ्गस्पर्शनोत्सवैः ॥ ८२
नौद्रोणीसंक्रमादीनि जलदुर्गेष्वकारयत् । गिरिदुर्गेषु सोपानपद्धतीः सोऽधिरोहणे ॥ ८३
ततः प्रसेनजिज्जज्ञे[3] प्रभविष्णुर्मनुर्महान् । कर्मभूमिरियतावेवमभ्यर्णाया शनैः शनैः ॥ ८४
[4]पर्वप्रमितमाम्नातं मनोरस्यायुरञ्जसा । शतानि पञ्च चापानां शतार्धं च तदुच्छ्रितिः ॥ ८५
तदाभूदर्भकोत्पत्तिर्जरायुपटलावृता । ततस्तत्कर्षणोपाय स प्रजानामुपादिशत् ॥ ८६
तदनन्तरमेवाभून्नाभिः कुलधरः सुधीः । युगादिपुरुषैः पूर्वैरूढा धुरमुद्वहन् ॥ ८७
पूर्वकोटिमितं तस्य परमायुस्तनूच्छ्रितिः । शतानि पञ्च चापानां पञ्चवर्गाधिकानि वै ॥ ८८

कुलकर हुआ ॥ ७७ ॥ सुन्दर लक्षणोंसे उज्ज्वल एवं उदित होते हुए सूर्यके समान कान्तिवाला वह कुलकर 'नयुत' प्रमाण आयुका धारक और छह सौ (६००) धनुष ऊंचा था ॥७८॥ उसके समयमें प्रजाजन पुत्रोंके दर्शन एवं आश्वासनसे अतिशय प्रीतिको प्राप्त होकर सन्तानके साथ कुछ दिन जीवित रहने लगे थे ॥७९॥

उसके पश्चात् अपने योग्य मन्वन्तरको लांघकर प्रजाजनोंके नेत्रोंको आनन्दित करनेवाला रमणीय मरुद्देव नामका बारहवां कुलकर उत्पन्न हुआ ॥८०॥ यह कुलकर सूर्यके समान तेजस्वी था। उसके शरीरकी ऊंचाई पांच सौ पचत्तर (५७५) धनुष और आयु 'नयुतांग' प्रमाण थी ॥८१॥ उसके समयमें प्रजाजन अपनी सन्तानके साथ बहुत समय तक स्थित रहकर उसके मुखावलोकन और अंगस्पर्शरूप उत्सवोंसे अतिशय प्रीतिको प्राप्त होते थे ॥८२॥ उसने जलमय दुर्गम स्थानों (नदी-समुद्र आदि) में जानेके लिये नाव, द्रोणी (छोटी नाव) एवं पुल आदिका तथा पर्वतादिरूप दुर्गम स्थानोंके ऊपर चढनेके लिये सीढियोंकी प्रणालीका निर्माण कराया ॥८३॥

तत्पश्चात् धीरे धीरे कर्मभूमिकी स्थितिके निकट होनेपर महान् प्रभावशाली प्रसेनजित् नामका तेरहवां कुलकर उत्पन्न हुआ ॥ ८४ ॥ इस कुलकरकी आयु निश्चयतः पर्व प्रमाण और शरीरकी ऊंचाई पांच सौ पचास (५५०) धनुष मात्र थी ॥८५॥ उस समय सन्तानकी उत्पत्ति जरायुपटलसे वेष्टित होने लगी थी, इसलिये उसने प्रजाजनोंको उक्त जरायुपटलके छेदनेका उपाय निर्दिष्ट किया था ॥८६॥

उसके अनन्तर ही युगादि पुरुषों (पूर्व कुलकरों) के द्वारा धारण किये गये भारको धारण करनेवाला बुद्धिमान् नाभिराय नामका चौदहवां कुलकर हुआ ॥८७॥ उसकी उत्कृष्ट आयु पूर्वकोटि प्रमाण तथा शरीरकी ऊंचाई पांचके वर्ग (२५) से अधिक पांच सौ (५२५)

१ ब नवुत°। २ ब नवुत°। ३ ब °जिदजज्ञे। ४ प पूर्वं।

तस्य काले सुतोत्पत्तौ नाभिनालमदृश्यत । स तन्निकर्तनोपायमादिशन्नाभिरित्यभूत् ॥ ८९
तस्यैव काले जलदाः कालिकाः कर्वुरत्विषः । प्रादुरासन्नभोभागे सान्द्राः सेन्द्रशरासनाः ॥ ९०
शनैःशनैर्विवृद्धानि क्षेत्रेष्वविरलं तदा । सस्यान्यकृष्टपच्यानि[1] नानाभेदानि सर्वतः ॥ ९१
प्रजाना पूर्वसुकृतात् कालादपि च तादृशात् । सुपक्वानि यथाकाल फलदायीनि रेजिरे ॥ ९२
तदा पितृव्यतिक्रान्तावपत्यानीव तत्पदम् । कल्पवृक्षोचित स्थान तान्यध्याशिषत स्फुटम् ॥९३
नातिवृष्टिरवृष्टिर्वा तदासीत् किंतु मध्यमा । वृष्टिरतत्सर्वधान्यानां फलावाप्तिरविप्लुता ॥ ९४
षष्टिकाकलमव्रीहियवगोधूमकङ्गवः । शामाककोद्रवोदारनीवारवरकास्तथा ॥ ९५
तिलातस्यौ मसूरश्च सर्षपो धान्यजीरके । मुद्गमाषाढकीराजमाषनिष्पावकाश्चणः ॥ ९६
कुलत्थत्रिपुटा चेति धान्यभेदास्त्विमे मताः । सकुसुम्भाः सकार्पासाः प्रजाजीवनहेतवः ॥ ९७
उपभोग्येषु धान्येषु सत्स्वप्येषु तदा प्रजाः । तदुपायमजानानाः स्वतोऽमूर्मुमुहुर्मुहुः[2] ॥ ९८
कल्पद्रुमेषु कार्त्स्न्येन प्रलीनेषु निराश्रयाः । युगस्य परिवर्तेऽस्मिन् अभूवन्नाकुला कुलाः ॥ ९९
तीव्रायामशनायायामुदीर्णाहारसंज्ञकाः । जीवनोपायशसीतिव्याकुलीकृतचेतसः ॥ १००

धनुष मात्र थी ॥८८॥ उसके समयमे सन्तानकी उत्पत्तिके समय नाभिनाल दिखाई देने लगा था । चूकि उसके छेदनेका उपाय इस कुलकरने बतलाया था, अत वह 'नाभि' इस नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥८९॥ आकाशमण्डलमे इन्द्रधनुषके साथ कर्वुर (भूरा रग) कान्तिवाले काले घने मेघोका प्रादुर्भाव उसके ही समयमे हुआ था ॥९०॥ उस समय खेतोमे सब ओर अनेक प्रकारके धान्य (अनाज) के अकुर विना जोते व विना वोये ही धीरे धीरे सघनरूपमे वृद्धिको प्राप्त हो रहे थे। वे समयानुसार प्रजाजनोके पूर्व पुण्यके वश तथा उस प्रकारके कालके ही प्रभावसे भी पक करके फल देनेके योग्य हो गये थे ॥९१–९२॥ उस समय पिताके स्वर्गस्थ होनेपर जैसे सन्तान उसके स्थानको ग्रहण कर लेती है वैसे ही उन अनाजोने पूर्वोक्त कल्पवृक्षोका उचित स्थान ग्रहण कर लिया था ॥९३॥

उस समय न अतिवृष्टि होती थी और न अवृष्टि (वर्षाभाव) भी, किन्तु मध्यम वृष्टि होती थी, जिससे विना किसी प्रकारके उपद्रवके समस्त अनाजोकी फलप्राप्ति होती थी ॥९४॥ षष्ठिक (साठ दिनोमे पककर तैयार होनेवाली साठी धान), कलम, व्रीहि, जौ, गेहू, कगु (कागणी), श्यामाक (समा), कोद्रव (कोदो), उदार नीवार, वरक, तिल, अलसी, मसूर, सरसो, धनिया, जीरा, मूग, उडद, आढकी (अरहर), रोसा, निष्पावक (मोठ), चना, कुलथी और तेवरा ये अनाजके भेद माने गये है। कुसुम्भ और कपासके साथ ये सब प्रजाजनोकी आजीविकाके कारण माने गये है ॥९५–९७॥ उपभोगके योग्य इन अनाजोके होनेपर भी उनके उपायको न जाननेवाली प्रजा उस समय बार बार मोहको प्राप्त होती थी ॥९८॥ युगके इस परिवर्तनमे जब कल्पवृक्ष पूर्णतया नष्ट हो गये तब निराश्रय होकर प्रजाके लोग आकुलताको प्राप्त हुए ॥९९॥ उस समय आहारसज्ञाकी उदीरणासे तीव्र भूखके लगनेपर जीवित रहनेके उपायके विषयमे सन्देहको प्राप्त हुए उन प्रजाजनोके चित्त अत्यन्त व्याकुल हो

१ प सस्यान्नकृष्ट° । २ आ ब स्वतोमूर्मुहुर्मुहु , प स्वतोभूर्मुहुर्मुहु. ।

युगमुख्यमुपासीना नाभिं मनुमपश्चिमम्[1] । ते तं विज्ञापयामासुरिति दीनगिरो नराः ॥ १०१
जीवाम कथमेवाद्य नाथानाथा विना द्रुमैः । कल्पदायिभिराकल्पमविस्मार्यैरपुण्यकाः ॥ १०२
इमे केचिदितो देव तरुभेदाः समुत्थिताः । शाखाभिः फलनम्राभिराह्वयन्तीव नोऽधुना ॥ १०३
किमिमे परिहर्तव्याः किं वा भोग्यफला इमे । फलैग्रहीनिमेऽस्मान् वानिग्रहन्त्यनुपान्ति वा ॥१०४
अमीषामुपशल्येषु[2] केप्यमी तृणगुल्मकाः । फलनम्रशिखा भान्ति विश्वदिक्कमितोऽमुत ॥ १०५
क एषामुपयोगः स्याद्विनियोज्याः कथं नु वा । किमिमे स्वैरसंग्राह्या न वेतीदं वदाद्य नः ॥ १०६
त्वं देव सर्वमप्येतद्वेत्सि नास्मेऽनभिज्ञकाः । पृच्छामो वयमद्यार्तास्ततो ब्रूहि प्रसीद नः ॥ १०७
इति कर्तव्यतामूढानतिभीतास्तदार्यकान् । नाभिर्न भेयमित्युक्त्वा[3] व्याजहार पुनः स तान् ॥१०८
इमे कल्पतरूच्छेदे द्रुमाः पक्वफलानताः । युष्मानद्यानुगृह्णन्ति पुरा कल्पद्रुमा यथा ॥ १०९
[4]भद्रकास्तदिमे भोग्याः कार्या न भ्रान्तिरत्र च । अमी च परिहर्तव्या दूरतो विषवृक्षकाः ॥ ११०
इमाश्च नामौषधयः स्तम्बकर्यादयो मताः । एतासां भोज्यमन्नाद्यं व्यञ्जनाद्यैः[5] सुसंस्कृतम् ॥१११

उठे थे ॥१००॥ तब उन सबने युगके नेता स्वरूप अन्तिम कुलकर नाभिरायके समीप जाकर दीन वचनोंसे उनसे इस प्रकार निवेदन किया ॥१०१॥

हे नाथ ! जो कल्पवृक्ष कल्पित (इच्छित) वस्तुओंके देनेवाले थे और इसीलिये जिनको कल्पकाल पर्यंत कभी भुलाया नहीं जा सकता है, उनके बिना आज हम अनाथ हुए पापी जन किस प्रकारसे जीवित रहें ? ॥१०२॥ हे देव ! इधर जो ये कितने ही विभिन्न जातिके पेड उत्पन्न हुए हैं वे फलभारसे नम्रीभूत हुई अपनी शाखाओंके द्वारा मानो इस समय हमें बुला ही रहे हैं। क्या इनको छोडा जाय, अथवा इनके फलोंका उपयोग किया जाय ? फलोंके ग्रहण करनेपर ये हमारा निग्रह करेंगे अथवा पालन करेंगे ? ॥१०३–१०४॥ इधर उन वृक्षोंके समीपकी भूमिमें सब ओर फलोंसे नम्र हुई शिखाओंसे सुशोभित जो ये कितनी ही क्षुद्र झाडियां शोभायमान हो रही हैं उनका क्या उपयोग हो सकता है और किस प्रकारसे वे काममें लायी जा सकती है, क्या इनका इच्छानुसार संग्रह किया जा सकता है अथवा नहीं, इन सब बातोंको आज हमें बतलाइये ॥१०५–१०६॥ हे नाभिराय देव ! आप इस सभीको जानते हैं और हम इससे अनभिज्ञ है, इसीलिये हम आज दुखित होकर आपसे पूछ रहे हैं। अत एव आप प्रसन्न होकर इन सब बातोंको हमें समझाइये ॥१०७॥

इस प्रकार कर्तव्य-अकर्तव्यके विषयमें विमूढ होकर अत्यन्त भयको प्राप्त हुए उन आर्य पुरुषोंको 'आप लोग भयभीत न हो' ऐसा कहकर नाभिराय इस प्रकार बोले ॥१०८॥ कल्पवृक्षोंके नष्ट हो जानेपर फलोंके भारसे नम्रीभूत हुए ये जो वृक्ष उत्पन्न हुए है वे आप लोगोंका इस समय उसी प्रकारसे उपकार करेंगे जिस प्रकार कि पहिले कल्पवृक्ष किया करते थे ॥१०९॥ इसलिये हे भद्र पुरुषो ! इनका उपयोग कीजिए, इनके विषयमें आप किसी प्रकारका सन्देह न करें। परन्तु ये जो सामने विषवृक्ष हैं उनका दूरसे ही परित्याग कीजिये ॥११०॥ इनके अतिरिक्त ये स्तम्बकरी आदि औषधियां मानी गई है। व्यंजन आदिकोंसे सुसंस्कृत किये गये

---

१ प मनु पश्चिमम् । २ प्रतिपु मुपशशल्येपु । ३ प्रतिपु नाभिर्नभेय° । ४ प भद्रिका । ५ आदिपु व्यञ्जनाद्य. ।

स्वभावमधुराश्चैते दीर्घा. पुण्ड्रेक्षुदण्डका.[1] । रसीकृत्य प्रपातव्या दन्तैर्यन्त्रैश्च पीडिता ॥ ११२
गजकुम्भस्थले तेन मृदा निर्वर्तितानि[2] च । पात्राणि विविधान्येषा स्थाल्यादीनि दयालुना ॥ ११३
इत्याद्युपायकथनै प्रीता सत्कृत्य त मनुम् । भेजुस्तद्दर्शिता वृत्ति प्रजा कालोचिता तदा ॥ ११४
प्रजाना हितकृद् भूत्वा भोगभूमिस्थितिच्युतौ। नाभिराजस्तदोद्भूतो भेजे कल्पतरुस्थितिम्॥ ११५
पूर्वं व्यावर्णिता ये ये प्रतिश्रुत्यादय क्रमात् । पुराभवे बभूवुस्ते विदेहेषु महान्वयाः ॥ ११६
कुशलैः पात्रदानाद्यैः अनुष्ठानैर्यथोचितै । सम्यक्त्वग्रहणात्पूर्वं बध्वायुर्भोगभूभुवाम् ॥ ११७
पश्चात् क्षायिकसम्यक्त्वमुपादाय जिनान्तिके । अत्रोदपत्सत स्वायुरन्ते ते श्रुतपूर्विण. ॥ ११८
इम नियोगमाध्याय प्रजानामित्युपादिशन् । केचिज्जातिस्मरास्तेषु केचिच्चावधिलोचनाः ॥११९
प्रजाना जीवनोपायमननान्मनवो मता. । आर्याणा कुलसस्त्यायकृते.[3] कुलकरा इमे ॥ १२०

इनके अन्न आदिका भोजन करना चाहिए ॥१११॥ स्वभावसे मीठे ये जो दण्डके समान लबे पौडा और ईखके पेड है उनको दातोसे अथवा कोल्हू आदि यन्त्रोसे पीडित करके रस निकालना चाहिए और उसका पान करना चाहिए ॥११२॥ उन दयालु नाभिराय कुलकरने हाथीके कुम्भस्थलपर थाली आदि अनेक प्रकारके पात्रोको मिट्टीसे निर्मापित कराया ॥११३॥ तब इनको आदि लेकर और भी अनेक उपायोके बतलानेसे प्रसन्नताको प्राप्त हुए प्रजाके लोग उक्त नाभिराय कुलकरका सत्कार करके उसके द्वारा निर्दिष्ट समयोचित आजीविकाको करने लगे ॥ ११४॥

भोगभूमि अवस्थाका विनाश होनेपर प्रजाके हितैषी होकर उत्पन्न हुए नाभिराय कुलकर उस समय कल्पवृक्षकी अवस्थाको प्राप्त हुए। अभिप्राय यह कि भोगभूमि अवस्थाके वर्तमान होनेपर जिस प्रकार अभीष्ट सामग्रीको देकर कल्पवृक्ष उन प्रजाजनोका साक्षात् उपकार करते थे उसी प्रकार चूंकि नाभिराय कुलकरने तब भोगभूमि अवस्थाके विनष्ट हो जानेपर उक्त प्रजाजनोको आजीविकाके उपाय बतलाकर उनका महान् उपकार किया था, अत एव वे उन्हे कल्पवृक्ष जैसे प्रमाणित हुए ॥११५॥ जिन जिन प्रतिश्रुति आदि कुलकर पुरुषोका पूर्वमे क्रमसे वर्णन किया गया है वे पूर्व जन्ममे विदेह क्षेत्रोके भीतर महान् कुलोमे उत्पन्न हुए थे ॥११६॥ वे सम्यक्त्वग्रहण करनेके पहिले यथायोग्य पात्रदानादिस्वरूप पुण्यबन्धक अनुष्ठानोके द्वारा भोगभूमिजोकी आयुको बाधकर और फिर जिन भगवान्के समीपमे क्षायिक सम्यक्त्वको ग्रहण करके पूर्वश्रुतके धारी होते हुए आयुके अन्तमे यहा उत्पन्न हुए थे ॥११७–११८॥ उनमे कितने ही जातिस्मरणसे सहित थे और कितने ही अवधिज्ञानरूपी नेत्रके धारक थे। इसीलिये उन्होने स्मरण करके प्रजाजनोके लिये इस नियोगका उपदेश दिया था ॥११९॥ ये प्रजाजनोकी आजीविकाके उपायका मनन करने अर्थात् जाननेके कारण 'मनु' तथा आर्यजनोके कुलोकी रचना करनेसे 'कुलकर' माने गए है ॥१२०॥ इसी प्रकार

१ प पुगेक्षु°। २ आ प निर्वर्तिकानि। ३ प सस्याय°।

कुलानां धारणादेते मताः कुलधरा इति । युगादिपुरुषाः प्रोक्ता युगादौ प्रभविष्णवः ॥ १२१
वृषभस्तीर्थकृच्चैव कुलभृच्चैव संमतः[1] । भरतश्चक्रभृच्चैव कुलधृच्चैव[2] वर्णितः ॥ १२२
अत्राद्यैः पञ्चभिर्नृणां कुलभृद्भिः कृतागसाम् । हाकारलक्षणो दण्डः समवस्थापितस्तदा[3] ॥ १२३
हा-माकारौ च दण्डोऽन्यैः[4] पञ्चभिः संप्रवर्तितः । पञ्चभिस्तु ततः शेषैः हा-मा-धिक्कारलक्षणः ॥
शरीरदण्डनं चैव वधबन्धादिलक्षणम् । नृणां[5] प्रबलदोषाणां भरतेन नियोजितम् ॥ १२५
यदायुःप्रमितमेतेषाममभादिप्रसंख्यया । क्रियते तद्विनिश्चित्यै परिभाषोपवर्णनम् ॥ १२६
पूर्वाङ्गं वर्षलक्षाणामशीतिश्चतुरुत्तरा । तद्वर्गितं भवेत्पूर्वं तत्कोटी पूर्वकोटयसौ ॥ १२७
पूर्वं चतुरशीतिघ्नं पर्वाङ्गं[6] परिभाष्यते । पूर्वाङ्गताडितं तत्तु पर्वाङ्ग[7] पर्वमिष्यते ॥ १२८
गुणाकारविधिः सोऽयं योजनीयो यथाक्रमम् । उत्तरेष्वपि संख्यानविकल्पेषु निराकुलम् ॥ १२९

ये कुलोंके धारण करनेसे 'कुलधर' माने गए हैं, तथा युगके आदिमें उत्पन्न होनेके कारण 'युगादिपुरुष' भी कहे गए हैं ॥१२१॥ वृषभदेव तीर्थंकर भी माने गये हैं और कुलकर भी माने गये हैं। भरत राजा चक्रवर्ती भी कहे गए हैं और कुलधर भी ॥१२२॥

इनमेंसे आदिके पांच कुलकर पुरुषोंने अपराध करनेवाले पुरुषोंके लिये उस समय 'हा' इस प्रकारका दण्ड स्थापित किया था, जिसका अभिप्राय कृत अपराधके प्रति केवल खेद मात्र प्रगट करना या उसका अनौचित्य बतलाना था ॥१२३॥ उनसे आगेके अन्य पांच कुलकरोंने अपराध करनेवालोंके लिये 'हा-मा' इस प्रकारके दण्डका उपयोग किया था। इसका अभिप्राय किये गये अपराध कार्यका अनौचित्य प्रगट करके आगेके लिये उसका निषेध करना था। शेष पांच कुलकर पुरुषोंने उनके लिए 'हा-मा-धिक्' इस प्रकारका दण्ड स्थापित किया था। इसका अभिप्राय कृत कार्यका अनौचित्य प्रगट करके झिडकी देते हुए आगेके लिये उसका निषेध करना था ॥ १२४ ॥ भरत चक्रवर्तीने महान् अपराध करनेवाले मनुष्योंके लिये ताडना करने एवं बन्धनमें डालने आदिरूप शारीरिक दण्ड भी नियुक्त किया था ॥१२५॥

इन कुलकरोंकी पहिले जो 'अमम' आदिके प्रमाणसे आयु बतलायी गई है उसका निश्चय करनेके लिये उन परिभाषाओंका वर्णन किया जाता है– चौरासी लाख (८४०००००) वर्षोंका एक पूर्वांग होता है। उसको वर्गित करनेपर (८४०००००^2 = ७०५६००००००००००) एक पूर्व, तथा उसे एक करोडसे गुणित करनेपर एक पूर्वकोटि कहा जाता है ॥१२६-१२७॥ चौरासीसे गुणित पूर्वको पर्वांग कहा जाता है और उस पर्वांगको पूर्वांगसे (८४ लाख) गुणित करनेपर जो संख्या प्राप्त हो वह पर्व मानी जाती है ॥१२८॥ आगेके संख्याभेदोंमें भी निराकुल होकर क्रमसे इसी गुणाकारविधिकी योजना करना चाहिये [जैसे– पर्वको चौरासी (८४) से गुणित करनेपर वह नयुतांग तथा इस नयुतांगको चौरासी लाख (८४०००००) से गुणित करनेपर वह नयुत कहा जाता है, इत्यादि । विशेषके लिये देखिये ति. प. गा. ४, २९५–३०८] ॥१२९॥

१ आ प °कृच्चैव संमतः । २ प कुलभृच्चैव । ३ आ प स्थापितः सदा । ४ आ प दण्डान्यै । ५ ब नृणा । ६ प पूर्वांगं । ७ आ प पूर्वांगं

तेषां संख्यानभेदाना नामानीमान्यनुक्रमात् । कीर्त्यन्तेऽनादिसिद्धान्तपदरूढीनि यानि वै ॥ १३०
पूर्वाङ्गं च तथा पूर्वं पर्वाङ्ग पर्व साह्वयम् । नयुताङ्ग[1] परं तस्मान्नयुत[2]च तत परम् ॥ १३१
कुमुदाङ्गमतो विद्धि कुमुदाह्वमत[3] परम् । पद्माङ्गं च तथा पद्म नलिनाङ्गमतोऽपि च ॥ १३२
नलिनं कमलाङ्ग च तथान्यत् कमल विदुः । तुट्यङ्ग तुटितं चान्यदटटाङ्गमथाटटम् ॥ १३३
अममाङ्गमतो ज्ञेयमममाख्यमतः परम् । हाहाङ्ग च तथा हाहा हूहूश्चैव प्रतीयताम् ॥ १३४
लताङ्गं च लताह्व च महत्पूर्वं च तद्द्वयम् । शिर·प्रकम्पितं चान्यत्ततो हस्तप्रहेलितम् ॥ १३५
अचलात्मकमित्येवप्रकार:[4] कालपर्यय । संख्येयो गणनातीतं विदुः कालमतः परम् ॥ १३६
यथासभवमेतेषु मनूनामायुरूह्यताम्[5] । सख्याज्ञानमिद विद्वान् सुधीः पौराणिको भवेत् ॥ १३७
अल्पे शिष्टे तृतीयान्ते क्षीणे वृक्षगुणे क्रमात् । लोभादिषु प्रवृद्धेषु कर्मभूमिश्च जायते ॥ १३८
असिर्मसिः कृषिर्विद्या वाणिज्यव्यवहारता । इति प्रोक्तानि कर्माणि शिल्पानि च महात्मना ॥ १३९
अहिंसादिगुणैर्युक्तस्त्यागेन्द्रियजयात्मकः । दर्शनज्ञानवृत्तात्मा ततो धर्मो हि देशितः ॥१४०
पुरग्रामनिवेशाश्च आकरः पत्तनानि च । अध्यक्षव्यवहाराश्च आदिराजकृता भुवि ॥ १४१
जिनाश्चक्रधरा भूपा हलिनः केशवा अपि । कर्मभूमिषु जायन्ते नाभूवन् ये युगत्रये ॥ १४२

यहा उन सख्याभेदोके इन नामोका यथाक्रमसे निर्देश किया जाता है जिस प्रकारसे कि वे प्रवाहस्वरूपसे अनादि आगमके पदोमे प्रसिद्ध हैं ॥१३०॥ पूर्वांग, पूर्व, पर्वांग, पर्व, नयुताग, नयुत, कुमुदाग, कुमुद, पद्माग, पद्म, नलिनाग, नलिन, कमलाग, कमल, तुट्यग, तुटित, अटटाग, अटट, अममाग, अमम, हाहाग, हाहा, हूहू-अग, हूहू, लताग, लता, महालताग, महा-लता, शिरःप्रकम्पित, हस्तप्रहेलित और अचलात्मक, इस प्रकारकी पर्यायोस्वरूप वह काल सख्येय कहा जाता है । इससे आगेके गणना रहित उस कालको असख्येय काल जानना चाहिए ॥१३१–१३६॥ उपर्युक्त कुलकरोकी आयु यथासम्भव इन्ही भेदोमे जानना चाहिये । इस सख्याज्ञानका जानकार पुराणका वेत्ता (पण्डित) होता है ॥१३७॥

तृतीय कालके अन्तमे थोडा-सा ही काल शेष रह जानेपर क्रमशः कल्पवृक्षोकी फल-दान शक्तिके नष्ट हो जानेसे मनुष्योमे लोभादिकी वृद्धि होती है और इस प्रकारसे कर्मभूमिका प्रारम्भ होता है ॥१३८॥ असि (शस्त्रधारण), मसि (लेखन कार्य), कृषि (खेती), विद्या (सगीत, नृत्य एव अध्यापन आदि), वाणिज्यव्यवहार (क्रय-विक्रय आदि) तथा शिल्प (कारीगरी), ये कर्मभूमिमे महात्मा नाभिरायके द्वारा आजीविकाके योग्य छह कर्म कहे गए थे ॥ १३९ ॥ उस समय अहिसा आदि गुणोसे सयुक्त, त्याग व इन्द्रियनिग्रहके आश्रित, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एव सम्यक्चारित्रस्वरूप धर्म बतलाया गया था ॥१४०॥

कर्मभूमिका प्रारभ होनेपर इस पृथिवीपर भगवान् आदिनाथने ग्रामाध्यक्ष आदिके व्यव-हारके साथ ही पुरो, ग्रामो, आवासो आकरें एव पत्तनोकी भी रचना की थी ॥१४१॥ तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण और प्रतिनारायण, ये तिरेसठ शलाकपुरुष कर्मभूमियोमे उत्पन्न

१ ब नवुताग । २ ब °न्नवुत । ३ प °ह्वयमत. । ४ प प्राकार । ५ प °रुह्यताम् ।

पूर्वकोटि प्रकृष्टायु' प्रत्यहं चापि भोजनम् । धनुष्पञ्चशतोच्छ्रायश्चतुर्थ्यादौ नृणां भवेत् ॥१४३
। ७०५६,१७ ।
पञ्चवर्णशरीराश्च धर्माधर्मरताः प्रजा । कुपाखण्डा[1] न विद्यन्ते तस्मिन् काले समागते ॥ १४४
पञ्चस्वपि विदेहेषु चतुर्थ्यादियुगं स्थितम् । गुणेषु हीयमानेषु[2] पञ्चमी चोपतिष्ठते ॥ १४५
तत्रादौ सप्तहस्तोच्चा[3] विंशत्यब्दशतायुष । [4]रूक्षवर्णशरीराश्च प्रायाहाराश्च मानवा' ॥ १४६
स्तब्धा लुब्धा कृतघ्नाश्च पापिष्ठा प्रायश. शठा । रूक्षा' क्रूरा जडा मूर्खा अमर्यादा अधार्मिका ॥
हिंसाचौर्यानृतोद्युक्ताः कातरा. परदूषका । पिशुना क्रोधना धूर्ता. पञ्चमे प्रायशो नरा' ॥ १४८
डामरक्षामरोगार्ता बाधाभग्नाश्च मानवा । न त्रातारं न भर्तारं लभन्ते कालकर्षिता[5] ॥ १४९
ईतिचोरठकाद्याढ्या त्वनावृष्टिविरूक्षिता । व्याधापहृतभार्या च तथा भूमिर्न शोभते ॥ १५०
व्यालकीटमृगव्याधैरन्यायायुक्तिकेश्वरै. । कुहकैश्च वृथा लोको यथेष्टमभिपीड्यते ॥ १५१

होते हैं, सुषमसुषमा आदि पूर्वके तीन कालोमे वे नही उत्पन्न होते ॥१४२॥ चतुर्थ कालके प्रारम्भमे मनुष्योकी उत्कृष्ट आयु एक पूर्वकोटि (७०५६शून्य१७) प्रमाण, प्रतिदिन आहारग्रहण और शरीरकी ऊचाई पाच सौ धनुष प्रमाण होती है ॥१४३॥ उस काल (चतुर्थ) के शरीरोका वर्ण (द्रव्य लेश्या) पाच प्रकारका होता है । तथा प्रजाजन धर्म एव अधर्म दोनोमे उपस्थित होनेपर ही निरत होते हैं, अर्थात् उनमे बहुत-से धर्मात्मा भी होते है और बहुत-से पापिष्ठ भी होते हैं। उस समय निकृष्ट पाखण्डी नही रहते हैं ॥१४४॥

पाचो ही विदेहोमे चतुर्थ कालके प्रारम्भ जैसा युग स्थित रहता है । [पाच भरत एव ऐरावत क्षेत्रोमे] क्रमश बुद्धि व आयु आदि गुणोके हीयमान होनेपर चतुर्थ कालके बाद पचम काल उपस्थित होता है ॥१४५॥ उसके प्रारम्भमे शरीरकी ऊचाई सात हाथ और आयु एक सौ बीस वर्ष प्रमाण होती है । इस कालमे उत्पन्न हुए मनुष्य रूखे वर्णयुक्त शरीरसे सयुक्त होते हुए प्रचुरतासे भोजन करनेवाले होते हैं ॥ १४६ ॥ पचम कालमे उत्पन्न हुए मनुष्य प्राय करके कुण्ठित, लोभी, कृतघ्न, पापिष्ठ, प्राय करके दुष्ट, रूखे, क्रूर, जड, मूर्ख, मर्यादासे रहित, अधार्मिक, हिंसा, चोरी एव असत्यमे उद्युक्त (प्रवर्तमान), कातर, परनिन्दक, पिशुन, क्रोधी और धूर्त होते हैं ॥१४७–१४८॥ इस कालके मनुष्य विप्लव (उपद्रव) को सहनेवाले, कृश, रोगोसे पीडित और बाधाओसे भग्न होते हैं । कालके प्रभावसे वे उस समय किसी रक्षक और भरण-पोषण करनेवालेको नही पाते हैं ॥१४९॥ इस कालमे ईति, चोर एव ठग आदिसे सहित तथा वर्षासे रहित रूखी पृथिवी शोभायमान नही होती है । उस समय इस पृथिवीके ऊपर व्याधोके द्वारा स्त्रियोका अपहरण किया जाता है ॥ १५० ॥ इस कालमे व्याल (सर्प) कीडे मृगादि पशु, व्याध (शिकारी), अन्याय व अयोग्य आचरण करनेवाले तथा कपटी लोगोके द्वारा प्रजाजनोको मनमाना कष्ट पहुचाया जाता है ॥ १५१ ॥

१ ब कुपापडा। २ ब हिय°। ३ प हस्तोच्च। ४ प रक्ष°। ५ ब कर्शिता ।

हस्तद्वयसमुच्छ्राया धूमश्यामा विरूपकाः । षष्ठादौ पञ्चमान्ते च विंशत्यब्दायुषोऽधिकात् ॥ १५२
तत्र सूर्योदये धर्मो मध्याह्ने राजशासनम् । अस्तं गच्छति सूर्येऽग्निर्नश्यत्येकदिने क्रमात् ॥ १५३
धर्मे लोकगुरौ नष्टे पितरीव नृपेऽपि च । आधारे च महत्यग्नौ अनाथ जायते जगत् ॥ १५४
कालदोषविनष्टानामज्ञाना नीचकर्मणाम् । [1]त्यक्तानामपि धर्मेण मृगाचारः प्रवर्तते ॥ १५५
ततः कालानुभावेन प्रजानामपि पीडया । घोर. संवर्तको नाम्ना प्रादुर्भवति मारुतः ॥ १५६
चूर्णयित्वाद्रिवृक्षांश्च भित्त्वा भूमितलानि सः । दिशो भ्राम्यति भूताना पीडां घोरामुदीरयन् ॥ १५७
वृक्षभङ्गशिलाभेदैर्भ्रमद्भिर्वातघूर्णितैः । म्रियन्ते परितो[2] जीवा मूर्च्छन्ति विलपन्ति च ॥ १५८
विजयार्धान्तमासन्ना भीता उत्पातदर्शनात् । भग्नशेषा नरास्तत्र गङ्गासिन्धुमुखान्तिकाः ॥ १५९
प्रविशन्ति बिलं कृच्छ्रान्नद्योस्तीर समाश्रिताः । द्विसप्ततिनिगोदास्तु तत्र जीवन्ति बीजवत् ॥ १६०

उक्त च द्वय [3]त्रिलोकप्रज्ञप्तौ [४,१५४७-४८]—

गगासिधुणदीणं वेयड्ढवणंतरम्मि पविसंति । पुह पुह सखेज्जाइं बावत्तरि[4] सयलजुगलाइ ॥ १४
देवा विज्जाहरया कारुण्णपरा णराण तिरियाणं । संखेज्जजीवरासिं खिवंति तेसुं पएसेसुं ॥ १५

पचम कालके अतमे तथा छठे कालके आदिमे आयु बीस वर्षसे अधिक तथा मनुष्योके शरीर दो हाथ ऊचे एव धूमके समान श्यामवर्ण होकर कुरूप होते हैं ॥ १५२ ॥ पचम कालके अन्तमे एक ही दिनमे क्रमसे सूर्योदयके समय (प्रातःकाल) मे धर्म, मध्यान्ह कालमे राजशासन तथा सूर्यके अस्त होते समय अग्निका नाश होता है ॥१५३॥ लोकके गुरुस्वरूप धर्मके, पिताके समान प्रजाकी रक्षा करनेवाले राजाके, तथा महान् आधारभूत अग्निके विनष्ट हो जानेपर जगत् अनाथ हो जाता है ॥१५४॥ तब कालदोषसे विनाशको प्राप्त होकर नीच कर्म करनेवाले अज्ञानियोमे धर्मको छोडकर पशुवत् आचरण प्रवृत्त होता है ॥१५५॥ तत्पश्चात् कालके प्रभावसे और प्रजाजनोकी पीडासे भयानक सवर्तक नामक वायुका प्रादुर्भाव होता है । ॥१५६॥ वह पर्वतो और वृक्षोको चूर्णित करके तथा पृथिवीतलोको भेदकर प्राणियोके लिये भयकर पीडा उत्पन्न करता हुआ दिशाओमे घूमता है ॥१५७॥ वायुसे प्रेरित होकर घूमते हुए वृक्षखण्डो और शिलाभेदोके द्वारा सब ओर प्राणी विलाप करते हुए मूर्च्छाको प्राप्त होते और मरते है ॥१५८॥ इस उपद्रवको देखकर भयको प्राप्त हुए प्राणी विजयार्धके निकट पहुचते है । उनमे मरनेसे बचे हुए गगा-सिंधु नदियोके पासमे स्थित वे प्राणी बडे कष्टसे उन नदियोके किनारे जाकर विलोमे प्रविष्ट होते हैं । उनमे बहत्तर युगल बीजके समान जीवित रहते है ॥१५९–१६०॥ त्रिलोकप्रज्ञप्तिमे कहा भी है —

इस समय पृथक् पृथक् सख्यात जीव तथा युगलके रूपमे सम्पूर्ण बहत्तर जीवयुगल गगा-सिन्धु नदियो तथा विजयार्ध पर्वतोके वनोके मध्यमे प्रविष्ट होते है ॥ १४ ॥ कुछ दयालु देव एव विद्याधर उक्त मनुष्यो और तिर्यंचोमेसे सख्यात जीवराशिको पूर्वोक्त प्रदेशोमे स्थापित करते है ॥ १५ ॥

१ प त्यक्त्वा° । २ प परतो । ३ आ प उक्त च त्रि° । ४ आ प भावत्तरि ।

शीतक्षारविषश्च्योता.[1] परुषाग्निक्षरा[2] अपि । धूलीधूमक्षराश्चैव प्रवर्षन्ति क्रमाद्घना. ॥ १६१
एकैको दिवसान् सप्त आप्लावयति तोयद । तै शेषाश्च प्रजा[3] नाशमुपयान्ति स्वपापत ॥ १६२
विषदग्धाग्निनिर्दग्धा भू सस्थावरजङ्गमा । अधो योजनमध्वान चूर्णीभवति कालत ॥ १६३
काले दीर्घायुषश्चात्र त्रिंशदर्धसमायुषः । मत्स्यमण्डूकमूलाद्यैराहारैर्वर्तयन्ति च ॥ १६४
समा उक्ता षडप्येता भरतैरावतेषु तु । क्रमेण परिवर्तन्ते उत्सर्पिण्या विपर्ययात् ॥ १६५
षष्ठाद्येनावसर्पिण्यामुत्सर्पिण्याद्यषष्ठका[4] । उभौ समाविति ज्ञेयावन्यासा चैवमादिशेत् ॥ १६६
पुष्कराख्या पुनर्मेघा· प्रादुर्भूय समन्तत । वर्षन्त्यौष्ण्यप्रशान्त्यर्थं[5] सप्ताह सार्वलौकिका ॥ १६७
दुग्धमेघाश्च वर्षन्ति भूम्या[6] शुभ्रकरास्तत । स्नेहदा घृतमेघाश्च स्निग्धा कुर्वन्ति मेदिनीम् ॥
अमृतोदकमेघाश्च औषधी जनयन्ति ते । रसमेघा पुनस्तासु नानारसकरा· स्मृता ॥ १६९
नानारसजलैर्भूमिर्मृष्टास्वादा प्रवर्तते[7] । वल्लीगुल्मलता वृक्षा नानाकारा भवन्ति च ॥ १७०

उस समय क्रमसे शीत (वर्फ), क्षार, विप, परुष (पापाणादि), अग्नि, धूलि और धूमकी वर्षा करनेवाले मेघ वरसते हैं ॥ १६१ ॥ इनमेसे एक एक मेघ क्रमसे सात सात दिन पर्यन्त उपर्युक्त हिम आदिकी वर्षा करता है। जो जीव देवो व विद्याधरोके द्वारा सुरक्षित स्थानमे पहुचाये जाते हैं उनको छोडकर शेष जीव उक्त मेघोके द्वारा अपने पापके उदयसे नाशको प्राप्त होते है ॥ १६२ ॥ कालके प्रभावसे विष एव अग्निकी वर्षासे नि शेष जली हुई भूमि स्थावर व जगम (त्रस) जीवोके साथ नीचे एक योजन पर्यन्त चूर चूर हो जाती है ॥ १६३ ॥ उस कालमे यहा तीसके आधे अर्थात् पन्द्रह वर्ष प्रमाण उत्कृष्ट आयुवाले प्राणी मत्स्य, मेढक और मूल आदिके आहारसे जीवित रहते है ॥ १६४ ॥ ऊपर जो ये छहो काल वतलाये गये है वे यहा भरत और ऐरावत क्षेत्रोमे अवसर्पिणी कालमे इसी क्रमसे तथा उत्सर्पिणी कालमे विपरीत (अतिदु षमा व दु षमा आदि) क्रमसे प्रवर्तमान होते हैं ॥ १६५ । अवसर्पिणी कालमे जो छठा (अतिदु षमा) काल अन्तमे कहा गया है वही छठा काल उत्सर्पिणीका प्रथम काल होता है। इस प्रकार इन दोनो कालोकी गति समझना चाहिये । शेष कालोका भी निर्देश इसी प्रकारसे करना चाहिये ॥ १६६ ॥

उत्सर्पिणी कालके प्रारम्भमे समस्त लोकका भला करनेवाले पुष्कर नामक मेघ प्रगट होकर पूर्वोत्पन्न उष्णताको शान्त करनेके लिये सात दिन पर्यन्त वरसते है ॥१६७ ॥ तत्पश्चात् भूमिको सफेद करनेवाले क्षीरमेघ वरसते हैं, अनन्तर चिक्कणताको देनेवाले घृतमेघ भी पृथिवीको स्निग्ध कर देते है ॥ १६८ ॥ फिर वे प्रसिद्ध अमृतमेघ भी अमृतके समान जलकी वर्षा करके औषधियोको उत्पन्न करते हैं, तत्पश्चात् रसमेघ उन औषधियोमे अनेक प्रकारके रसको उत्पन्न करते हुए स्मरण किये गये हैं ॥ १६९ ॥ उस समय नाना रसोसे सयुक्त जलके द्वारा भूमि मृष्ट (मधुर) स्वादवाली हो जाती है और तव अनेक आकारवाली बेले, झाडियाँ,

१ आ विषश्च्योता व विपश्चोता । २ व पुरुषाग्नि° । ३ प प्रजा । ४ व सर्पिण्या उत्स° । ५ आ वर्षन्त्यौष्णप्र ,पवर्षन्त्यौष्ठाप्र° । ६ प भूम्या । ७ आ प प्रवर्षते ।

गुहानद्याश्रिता मर्त्या· शैत्यगन्धगुणाहृता । विनिर्गत्य तत· सर्वे मेदिनीमावसन्ति च ॥ १७१
भूमिमूलफलाहारा वर्धमानफलोदया । बहुला लघु जायन्ते धान्यानि च ततः परम् ॥ १७२
समासहस्रशेषे च दु.षमाया विवर्धने । भवन्ति कुलकृन्मर्त्यास्ततः पञ्चदश क्रमात् ॥ १७३

उक्तं च त्रिलोकसारे [८७१-७२]—

उस्सप्पिणीय विदिये सहस्स सेसेसु कुलयरा कणय। कणयप्पहरायद्धयपुंगव तह णलिणपउममहपउमा ॥
तस्सोलसमणुहि [1]कुलायाराणलपक्कपहुदिया होंति। तेवट्ठिणरा तदिये सेणियचरपढमतित्थयरो ॥

ततः प्रभृति सर्वज्ञा बलकेशवचक्रिण । प्रतिशत्रुनृपाश्चैव भवन्ति क्रमशो भुवि ॥ १७४
अनीति स्थितमर्यादो गुणवन्नरमण्डितः । सुभिक्षो धर्मकर्माढ्यस्तृतीयोऽप्यतिवर्तते ॥ १७५
ततस्तुर्या भवेत्तत्र सुषमा पञ्चमी समा[2] । द्विरुक्तसुषमा षष्ठी युत्सर्पिण्यामिति स्मृता· ॥ १७६

इति लोकविभागे कालविभागो नाम पञ्चमप्रकरणं समाप्तम् ।

लतायें एव वृक्ष उत्पन्न होने लगते है ॥ १७० ॥ जो मनुष्य पहिले गुफाओ और नदियोके आश्रित हुए थे वे सब अब शीतल गन्ध गुणको ग्रहण करते हुए वहाँसे निकलकर पृथिवीपर आ वसते है ॥ १७१ ॥ उस समय भूमि बढनेवाली फलोकी उत्पत्तिमे सयुक्त हो जाती है। मनुष्य और तिर्यंच भूमि (मिट्टी), मूल और फलोका आहार किया करते है। तत्पश्चात् पृथिवीके ऊपर धान्य (गेहू व चना आदि) शीघ्र ही उत्पन्न होने लगता है ॥ १७२ ॥ उत्सर्पिणी कालमे दु षमाके एक हजार वर्ष शेष रह जानेपर क्रमसे पन्द्रह कुलकर पुरुष उत्पन्न होते हैं ॥ १७३ ॥ त्रिलोकसारमे कहा भी है —

उत्सर्पिणीके द्वितीय (दु षमा) कालमे एक हजार वर्ष शेष रह जानेपर ये कुलकर उत्पन्न होते हैं — कनक, कनकप्रभ, कनकराय, कनकध्वज, कनकपुगव, इसी प्रकारसे नलिन, नलिनप्रभ, नलिनराय, नलिनध्वज, नलिनपुगव, पद्म, पदम्प्रभ, पदम्राय, पदम्ध्वज, पदम्पुगव और महापद्म ॥ १६ ॥ उन सोलह कुलकरोके द्वारा कुलाचार और अग्निसे भोजन पकाने आदिका प्रारम्भ होने लगता है। इसी उत्सर्पिणीके तृतीय कालमे तिरेसठ (६३) शलाकपुरुष उत्पन्न होते है। इनमे प्रथम तीर्थंकर भूतपूर्व श्रेणिक राजाका जीव होगा ॥ १७ ॥

उन कुलकरोको आदि लेकर इस पृथिवीपर क्रमसे सर्वज्ञ, वलदेव, नारायण, प्रतिनारायण और चक्रवर्ती भी होते है ॥ १७४ ॥ इस प्रकार ईतिसे रहित, मर्यादासे सहित, गुणवान् पुरुषोसे मण्डित और धर्म-कर्मसे सयुक्त यह तीसरा सुकाल भी वीत जाता है ॥ १७५ ॥ तत्पश्चात् चौथा (सुषमादु षमा), पाचवा सुषमा और छठा दो वार कहा गया सुषमा अर्थात् सुषमासुषमा ये तीन काल क्रमसे प्रवर्तमान होते है । इस प्रकार उत्सर्पिणीमे कालोकी प्रवृत्ति मानी गई हैं ॥ १७६ ॥

इस प्रकार लोकविभागमे कालविभाग नामक पाचवा प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

---

१ व मणुपि कुलो । २ आ प सदा । अतोऽग्रे आ प ' जिनैर्ज्योतिषिका प्रोक्ता खे चरत स्थिता अपि ' इत्यर्धश्लोकोऽधिको लभ्यते ।

[षष्ठो विभागः]

ज्ञानसुज्योतिषा लोको येनाशेषः प्रकाशितः । त सर्वज्ञं प्रणम्याग्रे ज्योतिर्लोकः प्रवक्ष्यते ।। १

चन्द्राः सूर्या ग्रहा भानि तारकाश्चेति पञ्चधा । जिनैर्ज्योतिषिकाः प्रोक्ताः खे चरन्तः स्थिता अपि ।।

गोलकार्धगृहास्तेषा ज्योतिषा मणितोरणा । भ्राजन्ते देवदेवीभिर्जिनबिम्बैश्च नित्यश ।। ३

ऊर्ध्वमष्टशते भूम्या दशोनेऽन्त्यास्तु तारकाः । ताभ्यो दशसु सूर्याः स्युस्ततोऽशीत्या निशाकराः ।।

७९० । ८०० । ८८० ।

तेभ्यश्चतुर्षु ऋक्षाणि तेभ्य सौम्याश्च तावति । शुक्रगुर्वारसौराश्च त्रिषु त्रिषु यथाक्रमम् ।। ५

४ । ४ । ३ । ३ । ३ । ३ ।

ज्योति पटलबाहल्यं दशाग्रं शतयोजनम् । भ्रमन्ति मानुषावासे स्थित्वा भान्ति[1] ततः परम् ।। ६

। ११० ।

गव्यूतिसप्तभागेषु जघन्यं तारकान्तरम् । पञ्चाशन्मध्यम ज्ञेय सहस्रं बृहदन्तरम् ।। ७

। $\frac{१}{७}$ । ५० । १००० ।

जिसने ज्ञानरूपी उत्तम ज्योतिके द्वारा समस्त लोकको प्रकाशित किया है उस सर्वज्ञ देवको प्रणाम करके आगे ज्योतिर्लोकका वर्णन किया जाता है ।। १ ।। चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा इस प्रकारसे जिनेन्द्र देवके द्वारा ज्योतिष देव पाच प्रकारके कहे गये है। इनमे कुछ आकाशमे परिभ्रमण किया करते है और कुछ वहा स्थित भी रहते है ।। २ ।। उन ज्योतिषी देवोके अर्ध गोलकके समान गृह मणिमय तोरणोसे अलकृत होते हुए निरन्तर देव-देवियो और जिनबिम्बोसे सुशोभित रहते है ।। ३ ।। इस पृथिवीसे दस कम आठ सौ (७९०) योजन ऊपर जाकर अन्तिम तारा स्थित है, उनसे दस (७९० + १० = ८००) योजन ऊपर जाकर सूर्य, उनसे अस्सी (८०० + ८० = ८८०) योजन ऊपर जाकर चन्द्र, उनसे चार (४) योजन ऊपर जाकर ग्रह, उनसे उतने (४) ही योजन ऊपर जाकर बुध, फिर क्रमसे तीन-तीन योजन ऊपर जाकर शुक्र, गुरु, मगल और शनि स्थित है ।।४-५।। ज्योतिषपटलका बाहल्य एक सौ दस (१० + ८० + ४ + ४ + ३ + ३ + ३ + ३ = ११०) योजन मात्र है, अर्थात् उपर्युक्त सब ज्योतिषी देव क्रमश पृथिवीसे ऊपर सात सौ नब्बैसे लेकर नौ सौ योजन तक एक सौ दस योजनके भीतर अवस्थित हैं। जो ज्योतिषी देव मनुष्यलोक (अढाई द्वीप) मे वर्तमान हैं वे परिभ्रमण किया करते हैं, और इससे आगेके सब ज्योतिषी देव अवस्थित (स्थिर) रहकर सुशोभित होते है ।। ६ ।।

एक तारासे दूसरे तारे तक ताराओका जघन्य अन्तर एक कोसके सातवे भाग ($\frac{१}{७}$) मात्र, मध्यम अन्तर पचास ५० [योजन] और उत्कृष्ट अन्तर एक हजार १००० [योजन] मात्र जानना चाहिये ।। ७ ।।

---

१ प भ्रान्ति ।

पृथिवीपरिणामश्च तेजोधातुश्च भास्करः । उदित चातपं नाम नामकर्मात्र भास्करे ॥ ८
एकषष्ठिकृतान् भागान् योजनस्य पृथू रविः । चत्वारिंशतमष्टौ च परिधिस्त्रिगुणोऽधिक ॥ ९
$\frac{४८}{६१}$ । $\frac{१४४}{६१}$ ।
द्वादशैव सहस्राणि तस्योष्णाश्च गभस्तयः । तावन्त एव चन्द्रस्य शीतलाः किरणा मताः ॥१०
अरिष्टश्चार्कवद्वेद्यो व्यासेन न्यूनयोजनम् । राहुः समानोऽरिष्टेन शीतलांशुश्च भाषित. ॥ ११
एकषष्ट्यास्तु भागेषु पञ्चहीनास्तु पार्थिवे । अब्दा तु शीतलाशौ च सोमेनेन्यूनचक्रवत् ॥ १२
। $\frac{५६}{६१}$ । ।
शुक्रश्च [1]पृथिवीधातुर्गोरुत बहलः[2] पृथु. । द्वे सहस्रे पुन सार्धे रश्मयो रविवद्द्युतिः[3] ॥ १३
बुधस्य खलु भौमस्य शनैश्चारिण एव च । क्रोशार्धं विस्तृत पीठ गुरोरूनं तु गोरुतम् ॥ १४
चतुर्भागं द्विभागं च चतुर्भागोनगोरुतम् । गोरुत चापरास्तारा विस्तृता मन्दरश्मयः ॥ १५
$\frac{१}{४}$ । $\frac{१}{२}$ । $\frac{३}{४}$ ।

पाठान्तरं कथ्यते —

~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~

पृथिवीके परिणाम स्वरूप सूर्यका बिम्ब चमकीली धातुसे निर्मित होता है । उस सूर्यके– उसके बिम्बमे स्थित पृथिवीकायिक जीवोके– आतप नामकर्मका उदय हुआ करता है [उससे मूलमे अनुष्ण रहकर भी उसकी प्रभा उष्ण होती है] ॥ ८ ॥ सूर्यबिम्बका विस्तार एक योजनके इकसठ भागोमे चालीस और आठ अर्थात् अडतालीस भाग ($\frac{४८}{६१}$) प्रमाण है । उसकी परिधि विस्तारसे कुछ अधिक तिगुनी ($\frac{१४४}{६१}$) है ॥ ९ ॥ सूर्यकी उष्ण किरणे बारह हजार (१२०००) प्रमाण है । उतनी (१२०००) ही शीतल किरणे चन्द्रमाकी मानी गई है ॥ १० ॥

केतुका भी विमान सूर्यके ही समान जानना चाहिये, उसका विस्तार एक योजनसे कुछ कम है । राहुका विमान केतुके समान होता हुआ शीतल किरणोसे सयुक्त कहा गया है ॥ ११ ॥ चन्द्रबिम्बका भी विस्तार एक योजनके इकसठ भागोमे पाच कम अर्थात् छप्पन ($\frac{५६}{६१}$ भाग प्रमाण है । · · (?) ॥ १२ ॥

पृथिवीधातुमय शुक्र विमानका विस्तार एक कोस मात्र तथा किरणे अढाई हजार (२५००) हैं, कान्ति उसकी सूर्यके समान है ॥ १३ ॥ बुध, मगल और शनैश्चरकी पीठका विस्तार आधा कोश तथा गुरुकी पीठका विस्तार कुछ कम एक कोस प्रमाण है ॥ १४ ॥ मन्द किरणोसे सयुक्त अन्य ताराओका विस्तार एक कोसके चतुर्थ भाग ($\frac{१}{४}$), एक कोसके द्वितीय भाग ($\frac{१}{२}$), चतुर्थ भागसे कम एक कोस ($\frac{३}{४}$), तथा पूर्ण कोस प्रमाण है । [अभिप्राय यह कि ताराओका जघन्य विस्तार एक कोसके चतुर्थ भाग प्रमाण तथा उत्कृष्ट पूरे कोस प्रमाण है, उनका मध्यम विस्तार एक कोसके चतुर्थ भागसे कुछ अधिकको आदि लेकर कुछ कम एक कोस प्रमाण अनेक भेद रूप है] ॥ १५ ॥ पाठान्तर कहा जाता है —

---

१ आ प पृथुवी° । २ आ प बहुल । ३ आ प द्युति ।
~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~

रवीन्दुशुक्रगुर्वाख्याः कुजाः सौम्यास्तमोदयाः । ऋक्षास्तारा. स्वविष्कम्भादर्धबाहल्यका मता. ॥ १६
सिंहाकारा हि तौ प्राच्या त्वपाच्यां गजरूपका । प्रतीच्या वृषभाकारा उदीच्या जटिलाश्वका ॥
वहन्ति चाभियोगास्ते षोडशैव सहस्रकम् । रवीन्दुभ्या त्रय. शेषा हीयन्तेऽर्धार्धसंख्यया ॥ १८
च १६००० सू १६००० । ८००० । न ४००० । ता २०००।
आचार्यकृतविन्याससमुदो[1] वाप्यधोमुख. । ज्योतिर्लोकस्वभावोऽयमालोकान्तादिति स्थित ॥ १९
उत्तरोऽभिजिदृक्षाणा मूलो दक्षिण इष्यते । ऊर्ध्वाध. स्वाति भरणी क्रमान्मध्ये च कृत्तिका ॥ २०
सर्वमन्द. शशी गत्या रवि. शीघ्रतरस्तत । रवेर्ग्रहास्ततो भानिस्तेभ्यस्ताराश्च शीघ्रका. ॥ २१
चरतीन्दोरधो राहुररिष्टोऽपि च भास्वत. । षण्मासात् पर्वसप्राप्तावर्केन्दू वृणुतश्च तौ ॥ २२
त्यक्त्वा मेरु चरन्त्येकद्वयेकैक ज्योतिषा गणा । विहायेन्दुत्रय शेषाश्चरन्त्येकपथे सदा ॥ २३
। ११२१ ।
शशिनौ द्वाविह द्वीपे चत्वारो लवणोदके । परस्मिन् द्वादशैव स्यु. कालोदे सप्त षड्गुणा ॥ २४
पुष्करार्धे पुनश्चन्द्रा द्विसप्ततिरितीरिता । चन्द्राणा मानुषक्षेत्रे द्वात्रिंशच्छतमुच्यते ॥ २५

सूर्य, चन्द्र, शुक्र, गुरु, कुज (मगल), बुध, और राहु ये ग्रह, नक्षत्र तथा तारे इन सबका बाहल्य अपने विस्तारसे आधा माना गया है ॥ १६ ॥

उन सूर्य और चन्द्रके विमानोको पूर्वमे सिहके आकार, दक्षिणमे हाथीके आकार, पश्चिममे बैलके आकार, तथा उत्तरमे जटायुक्त घोडेके आकारके सोलह हजार (१६०००) अभियोग्य जातिके देव खीचते है । सूर्य और चन्द्रके अतिरिक्त शेष तीन (ग्रह, नक्षत्र, और तारा) के विमानवाहक देवोकी सख्या क्रमसे आधी आधी है । (चन्द्र १६०००, सूर्य १६००० ग्रह ८०००, नक्षत्र ४००० तारा २०००) ॥ १७–१८ ॥ (?)यह ज्योतिर्लोकका स्वभाव लोक पर्यन्त स्थित है ॥१९ ॥

नक्षत्रोमेसे उत्तरमे अभिजित् नक्षत्रका, दक्षिणमे मूल नक्षत्रका, ऊपर और नीचे क्रमश स्वाति और भरणी नक्षत्रोका तथा मध्यमे कृत्तिका नक्षत्रका सचार माना गया है ॥ २० ॥ गमनमे चन्द्रमा सबसे मन्द है, सूर्य उसकी अपेक्षा शीघ्र गमन करनेवाला है, सूर्यसे शीघ्रतर गतिवाले ग्रह, उनसे नक्षत्र, तथा उनसे भी शीघ्रतर गतिवाले तारा है ॥ २१ ॥ चन्द्रके नीचे राहुका विमान तथा सूर्यके भी नीचे केतुका विमान सचार करता है । वे दोनो छह मासमे पर्व (क्रमसे पूर्णिमा व अमावस्या) की प्राप्ति होनेपर चन्द्र और सूर्यको आच्छादित करते है ॥२२॥ ज्योतिषियोके समूह अकक्रमसे एक, दो, एक और एक (११२१) अर्थात् ग्यारह सौ इक्कीस योजन प्रमाण मेरु पर्वतको छोडकर सचार करते हैं । सूर्य, चन्द्र और ग्रह इन तीनको छोडकर शेष नक्षत्र व तारागण सदा एक ही मार्गमे सचार करते हैं ॥ २३ ॥

चन्द्रमा यहा जबूद्वीपमे दो, लवणोदक समुद्रमे चार, आगे धातकीखण्ड द्वीपमे बारह, कालोदक समुद्रमे छहसे गुणित सात अर्थात् व्यालीस तथा पुष्करार्धमे बहत्तर कहे गये हैं । इस प्रकार मनुष्यक्षेत्र (अढाई द्वीप) मे समस्त चन्द्रोकी सख्या एक सौ बत्तीस(२+४+१२+

---

१ ब समुद्‌गो ।

उद्दिष्टास्त्रिगुणाश्चन्द्रा धातक्यादिषु ते क्रमात् । अतिक्रान्तेन्दुभिर्युक्ता[1] द्वीपे वा सागरेऽपि वा ॥ २६
चत्वारिंशच्छत चन्द्राश्चत्वारोऽपि च पुष्करे । द्विनवत्यधिक प्राहु. पुष्करोदे चतु शतम् ॥ २७
अष्टाशीतिग्रहा[2] इन्दोः साष्टा भाना च विंशति । एकैकस्य तु विज्ञेय रवयः शशिभिः समाः॥२८
। २८ ।
समुद्रे त्रिशत त्रिशद् द्वीपे साशीतिक शतम् । प्रविश्य चरतोऽर्केन्दू मण्डलानि च लक्षयेत् ॥ २९
३३० । १८० ।
वीथ्यः पञ्चदशेन्दोः स्युरेकोनान्यन्तराणि च । द्विशत षोडशोनं तु रवे रूपोनमन्तरम् ॥ ३०
१५ । १४ ।
लवणे द्विगुणा वीथ्यो रवेश्चन्द्रस्य चोदिता । पृथग्रूपोनका वीथ्यश्चान्तराणि च लक्षयेत् ॥ ३१
३० । ३६८ ।
नवति. खलु चन्द्राणां वीथ्यः स्युर्धातकीध्वजे । एकादश शतानि स्युश्चतुरग्राणि भास्वताम् ॥ ३२
। ११०४ ।

+४२+७२=१३२) होती है ॥ २४–२५ ॥ धातकीखण्ड आदि विवक्षित द्वीप-समुद्रोमे जितने चन्द्रोका निर्देश किया गया है आगेके द्वीप अथवा समुद्रमे वे क्रमसे तिगुणे होकर पिछले द्वीप-समुद्रोकी चन्द्रसख्यासे अधिक है ॥ २६ ॥

उदाहरण– (१) धातकीखण्ड द्वीपमे १२ चन्द्र बतलाये गये है । इनको तिगुना करके प्राप्त सख्यामे पिछले द्वीप-समुद्रो (लवणोद ४+ज द्वी २=६) की चन्द्रसख्याको जोड देनेसे आगेके कालोदक समुद्रमे स्थित चन्द्रोकी सख्या प्राप्त हो जाती है । जैसे–१२×३+६=४२

(२) कालोदक समुद्रमे ४२ चन्द्र स्थित हैं । इन्हे तिगुना करके प्राप्त राशिमे पिछली चन्द्रसख्याको मिला दीजिये । इस प्रकारसे आगे पुष्करद्वीपकी चन्द्रसख्या प्राप्त हो जायेगी । जैसे–४२×३+(१२+४+२)=१४४

पुष्कर द्वीपमे एक सौ चालीस और चार अर्थात् एक सौ चवालीस (१४४) तथा पुष्क-रोद समुद्रमे चार सौ बानवै[१४४×३+(४२+१२+४–२)=४९२] चन्द्र अवस्थित है ॥२७॥

एक एक चन्द्रके अठासी (८८) ग्रह तथा आठ सहित बीस अर्थात् अट्ठाईस (२८) नक्षत्र जानना चाहिये । सूर्य चन्द्रोके ही समान होते है ॥ २८ ॥

सूर्य और चन्द्रमा समुद्र (लवणोद) मे तीन सौ तीस (३३०) तथा द्वीप (जबूद्वीप) के भीतर एक सौ अस्सी योजन प्रविष्ट होकर सचार करते हैं । उनकी वीथिया इस प्रकार जानना चाहिये ॥ २९ ॥ जबूद्वीपमे चन्द्रकी पन्द्रह (१५) वीथिया और उनके अन्तर उनसे एक कम अर्थात् चौदह, (१४) है । सूर्यकी वीथिया सोलह कम दो सौ (१८४) और अन्तर एक कम अर्थात् एक सौ तेरासी (१८३) है ॥ ३० ॥ लवण समुद्रमे चन्द्र और सूर्यकी वीथिया पृथक् पृथक् इनसे दूनी (चन्द्रकी ३० और सूर्यकी ३६८) कही गई हैं । जितनी वीथिया है उनसे एक कम उनके अन्तर (२९, ३६७) भी जानना चाहिये ॥३१॥ धातकीखण्ड द्वीपमे चन्द्रोकी वीथिया नब्बे (१५×६=९०) तथा सूर्योकी वीथिया ग्यारह सौ चार (१८४×६=११०४) है ॥३२॥

---

१ आ °भियुर्युक्ता, प °भियुक्त्वा । २ आ °र्गूहा, प गृहा ।

कालोदे चन्द्रवीथ्यः स्युस्त्रिशत दश पञ्च च । अष्टात्रिंशच्छतानि स्युश्चतु.षष्टिश्च भास्वताम् ॥ ३३
चत्वारिंशत्सहस्रार्धमिन्दुवीथ्योऽर्धपुष्करे । षट्षष्टिस्तु शतानि स्युश्चतुर्विशानि भास्वताम् ॥

। ५४० ।

मानुषोत्तरशैलाच्च[1] द्वीपसागरवेदिका – । मूलतो नियुतार्धेन ततो लक्षेण मण्डलम् ॥ ३५

५००००

पुष्करार्धाद्यवलये[2] द्विगुणा च द्विसप्ततिः । चन्द्रसूर्यास्ततोऽन्येषु[3] चतुष्कं चोत्तर पृथक् ॥ ३६
आदेरादिस्तु विज्ञेयो द्विगुणद्विगुणक्रमः । परिधौ च स्वके स्व-स्वचन्द्रादित्यैर्हृतेऽन्तरे[4] ॥ ३७
गच्छोत्तरसमाभ्यासात्त्यजेदुत्तरमादियुक् । अन्त्यमादियुत भूयो गच्छार्धगुणित धनम् ॥ ३८

आ १४४ । उ ४ । ग ८ ।

कालोद समुद्रमे चन्द्रवीथिया तीन सौ दस और पाच अर्थात् तीन सौ पन्द्रह (१५× २१=३१५) तथा सूर्योकी वीथिया अडतीस सौ चौंसठ (१८४×२१=३८६४) हैं ॥ ३३ ॥ पुष्करार्ध द्वीपमे चन्द्रवीथिया हजारकी आधी और चालीस अर्थात् पाच सौ चालीस(१५×३६ =५४०) तथा सूर्योंकी वीथिया छयासठ सौ चौवीस (१८४×३६=६६२४) हैं ॥ ३४॥

मानुषोत्तर पर्वतके आगे द्वीप-समुद्रोकी वेदिकाके मूल भागसे आधा लाख (५००००) योजन जाकर प्रथम मण्डल (सूर्य-चन्द्रोका वलय) है, उसके आगे उनका प्रत्येक मण्डल एक एक लाख (१०००००) योजन जाकर है ॥ ३५ ॥ पुष्करार्ध द्वीपके प्रथम वलयमे दुगुणे बहत्तर (७२×२=१४४) अर्थात् एक सौ चवालीस सूर्य और चन्द्र स्थित है । इससे आगेके अन्य वलयोमे वे पृथक् पृथक् चार चार चयसे अधिक (१४४, १४८, १५२, १५६, १६०, १६४, १६८, १७२) हैं ॥ ३६॥ आगेके द्वीप-समुद्रोके प्रथम वलयमे पिछले द्वीप अथवा समुद्रके प्रथम वलयमे स्थित चन्द्रोकी अपेक्षा क्रमसे दूने दूने चन्द्र जानना चाहिये । अपनी परिधिमे अपने अपने वलयगत चन्द्र और सूर्योकी संख्याका भाग देनेपर वहा स्थित एक चन्द्रसे दूसरे चन्द्रका अन्तर जाना जाता है ॥ ३७ ॥

उदाहरण– द्वितीय पुष्करार्ध द्वीप सम्बन्धी प्रथम वलयकी सूचीका विस्तार ४६००००० योजन है, उसकी परिधि १४५४६४७७ यो प्रमाण होती है । इस परिधिमे तद्गत सूर्य-चन्द्रोकी सख्याका भाग देनेपर उन सूर्य और चन्द्रोका बिम्ब सहित अन्तर इतना प्राप्त होता है — १४५४६४७७÷१४४ = १०१०१७ $\frac{२९}{१४४}$ यो । इसमेसे चन्द्रबिम्ब और सूर्यबिम्बको कम कर देनेपर उनका बिम्बरहित अन्तर इस प्रकार प्राप्त हो जाता है–– चन्द्रबिम्बका विस्तार $\frac{५६}{६१}$= $\frac{८०६४}{८७८४}$, १०१०१७$\frac{२९}{१४४}$ – $\frac{८०६४}{८७८४}$=१०१०१६$\frac{२४८९}{८७८४}$ यो, चन्द्रबिम्बोके मध्यका अन्तर । सूर्यबिम्बका विस्तार $\frac{४८}{६१}$=$\frac{६९१२}{८७८४}$, १०१०१७$\frac{२९}{१४४}$ – $\frac{६९१२}{८७८४}$=१०१०१६$\frac{३६४१}{८७८४}$ यो, सूर्यबिम्बोके मध्यका अन्तर ।

गच्छ और चयको गुणित करनेसे जो प्राप्त हो उसमेसे चयके प्रमाणको कम करके शेषमे आदिके प्रमाणको जोड देना चाहिये । इस प्रकारसे विवक्षित अन्तिम धन प्राप्त हो जाता

---

१ आ प शैलाश्च । २ आ प 'वललये । ३ आ प 'नंपु । ४ आ 'दित्येहृतेतर प 'दित्ये हृतेन्तरे ।

द्वादशैव शतानि स्युश्चतु:षठ्याधिकानि हि । पुष्करार्धे वहिश्चन्द्रास्तावन्तोऽपि च भास्कराः ॥३९
तारकाकीर्णमाकाशमालोकान्तादितोऽमुतः । पुष्यस्थाः सर्वसूर्यास्तु चन्द्रास्त्वभिजिदि स्थिता.॥४०
चत्वारिंशच्च चत्वारि सहस्राणि शताष्टकम् । विंशतिश्चान्तर मेरो रवेश्चासन्नमण्डले ॥ ४१
चत्वारिंशत्तथाष्टौ च एकषष्टिकृताशका: । द्वियोजने च प्रक्षेपस्तस्यानन्तरमण्डले ॥ ४२
स एव गुणितक्षेप: प्रक्षिप्तव्यो यथेप्सिते । आ बाह्यमण्डलादेवं मेरुसूर्यान्तर भवेत् ॥ ४३
चत्वारिंशच्च पञ्चापि सहस्राण्यथ सप्तति: । पञ्च चान्तरमाख्यात मध्यमे मण्डले रवेः ॥ ४४
चत्वारिंशच्च पञ्चापि सहस्राणि शतत्रयम् । त्रिंशच्च मण्डले वाह्ये मेरुसूर्यान्तरं भवेत् ॥ ४५

है । इस अन्त्य धनमे फिरसे आदिको मिलाकर गच्छके अर्ध भागसे गुणित करनेपर सर्वधन प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥

उदाहरण-- प्रकृतमे आदिका प्रमाण १४४, चयका ४ और गच्छका प्रमाण ८ है । अत एव (८×४)-४+१४४ = १७२ अन्तिम धन, $१७२+१४४\times\frac{८}{२}$ = १२६४ = (१४४+१४८ +१५२+१५६+१६०+१६४+१६८+१७२) सर्वधन ।

वाह्य पुष्करार्धमे वारह सौ चौसठ (१२६४) चन्द्रऔर उतने ही सूर्य भी हैं ॥३९॥ यहा लोक पर्यन्त आकाश ताराओसे व्याप्त है । सब सूर्य तो पुष्य नक्षत्रपर स्थित होते हैं, किन्तु चन्द्रमा अभिजित् नक्षत्रपर स्थित होते हैं ॥ ४० ॥

मेरुसे अभ्यन्तर मण्डल (वीथी) मे स्थित सूर्यका अन्तर चवालीस हजार आठ सौ वीस (४४८२०) योजन प्रमाण रहता है ॥ ४१ ॥ इसमे दो योजन तथा एक योजनके इकसठ भागोमेसे चालीस और आठ अर्थात् अडतालीस भाग ($२\frac{४८}{६१}$) प्रमाण [दिवसगतिका] प्रक्षेप करनेपर उतना अनन्तर (द्वितीय) मण्डलमे स्थित सूर्यका मेरुसे अन्तर रहता है- ४४८२०+ $२\frac{४८}{६१}$=$४४८२२\frac{४८}{६१}$ ॥ ४२ ॥ इसी प्रकारसे वाह्य मण्डल तक उसी गुणित (तृतीय मण्डलमे दुगुणा, चतुर्थमे तिगुणा इत्यादि) प्रक्षेपको मिलाते जानेसे विवक्षित मण्डलमे स्थित सूर्यका मेरुसे अन्तरप्रमाण होता है ॥ ४३ ॥ मध्यम मण्डलमे स्थित सूर्यके इस अन्तरका प्रमाण पैंतालीस हजार पचत्तर योजन मात्र होता है ४४८२०+($२\frac{४८}{६१}\times९१\frac{१}{२}$)=४५०७५ यो ॥ ४४ ॥ वाह्य मण्डलमे मेरु और सूर्यका यह अन्तर पैंतालीस हजार तीन सौ तीस योजन मात्र होता है ४४८२०+($२\frac{४८}{६१}\times१८३$) = ४५३३० यो ॥ ४५ ॥

विशेषार्थ — सूर्यका चार क्षेत्र १ लाख योजन विस्तृत जवूद्वीपके भीतर १८० योजन मात्र है । इसे दुगुणा करनेपर दोनो ओरके चार क्षेत्रका प्रमाण ३६० योजन होता है । इसको जवूद्वीपके विस्तारमेसे कम कर देनेपर शेष अभ्यन्तर वीथीका विस्तार होता है- १००००० - ३६० = ९९६४० यो । यही जवूद्वीपस्थ उभय सूर्योके वीच अन्तरका भी प्रमाण होता है । इसमेसे मेरु पर्वतके विस्तारको कम करके शेषको आधा कर देनेसे उस अभ्यन्तर वीथीमे स्थित सूर्य और मेरुके वीच अन्तरका प्रमाण होता है- $\frac{९९६४०-१००००}{२}$ ४४८२० यो ।

जवूद्वीपके अतिरिक्त सूर्यका चारक्षेत्र $३३०\frac{४८}{६१}$ यो मात्र लवण समुद्रमे भी है । इस प्रकार उसके समस्त चारक्षेत्रका प्रमाण $१८०+३३०\frac{४८}{६१}$ = $५१०\frac{४८}{६१}$ यो होता है । इतने चार क्षेत्रमे सूर्यकी १८४ वीथिया हैं । इनमेसे वह क्रमश प्रतिदिन एक एक वीथीमे सचार करता है ।

नवनवतिसहस्राणि षट्छतानि भवन्ति च । चत्वारिंशच्च मध्य स्यादन्तरमण्डलसूर्ययो ॥ ४६
पञ्चत्रिंशत्पुनर्भागा योजनाना च पञ्चकम् । एकैकस्मिन् भवेत् क्षेपस्तस्यानन्तरमण्डले ॥ ४७
५ । $\frac{३५}{६१}$ ।
नियुत शतमेक च पञ्चशान्मध्यमान्तरम् । षष्ठ्या युतं शतं षड्भिर्नियुत बाह्यमण्डले ॥ ४८
आसन्नमण्डलस्यास्य परिधेश्च प्रमाणकम् । नगाष्टशून्यपञ्चैक त्रयमङ्कक्रमेण च ॥ ४९
मण्डले मण्डले क्षेप परिधौ दश सप्त च । अष्टत्रिंशच्च भागा स्युरेकषष्ठ्यास्तु साधिका. ॥ ५०
१७ । $\frac{३८}{६१}$ ।
नियुतानां त्रिक भूय सहस्र षोडशाहृत । शतानि सप्त द्वे चैव परिधिर्मध्यमण्डले ॥ ५१
अष्टादशसहस्राणि नियुतानामपि त्रिकम् । त्रिशत दश चत्वारि परिधिर्बाह्यमण्डले ॥ ५२

अब यदि इस समस्त चारक्षेत्रमेसे उपर्युक्त १८४ वीथियोके विस्तारको कम करके शेषमे एक कम वीथियोके प्रमाणका भाग दे तो उन सब वीथियोके वीच निम्न अन्तरका प्रमाण प्राप्त होता है– समस्त चारक्षेत्र ५१० $\frac{४८}{६१} = \frac{३११५८}{६१}$, समस्त वीथियोका विस्तार $\frac{४८}{६१} \times १८४ = \frac{८८३२}{६१}$, $\frac{३११५८}{६१} - \frac{८८३२}{६१} \div (१८४-१) = २$ यो । इसमे सूर्यविम्बके विस्तारको मिला देनेसे सूर्यके प्रतिदिनके गमनक्षेत्रका प्रमाण प्राप्त हो जाता है — $२ + \frac{४८}{६१} = २\frac{४८}{६१}$ यो । इस दैवसिक गमनक्षेत्रके प्रमाणको अभ्यन्तर (प्रथम) वीथीमे स्थित सूर्य और मेरुपर्वतके वीच रहनेवाले उपर्युक्त अन्तर प्रमाणमे मिला देनेसे द्वितीय वीथीमे स्थित सूर्य और मेरुके वीच अन्तरका प्रमाण होता है – $४४८२० + २\frac{४८}{६१} = ४४८२२\frac{४८}{६१}$ यो । इस प्रकार मेरु और सूर्यके वीच पूर्व पूर्वके अन्तर प्रमाणमे उत्तरोत्तर इस दैवसिक गमनक्षेत्रके प्रमाणको मिलाते जानेसे तृतीय व चतुर्थ आदि आगेकी वीथियोमे स्थित सूर्य और मेरुके वीचके अन्तरका प्रमाण जाना जाता है ।

अभ्यन्तर वीथीमे स्थित दोनो सूर्योके मध्यमे निन्यानवै हजार छह सौ चालीस (९९६४०) योजन मात्र अन्तर होता है ॥ ४६ ॥ अभ्यन्तर वीथीमे स्थित दोनो सूर्योके मध्यगत इस अन्तरप्रमाणमे उत्तरोत्तर पाच योजन और एक योजनके इकसठ भागोमेसे पैंतीस भागो (दुगुणा दिवसगतिक्षेत्र–$२\frac{४८}{६१} \times २ = ५\frac{३५}{६१}$) को मिलानेसे द्वितीयादि अनन्तर वीथियोमे स्थित दोनो सूर्योके मध्यगत अन्तरका प्रमाण होता है ॥४७॥ दोनो सूर्योका अन्तर मध्यम वीथीमे एक लाख एक सौ पचास योजन तथा वही बाह्य वीथीमे एक लाख छह सौ साठ योजन मात्र होता है – $९९६४० + (५\frac{३५}{६१} \times \frac{१८३}{२}) = १००१५०$ यो मध्यम अन्तर, $९९६४० + (५\frac{३५}{६१} \times १८३) = १००६६०$ यो बाह्य वीथीगत दोनो सूर्योका अन्तर ॥ ४८ ॥

इस अभ्यन्तर वीथीकी परिधिका प्रमाण अकक्रमसे नौ, आठ, शून्य, पाच, एक और तीन (३१५०८९), इतने योजन मात्र है ॥ ४९ ॥ आगे आगेकी (द्वितीय-तृतीयादि) वीथियोके परिधिप्रमाणको लानेके लिये पूर्व पूर्व वीथीके परिधिप्रमाणमे दस और सात अर्थात् सत्तरह योजन तथा एक योजनके इकसठ भागोमेसे अडतीस भागो ($१७\frac{३८}{६१}$) को क्रमश मिलाते जाना चाहिये ॥ ५० ॥ मध्य वीथीमे परिधिका प्रमाण तीन लाख सोलह हजार सात सौ दो योजन मात्र है — $३१५०८९ + (१७\frac{३८}{६१} \times \frac{१८३}{२}) = ३१६७०२$ यो ॥ ५१ ॥ बाह्य वीथीमे इस परिधिका प्रमाण तीन लाख अठारह हजार तीन सौ चौदह योजन मात्र है— ३१५०८९+

बाह्यादेकैकमार्गस्य परिधिश्चान्तर पुन । स्वस्वक्षेपेण हीन स्याद्यावत्प्रथममण्डलम् ॥ ५३

चत्वारिंशच्च चत्वारि सहस्राणि शताष्टकम् । विंशतिश्चान्तर मेरोश्चन्द्रस्यासन्नमण्डले ॥ ५४

षट्त्रिंशद्योजनं तस्मिन् उत्तर सप्तविंशतिः । चतु.शतस्य भागाश्च नवसप्ततिशत भवेत् ॥ ५५

उत्तरेण सहैतेन तदनन्तरमन्तरम् । पुनस्तेनैव सयुक्तं तृतीयं त्वन्तर भवेत् ॥ ५६

चत्वारिंशच्च पञ्चापि सहस्राण्यथ सप्तति. । पञ्चाधिका च देशोना मेर्विन्दोर्मध्यमान्तरम् ॥५७

। ४५०७५ । ऊनप्रमाण $\frac{४}{६१}$ ।

चत्वारिंशत्पुन· पञ्च सहस्राणि शतत्रयम् । देशोना चान्तरं त्रिंशन्मेर्विन्दोर्बाह्यमण्डले ॥ ५८

। ४५३३० । ऊनप्रमाण $\frac{८}{६१}$ ।

($१७\frac{३८}{६१}$×१८३)=३१८३१४ यो ॥ ५२ ॥ बाह्य वीथीसे लेकर प्रथम वीथी तक प्रत्येक वीथीका यह परिधिप्रमाण और अन्तर उत्तरोत्तर अपने अपने प्रक्षेपसे कम है ॥ ५३ ॥

मेरु पर्वतसे प्रथम वीथीमे स्थित चन्द्रका अन्तर चवालीस हजार आठ सौ बीस ४४८२० योजन मात्र है ॥ ५४ ॥ द्वितीय आदि वीथियोमे स्थित चन्द्रके उपर्युक्त अन्तरको लानेके लिये यहा चयका प्रमाण छत्तीस योजन और एक योजनके चार सौ सत्ताईस भागोमेसे एक सौ उन्यासी भाग ($३६\frac{१७९}{४२७}$) मात्र है ॥ ५५ ॥ मेरुसे प्रथम वीथीमे स्थित चन्द्रके पूर्वोक्त अन्तरप्रमाणमे इस चयके मिला देनेसे अनन्तर (द्वितीय) वीथीमे स्थित चन्द्र और मेरुके बीचके अन्तरका प्रमाण प्राप्त होता है । फिर इस अन्तरप्रमाणमे उसी चयको मिला देनेसे तृतीय अन्तरका प्रमाण होता है ॥ ५६ ॥

विशेषार्थ— सूर्यके समान चन्द्रमाका भी चारक्षेत्र $५१०\frac{४८}{६१}=\frac{३११५८}{६१}$ योजन प्रमाण ही है (देखिये पीछे श्लोक ४५का विशेषार्थ) । इसमे चन्द्रवीथिया १५ है। इनमेसे वह प्रतिदिन क्रमश एक एक वीथीमे सचार करता है। इस चारक्षेत्रमेसे उक्त १५ वीथियोके समस्त विस्तारको कम करके शेषमे एक कम वीथियोकी सख्याका भाग देनेपर उनके बीचके अन्तरका प्रमाण प्राप्त होता है– समस्त चारक्षेत्र $५१०\frac{४८}{६१}=\frac{३११५८}{६१}$, समस्त वीथियोका विस्तार $\frac{५६}{६१}\times१५=\frac{८४०}{६१}$, $\frac{३११५८}{६१}-\frac{८४०}{६१}$–(१५–१)=$३५\frac{२१४}{४२७}$ यो । इसमे चन्द्रविम्बके विस्तारको मिला देनेसे चन्द्रके प्रतिदिनके गमनक्षेत्रका प्रमाण होता है– $३५\frac{२१४}{४२७}+\frac{५६}{६१}=३६\frac{१७९}{४२७}$ यो ।

सूर्यके समान चन्द्रकी भी अभ्यन्तर वीथीका विस्तार ९९४४० योजन तथा उसमे स्थित चन्द्र और मेरुके मध्यगत अन्तरका प्रमाण ४४८२० योजन है। इस अन्तरप्रमाणमे प्रतिदिनके गमनक्षेत्रको मिला देनेसे द्वितीय वीथीमे स्थित चन्द्र और मेरुके मध्यगत अन्तरका प्रमाण होता है । $४४८२०+३६\frac{१७९}{४२७}=४४८५६\frac{१७९}{४२७}$ यो । इस प्रकार पूर्व पूर्वके अन्तर-प्रमाणमे उत्तरोत्तर चन्द्रकी प्रतिदिनकी उपर्युक्त गतिके प्रमाणको मिलाते जानेसे तृतीय एव चतुर्थ आदि आगेकी वीथियोमे स्थित चन्द्र और मेरुके मध्यगत अन्तरका प्रमाण प्राप्त होता है ।

मेरु और चन्द्रके मध्यम अन्तरका प्रमाण पैतालीस हजार पचत्तर योजनसे किंचित् $\frac{४}{६१}$ कम है— ४४८२०+ ($३६\frac{१७९}{४२७}\times\frac{१४}{२}$) = $४५०७४\frac{५७}{६१}$ यो ॥ ५७ ॥ बाह्य (१५वी) वीथीमे स्थित चन्द्र और मेरुके मध्यगत अन्तरका प्रमाण पैतालीस हजार तीन सौ तीस योजनसे किंचित् ($\frac{८}{६१}$) कम है— ४४८२०+($३६\frac{१७९}{४२७}$×१४)=$४५३२९\frac{५३}{६१}$ यो ॥५८॥

अन्तर रविमेर्वोर्यत्तदिन्दोर्मध्यबाह्यजम् । विशेषस्त्वेकषष्ठ्यशाश्चत्वारोऽष्टौ च हीनकाः ॥ ५९

। $\frac{४}{६१}$ । $\frac{८}{६१}$ ।

पूर्वोक्ते तूत्तरे हीने चोपान्त्यान्तरमिष्यते । तेनैव रहित भूयस्तृतीय बाहिराद्भवेत् ॥ ६०

नवतिश्च नवापि स्यु सहस्राण्यथ षट्छतम् । चत्वारिंशच्च शशिनोरन्तर पूर्वमण्डले ॥ ६१

अत्रोत्तर च विज्ञेय योजनाना द्विसप्तति । सप्तद्विकचतुष्काणामष्टौ पञ्चत्रयोऽशकाः ॥ ६२

। $\frac{३५८}{४२७}$ ।

उत्तरेण सहानेन तदनन्तरमन्तरम् । तेनैव सहित भूयस्तृतीय चान्तर भवेत् ॥ ६३

मध्यमान्त्यान्तरे चेन्द्वो. सूर्ययोरिव भाषिते । एकषष्ठ्यशकैर्न्यूने अष्टाभिर्द्व्यष्टकैरपि ॥ ६४

। $\frac{८}{६१}$ । $\frac{१६}{६१}$ ।

मेरुसे सूर्यका जो मध्यम और बाह्य अन्तर है वही मेरुसे चन्द्रका भी मध्यम और बाह्य अन्तर है। विशेष इतना है कि सूर्य और मेरुके मध्यगत अन्तरकी अपेक्षा चन्द्र और मेरुके मध्यगत मध्यम अन्तर इकसठ भागोमेसे चार भागो ($\frac{४}{६१}$)से हीन है तथा बाह्य अन्तर आठ भागो ($\frac{८}{६१}$) से हीन है (देखिये पीछे श्लोक ४४–४५) ॥ ५९ ॥

विशेषार्थ–– यहा सूर्यकी अपेक्षा मेरुसे चन्द्रका जो मध्यम अन्तर चार बटे इकसठ भागो ($\frac{४}{६१}$) से हीन तथा बाह्य अन्तर आठ बटे इकसठ भागो ($\frac{८}{६१}$) से हीन बतलाया गया है उसका कारण दोनोके विमानगत विस्तारका भेद है–– सूर्यके विमानका विस्तार $\frac{४८}{६१}$ यो और चन्द्रके विमानका विस्तार $\frac{५६}{६१}$ यो है। इस प्रकार सूर्यके विमानकी अपेक्षा चन्द्रका विमान $\frac{८}{६१}$ यो अधिक विस्तृत है। अब जब चन्द्रका सचार मध्यम वीथीमे होगा तब उसके विमानका आधा भाग इस ओर और आधा भाग उस ओर रहेगा। अत एव उसके इस अन्तरमे सूर्यके अन्तरकी अपेक्षा $\frac{४}{६१}$ ($\frac{८}{६१}$—२) भागोकी हानि होगी। परन्तु चन्द्रका बाह्य मार्गमे सचार होनेपर उसका विमान चूकि सचारक्षेत्र (५१० $\frac{४८}{६१}$ यो) भीतर ही रहेगा, अतएव सूर्यकी अपेक्षा चन्द्रका विमान जितना अधिक विस्तृत है उतनी ($\frac{५६-४८}{६१}=\frac{८}{६१}$) ही उसके बाह्य अन्तरमे सूर्यके अन्तरकी अपेक्षा हानि भी रहेगी।

इस बाह्य अन्तरमेसे पूर्वोक्त चयको कम कर देनेपर शेष उपान्त्य अन्तर माना जाता है, उसी चयसे रहित वह उपान्त्य अन्तर बाह्य अन्तरकी अपेक्षा तीसरा अन्तर होता है–– ४५३२९ $\frac{५३}{६१}$–३६ $\frac{१७९}{४२७}$=४५२९३ $\frac{१९२}{४२७}$ उपान्त्य अन्तर, ४५२९३ $\frac{१९२}{४२७}$–३६ $\frac{१७९}{४२७}$=४५२५७- $\frac{१३}{४२७}$ बाह्यकी अपेक्षा तीसरा अन्तर ॥ ६० ॥

प्रथम वीथीमे स्थित दोनो चन्द्रोके मध्यमे निन्यानबै हजार छह सौ चालीस (९९६४०) योजनका अन्तर है ॥ ६१ ॥ बहत्तर योजन और एक योजनके चार सौ सत्ताईस अशोमे तीन सौ अट्ठावन अश (३६ $\frac{१७९}{४२७}$×२=७२ $\frac{३५८}{४२७}$ दोनो ओरका दुगुणा दिवसगतिक्षेत्र) इतना यहा चयका प्रमाण है ॥ ६२ ॥ प्रथम वीथीमे स्थित दोनो चन्द्रोके उपर्युक्त अन्तरमे इस चयके मिला देनेपर अनन्तर (द्वितीय) अन्तरका प्रमाण होता है और फिर इसमे उसी चयको मिला देनेसे तृतीय अन्तरका प्रमाण होता है – ९९६४०+७२ $\frac{३५८}{४२७}$=९९७१२ $\frac{३५८}{४२७}$ यो, ९९७१२ $\frac{३५८}{४२७}$+७२ $\frac{३५८}{४२७}$=९९७८५ $\frac{२८९}{४२७}$ यो ॥ ६३ ॥ दोनो चन्द्रोका मध्यम और अन्तिम अन्तर दोनो सूर्योके समान कहा गया है। विशेप इतना है कि सूर्योके मध्यम अन्तरकी अपेक्षा

त्रिशदर्धं सहस्राणा तथैव नियुतत्रिकम् । रूपोना नवतिश्चैव परिधिः पूर्वमण्डले ॥ ६५

३१५०८९

उत्तर द्विशतं त्रिशद्योजनान्यत्र संख्यया । सप्तद्विकचतुर्णां च त्रिचतुष्कैकमकश. ॥ ६६

। $\frac{१४३}{४२७}$ ।

भानोरिव परिक्षेप इन्दोर्मध्यान्तमण्डले । सप्तद्विकचतुष्काणामशीतिद्विशतेन च ॥ ६७

त्रयस्त्रिंशच्छतेनांशै क्रमाद्धीनो भवेद् ध्रुवम् । स एवोत्तरहीनः स्यादुपान्त्येऽन्तरमिष्यते ॥ ६८

। $\frac{२८०}{४२७}$ । $\frac{१३३}{४२७}$ ।

चन्द्रोका मध्यम अन्तर इकसठ भागोमे आठ भागो ($\frac{८}{६१}$) से हीन है तथा वाह्य अन्तर दो आठ (८×२) अर्थात् सोलह भागो ($\frac{१६}{६१}$) से हीन है ॥ ६४ ॥

विशेषार्थ — सूर्य और चन्द्रका जो प्रथम वीथीमे मेरुसे ४४८२० यो प्रमाण अन्तर वतलाया गया है उसको दुगुणा करके प्राप्त सख्यामे मेरुके विस्तारको मिला देनेसे प्रथम वीथीमे स्थित दोनो सूर्यो तथा दोनो चन्द्रोके भी मध्यगत अन्तरका प्रमाण प्राप्त होता है । यथा— ४४८२०×२+१०००० = ९९६४० यो । अव चन्द्रका विमान चूकि सूर्यके विमानसे $\frac{८}{६१}$ यो. अधिक विस्तृत है, अत एव मध्यम वीथीमे सचार करते समय दोनो चन्द्रविमानोका आधा भाग इस ओर तथा आधा भाग उस ओर रहनेसे सूर्योके अन्तरकी अपेक्षा मध्यम वीथीगत दोनो चन्द्रोके अन्तरमे $\frac{८}{६१}$ यो की हानि रहेगी । परन्तु वाह्य वीथीमे सचरण करते हुए उभय चन्द्रोके मध्यगत अन्तरमे यह हानि दुगुणी ($\frac{१६}{६१}$) रहेगी । कारण इसका यह है वाह्य वीथीगत उभय चन्द्रोके विमान पूर्ण रूपसे सचारक्षेत्रके भीतर ही रहेगे । श्लोक ६२–६३ के अनुसार मध्यम एव वाह्य वीथीमे स्थित दोनो चन्द्रोके मध्यगत उपर्युक्त अन्तरका प्रमाण इस प्रकारसे प्राप्त होता है— ९९६४० + (७२$\frac{३५८}{४२७}$ × $\frac{१४}{२}$) = १००१४९$\frac{५३}{६१}$ यो उभय चन्द्रोका मध्यम अन्तर, १००१४९$\frac{५३}{६१}$ + $\frac{८}{६१}$ = १००१५० यो उभय सूर्योका मध्यम अन्तर (देखिये पीछे श्लोक ४८), ९९६४० + (७२$\frac{३५८}{४२७}$ × १४) = १००६५९$\frac{४५}{६१}$ यो उभय चन्द्रोका वाह्य अन्तर, १००६५९$\frac{४५}{६१}$ + $\frac{१६}{६१}$ = १००६६० यो दोनो सूर्योका वाह्य अन्तर ।

पूर्व वीथीमे परिधिका प्रमाण तीन लाख तथा तीसके आधे (पन्द्रह) हजार नवासी (३१५०८९) योजन है ॥ ६५ ॥ यहा चयका प्रमाण दो सौ तीस योजन और एक योजनके चार सौ सत्ताईस भागोमेसे एक सौ तेतालीस भाग (२३०$\frac{१४३}{४२७}$) प्रमाण है ॥ ६६ ॥ चन्द्रकी मध्यम और अन्तिम वीथियोमे परिधिका प्रमाण सूर्यके ही समान है । वह उमसे केवल मध्यम वीथीमे एक योजनके चार सौ सत्ताईस भागोमे दो सौ अस्सी भागो ($\frac{२८०}{४२७}$) से तथा वाह्य वीथीमे एक सौ तेतीस भागो ($\frac{१३३}{४२७}$) से हीन है । इस वाह्य परिधिके प्रमाणमेसे एक चयके कम कर देनेपर उपान्त्य परिधिका प्रमाण होता है ॥ ६७–६८ ॥ यथा— ३१५०८९ + (२३०$\frac{१४३}{४२७}$ × $\frac{१४}{२}$) = ३१६७०१$\frac{२१}{६१}$ यो. मध्य परिधि, ३१५०८९ + (२३०$\frac{१४३}{४२७}$ × १४) = ३१८३१३$\frac{४२}{६१}$ यो वाह्य परिधि । ये दोनो परिधिया सूर्यकी उक्त परिधियोसे क्रमश $\frac{२८०}{४२७}$ = $\frac{४०}{६१}$ और $\frac{१३३}{४२७}$ = $\frac{१९}{६१}$ योजनसे हीन है — सूर्यकी मध्यम वीथीकी परिधि ३१६७०२ यो, ३१६७०२ − $\frac{२८०}{४२७}$ = ३१६७०१$\frac{१४७}{४२७}$ सूर्यकी वाह्य वीथीकी परिधि ३१८३१४, ३१८३१४$\frac{१३३}{४२७}$

एकषष्ठ्यशकै शुद्धनियुत षड्गुणिताष्टकै । सूर्ययोरन्तर मध्य लावणस्योर्ध्वयायिनोः ॥ ६९

। १०००००। ऋण $\frac{४८}{६१}$ ।

जम्बूद्वीपजगत्याश्च अर्धसूर्यान्तरान्तरे । मण्डलेऽभ्यन्तरे ज्ञेयो वर्तमानो दिवाकरः ॥ ७०

। ४९९९९ । $\frac{३७}{६१}$ ।

षट्षष्टिश्च सहस्राणि षट्षष्ट्या षट्छनानि च । धातकीखण्डसूर्याणा देशोनान्यन्तर मतम् ॥ ७१

। ६६६६६ । ऋण $\frac{२२}{१८६}$ ।

लावणस्य जगत्याश्च अर्धसूर्यान्तरान्तरे । मण्डलेऽभ्यन्तरे ज्ञेयो वर्तमानो दिवाकर ॥ ७२

। ३३३३३ । ऋण $\frac{११}{१८३}$ ।

= ३१८३१३$\frac{२९४}{४२७}$ यो । बाह्य परिधि ३१८३१३$\frac{२९४}{४२७}$ – २३०$\frac{१४३}{४२७}$ = ३१८०८३$\frac{१५१}{४२७}$ यो उपान्त्य परिधि ॥

लवणोद समुद्रके ऊपर सचार करनेवाले दो सूर्योंके मध्यमे एक योजनके इकसठ भागोमेसे छह गुणे आठ अर्थात् अडतालीस भागोसे कम एक लाख (९९९९९$\frac{१३}{६१}$) योजन प्रमाण अन्तर होता है ॥ ६९ ॥

विशेपार्थ— लवणोद समुद्रमे सचार करनेवाले सूर्योंकी सख्या ४ है। इनमे दो सूर्य लवणोद समुद्रके इस ओर तथा दो सूर्य उस ओर सचार करते हैं। इन दोनो सूर्योंके मध्यमे रहनेवाले अन्तरका प्रमाण जो यहा ९९९९९$\frac{१३}{६१}$ योजन बतलाया गया है वह इस प्रकारसे प्राप्त होता है– लवणोद समुद्रमे एक ओर चूकि २ ही सूर्य सचार करते हैं, अत एव उसके विस्तारमेसे दो सूर्यविम्बोके विस्तारको घटाकर शेषमे आधी सूर्यसख्या ($\frac{४}{२}$) का भाग दे देनेसे उपर्युक्त अन्तर प्राप्त हो जाता है। जैसे– {२००००० – ($\frac{४८}{६१}$×$\frac{४}{२}$)} – $\frac{४}{२}$ = ९९९९९$\frac{१३}{६१}$= (१००००० – $\frac{४८}{६१}$) यो

ऊपर जो दोनो सूर्योंके मध्यमे अन्तर बतलाया गया है उससे आधा अन्तर जबूद्वीपकी जगती और लवणोद समुद्रमे सचार करनेवाले सूर्यके अभ्यन्तर वलयमे जानना चाहिये– ९९९९९$\frac{१३}{६१}$–२=४९९९९$\frac{३७}{६१}$ यो ॥ ७० ॥

विशेषार्थ—अभिप्राय यह है कि लवण समुद्रमे जो चार चार सूर्य-चन्द्र सचार करते है वे एक एक परिधिमे दो दो हैं। इनमे लवण समुद्रकी अभ्यन्तर वेदीसे ४९९९९$\frac{३७}{६१}$ योजन समुद्रके भीतर जाकर परिधि है। वहापर सूर्यका विमान है और वह $\frac{४८}{६१}$ यो विस्तृत है। इसके आगे ९९९९९$\frac{१३}{६१}$ यो जाकर परिधि है। वहापर सूर्यका विमान है। यह भी $\frac{४८}{६१}$ यो ही विस्तृत है। फिर इसके आगे ४९९९९$\frac{३७}{६१}$ यो जाकर लवण समुद्रकी बाह्य परिधि है। इस सबको मिलानेपर लवण समुद्रका पूरा दो लाख यो विस्तार होता है– ४९९९९$\frac{३७}{६१}$+$\frac{४८}{६१}$+ ९९९९९$\frac{१३}{६१}$+$\frac{४८}{६१}$+४९९९९$\frac{३७}{६१}$=२००००० यो

धातकीखण्डद्वीपमे सचार करनेवाले सूर्योंके मध्यमे कुछ कम छ्यासठ हजार छह सौ छ्यासठ योजन मात्र अन्तर माना गया है– {४००००० – ($\frac{४८}{६१}$×$\frac{१२}{२}$)} – $\frac{१२}{२}$ = ६६६६५$\frac{१६१}{१८३}$ यो ॥ ७१ ॥ लवण समुद्र सम्बन्धी जगतीसे अर्ध सूर्यान्तर (६६६६५$\frac{१६१}{१८३}$–२) मे अवस्थित

अष्टात्रिंशत्सहस्राणि नवतिश्च सपञ्चका । कालोदार्णवसूर्याणां देशोना मतमन्तरम् ॥ ७३

। ३८०९५ । $\frac{७०३}{१२८१}$ ।

धातक्याह्वजगत्याश्च अर्धसूर्यान्तरान्तरे । मण्डलेऽभ्यन्तरे ज्ञेयो वर्तमानो दिवाकरः ॥ ७४

। १९०४७ । $\frac{२८९}{१२८१}$ ।

द्वाविंशतिसहस्राणि द्वाविंशति-शतद्वयम् । पुष्करार्धार्धसूर्याणा देशोन मतमन्तरम् ॥ ७५

। २२२२२ ऋण $\frac{३१०}{५४९}$ ।

कालोदकजगत्याश्च अर्धसूर्यान्तरान्तरे । मण्डलेऽभ्यन्तरे ज्ञेयो वर्तमानो दिवाकरः ॥७६

। ११११ ऋण । $\frac{१५५}{५४९}$ ।

आदौ गजगतिर्भानोर्मध्ये चाश्वगतिर्भवेत् । अन्ते सिंहगति. प्रोक्ता मण्डले तत्त्वदृष्टिभिः ॥ ७७

इष्टस्य परिधेर्माने[1] मुहूर्तैः षष्टिभिर्हृते[2] । यल्लब्धं तच्च भान्वोश्च मुहूर्तगमन भवेत् ॥ ७८

द्विपञ्चाशच्छतं चैक पञ्चाशत्प्रथमे पथि । नव द्विक च षष्ठ्यशाः[3] पूष्णोर्मौहूर्तिकी गति ॥७९

। ५२५१ । $\frac{२९}{६०}$ ।

षट्त्रिंशच्छतषष्ट्यंशा. सहस्र पञ्चसप्तति· । मुहूर्तगमने वृद्धि परिधिं प्रति सूर्ययो· ॥ ८०

। $\frac{१०७५}{३६६०}$ ।

अभ्यन्तर वलयमे सूर्य वर्तमान है, ऐसा समझना चाहिये ॥ ७२ ॥ कालोद समुद्रमे सचार करनेवाले सूर्योके मध्यमे कुछ कम अडतीस हजार पचानबै योजन मात्र अन्तर माना गया है —— $\{ ८००००० - (\frac{४८}{६१} \times \frac{४२}{२}) \} - \frac{४२}{२} = ३८०९४\frac{५७८}{१२८१}$ यो ॥ ७३ ॥ धातकीखण्ड नामक द्वीपकी जगतीसे अर्ध सूर्यान्तर ($३८०९४\frac{५७८}{१२८१} - २$) मे अवस्थित अभ्यन्तर वलयमे वर्तमान सूर्य समझना चाहिये ॥ ७४ ॥ पुष्करार्ध द्वीपमे सचार करनेवाले आधे सूर्योके मध्यमे कुछ कम बाईस हजार दो सौ बाईस योजन मात्र अन्तर माना गया है– $\{ ८००००० - (\frac{४८}{६१} \times \frac{७२}{२}) \} - \frac{७२}{२} = २२२२१\frac{२३९}{५४९}$ यो ॥ ७५ ॥ कालोदक समुद्रकी जगतीसे अर्ध सूर्यान्तर ($२२२२१\frac{२३९}{५४९} - २$)मे अवस्थित अभ्यन्तर वलयमे वर्तमान सूर्य समझना चाहिये ॥ ७६ ॥

तत्त्वदर्शियोके द्वारा सूर्यकी आदिम मण्डलमे गजगति, मध्यमे अश्वगति और अन्तमे सिंहगति कही गई है ॥ ७७ ॥ अभीष्ट परिधिका जो प्रमाण हो उसको साठ मुहूर्तोंसे भाजित करनेपर जो लब्ध हो उतना सूर्यकी एक मुहूर्त प्रमाण गतिका प्रमाण होता है ॥ ७८ ॥

उदाहरण – प्रथम परिधि ३१५०८९ यो , $३१५०८९ - ६० = ५२५१\frac{२९}{६०}$यो । यह प्रथम परिधिमे स्थित सूर्यकी एक मुहूर्त परिमित गतिका प्रमाण है ।

प्रथम पथमे सूर्यकी इस मुहूर्त परिमित गतिका प्रमाण बावन सौ इक्यावन योजन और एक योजनके साठ भागोमेसे नौ व दो अर्थात् उनतीस भाग ($५२५१\frac{२९}{६०}$) मात्र है ॥७९॥

आगे प्रत्येक परिधिमे सचार करते हुए दोनो सूर्योकी इस मुहूर्त परिमित गतिमे उत्तरोत्तर छत्तीस सौ साठ भागोमेसे एक हजार पचत्तर भागो ($\frac{१०७५}{३६६०}$)की वृद्धि होती गई है॥८०॥

---

१ आ प 'र्मान । २ प 'हंते । ३ ब पष्ठ्यता ।

त्रिपञ्चाशच्छत पञ्च षष्टचशाश्च[1] चतुर्दश । वाह्ये च परिधौ सूर्यमुहूर्तगमन भवेत् ॥ ८१

। ५३०६ । $\frac{१४}{६०}$ ।

प्रक्षेपेण पुनर्न्यूना यान्त्या मौहूर्तिकी गति. । उपान्त्या च तृतीया च मुहूर्तगतिरिष्यते ॥ ८२

द्विशतस्यैकविंशस्य त्रयोविंशतिरशकाः । द्विषष्टिश्च मुहूर्ता' स्यु. शशिनो मण्डले गतौ ॥ ८३

। ६२ । $\frac{२३}{२२१}$ ।

इन्दो पञ्चसहस्राणि चतु.सप्ततिरेव च । किंचिदूना मुहूर्तेन चान्तर्मन्दगतिर्भवेत् ॥ ८४

। ५०७४ ऋण $\frac{५९८१}{१३७२५}$ ।

त्रिभिरभ्यधिका सैव सप्तभागैश्च पञ्चभि' । किंचिदूनैर्गतिर्वेद्या शशिन प्रतिमण्डले ॥ ८५

। ३ । $\frac{५}{७}$ ।

शत पञ्चसहस्राणि मध्यमौहूर्तिकी गति । षड्विंशत्या युत[2] तत्तु शीघ्रा भवति वाहिरे ॥ ८६

। ५१२६ ।

प्रक्षेपोन तदेव स्याद् वाह्यानन्तरमण्डले । तावदून पुनश्चैव तृतीये मण्डले गति ॥ ८७

वाह्य परिधिमे सूर्यकी मुहूर्तप्रमित गतिका प्रमाण तिरेपन सौ पाच योजन और एक योजनके साठ भागोमेसे चौदह भाग मात्र है— वाह्य परिधि ३१८३१४ यो , ३१८३१४ ÷ ६० = ५३०५ $\frac{१४}{६०}$ यो । अथवा चयका प्रमाण $\frac{१०७५}{३६६०}$ है, अत ५२५१ $\frac{२९}{६०}$ + { $\frac{१०७५}{३६६०}$ × (१८४ − १) } = ५३०५ $\frac{१४}{६०}$ यो ॥ ८१ ॥ सूर्यकी जो यह मुहूर्तप्रमाण अन्तिम गति है उसमेसे एक प्रक्षेप ($\frac{१०७५}{३६६०}$) को कम कर देनेपर उसकी मुहूर्तप्रमित उपान्त्य गतिका प्रमाण होता है, इसमेसे भी एक प्रक्षेपको कम कर देनेसे अन्तिम वीथीकी ओरसे उसकी तीसरी मुहूर्तप्रमित गति मानी जाती है ॥ ८२ ॥

अपनी वीथियोमेसे किसी भी एक वीथीमे सचार करते हुए चन्द्रके उसको पूरा करनेमे वासठ मुहूर्त और एक मुहूर्तके दो सौ इक्कीस भागोमेसे तेईस भाग प्रमाण (६२ $\frac{२३}{२२१}$ मुहूर्त) काल लगता है ॥ ८३ ॥ [प्रथम वीथीमे] चन्द्रकी मुहूर्तप्रमित मन्द गतिका प्रमाण पाच हजार चौहत्तर (५०७४) योजनसे किंचित् कम है— परिधि ३१५०८९ = $\frac{६९६३४६६९}{२२१}$ एक वीथीको पूरा करनेका काल ६२ $\frac{२३}{२२१}$ = $\frac{१३७२५}{२२१}$ मुहूर्त, $\frac{६९६३४६६९}{२२१}$ ÷ $\frac{१३७२५}{२२१}$ = ५०७३ $\frac{७७४४}{१३७२५}$ = ५०७३ यो और ३ कोससे कुछ कम ॥ ८४ ॥ वही गति आगे द्वितीय आदि वीथियोमेसे प्रत्येक वीथीमे उत्तरोत्तर तीन योजन और एक योजनके सात भागोमेसे कुछ कम पाच भागो (३ $\frac{५}{७}$) से अधिक होती गई जानना चाहिये ॥ ८५ ॥ मध्यमे चन्द्रकी मुहूर्तगतिका प्रमाण पाच हजार एक सौ (५१००) योजन है, इसीमे छब्बीस (= ३ $\frac{५}{७}$ × ७) योजनोके मिला देनेपर वह (५१२६) उसकी वाह्य वीथीमे मुहूर्तप्रमित शीघ्रगतिका प्रमाण होता है ॥ ८६ ॥ एक प्रक्षेप (३ $\frac{५}{७}$) से कम वही वाह्यसे अनन्तर अर्थात् उपान्त्य वीथीमे चन्द्रकी मुहूर्तप्रमित गतिका प्रमाण होता है । इसमेसे भी उतना ही कम कर देनेपर शेष रहा वाह्यकी ओरसे तृतीय वीथीमे उसकी मुहूर्तप्रमित गतिका प्रमाण होता है ॥ ८७ ॥

---

१ आ प षष्ठ्यंशाश्च । २ ब विंशद्युत ।

श्रावणेऽभ्यन्तरे मार्गे वर्तमाने रवौ दिने । अष्टादशमुहूर्तांश्च द्वादशैव निशा भवेत् ॥ ८८
षड् द्विक पञ्च चत्वारि नव तापोऽभ्यन्तरे पथि। दशाशान् सप्त तस्यार्धं पुरः पश्चाद्भवेद् रवेः॥८९
। ९४५२६ । $\frac{७}{१०}$ । तस्यार्धं ४७२६३ । $\frac{७}{२०}$ ।
त्रिषष्टि च सहस्राणि पुनः सप्तदशैव च । चतुरः पञ्च भागांश्च तमःपरिधिरिष्यते ॥ ९०
। ६३०१७ । $\frac{४}{५}$ ।
वैशाखे कार्तिके मध्ये वर्तमाने दिवाकरे । पञ्चदशमुहूर्तांश्च दिनं रात्रिस्तथैव च ॥ ९१
नवसप्तति सहस्राणि पञ्चसप्तति शत पुनः । द्विभाग मध्यमे तापस्तमश्च परिधौ भवेत् ॥ ९२
। ७९१७५ । $\frac{१}{२}$ ।
वर्तमाने रवौ बाह्ये माघे मासे दिन भवेत् । द्वादशैव मुहूर्तांश्च निशाष्टादश मुहूर्तकम् ॥ ९३
त्रिषष्टि च सहस्राणि द्विषष्टि षट्छतानि च । चतुरः पञ्चभागांश्च तापः स्याद् बाह्यमण्डले॥९४
। ६३६६२ । $\frac{४}{५}$ ।
नवतिं च सहस्राणि पञ्चान्यानि चतुःशतम् । चत्वारि नवतिं पञ्चमाशं बाह्ये तमो भवेत् ॥ ९५
। ९५४९४ । $\frac{१}{५}$ ।
परिधीनां दशाशेषु[1] द्वयो रात्रिर्दिनं त्रिषु । अभ्यन्तरे स्थिते भानौ विपरीते[2] तु बाहिरे ॥ ९६
। $\frac{२}{१०}$ । $\frac{३}{१०}$ ।

श्रावण मासमे सूर्यके अभ्यन्तर वीथीमे रहनेपर अठारह (१८) मुहूर्त प्रमाण दिन और बारह (१२) मुहूर्त प्रमाण रात्रि होती है ॥ ८८ ॥ सूर्यके अभ्यन्तर पथमे स्थित होनेपर वहा तापक्षेत्रकी परिधिका प्रमाण अकक्रमसे छह, दो, पाच, चार और नौ अर्थात् चौरानबै हजार पाच सौ छब्बीस योजन और एक योजनके दस भागोमेसे सात भाग (९४५२६$\frac{७}{१०}$ यो) मात्र होता है॥८९॥सूर्यके अभ्यन्तर पथमे स्थित होनेपर तमक्षेत्रकी परिधि तिरेसठ हजार सत्तरह योजन और एक योजनके पाच भागोमेसे चार भाग (६३०१७$\frac{४}{५}$) प्रमाण मानी जाती है॥९०॥

वैशाख और कार्तिक मासमे मध्यम पथमे सूर्यके वर्तमान होनेपर पन्द्रह मुहूर्त प्रमाण दिन और उतनी ही रात्रि भी होती है ॥ ९१ ॥ उस समय मध्यम परिधिमे तापका प्रमाण उन्यासी हजार एक सौ पचत्तर योजन और दो भाग (७९१७५$\frac{१}{२}$ यो) मात्र होता है । तमकी परिधिका भी प्रमाण इतना ही होता है ॥ ९२ ॥

माघ मासमे सूर्यके बाह्य पथमे वर्तमान होनेपर दिन बारह मुहूर्त प्रमाण और रात्रि अठारह मुहूर्त प्रमाण होती है ॥ ९३ ॥ उस समय बाह्य वीथीमे तापकी परिधि तिरेसठ हजार छह सौ बासठ योजन और एक योजनके पाच भागोमेसे चार भाग (६३६६२$\frac{४}{५}$) प्रमाण होती है ॥ ९४ ॥ इसी बाह्य वीथीमे तमकी परिधि नब्बै और अन्य पाच अर्थात् पंचानबै हजार चार सौ चौरानबै योजन और एक योजनके पाचवे भाग (९५४९४$\frac{१}{५}$) प्रमाण होती है ॥ ९५ ॥

सूर्यके अभ्यन्तर मार्गमे स्थित रहनेपर परिधियोके दस भागोमेसे दो भागोमे रात्रि और तीन भागोमे दिन होता है, तथा उसके बाह्य मार्गमे स्थित होनेपर उसके विपरीत अर्थात्

---

१ ब दशातेषु । २ ब विपरीतौ ।

तापः सुराद्रिमध्याच्च यावल्लवणषष्ठकम् । योजनानामधश्चोर्ध्वमष्टादशशत शतम् ॥ ९७

। ८३३३३ । १/३ । १८०० । १०० ।

षट् चतुष्क च शून्य च सप्तक द्वौ च पञ्चकम् । [1]नीरधेष्वष्ट[ष्षष्ठ]भागस्य परिधिः परिकीर्तितः॥९८

। ५२७०४६ ।

अभ्यन्तरे रवौ याति मण्डले सर्वमण्डले । तापक्षेत्रस्य परिधिस्तमसश्च निशम्यताम् ॥ ९९

त्रिकैकैकाष्टपञ्चैक चतुरः पञ्चमाशकान् । मण्डलस्याब्धिषष्ठस्य[2] तापस्य परिधिर्भवेत् ॥ १००

। १५८११३ । ४/५ ।

नव शून्य चतुः पञ्च शून्यैक पञ्चमाशकम् । मण्डलस्याब्धिषष्ठस्य तमस. परिधिर्भवेत् ॥ १०१

। १०५४०९ । १/५ ।

चतुर्नव चतु पञ्च नवक पञ्चमाशकम् । तापस्य परिधिर्बाह्यमण्डलस्य भवेद् ध्रुवम् ॥ १०२

। ९५४९४ । १/५ ।

द्विकषट्क षट् त्रिक षट्क [3]चतु पञ्चाशकान् पुनः । तमस. परिधिर्बाह्यमण्डले निश्चितो भवेत् ॥

। ६३६६२ । ४/५ ।

नवति पञ्चभिर्युक्ता सहस्राणा दशापि च । त्रिपञ्चमाशकांस्तापपरिधिर्मध्यमे पथि ॥ १०४

। ९५०१० । ३/५ ।

तीन भागोमे रात्रि और दो भागोमे दिन होता है ॥ ९६ ॥ सूर्यताप मेरु पर्वतके मध्य भागसे लेकर लवण समुद्रके छठे भाग तक (ज ५०००० + ल २०००००/६ = ८३३३३१/३) नीचे अठारह सौ (१८००) और ऊपर एक सौ (१००) योजन प्रमाण माना गया है ॥ ९७ ॥ लवण समुद्रके छठे भागकी परिधिका प्रमाण अक क्रमसे छह, चार, शून्य, सात, दो और पाच, अर्थात् पाच लाख सत्ताईस हजार छयालीस (५२७०४६) योजन कहा गया है ॥ ९८ ॥

सूर्यके अभ्यन्तर वीथीमे सचार करनेपर सब वीथियोमे जो तापक्षेत्र और तमक्षेत्रकी परिधिका प्रमाण होता है उसे सुनिये ॥ ९९ ॥ उस समय लवण समुद्रके छठे भागमे तापकी परिधि अकक्रमसे तीन, एक, एक, आठ, पाच और एक, अर्थात् एक लाख अट्ठावन हजार एक सौ तेरह योजन तथा एक योजनके पाच भागोमेसे चार भाग (१५८११३४/५) प्रमाण होती है ॥ १०० ॥ लवण समुद्रके छठे भागमे तमकी परिधि अकक्रमसे नौ, शून्य, चार, पाच, शून्य और एक अर्थात् एक लाख पाच हजार चार सौ नौ योजन तथा एक योजनके पाचवे भाग (१०५४०९१/५)प्रमाण होती है ॥ १०१ ॥ बाह्य वीथीमे तापकी परिधि अक क्रमसे चार, नौ, चार, पाच और नौ, अर्थात् पचानवै हजार चार सौ चौरानवै योजन तथा एक योजनके पाचवे भाग (९५४९४१/५) मात्र होती है ॥ १०२ ॥ बाह्य वीथीमे तमकी परिधि अकक्रमसे दो, छह, छह, तीन और छह, अर्थात् तिरेसठ हजार छह सौ बासठ योजन तथा एक योजनके पाच भागोमेसे चार भाग (६३६६२४/५) प्रमाण निश्चित है ॥ १०३ ॥ मध्यम मार्गमे तापकी परिधि पचानवै हजार दस योजन और एक योजनके पाच भागोमे तीन भाग (९५०१०३/५)

---

१ ब नीरदे॰ । २ ब ॰व्दिपष्ठस्य । ३ आ प द्विकपट्क पट्त्रिक पट्क पट्त्रिक पट्क चतु ।

त्रिषष्टि च सहस्राणि पञ्चघ्नं चाष्टषष्टिकम् । द्विपञ्चमांशकौ मध्ये तमसः परिधि. पथि ॥ १०५

। ६३३४० । २/५ ।

चतु शतमशीतिं च षट्क नवसहस्रकम् । त्रिपञ्चमांशकान् मेरोः परिधावातपो[1]भवेत् ॥ १०६

। ९४८६ । ३/५ ।

त्रिशतं षट्सहस्र च चतुर्विंशतिमेव च । द्विपञ्चमांशकौ मेरो परिधौ तिमिर भवेत् ॥ १०७

। ६३२४ । २/५ ।

मध्यमे मण्डले याति भास्करे सर्वमण्डले । तापक्षेत्रस्य परिधिस्तमसश्च समो भवेत् ॥ १०८

एकषट् [2]सप्तकैकं च त्रिकमेक द्विभागकम् । परिधिश्चाब्धिषष्ठांशे तापस्य तमसश्च वै ॥१०९

।१३१७६१ । १/२ ।

सप्तति च सहस्राणि नवार्ध चाष्टसप्ततिम् । द्व्यश च परिधिस्तापतमसो बाह्यमण्डले ॥ ११०

। ७९५७८ । १/२ ।

अष्टसप्ततिसहस्राणि शतसप्त-द्विसप्ततिम् । चतुर्थांश च तापः स्यात् तमसश्चाभ्यन्तरे पथि ॥ १११

। ७८७७२ । १/४ ।

सहस्रसप्तक पञ्चयुत नवशत पुन । द्व्यश मेरुपरिक्षेपे तापश्च तिमिरं भवेत् ॥ ११२

। ७९०५ । १/२ ।

प्रमाण होती है ॥ १०४ ॥ मध्यम मार्गमे तमकी परिधि तिरेसठ हजार और पाचगुणित अडसठ (६८×५) अर्थात् तीन सौ चालीस योजन तथा एक योजनके पाच भागोमे दो भाग (६३३४० २/५) प्रमाण होती है ॥ १०५ ॥ मेरु पर्वतकी परिधिमे नौ हजार चार सौ अस्सी और छह अर्थात् छयासी योजन तथा एक योजनके पाच भागोमेसे तीन भाग (९४८६ ३/५) प्रमाण ताप होता है ॥ १०६ ॥ मेरुकी परिधिमे छह हजार तीन सौ चौबीस योजन तथा एक योजनके पाच भागोमेसे दो भाग (६३२४ २/५) प्रमाण तम होता है ॥ १०७ ॥

सूर्यके मध्यम वीथीमे सचार करनेपर सब वीथियोमे तापक्षेत्र और तमकी परिधि समान होती है ॥ १०८ ॥ उस समय लवण समुद्रके छठे भागमे ताप और तमकी परिधि अकक्रमसे एक, छह, सात, एक, तीन और एक अर्थात् एक लाख इकतीस हजार सात सौ इकसठ योजन तथा एक योजनके द्वितीय भाग (५२७०४६×१५/६० = १३१७६१ १/२) प्रमाण होती है ॥ १०९ ॥ बाह्य वीथीमे ताप और तमकी परिधि सत्तर, नौ और अर्ध हजार अर्थात् उन्यासी हजार पाच सौ अठत्तर योजन तथा एक योजनके द्वितीय भाग (३१८३१४×१५/६० = ७९५७८ १/२) प्रमाण होती है ॥ ११० ॥ अभ्यन्तर मार्गमे ताप और तमकी परिधि अठत्तर हजार सात सौ बहत्तर योजन और एक योजनके चतुर्थ भाग (३१५०८९×१५/६० = ७८७७२ १/४) प्रमाण होती है ॥ १११ ॥ मेरुकी परिधिमे ताप और तम सात हजार नौ सौ पाच योजन तथा एक योजनके द्वितीय भाग (३१६२२×१५/६० = ७९०५ १/२) प्रमाण होते है ॥ ११२ ॥

---

१ प °वतपो । २ प एकपष्ठि सप्त° ।

बाहिरे मण्डले याति भास्करे सर्वमण्डले । परिधिश्चातपस्यापि तिमिरस्य निशम्यताम् ॥ ११३

नियुत पञ्चसहस्राणि नवाधिकचतु.शतम् । पञ्चमाश च तापश्च षष्ठाशे लवणोदधेः ॥ ११४

। १०५४०९ । १/५ ।

त्रीण्येकमेकमष्टौ च पञ्चैक पञ्चमाशकान् । चतुरोऽम्बुधिषष्ठाशे तमस परिधिर्भवेत् ॥ ११५

। १५८११३ । ४/५ ।

सहस्राणां त्रिषष्टि च त्रिशत द्विघ्नविंशतिम् । पञ्चमाशौ भवेत्तापपरिधिर्मध्यमण्डले ॥ ११६

। ६३३४० । २/५ ।

सहस्राणा भवेत्पञ्चनवतिं दशक पुनः । त्रिपञ्चाशान् परिक्षेपस्तमसो मध्यमण्डले ॥ ११७

। ९५०१० । ३/५ ।

स त्रिषष्टि सहस्राणा सप्तादशभिरन्विताम् । चतु पञ्चाशकास्तापस्तिष्ठेदभ्यन्तरे पथि ॥ ११८

। ६३०१७ । ४/५ ।

सहस्राणा च चत्वारि नवतिं शतपञ्चकम् । षड्विंशतिं दशाशाश्च सप्त चाभ्यन्तरे तमः ॥ ११९

। ९४५२६ । ७/१० ।

चतुर्विंशतिसयुक्तं त्रिशत षट्सहस्रकम् । द्वौ पञ्चमांशकौ ताप सुराद्रिपरिधौ भवेत् ॥ १२०

। ६३२४ । २/५ ।

चतु.शत सहस्राणां नवकं[1] षडशीतिकम् । त्रिपञ्चमांशकान् मेरुपरिधौ तिमिरं भवेत् ॥ १२१

। ९४८६ । ३/५ ।

सूर्यके बाह्य मार्गमे सचार करनेपर सब वीथियोमे ताप और तमकी परिधिका जो प्रमाण होता है उसे सुनिये ॥ ११३ ॥ उस समय लवण समुद्रके छठे भागमे तापकी परिधि एक लाख पाच हजार चार सौ नौ योजन तथा एक योजनके पाचवे भाग (५२७०४६×१२/६० = १०५४०९ १/५) प्रमाण होती है ॥ ११४ ॥ लवण समुद्रके छठे भागमे तमकी परिधि अकक्रमसे तीन, एक, एक, आठ, पाच और एक अर्थात् एक लाख अट्ठावन हजार एक सौ तेरह योजन और एक योजनके पाच भागोमेसे चार भाग (५२७०४६×१८/६० = १५८११३ ४/५) प्रमाण होती है ॥ ११५ ॥ मध्यम वीथीमे तापकी परिधि तिरेसठ हजार तीन सौ चालीस योजन तथा एक योजनके पाच भागोमेसे दो भाग (३१६७०२×१२/६० = ६३३४० २/५) प्रमाण होती है ॥ ११६ ॥ मध्य वीथीमे तमकी परिधि पचानबै हजार दस योजन और एक योजनके पाच भागोमे तीन भाग (३१६७०२×१८/६० = ९५०१० ३/५) प्रमाण होती है ॥ ११७ ॥ अभ्यन्तर मार्गमे तापकी परिधि तिरेसठ हजार सत्तरह योजन और एक योजनके पाच भागोमे चार भाग (३१५०८९×१२/६० = ६३०१७ ४/५) प्रमाण होती है ॥ ११८ ॥ अभ्यन्तर मार्गमे तमकी परिधिका प्रमाण चौरानबै हजार पाच सौ छब्बीस योजन और एक योजनके दस भागोमेसे सात भाग (३१५०८९×१८/६० = ९४५२६ ७/१०) प्रमाण होती है ॥ ११९ ॥ मेरुकी परिधिमे तापका प्रमाण छह हजार तीन सौ चौबीस योजन और एक योजनके पाच भागोमे दो भाग (३१६२२×१२/६० = ६३२४ २/५) मात्र होता है ॥ १२० ॥ मेरुकी परिधिमे तमका प्रमाण नौ हजार चार सौ छयासी योजन और एक योजनके पाच भागोमे तीन भाग (३१६२२×१८/६० = ९४८६ ३/५) मात्र होता है ॥ १२१ ॥

१ आ प नवतिं ।

शून्यत्रिकाष्टकैकेन यल्लब्ध परिधीन् हृते । सा तापतिमिरे तत्र हानिर्वृद्धिर्दिने दिने ॥ १२२

अष्टाशीतिं शते द्वे च त्रिंशदष्टशतानि तु[1] । सहस्रभागकाः षट् च हानिवृद्धचब्धिषष्ठके ॥ १२३

। २८८ । $\frac{६}{१८३०}$ ।

त्रिसप्तति-शत भागाः सप्तादशशत पुनः । चतुर्विंशतियुतं हानिर्वृद्धिः स्याद्बाह्यमण्डले ॥ १२४

। १७३ । $\frac{१७२४}{१८३०}$ ।

शत त्रिसप्ततिर्भूयो द्वादशाग्रशताशकाः । तापान्धकारयोर्हानिर्वृद्धिः स्यान्मध्यमण्डले ॥ १२५

। १७३ । $\frac{११२}{१८३०}$ ।

द्विसप्तति शत व्येकत्रिंशत्त्रिशतमंशका.[2] । तापान्धकारयोर्हानिर्वृद्धिश्च प्रथमे पथि ॥ १२६

। १७२ । $\frac{३२९}{१८३०}$ ।

सप्तादश पुन. पञ्चशतद्वादशभागका' । आतपध्वान्तयोर्हानिर्वृद्धि. स्यान्मेरुमण्डले ॥ १२७

। १७ । $\frac{५१२}{१८३०}$ ।

उदयास्तु रवेर्नीले त्रिषष्टिर्निषधेऽपि च । हरिरम्यकयोश्च द्वौ व्येकविंशशत जले ॥ १२८

। ६३ । ११९ ।

दशोत्तरं सहस्रार्धं चारक्षेत्र विवस्वत. । लावणे च द्वयं तच्च षट्कं स्याद्धातकीध्वजे ॥ १२९

। ५१० ।

शून्य, तीन, आठ और एक (१८३०) अर्थात् एक हजार आठ सौ तीसका परिधियोमे भाग देनेपर जो लब्ध हो वह प्रतिदिन होनेवाली ताप व तमकी हानि-वृद्धिका प्रमाण होता है ॥ १२२ ॥ यह हानि-वृद्धि लवण समुद्रके छठे भागमे दो सौ अठासी योजन और एक योजनके एक हजार आठ सौ तीस भागोमेसे छह भाग प्रमाण है– ५२७०४६–१८३० = २८८$\frac{६}{१८३०}$ यो ॥ १२३ ॥ यह हानि-वृद्धि बाह्य वीथीमे एक सौ तिहत्तर योजन और एक योजनके एक हजार आठ सौ तीस भागोमेसे सत्तारह सौ चौबीस भाग प्रमाण है–३१८३१४–१८३० = १७३$\frac{१७२४}{१८३०}$ यो ॥ १२४ ॥ मध्य वीथीमे ताप और तमकी वह हानि-वृद्धि एक सौ तिहत्तर योजन और एक योजनके अठारह सौ तीस भागोमे एक सौ बारह भाग प्रमाण है–३१६७०२–४१८ = १७३$\frac{११२}{१८३०}$ यो ॥ १२५ ॥ ताप और तमकी हानि-वृद्धि प्रथम पथमे एक सौ बहत्तर योजन और एक योजनके एक हजार आठ सौ तीम भागोमेमे तीन सौ उनतीस भाग मात्र है–– ३१५०८९–१८३०=१७२$\frac{३२९}{१८३०}$ यो ॥१२६॥ ताप और तमकी वह हानि-वृद्धि मेरुकी परिधिमे सत्तरह योजन और एक योजनके एक हजार आठ सौ तीस भागोमेसे पाच सौ बारह भाग मात्र है– ३१६२२–१८३०=१७$\frac{५१२}{१८३०}$ यो ॥ १२७ ॥

सूर्यके उदय (दिनगतिमान) निषध और नील पर्वतपर तिरेसठ (६३), हरि और रम्यक क्षेत्रोमे दो (२) तथा जल अर्थात् लवण समुद्रमे एक सौ उन्नीस (११९) है– ६३+२+११९= १८४ ॥ १२८ ॥

सूर्यका चारक्षेत्र [जवूद्वीपमे] सहस्रका आधा अर्थात् पाच सौ और दस योजन

---

१ ब शतान्वित° । २ आ प त्रिशत्रिशत ।

चारक्षेत्राणि कालोदे भवन्त्येकं च विंशतिः । षट्त्रिंशत्पुष्करार्धे च चारक्षेत्राणि सन्ति च ॥ १३०

त्र्यशीतिशतदिनानि स्युरभिजिन्मुख्येषु चायने । उत्तरेऽधिकदिवसाश्च त्रयश्चैकायने गता ॥१३१

। १८३ ।

दिनैकषष्टिभागश्चेत्प्रत्येकपथलङ्घनम् । किं त्र्यशीतिशतस्येति गुणेऽधिकदिनानि वै ॥ १३२

प्र १ फ $\frac{1}{61}$ । इ१८३ ।

दिने दिने मुहूर्तं तु वर्धमाना विभाव्यते । मासेन दिवसो वृद्धिर्वर्षेण द्वादशैव ते ॥ १३३

वर्षद्वयेन सार्धेन जायतेऽधिकमासकः । पञ्चवर्षयुगे [1]मासावधिकौ भवतस्तथा ॥ १३४

सत्रिपञ्चमभाग[2] च पुष्ये गत्वा चतुर्दिनम् । उत्तरायणनिष्पत्ति शेषेष्वष्टदिनेषु च ॥ १३५

। ४ $\frac{3}{5}$ ।

अधिक (१८०+३३०=५१०) है । ये चारक्षेत्र लवण समुद्रमे दो, धातकीखण्ड द्वीपमे छह कालोद समुद्रमे इक्कीस, और पुष्करार्ध द्वीपमे छत्तीस हैं ॥ १२९-३० ॥

विशेषार्थ— जबूद्वीपमे २ सूर्य है । उनका चारक्षेत्र एक ही है । यह चारक्षेत्र जबूद्वीपके भीतर १८० और लवण समुद्रमे सूर्यविम्व ($\frac{48}{61}$) से अधिक ३३०$\frac{48}{61}$ इस प्रकार समस्त चारक्षेत्र १८०+३३०$\frac{48}{61}$ =५१०$\frac{48}{61}$ योजन मात्र है । इतने चारक्षेत्रमे सूर्यकी १८४ वीथिया है । इनमेसे क्रमश प्रतिदिन दोनो सूर्य मिलकर एक एक वीथीमे सचार करते हैं । लवण समुद्रमे ४ सूर्य हैं । इनमेसे दो एक ओर और दो दूसरी ओर आमने-सामने रहकर सचार करते हैं । इस प्रकार लवण समुद्रमे ५१०-५१० योजनके २ चार क्षेत्र है । धातकीखण्ड द्वीपमे १२ सूर्य हैं। इनमेसे २-२ का एक ही चारक्षेत्र होनेसे वहा ५१०-५१० योजनके ६ चार क्षेत्र हैं । कालोद समुद्रमे ४२ तथा पुष्करार्धमे ७२ सूर्य हैं । अत एव उक्त रीतिसे वहा क्रमश २१ और ३६ चार क्षेत्र हैं।

अभिजित् आदि जघन्य, मध्यम व उत्कृष्ट नक्षत्रोके उत्तरायणमे एक सौ तेरासी (१८३) दिन होते हैं । इनसे अतिरिक्त अधिक दिन होते हैं । तीन गत दिवस होते हैं॥१३१॥ एक पथके लाघनेमे यदि दिनका इकसठवा ($\frac{1}{61}$) भाग उपलब्ध होता है तो एक सौ तेरासी पथोके लाघनेमे क्या उपलब्ध होगा, इस प्रकार गुणा करनेपर निश्चयसे अधिक दिन प्राप्त होते है । यहा प्रमाणराशि १ पथ, फलराशि दिनका ६१वा भाग ($\frac{1}{61}$) और इच्छाराशि १८३ पथ है– $\frac{1}{61}$×१८३–१= ३ दिन ॥ १३२ ॥ इस प्रकार प्रतिदिन एक एक मुहूर्तकी वृद्धि होकर एक मासमे एक दिन (३० मुहूर्त) तथा एक वर्षमे बारह दिनकी वृद्धि बतलाई गई है ॥१३३॥ उक्त क्रमसे वृद्धि होकर अढाई वर्षमे एक अधिक मास तथा पाच वर्ष प्रमाण एक युगमे दो अधिक मास हो जाते हैं ॥ १३४ ॥

पुष्य नक्षत्रमे पाच भागोमेसे तीन भाग सहित चार (४$\frac{3}{5}$) दिन जाकर उत्तरायणकी समाप्ति होती है तथा शेष नक्षत्रोमे आठ दिन और एक दिनके पाच भागोमेसे चार भाग (८$\frac{4}{5}$ दिन) जाकर उत्तरायणकी समाप्ति होती है । श्रावण कृष्णा प्रतिपदाके दिन अभ्यन्तर

---

१ प मास° । २ प पचभाग ।

सचतुःपञ्चमांशेषु भानोरभ्यन्तरे पथि । दक्षिणस्यायनस्यादिः प्रतिपच्छ्रावणे भवेत् ॥ १३६
। ८ । ४/५ ।
आषाढपौर्णिमास्या तु युगनिःपत्तिश्च श्रावणे । प्रारम्भ प्रतिपच्चन्द्रयोगाभिजिदि कृष्णके ॥१३७
प्रथमान्तिमवीथिभ्या दक्षिणस्योत्तरस्य च । प्रारम्भश्चायनस्यैव[1] स्यादावृत्तिरितीष्यते ॥ १३८
दक्षिणावृत्तिरेकादिर्द्विचयोत्तरगावृतिः । द्विकादिद्विचया गच्छ उभयत्रापि पञ्च च ॥ १३९
कृष्णे सौम्ये त्रयोदश्यां द्वितीयावृत्तिरिष्यते । शुक्ले विशाखया चैव तृतीया दशमीगता ॥ १४०
सप्तम्या खलु रेवत्या चतुर्थी कृष्णपक्षगा । चतुर्थ्यां शुक्लपक्षे च भाग्ये भवति पञ्चमी ॥ १४१
दक्षिणे चायने पञ्च श्रावणेषु च पञ्चसु । सवत्सरेषु पञ्चैता प्रोक्ता पूर्णो[2] निवृत्तय. ॥ १४२
माघे कृष्णे च सप्तम्यां मुहूर्ते रौद्रनामनि । हस्तेभिजिदि(?)युक्तोऽर्को दक्षिणातो निवर्तते ॥१४३
चतुर्थ्यां वारुणे शुक्ले द्वितीयावृत्तिरिष्यते । कृष्णे पुष्ये तृतीया तु प्रतिपद्यभिधीयते ॥ १४४
मूले कृष्णे त्रयोदश्या चतुर्थी चापि जायते । कृत्तिकाया दशम्या च शुक्ले भवति पञ्चमी ॥ १४५
उत्तरे चायने पञ्च वर्षेषु च पञ्चसु । माघमासेषु ता. प्रोक्ता पञ्चदशावृत्तयो रवेः ॥ १४६

वीथीमे सूर्यके दक्षिणायनका प्रारम्भ होता है ॥ १३५–१३६ ॥ आषाढ मासकी पूर्णिमाके दिन पाच वर्ष प्रमाण युगकी पूर्णता और श्रावण कृष्णा प्रतिपदाके दिन चन्द्रका अभिजित् नक्षत्रके साथ योग होनेपर उस युगका प्रारम्भ होता है ॥ १३७ ॥

प्रथम वीथीसे दक्षिणायनका तथा अन्तिम वीथीसे उत्तरायणका प्रारम्भ होता है । इसको ही दक्षिणायन एव उत्तरायणकी प्रथम आवृत्ति कहा जाता है ॥ १३८ ॥ दक्षिण आवृत्ति एकको आदि लेकर दो से अधिक (१, ३, ५, ७, ९,)तथा उत्तर आवृत्ति दोको आदि लेकर दो से अधिक (२, ४, ६, ८, १०)होती जाती है । दोनो ही आवृत्तियोमे गच्छका प्रमाण पाच है ॥ १३९ ॥ श्रावण कृष्णा त्रयोदशीको [मृगशीर्ष नक्षत्रमे] द्वितीय आवृत्ति मानी जाती है । इसी मासमे शुक्ल पक्षकी दशमीको विशाखा नक्षत्रमे तृतीय आवृत्ति होती है ॥ १४० ॥ कृष्ण पक्षकी सप्तमीके दिन रेवती नक्षत्रके होनेपर चौथी और शुक्ल पक्षकी चतुर्थीको पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्रमे पाचवी आवृत्ति होती है ॥ १४१ ॥ इस प्रकार पाच वर्षोके भीतर पाच श्रावण मासोमे दक्षिण अयनमे ये पाच सूर्यकी आवृत्तिया कही गई है ॥ १४२ ॥

माघ मासमे कृष्ण पक्षकी सप्तमीको रौद्र नामक मुहूर्तमे हस्त अभिजित् (?) नक्षत्रका योग होनेपर सूर्य दक्षिणायनको छोडकर उत्तरायणमे जाता है ॥ १४३ ॥ शुक्ल पक्षकी चतुर्थीके दिन शतभिष नक्षत्रमे द्वितीय आवृत्ति मानी जाती है । कृष्ण पक्षकी प्रतिपदाको पुष्य नक्षत्रके रहनेपर तृतीय आवृत्ति कही जाती है ॥ १४४ ॥ कृष्ण पक्षकी त्रयोदशीको मूल नक्षत्रमे चौथी तथा शुक्ल पक्षकी दशमीको कृत्तिका नक्षत्रमे पाचवी आवृत्ति होती है ॥ १४५ ॥ पाच वर्षोके भीतर पाच माघ मासोमे उत्तरायणमे सूर्यकी वे पांच आवृत्तिया कही गई है ॥ १४६ ॥

---

१ आ प प्रारम्भस्यायन' । २ ब पूर्णा ।

एकाशीतिशतं रूपहीनावृत्तिगुणं भवेत् । सैकविंशति शेषोऽश्विन्यादिभ[1] त्रिघनाप्तके ।। १४७
त्र्यशीत्यधिकशत[2] रूपन्यूनावृत्तिगुण पुन । त्रिघ्नेन गुणकारेण सैकेन च सयुतम् ।। १४८
विभक्ते पञ्चदशभिर्यल्लब्ध पर्व तद्भवेत् । तिथयश्चावशेषा· स्युर्वर्तमानायनस्य च ।। १४९
षण्मासार्धगताना च ज्योतिष्काणा दिवानिशम् । समान च भवेद्यत्र त कालमिषुप[3] विदु· ।।१५०
प्रथम विषुवं चास्ति षट्स्वतीतेषु पर्वसु[4] । तृतीयाया च रोहिण्यामित्याचार्या· प्रचक्षते ।।१५१
अतीतेषु द्वितीय च अष्टादशसु पर्वसु । नवम्या च श्रवि[धनि]ष्ठाया भवतीति निवेदितम् ।। १५२
एकत्रिंशत्यतीतेषु पर्वसु स्यात्तृतीयकम् । पञ्चदश्या तिथौ चापि नक्षत्रे स्वातिनामके ।। १५३

एक सौ इक्यासीको एक कम विवक्षित आवृत्तिसे गुणित करे । पश्चात् उसमे इक्कीस मिलाकर तीनके घन (३×३×३)का भाग देनेपर जो शेष रहे उतनेवा अश्विनीको आदि लेकर नक्षत्र होता है ।। १४७ ।।

उदाहरण— जैसे यदि प्रथम आवृत्ति विवक्षित है तो एकमेसे एकको घटानेपर शून्य शेष रहता हैं (१−१=०) । उसको १८१ से गुणित करनेपर शून्य ही प्राप्त होगा । पश्चात् उसमे इक्कीसको मिलाकर ३ के घन २७ का भाग देनेपर वह नही जाता है । तब २१ ही शेष रहते हैं । इस प्रकार प्रथम आवृत्तिमे अश्विनीसे लेकर २१वा नक्षत्र उत्तराषाढा समझना चाहिये । यहा जो वह अभिजित् नक्षत्र वतलाया गया है वह सूक्ष्मतासे वतलाया गया है ।

एक सौ तेरासीको एक कम आवृत्तिसे गुणित करे । पश्चात् उसमे तिगुणा गुणाकार और एक मिलाकर पन्द्रहका भाग देनेपर जो लब्ध हो वह वर्तमान अयनके पर्व तथा शेष तिथियोका प्रमाण होता है ।। १४८–१४९ ।।

उदाहरण— जैसे यदि द्वितीय आवृत्तिकी विवक्षा है तो २ मेसे १ को कम करनेपर १ शेष रहता है। उसको १८३ से गुणित करनेपर १८३ ही प्राप्त होते है । इसमे गुणकार १ के तिगुणे ३ को मिलानेपर १८३+३=१८६ हुए । उसमे १ अक और जोडकर १५ का भाग देनेपर $\frac{१८६+१}{१५}$= लब्ध १२ और शेष ७ रहते है । इस प्रकार द्वितीय आवृत्तिमे १२ पर्व और सप्तमी तिथि प्राप्त होती है । पक्षके पूर्ण होनेपर जो पूर्णिमा और अमावस्या होती है उसका नाम पर्व है । यह द्वितीय आवृत्ति उत्तरायणका प्रारम्भ हो जानेपर प्रथम माघ मासमे कृष्ण पक्षकी सप्तमी तिथिके समय होती है । तब तक युगके प्रारम्भसे १२ पर्व वीत जाते हैं । इसी क्रमसे अन्य आवृत्तियोमे भी पर्व और तिथिको समझना चाहिये ।

ज्योतिषी देवोके छह मास (अयन) के अर्ध भागको प्राप्त होनेपर जिस कालमे दिन और रात्रिका प्रमाण बरावर होता है उस कालको विषुप कहा जाता है ।। १५० ।। छह पर्वोंके वीत जानेपर तृतीया तिथिमे रोहिणी नक्षत्रके समय प्रथम विषुप होता है, ऐसा आचार्य कहते हैं ।। १५१ ।। अठारह पर्वोंके वीतनेपर नवमीके दिन धनिष्ठा नक्षत्रमे द्वितीय नक्षत्र होता है, ऐसा निर्दिष्ट किया गया है ।। १५२ ।। इकतीस पर्वोंके वीत जानेपर पचदशी (पूर्णिमा) तिथिको

---

१ प 'श्विन्मादिम । २ प त्र्यशीति अधिक' । ३ आ प 'मिषुप । ४ ब सर्वसु ।

चत्वारिंशत्यतीतेषु त्र्यधिकासु च पर्वसु । पुनर्वसौ च षष्ठ्यां च चतुर्थमिषुपं[1] भवेत् ॥ १५४
पञ्चपञ्चस्वतीतेषु पर्वसु द्वादशे दिने । उत्तरा[2] प्रोष्ठपादाह्वे पञ्चम विषुवं मतम् ॥ १५५
अष्टषष्ट्यामतीतेषु समस्तेषु च पर्वसु । तृतीयायां मैत्रे च विषुव षष्ठमिष्यते ॥ १५६
अशीत्या समतीतेषु संपूर्णेषु तु पर्वसु । मघाया च नवम्या च सप्तम विषुवं भवेत् ॥ १५७
त्रिनवत्यास्वतीतेषु क्रमात्प्राप्तेषु पर्वसु । पञ्चदश्या तिथौ चापि अश्वयुज्यष्टमं[3] भवेत् ॥ १५८
शते पञ्चोत्तरे यातेष्वतः कालेन पर्वसु । उत्तराषाढनक्षत्रे षष्ट्या च नवम भवेत् ॥१५९
पर्वस्वेवमतीतेषु शते सप्तदशोत्तरे । द्वादश्यामुत्तराद्याया फाल्गुन्यां दशम भवेत् ॥ १६०
द्विहतेष्टेषुप रूपहीन षड्गुणितं भवेत् । पर्व तस्य दल मान वर्तमानायने तिथेः ॥ १६१
षड्घ्नैकोनपद रूप-त्रियुतं तिथिमानकम् । आवृत्तेरिषुपस्येह विषमे कृष्णः समे सितः[4] ॥ १६२

स्वाति नक्षत्रमे तीसरा विषुप होता है ॥ १५३ ॥ तीन अधिक चालीस अर्थात् तेतालीस पर्वोंके वीतनेपर षष्ठी तिथिको पुनर्वसु नक्षत्रमे चौथा विपुप होता है ॥ १५४ ॥ पचवन पर्वोंके वीतनेपर द्वादशीके दिन उत्तरा भाद्रपद नक्षत्रमे पाचवा विषुप होता है ॥ १५५ ॥ समस्त अडसठ पर्वोंके वीतनेपर तृतीया तिथिको मैत्र (अनुराधा) नक्षत्रमे छठा विषुप होता है ॥ १५६ ॥ सम्पूर्ण अस्सी पर्वोंके वीतनेपर नवमी तिथिको मघा नक्षत्रमे सातवा विषुप होता है ॥ १५७ ॥ क्रमसे प्राप्त हुए तेरानबै पर्वोंके वीत जानेपर पचदशी (अमावस्या) तिथिको अश्विनी नक्षत्रमे आठवा विषुप होता है ॥ १५८ ॥ एक सौ पाच पर्वोंके वीत जानेपर षष्ठीके दिन उत्तराषाढा नक्षत्रमे नौवा विषुप होता है ॥ १५९ ॥ इस प्रकार एक सौ सत्तरह पर्वोंके वीत जानेपर द्वादशी तिथिको उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रमे दसवा विषुप होता है ॥ १६० ॥

दुगुणे अभीष्ट इषुप (विषुप) मेसे एक अकको कम करके शेषको छहसे गुणित करनेपर पर्वका प्रमाण प्राप्त होता है । उसको आधा करनेसे वर्तमान अयन (विषुप) की तिथिसख्या होती है । [यदि वह पर्वका आधा भाग १५ से अधिक हो तो उसमे १५ का भाग देनेपर जो लब्ध हो उसे पर्वसख्यामे जोडकर शेषको तिथिका प्रमाण समझना चाहिये ।] ॥ १६१ ॥

उदाहरण– जैसे यदि नौवा विषुप अभीष्ट है तो नौको दुगुणा करके उसमेसे एक अकको कम करना चाहिये । इस प्रकारसे जो प्राप्त हो उसे छहसे गुणित करे– (९×२)–१×६=१०२ यह पर्वका प्रमाण हुआ । अब चूकि इसका अर्ध भाग ५१ होता है जो १५ से अधिक है, अत एव ५१ मे १५ का भाग देनेपर जो ३ लब्ध होते है उन्हे पर्वप्रमाणमे मिलाकर शेष ६ को तिथि समझना चाहिये । इस प्रकार विवक्षित नौवे विषुपमे पर्वका प्रमाण १०२+३=१०५ और तिथिका ६ (षष्ठी) प्राप्त होता है । (देखिये पीछे श्लोक १५९)

एक कम आवृत्तिके पदको छहसे गुणित करके उसमे एक अकके मिलानेपर आवृत्तिकी तिथिसख्या तथा तीनके मिलानेपर इषुपकी तिथिसख्या होती है । इनमे तिथिसख्याके विपम होनेपर कृष्ण पक्ष तथा उसके सम होनेपर शुक्ल पक्ष होता है ॥ १६२ ॥

उदाहरण–– जैसे यदि हम नौवी आवृत्तिकी तिथिको जानना चाहते है तो उक्त

१ प 'मिपुण । २ व प्रौष्ठ' । ३ प युज्ज्यष्टम । ४ आ प स्थित ।

आवृत्तिलब्धनक्षत्रं दशयुक्त[1] षष्ठकेऽष्टमे । दशमे रूपहीन च नक्षत्रमिषुपे भवेत् ॥ १६३
चन्द्रस्य षोडशो भाग. शुक्ले शुक्लो विजायते । कृष्णपक्षे भवेत्कृष्ण इति शास्त्रे विनिश्चित ॥१६४

उक्त च त्रिलोकप्रज्ञप्तौ [७, २०५–२०८, २१०–१२, २१४–१५] –

राहूण पुरतलाण दुवियप्पाणि हवंति गमणाणि । दिणपव्वविय़प्पेहि[2] दिणराहू ससिसरिच्छगई[3] ॥१
जस्सि मग्गे ससहरबिंब दीसेदि तेसु परिपुण्ण । सो होदि पुण्णिमक्खो दिवसो इह माणुसे लोए ॥ २
तव्वीहीयो लघिय दीवस्स हुदासमारुददिसादो । तदणतरवीहीए यति हु दिणराहुससिबिंवा ॥ ३
ताहे ससहरमडलसोलसभागेसु एक्कभागसो[4] । आवरमाणो दीसइ राहूलघणविसेसेण ॥ ४
तदणंतरमग्गाइ णिच्च लघति[5] राहुससिबिंवा । पवणग्गिदिसाहिंतो एव सेसासु वीहीसु ॥ ५
ससिबिंबस्स दिण पडि एक्केक्कपहम्मि भागमेक्केक्क । पच्छादेदि हु राहू पण्णरसकलाओ परियंत ॥
इदि एक्केक्ककलाए आवरिदाए खु राहुबिंबेण । चदेक्ककला मग्गे जस्सि दीसेदि सो य अमवासो ॥ ७

करणसूत्रके अनुसार नौमेसे एक कम करके शेष आठको छहसे गुणित करना चाहिये । इस प्रकारसे जो राशि प्राप्त हो उसमे एक अक और मिला देनेसे उनचास होते है– $(९-१) \times ६+१=४९$ अब चूकि यह राशि १५ से अधिक है अत एव उसमे १५ का भाग देना चाहिये–४९–१५= ३ शेष ४ इस प्रकार जो ४ अक शेष रहते हैं उनमे उक्त ९वी आवृत्तिकी चतुर्थी तिथि तथा सम सख्या होनेसे शुक्ल पक्ष समझना चाहिये । (देखिये पीछे श्लोक १४१ मे ५वी दक्षिणायनकी आवृत्ति) । उपर्युक्त करण सूत्रके ही अनुसार विवक्षित नौवे विषुपकी तिथि इस प्रकारसे प्राप्त होती है– $(९-१) \times ६+३=५१$, ५१–१५=३ शेष ६ इस प्रकार शेष ६ सम सख्यासे शुक्ल पक्षकी षष्ठी तिथि समझना चाहिये । (देखिये पीछे श्लोक १५९)

आवृत्तिमे जो नक्षत्र प्राप्त हो उसमे दस मिलाकर छठी, आठवी और दसवी आवृत्तिमे एक अकके कम कर देनेपर इषुपमे नक्षत्र होता है ॥ १६३ ॥

चन्द्रका सोलहवा भाग शुक्ल पक्षमे शुक्ल तथा कृष्ण पक्षमे कृष्ण होता है, ऐसा आगममे निश्चित किया गया है ॥ १६४ ॥ त्रिलोकप्रज्ञप्तिमे कहा भी है–

दिन और पर्वके भेदोसे राहुओके पुरतलोके गमन दो प्रकारके होते हैं । इनमे दिनराहु चन्द्रमाके समान गतिवाला होता है ॥ १ ॥ उनमेसे यहा मनुष्यलोकमे चन्द्रबिम्ब जिस मार्गमे पूर्ण दिखता है उस दिवसका नाम पूर्णिमा होता है ॥ २ ॥ दिनराहु और चन्द्रबिम्ब उन वीथियोको लाघकर क्रमसे जबूद्वीपकी आग्नेय और वायव्य दिशासे अनन्तर वीथीमे जाते हैं ॥ ३ ॥ उस समय (द्वितीय वीथीको प्राप्त होनेपर) चन्द्रमण्डलके सोलह भागोमेसे एक भाग राहुके लघन (गमन) विशेषसे आच्छादित होता हुआ दिखता है ॥ ४ ॥ इस प्रकार वे राहु और चन्द्रबिम्ब शेष वीथियोमे भी निरन्तर वायु और आग्नेय दिशासे अनन्तर मार्गोको लाघते हैं ॥ ५॥ राहु प्रतिदिन एक एक मार्गमे पन्द्रह कलाओके आच्छादित होने तक चन्द्रबिम्बके एक एक भागको आच्छादित करता है ॥६॥ इस प्रकार राहुबिम्बके द्वारा एक एक कलाका आवरण करनेपर जिस मार्गमे चन्द्रकी एक ही कला दिखती है वह अमावस्याका दिन होता है ॥७॥

१ ब 'युके । २ आ प दियप्पेहिं । ३ आ प सरित्थगई । ४ आ प भागस्सो । ५ आ प लघति ।

पडिवाए वासरादो वीहिं पडि[1] स [सस]हरस्ससो राहू । एक्केक्ककलं मुंचइ पुण्णमियं जाव लंघणदो ॥
अहवा ससहरबिंब पण्णरस दिणाइ त सहावेण । कसणाभं सुकलाभं तेत्तियमेत्ताणि परिणमदि ॥९
शुक्रो जीवो बुधो भौमो राहुरिष्टशनैश्चराः । धूमाग्निकृष्णनीलाः[2] स्यू रक्तः शीतश्च केतव.॥१६५
श्वेतकेतुर्जलाख्यश्च पुष्पकेतुरिति ग्रहाः । प्रतिचन्द्रं ग्रहा एते कृत्तिकादीनि भानि च ॥ १६६
षट्तारा: कृत्तिकाः प्रोक्ता आकृत्या व्यजनोपमाः । शकटोद्धिसमा[3] ज्ञेया रोहिण्यः पञ्चतारका ॥
मृगस्य शिरसा तुल्यास्तिस्रः सौम्यस्य तारकाः । दीपिकावद्ध्रुवत्यार्द्रा[4] एकतारा च सोदिता ॥१६८
पुनर्वसोश्च षट्तारा व्याख्यातास्तोरणोपमाः[5] । पुष्यस्य तिस्रस्ताराश्च समाश्छत्रेण भाषिता ॥१६९
वल्मीकिशिखया तुल्या आश्लेषाः षडुदाहृताः । चतस्रश्च मघास्तारा गोमूत्राकृतयो मताः ॥१७०
पूर्वे द्वे शरवत्प्रोक्ते उत्तरे युगवत् स्थिते । पञ्च हस्तोपमा हस्ताः चित्रैकोत्पलसंनिभाः ॥ १७१
दीपोपमा भवेत्स्वातिरेकतारा च संख्यया । विशाखायाश्चतुस्तारास्ताश्चाधिकरणोपमाः ॥ १७२
अनुराधा षडेवोक्ता मुक्ताहारोपमाश्च ताः । वीणाशृङ्गसमा ज्येष्ठा तिस्रस्तस्याश्च तारकाः ॥ १७३
मूलो वृश्चिकवत्प्रोक्तो नव तस्यापि तारका । आप्यं [6]दुष्कृतवापीवच्चतस्रस्तस्य तारकाः ॥

फिर वह राहु प्रतिपदाके दिनसे प्रत्येक वीथीमे पूर्णिमा तक उसकी एक एक कलाको छोडता है ॥ ८॥ अथवा वह चन्द्रबिम्ब स्वभावसे ही पन्द्रह दिन कृष्ण कान्तिस्वरूप और उतने ही दिन धवल कान्तिस्वरूप परिणमता है ॥ ९ ॥

शुक्र, वृहस्पति, बुध, मगल, राहु, अरिष्ट, शनैश्चर, धूम, अग्नि, कृष्ण, नील, रक्त और शीत केतव, श्वेतकेतु, जलकेतु और पुष्पकेतु ये प्रत्येक चन्द्रके ग्रह तथा कृत्तिका आदि अट्ठाईस नक्षत्र होते है ॥ १६५–६६ ॥

कृत्तिका नक्षत्रके छह तारा कहे गये है जो आकारमे वीजनाके समान होते हैं। रोहिणीके पाच तारा गाडीकी उद्धिकाके समान जानना चाहिये॥ १६७॥ मृगशीर्षके तीन तारा मृगके शिरके सदृश होते है। आर्द्रा नक्षत्र एक तारावाला है और वह दीपकके समान कहा गया है ॥ १६८ ॥ पुनर्वसुके छह तारा है जो तोरणके सदृश कहे गये हैं। पुष्यके तीन तारा है और वे छत्रके समान कहे गये है ॥ १६९ ॥ आश्लेषा नक्षत्र छह तारासे सयुक्त होना है, वे तारा वल्मीक (वावी) की शिखाके समान कहे गये हैं। मघाके चार तारा हैं जो गोमूत्रके समान आकारवाले माने गये हैं॥ १७० ॥ पूर्वाके दो तारा होते है और वे शर (बाण) के समान कहे गये हैं। उत्तरा नक्षत्र दो ताराओसे सहित होता है, वे तारा युगके समान स्थित हैं। हस्त नक्षत्रके हाथके आकारके पाच तारा होते हैं। चित्रा नक्षत्रके उत्पल (नील कमल) के समान एक तारा होता है ॥१७१॥ सख्यामे एक तारावाला स्वाति नक्षत्र दीपकके समान होता है। विशाखाके चार तारा होते है और वे अधिकरणके सदृश होते है ॥१७२॥ अनुराधा नक्षत्रके छह ही तारा कहे गये है और वे मुक्ताहार (मोतियोकी माला) के समान होते है। ज्येष्ठा नक्षत्र वीणाशृगके समान होता है और उसके तीन तारा होते हैं ॥१७३॥ मूल नक्षत्र वृश्चिक (बिच्छू) के समान कहा गया है, उसके नौ तारा होते हैं। आप्य (पूर्वाषाढा?) नक्षत्र दुष्कृत वापीके समान

१ प पड। २ आ प नीला। ३ ब शकटोद्रि°। ४ आ प °त्याद्रा। ५ अतोऽग्रे १७२तमश्लोकपर्यन्त पाठ आ-प-प्रत्योर्नोपलभ्यते। ६ आ प दुकृत।

**वैश्वस्य सिंहकुम्भाभाश्चतस्रस्तारका ध्रुवम् । अभिजिद् गजकुम्भाभस्तिस्रस्तस्य च तारका ॥
मृदङ्गसदृशो दृष्ट श्रवणश्च त्रितारकाः । पञ्चतारा धनिष्ठाश्च पतत्पक्षिसमाश्च ताः ॥ १७६
एकादश शत तारा वारुणा सैन्यवच्च ताः । पूर्वप्रोष्ठपदे तारे हस्तिपूर्वतनूपमे ॥ १७७
उत्तरे चोदिते तारे हस्तिनो परगात्रवत् । रेवती नौसमा तस्या द्वात्रिंशत्खलु तारका ॥ १७८
अश्विनी पञ्चतारा स्यान्मता साश्वशिर.समा । भरण्योऽपि त्रिकास्ताराश्चुल्लीपाषाणसस्थिताः ॥
सैकादशशत चैकसहस्र स्वस्वतारका । प्रमाणेनाहत कृत्तिकादितारा प्रमा भवेत् ॥ १८०
६६६६ । ५५५५ । ३३३३ । ११११ । ६६६६ । ३३३३ । ६६६६ । ४४४४ । २२२२ ।
२२२२ । ५५५५ । ११११ । ११११ । ४४४४ । ६६६६ । ३३३३ । ९९९९ । ४४४४ ।
४४४४ । ३३३३ । ३३३३ । ५५५५ । १२३३२१ । २२२२ । २२२२ । ३५५५२ । ५५५५ ।
३३३३ ।
नवाभिजिन्मुखास्तारा. स्वाति पूर्वोत्तरेति च । द्वादश प्रथमे मार्गे चरन्तीन्दोर्मता इति ॥ १८१**

होता है, उसके चार तारा होते है ॥ १७४ ॥ वैश्व (उत्तराषाढा) नक्षत्रके सिंहकुम्भके समान निश्चयसे चार तारा होते हैं । अभिजित् हाथीके कुम्भके समान होता है, उसके भी चार तारा होते है ॥ १७५ ॥ श्रवण नक्षत्र मृदगके समान देखा गया है, उसके तीन तारा होते हैं। धनिष्ठाके पाच तारा होते हैं और वे गिरते हुए पक्षीके समान होते है ॥ १७६ ॥ वारुणा (शतभिषा) नक्षत्रके एक सौ ग्यारह तारा होते है और वे सैन्यके समान होते है । पूर्व भाद्रपदाके दो तारा हाथीके पूर्व शरीरके सदृश होते हैं ॥ १७७ ॥ उत्तर भाद्रपदाके दो तारा हाथीके उत्तर शरीरके समान होते हैं । रेवती नक्षत्र नावके समान होता है, उसके निश्चयसे वत्तीस तारा होते है ॥ १७८ ॥ अश्विनी नक्षत्र पाच ताराओसे सहित होता है और वह घोडेके शिरके सदृश होता है। भरणी तीन ताराओसे सयुक्त होता है, वे चूल्हेके पत्थरकी आकृतिके समान होते है ॥ १७९ ॥

एक हजार एक सौ ग्यारहको अपने अपने ताराओके प्रमाणसे गुणित करनेपर कृत्तिका आदिके ताराओका प्रमाण होता है ॥ १८० ॥ यथा— कृत्तिका ११११×६=६६६६, रोहिणी ११११×५=५५५५, मृगशीर्षा ११११×३=३३३३, आर्द्रा ११११×१=११११, पुनर्वसु ११११×६=६६६६, पुष्य ११११×३=३३३३, आश्लेषा ११११×६=६६६६, मघा ११११×४=४४४४, पूर्वा ११११×२=२२२२, उत्तरा ११११×२=२२२२, हस्त ११११×५=५५५५, चित्रा ११११×१=११११, स्वाति ११११×१=११११, विशाखा ११११×४=४४४४, अनुराधा ११११×६=६६६६, ज्येष्ठा ११११×३=३३३३, मूल ११११×९=९९९९ आप्य ११११×४=४४४४, वैश्व ११११×४=४४४४, अभिजित् ११११×३=३३३३, श्रवण ११११×३=३३३३, धनिष्ठा ११११×५=५५५५, वारुणा (शतभिषा) ११११×१११=१२३३२१, पूर्वभाद्रपदा ११११×२=२२२२, उत्तरभाद्रपदा ११११×२=२२२२, रेवती ११११×३२=३५५५२, अश्विनी ११११×५=५५५५, भरणी ११११×३=३३३३

अभिजित् आदि नौ (अभिजित् श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा (वारुणा), पूर्वभाद्रपदा, उत्तरभाद्रपदा, रेवती, अश्विनी भरणी), स्वाति, पूर्वा और उत्तरा ये बारह नक्षत्र चन्द्रके प्रथम

मघा पुनर्वसू तारे तृतीये सप्तमे पथि । रोहिणी च तथा चित्रा षष्ठे मार्गे च कृत्तिका ।। १८२
विशाखा चाष्टमे चानुराधा च दशमे पथि। ज्येष्ठा चैकादशे मार्गे शेषाः पञ्चदशेष्टकाः ।।१८३
हस्तमूलत्रिक चैव मृगशीर्षद्विक तथा । पुष्यद्वितयमित्यष्टौ शेषताराः प्रकीर्तिता ।।१८४
कृत्तिकासु पतन्तीषु मध्य यन्त्यष्टमा मघा । उदयन्त्यनुराधाश्च शेषेष्वेवं च योजयेत् ।।१८५
भरणी स्वातिराश्लेषा चार्द्रा शतभिषक् तथा । ज्येष्ठेति षड् जघन्याः स्युरुत्कृष्टाश्चोत्तरात्रयम् ।।
पुनर्वसु विशाखा च रोहिणी चेति षट् पुनः। अश्विनी कृत्तिका चानुराधा चित्रा मघा तथा ।। १८७
मूल पूर्वत्रिक पुष्यहस्तश्रवणरेवती । मृगशीर्षं धनिष्ठेति त्रिघ्नपञ्च च मध्यमाः ।। १८८
रविर्जघन्यभे तिष्ठेत् ससप्तदशमाशकम् । षड्दिन मध्यमोत्कृष्टे भे तद् द्वित्रिगुणं क्रमात् ।। १८९

दि ६ । $\frac{७}{१०}$ । दि १३ । $\frac{२}{५}$ । दि २० । $\frac{१}{१०}$ ।

अभिजिन्नामभेनेनः सपञ्चमचतुर्दिनम् । सप्तषष्ट्याप्तशून्यत्रिषण्मुहूर्तं विधुश्चरेत् ।। १९०

। ४ । $\frac{१}{५}$ । $\frac{६३०}{६७}$ ।

चन्द्रो जघन्यनक्षत्रे दिनार्धं मध्यमर्क्षके । दिवसं चोत्तमे भे च तिष्ठेत् सार्धदिनं ध्रुवम् ।। १९१

मार्गमे सचार करते है ।। १८१ ।। मघा और पुनर्वसु ये दो तारा (नक्षत्र) उसके तृतीय मार्गमे सचार करते है। रोहिणी तथा चित्रा ये दो नक्षत्र उसके सातवे मार्गमे सचार करते हैं। कृत्तिका नक्षत्र उसके छठे मार्गमे, विशाखा आठवे मार्गमे, अनुराधा दसवे मार्गमे ज्येष्ठा ग्यारहवे मार्गमे तथा शेष आठ नक्षत्र पन्द्रहवे मार्गमे सचार करते हैं। हस्त, मूल आदि तीन (मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा), मृगशीर्षा व आर्द्रा, तथा पुष्य और आश्लेषा ये आठ शेष तारा कहे गये हैं ।। १८२-८४।।

कृत्तिका नक्षत्रोके पतन अर्थात् अस्त होनेके समयमे उनके आठवे मघा नक्षत्र मध्यान्ह कालको प्राप्त होते है तथा मघासे आठवे अनुराधा नक्षत्र उदयको प्राप्त होते हैं। इसी क्रमकी योजना शेष नक्षत्रोके भी विषयमे करनी चाहिये ।। १८५ ।।

भरणी, स्वाति, आश्लेषा, आर्द्रा, शतभिषक् तथा ज्येष्ठा ये छह नक्षत्र जघन्य है। तीन उत्तरा (उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरा भाद्रपदा), पुनर्वसु, विशाखा और रोहिणी ये छह नक्षत्र उत्कृष्ट हैं। अश्विनी, कृत्तिका, अनुराधा, चित्रा, मघा, मूल, तीन पूर्वा (पूर्वा फाल्गुनी पूर्वाषाढा, उत्तरा भाद्रपदा), पुष्य, हस्त, श्रवण, रेवती, मृगशीर्ष और धनिष्ठा ये तीनसे गुणित पाच अर्थात् पन्द्रह नक्षत्र मध्यम है ।। १८६-१८८।।

सूर्य जघन्य नक्षत्रके ऊपर छह दिन और एक दिनके दस भागोमे सात भाग (६ $\frac{७}{१०}$ दिन) प्रमाण अर्थात् छह दिन इक्कीस मुहूर्त, इससे दूना १३ $\frac{२}{५}$ दिन मध्यम नक्षत्रके ऊपर तथा उससे तिगुना (२० $\frac{१}{१०}$) उत्कृष्ट नक्षत्रके ऊपर रहता है ।। १८९ ।। अभिजित् नक्षत्रके साथ चार दिन और एक दिनके पाचवे भाग प्रमाण सूर्य तथा सडसठसे भाजित शून्य, तीन और छह अक प्रमाण ($\frac{६३०}{६७}$) मुहूर्त तक चन्द्र सचार करता है ।। १९० ।। चन्द्र जघन्य नक्षत्रके ऊपर आधा दिन, मध्यम नक्षत्रके ऊपर एक दिन तथा उत्तम (उत्कृष्ट) नक्षत्रके ऊपर डेढ दिन रहता है ।।१९१।।

योजनाना भवेत् त्रिंशत् षष्टिश्च नवतिः क्रमात् । जघन्यमध्यमोत्कृष्टनक्षत्रपरिमण्डलम् ॥१९२
अभिजिन्मण्डलक्षेत्रमष्टादशकयोजनम् । घटिका अपि तासां स्युः समसंख्या हि मण्डलैः ॥ १९३
अग्नि. प्रजापतिः सोमो रुद्रोऽदितिर्बृहस्पती । सर्पः पिता भगश्चैव अर्यमा सवितेति च ॥ १९४
त्वष्टाथ वायुरिन्द्राग्निर्मित्रेन्द्रौ नैर्ऋतिस्तथा । अब्विश्वब्रह्मविष्ण्वाख्या वसुवरुणाजसञ्ज्ञकाः ॥
अभिवर्धी च पूषा च अश्वोऽथ यम एव च । देवता कृत्तिकादीनां पूर्वाचार्यैः प्रकाशिता. ॥ १९६
रौद्रः श्वेतश्च मैत्रश्च तत' सारभटोऽपि च । दैत्यो वैरोचनश्चान्यो वैश्वदेवोऽभिजित्तथा ॥१९७
रौहिणो[1] बलनामा च विजयो नैर्ऋतोऽपि च । वारुणश्चार्यमाचान्यो भाग्य पञ्चदशो दिने॥१९८
सावित्राध्वर्यसञ्ज्ञौ[2] च दातृको यम एव च । वायुर्हुताशनो भानुर्वैजयन्तोऽष्टमो निशि ॥ १९९
सिद्धार्थः सिद्धसेनश्च विक्षेपो योऽद्य एव च । पुष्पदन्त. सगन्धर्वो मुहूर्तोऽन्योरुणो मत (?) ॥२००
अणुरण्वन्तर काले व्यतिक्रामति यावति । स काल. समयोऽसख्यैः समयैरावलिर्भवेत् ॥ २०१
सख्यातावलिरुच्छ्वास[3] प्रोक्तस्तूच्छ्वाससप्तक । स्तोका सप्त लवस्तेषा सार्धाष्टा त्रिंशता घटी ॥
घटीद्वय मुहूर्तोऽत्र मुहूर्तैस्त्रिशता दिनम् । पञ्चघ्नैस्त्रिदिनै पक्ष पक्षौ द्वौ मास इष्यते ॥ २०३
ऋतुर्मासद्वयेनैव त्रिभिस्तैरयन मतम् । तद्द्वय वत्सर. पञ्च वत्सरा युगमिष्यते ॥ २०४

जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट नक्षत्रोका मण्डलक्षेत्र यथाक्रमसे तीस, साठ और नव्वे योजन प्रमाण है ॥ १९२॥ अभिजित् नक्षत्रका मण्डलक्षेत्र अठारह योजन प्रमाण है। उनकी घटिकाये भी मण्डलोके समान सख्यावाली हैं ॥ १९३ ॥

१ अग्नि २ प्रजापति ३ सोम ४ रुद्र ५ अदिति ६ बृहस्पति ७ सर्प ८ पिता ९ भग १० अर्यमा ११ सविता १२ त्वष्टा १३ वायु १४ इन्द्राग्नि १५ मित्र १६ इन्द्र १७ नैर्ऋति १८ जल १९ विश्व २० ब्रह्म २१ विष्णु २२ वसु २३ वरुण २४ अज २५ अभिवर्धी (अभिवृद्धि) २६ पूषा २७ अश्व और २८ यम, ये पूर्व आचार्योके द्वारा उन कृत्तिका आदि नक्षत्रोके देवता प्रकाशित किये गये है ॥ १९४-१९६ ॥

रौद्र, श्वेत, मैत्र, सारभट, दैत्य, वैरोचन, वैश्वदेव, अभिजित्, रौहिण, बल, विजय, नैर्ऋत्य, वारुण, अर्यमा और भाग्य ये पन्द्रह दिनमे, सावित्र, अध्वर्य, दातृक, यम, वायु, हुताशन, भानु और आठवा वैजन्त ये आठ रात्रिमे, तथा सिद्धार्थ, सिद्धसेन, विक्षेप
(?) ॥ १९७–२०० ॥

जितने कालमे एक परमाणु दूसरे परमाणुको लाघता है उतने कालको समय कहते हैं। ऐसे असख्यात समयोकी एक आवली होती है। सख्यात आवलियोका एक उच्छ्वास, सात उच्छ्वासोका एक स्तोक, सात स्तोकोका एक लव, साढे अडतीस लवोकी एक घटिका (घडी– नाली), दो घटिकाओका एक मुहूर्त, तीस मुहूर्तोका एक दिन, पाच गुणित तीन (५×३) अर्थात् पन्द्रह दिनोका एक पक्ष और दो पक्षोका एक मास माना जाता है। दो मासोकी एक ऋतु, तीन ऋतुओका एक अयन, दो अयनोका एक वर्ष तथा पाच वर्षोका एक युग माना

१ प रोहिणो । २ ब 'ध्वर्य° । ३ [स्तोकस्तू°] ।

उच्छ्‌वासाना सहस्राणि त्रीणि सप्त शतानि च । त्रिसप्ततिः पुनस्तेषां[1] मुहूर्तो ह्येक इष्यते॥२०५

। ३७७३ ।

मण्डलेऽभ्यन्तरे याति सर्ववास्येषु भास्करे। अष्टादश मुहूर्ता. स्युस्तदाहो द्वादश क्षपा ॥ २०६

षष्टचाप्तश्च परिक्षेप· प्रथमो[2] नवताडित । चक्षुस्पर्शनमार्गस्त्रिषट्‌द्विसप्तचतु.प्रम ॥ २०७

साधिकेन[3] च तेनोन निषधस्य धनुर्दलम् । यन्मानमिदमेकद्विषट्‌चतुष्कैकक कला: ॥२०८

। १४६२१ [$\frac{४७}{३८०}$] ।

आगत्य निषधेऽयोध्यामध्यस्थैर्दृश्यते रवि.। तेनोनो[4] निषधस्याद्रेः पार्श्वबाहुश्च योऽस्ति स· ॥

जाता है ॥ २०१–२०४ ॥ तीन हजार सात सौ तिहत्तर उच्छ्‌वासोका एक मुहूर्त माना जाता है–– उच्छ्‌वास ७×७×३८$\frac{१}{२}$×२=३७७३ ॥ २०५ ॥

सूर्यके सब मण्डलोमेसे अभ्यन्तर मण्डलमे प्राप्त होनेपर उस समय दिनका प्रमाण सब क्षेत्रोमे अठारह मुहूर्त और रात्रिका प्रमाण बारह मुहूर्त होता है ॥ २०६ ॥ प्रथम मण्डलको साठसे भाजित करके लब्धको नौसे गुणित करनेपर चक्षुके स्पर्शनका मार्ग अर्थात् चक्षु इन्द्रियके विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्रका प्रमाण प्राप्त होता है जो तीन, छह, दो, सात और चार अक (४७२६३ यो) प्रमाण है ॥ २०७ ॥

विशेषार्थ— जब सूर्य प्रथम वीथीमे प्राप्त होता है तब अयोध्या नगरीके भीतर अपने भवनके ऊपर स्थित चक्रवर्ती सूर्यविमानके भीतर स्थित जिनबिम्बका दर्शन करता है। वह सूर्य उक्त वीथी (३१५०८९ यो) को ६० मुहूर्तमे पूर्ण करता है। जब चक्रवर्ती सूर्यविमानमे जिनबिम्बका दर्शन करता है तब वह निषध पर्वतके ऊपर उदयको प्राप्त होता है। उसको अयोध्याके ऊपर आने तक ९ मुहूर्त लगते हैं। अब जब वह ३१५०८९ योजन प्रमाण उस वीथीको ६० मुहूर्तमे पूर्ण करता है तब वह ९ मुहूर्तमे कितने क्षेत्रको पूरा करेगा, इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर उपर्युक्त चक्षुके स्पर्शक्षेत्रका प्रमाण प्राप्त होता है। यथा— $\frac{३१५०८९×९}{६०}=\frac{३१५०८९×३}{२०}=\frac{९४५२६७}{२०}=४७२६३\frac{७}{२०}$ योजन ।

निषध पर्वतके धनुषका जो प्रमाण है उसको आधा करके उसमेसे कुछ ($\frac{७}{२०}$) अधिक इस चक्षुके स्पर्शक्षेत्रको कम कर देनेपर जो प्रमाण होता है वह एक, दो, छह, चार और एक, इन अकोसे निर्मित सख्या (१४६२१) प्रमाण होकर [$\frac{४७}{३८०}$] कलाओसे अधिक होता है ॥२०८॥ जैसे– निषध पर्वतका धनुष १२३७६८$\frac{९}{१९}$, इसका आधा ६१८८४$\frac{९}{१९}$, ६१८८४$\frac{९}{१९}$ –४७२६३$\frac{७}{२०}$= १४६२१$\frac{४७}{३८०}$

निषध पर्वतके ऊपर इतने (१४६२१$\frac{४७}{३८०}$) योजन आकर सूर्य अयोध्या नगरीके मध्यमे स्थित महापुरुषोके द्वारा देखा जाता है। इसको निषध पर्वतकी पार्श्वभुजामेसे कम कर देनेपर जो शेष रहता है वह कुछ ($\frac{१४७}{३८०}$) कम बाण (५), पर्वत (७) पाच और पाच अर्थात्

१ आ प अतोऽग्रे (सार्धाष्टा त्रिशता घटी। घटीद्वय मुहूर्तोत्र) इत्यय पाठ. कोष्ठकस्थ अधिक उपलभ्यते। २ आ प °क्षेपश्च प्रथमो। ३ ब सादिकेन। ४ प तेनोन।

देशोनबाणपर्वतपञ्चपञ्चप्रमाणकः । तत्प्रमा निषधे गत्वा चास्तं याति दिवाकरः ॥ २१०

। ५५७५ । ऋण $\frac{१४७}{३८०}$ ।

जम्बूचारधरोनौ च हरिभूनिषधाशुगौ[1] । इह बाणौ पुनर्वृत्तमाद्यवीथ्याश्च विस्तृतिः ॥ २११

हरिभूगिरिकोदण्डविशेषार्धं च नैषधः । पार्श्वबाहुः स देशोनषड्नवैकखदृक्प्रम ॥२१२

२०१९६ । ऋण $\frac{५}{१९}$ ।

हरिभूधनुराद्ये[2] च मण्डले सप्तसप्तकम् । त्रिकत्रिकाष्टकं वैकविंशत्याश्च कला नव ॥ २१३

८३३७७ । $\frac{९}{१९}$ ।

आद्ये च निषधे मार्गे धनुरष्टौ षट्कसप्तकम् । त्रिद्व्येक व्येकविंशत्याश्चाष्टादशकला[3] भवेत् ॥२१४

१२३७६८ [$\frac{१८}{१९}$]

मध्यमे मण्डले याति सर्ववास्येषु भास्करे । इषुपेषु च सर्वेषु तदा दिन-निशे समे ॥२१५

मण्डले बाहिरे याति सर्ववास्येषु भास्करे । द्वादशाह्नि मुहूर्ता स्युर्निशि चाष्टादशैव च ॥ २१६

ज्योतिषा भास्करादीनामपरस्या मुख दिशि । उत्तर च भवेत् सव्यमपसव्य च दक्षिणम् ॥ २१७

पाच हजार पाच सौ पचत्तर (२०१९६ – १४६२१ = ५५७५) योजन प्रमाण होता है। इतने प्रमाण निषध पर्वतके ऊपर जाकर वह सूर्य अस्त हो जाता है ॥ २०९–२१० ॥

जम्बूद्वीपके चारक्षेत्रसे रहित जो हरिवर्ष और निषध पर्वतके बाण हैं वे यहा चक्षुके स्पर्शक्षेत्रके लानेमे बाण होते है। इनका जो वृत्त विस्तार है वह प्रथम वीथीका विस्तार (९९६४०) होता है ॥ २११ ॥ यथा— हरिवर्षका बाण $\frac{३१००००}{१९}$, निषध पर्वतका बाण $\frac{६३००००}{१९}$, जम्बूद्वीपका चारक्षेत्र $१८० = \frac{३४२०}{१९}$, $\frac{३१००००}{१९} - \frac{३४२०}{१९} = \frac{३०६५८०}{१९}$ च. ह व बाण, $\frac{६३००००}{१९} - \frac{३४२०}{१९} = \frac{६२६५८०}{१९}$ च नि प बाण।

हरिवर्षके धनुषको निषध पर्वतके धनुषमेसे कम करके शेषको आधा करनेपर जो प्राप्त हो वह निषध पर्वतकी पार्श्वभुजाका प्रमाण होता है। वह कुछ कम छह, नौ, एक, शून्य और दृष्टि अर्थात् दो इन अकोके बराबर है— $(१२३७६८\frac{१८}{१९} - ८३३७७\frac{९}{१९}) - २ = २०१९५\frac{१४}{१९}$ $= (२०१९६ - \frac{५}{१९})$ ॥ २१२ ॥

प्रथम वीथीमे हरिवर्षका धनुष सात, सात, तीन, तीन और आठ इन अकोके प्रमाण होकर उन्नीसमेसे नौ कलाओसे अधिक होता है – $८३३७७\frac{९}{१९}$ ॥ २१३ ॥ प्रथम वीथीमे निषध पर्वतका धनुष आठ, छह, सात, तीन, दो और एक इन अकोके प्रमाण होकर एक अकके उन्नीस भागोमेसे अठारह भागोसे अधिक होता है – $१२३७६८\frac{१८}{१९}$ ॥ २१४ ॥

सूर्यके सब वीथियोमेसे मध्यम वीथीमे जानेपर सब क्षेत्रो और सब इषुपो (विषुपो) मे दिन और रात बराबर अर्थात् पन्द्रह पन्द्रह मुहूर्त प्रमाण होते हैं ॥ २१५ ॥ सूर्यके सब वीथियोमेसे बाह्य वीथीमे जानेपर सब क्षेत्रोमे दिनमे बारह मुहूर्त और रात्रिमे अठारह मुहूर्त ही होते हैं ॥ २१६ ॥ सूर्य आदि सब ज्योतिषियोका मुख पश्चिम दिशामे होता है। उनका वामभाग

---

१ ब निषदाशुगौ । २ आ प 'राध्ये । ३ ब विंशत्या चाष्टा' ।

आवृत्तयो ग्रहाणां[1] च आग्नेय्य इति भाषिता. । दीपस्य खलु वायव्यः सकलागमकोविदैः ॥२१८
रविरिन्दुर्गृहाश्चैव नक्षत्राणि च तारकाः । परियान्ति क्रमेणैव जम्बूद्वीपादिमण्डले ॥ २१९
शतानि सप्त पञ्चापि कोटीकोटयः प्रकाशिताः । भरतस्योर्ध्वयायिन्यस्तारका ज्ञानपारगैः ॥ २२०
। ७०५०००००००००००००० ।
द्विगुणा द्विगुणास्ताभ्यः क्रमात्पर्वतभूमिषु । आ विदेहेभ्य इत्युक्ता[2] हानिश्च परतस्तथा ॥ २२१
हि १४१ ।$^{०}_{१५}$। है २८२ ।$^{०}_{१५}$। म ५६४ ।$^{०}_{१५}$। ह ११२८ ।$^{०}_{१५}$। नि २२५६ ।$^{०}_{१५}$। वि ४५१२ ।$^{०}_{१५}$।
जम्बूद्वीपे सहस्राणां शत त्रिंशत्रिक पुनः । शतानि नव पञ्चाशत् कोटीकोटयोऽत्र तारकाः ॥२२२
१३३९५ ।$^{०}_{१५}$।
द्विगुणा लवणोदे ता. षड्गुणा धातकीध्वजे । गुणिता एकविंशत्या कालोदे स्युश्च तारका ॥ २२३
२६७९ ।$^{०}_{१६}$। धा ८०३७ ।$^{०}_{१६}$। २८१२९५ ।$^{०}_{१५}$।
षट्त्रिंशद्गुणिता ज्ञेयाः पुष्करार्धे च तारका । केवलज्ञानिभिर्दृष्टाः प्रत्यक्षं तास्तथा स्थिताः ॥ २२४
४८२२२ ।$^{०}_{१६}$।
षट्त्रिंशच्च शतानि स्युः षण्णवत्या युतानि च । द्वीपेष्वर्धतृतीयेषु नक्षत्राणि प्रसंख्यया ॥ २२५
। ३६९६ ।

उत्तरमे और दक्षिणभाग दक्षिणमे होता है (?) ॥ २१७ ॥ समस्त आगमके ज्ञाता श्रुतकेवलियोके द्वारा ग्रहोकी आवृत्तिया निश्चयसे आग्नेयी तथा दीप (चन्द्र) की आवृत्तिया वायवी बतलाई गई है ॥ २१८ ॥ सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और तारा ये क्रमसे ही जम्बूद्वीपके प्रथम मण्डलमे परिक्रमा करते है ॥ २१९ ॥

ज्ञानके पारको प्राप्त हुए सर्वज्ञ देवोके द्वारा भरत क्षेत्रके ऊपर गमन करनेवाले तारे सख्यामे सात सौ पाच कोडकोडि प्रमाण बतलाये गये है ७०५०००००००००००००० ॥ २२० ॥ इसके आगे वे विदेह क्षेत्र तक पर्वत और क्षेत्रोमे क्रमसे इनसे दूने दूने कहे गये है । उसके आगे उनकी उसी क्रमसे हानि होती गई है । जैसे– हिमवान् १४१ शून्य (०) १५, हैमवत २८२ शून्य १५, महाहिमवान् ५६४ शून्य १५, हरिवर्ष ११२८ शून्य १५, निषध २२५६ शून्य १५, विदेह ४५१२ शून्य १५, नील २२५६ शून्य १५, रम्यक ११२८ शून्य १५, रुक्मि ५६४ शून्य १५, हैरण्यवत २८२ शून्य १५, शिखरी १४१ शून्य १५, ऐरावत ७०५ शून्य १४ ॥ २२१ ॥ जम्बूद्वीपमे एक सौ तेतीस हजार नौ सौ पचास कोडाकोडी तारे हैं। शून्य (०) १४ के साथ ७०५ +१४१०+२८२०+५६४०+११२८०+२२५६०+४५१२०+२२५६०+११२८०+५६४० +२८२०+१४१०+७०५=१३३९५ शून्य १५ ॥ २२२ ॥ वे तारे इनसे दूने लवण समुद्रमे, छहगुणे घातकीखण्ड द्वीपमे, और इक्कीसगुणे कालोद समुद्रमे है– लवणोद २६७९ शून्य १६, धातकीखण्ड ८०३७ शून्य १६, कालोद २८१२९५ शून्य १५ ॥ २२३ ॥ जम्बूदीपस्थ ताराओसे छत्तीसगुणे तारे पुष्करार्ध द्वीपमे स्थित जानना चाहिये १३३९५०×३६=४८२२२ शून्य १६ । वे तारे केवलज्ञानियोके द्वारा प्रत्यक्षमे उसी प्रकारसे स्थित देखे गये है ॥ २२४ ॥ अढाई द्वीपमे सब नक्षत्र सख्यामे छत्तीस सौ छयानबे हैं– ज ५६+ल ११२+धा ३३६+का ११७६+पु.

---

१ प गृहाणा । २ प इत्युक्त्वा ।

एकादश सहस्राणि षट्छतान्यपि षोडश। द्वीपे द्वये तथार्धे च ग्रहाणां[1] गणितं भवेत् ॥ २२६

। ११६१६।

अष्टाशीतिशतं चैकं सहस्रं चाल्पकेतवः। महान्तः केतवस्तेभ्यो द्विगुणा इति वर्णिताः ॥ २२७

। ११८८। २३७६।

सहस्रं दशकेनोनं चन्द्रवीथ्यो रवेः पुनः। द्वादशैव सहस्राणि चाष्टादशगुणाष्टकम् ॥ २२८

। ९९०। १२१४४।

अष्टाशीतिश्च लक्षाणां चत्वारिंशत्सहस्रकम्। शतानि सप्त ताराणां कोटीकोट्यो नरावनौ ॥ २२९

। ८८४०७। $^{०}_{१६}$ ।

इन्दोरिनस्य शुक्रस्य वर्षाणां नियुतेन च। सहस्रेण शतेनायुः सह पल्यं क्रमाद्भवेत् ॥ २३०

प १ व १००००० । प १ व १००० । प १ व १०० ।

गुरोरन्यग्रहस्यापि[2] पल्यं पल्यस्य चार्धकम्। वरावरायुस्ताराणां पादः पादार्धकं भवेत् ॥ २३१

प १ । प $\frac{१}{२}$ । प $\frac{१}{४}$ । प $\frac{१}{८}$ ।

चन्द्राभा च सुसीमा च सञ्ज्ञया तु प्रभंकरा। देव्योऽर्चिमालिनी चेति चतस्रो मृगधरस्य च ॥ २३२

द्युतिः सूर्यप्रभा चान्या तथा नाम्ना प्रभंकरा। देव्योऽर्चिमालिनी चेति चतस्रो भास्करस्य च ॥ २३३

चतस्रश्च सहस्राणां परिवारसुराङ्गनाः। तासां पृथक् पृथक् ताश्च विकुर्वन्ति च तत्प्रमाः ॥ २३४

२०१६=३६९६ ॥ २२५ ॥ अढाई द्वीपमे ग्रहोका प्रमाण ग्यारह हजार छह सौ सोलह है— ज १७६+ल ३५२+धा १०५६+का. ३६९६+पु ६३३६=११६१६ ॥२२६॥ अढाई द्वीपमे एक हजार एक सौ अठासी (११८८) अल्पकेतु और उनसे दूने २३७६ महाकेतु कहे गये हैं ॥ २२७ ॥ दस कम एक हजार (९९०) चन्द्रवीथिया तथा बारह हजार और आठगुणित अठारह अर्थात् एक सौ चवालीस (१२१४४) सूर्यवीथिया हैं ॥ २२८ ॥ मनुष्यक्षेत्रमे अठासी लाख चालीस हजार सात सौ कोडाकोडी (८८४०७ शून्य १६) तारे हैं ॥ २२९॥

उत्कृष्ट आयु चन्द्रकी क्रमसे एक पल्य और एक लाख वर्ष, सूर्यकी एक पल्य और एक हजार वर्ष, तथा शुक्रकी एक पल्य और एक सौ वर्ष प्रमाण होती है—चन्द्र पल्य १ वर्ष १०००००, सूर्य पल्य १ वर्ष १०००, शुक्र पल्य १ वर्ष १०० ॥ २३० ॥ बृहस्पतिकी उत्कृष्ट आयु एक पल्य तथा अन्य बुध आदि ग्रहोकी उत्कृष्ट आयु आधा पल्य प्रमाण होती है। ताराओकी उत्कृष्ट आयु पाव पल्य और जघन्य आयु इसके अर्ध भाग प्रमाण होती है— बृह १ पल्य, अन्य ग्रह $\frac{१}{२}$ पल्य, तारा उ आयु $\frac{१}{४}$ पल्य, जघन्य $\frac{१}{८}$ पल्य ॥ २३१ ॥ चन्द्राभा, सुसीमा, प्रभकरा और अर्चिमालिनी नामकी चार देविया चन्द्रके होती हैं ॥ २३२ ॥ द्युति, सूर्यप्रभा, प्रभकरा और अर्चिमालिनी नामकी चार देविया सूर्यके होती हैं ॥ २३३ ॥ उनकी पृथक् पृथक् चार हजार परिवार देविया होती हैं। वे प्रमुख देविया उक्त परिवार देवियोके प्रमाण (४०००)

---

१ प गृहाणा। २ ब गृहस्यापि।

आयुर्ज्योतिष्कदेवीनां स्वस्वदेवायुरर्धकम् । सर्वेभ्यश्च निकृष्टानां देव्यो द्वात्रिंशदेव च ॥ २३५

[1]अष्टाशीत्यस्तारकोरुग्रहाणा
चारो वक्रं विप्रवासोदयाश्च ।
मार्गा वीथ्यो मण्डलादीनि चापि
ग्राह्यं शेषं ज्यौतिषग्रन्थदृष्टम् ॥ २३६

इति लोकविभागे तिर्यग्लोक [ज्योतिर्लोक] विभागो नाम षष्ठं प्रकरणं समाप्तम् ॥ ६॥

विक्रिया करती है ॥ २३४ ॥ ज्योतिष्क देवियोकी आयु अपने अपने देवोकी आयुके अर्ध भाग प्रमाण होती है। सबसे निकृष्ट देवोके बत्तीस ही देविया होती है ॥ २३५॥ अठासी नक्षत्र, तारका और महाग्रहोके सचार, वक्र, विप्रवास (?) उदय, मार्ग, वीथिया और मण्डल आदिका शेष कथन ज्योतिष ग्रन्थोमे देखकर जानना चाहिये ॥ २३६ ॥

इस प्रकार लोकविभागमे ज्योतिर्लोक विभाग नामक छठा प्रकरण समाप्त हुआ ॥६॥

---

१ आ °अष्टाशीत्या° ।

[सप्तमो विभागः]

वक्ष्ये स्तुत्वा नुतानीशान् मनुष्यविबुधैर्बुधै । अधोलोकस्य सक्षेप मुदा लब्धामृतोपमम् ॥ १
चित्रा वज्रा च वैडूर्या लोहिताक्षा च मेदिनी । मसारकल्पा गोमेदा प्रवालेति च सप्तमी ॥ २
ज्योतिरसाञ्जना चैव तथैवाञ्जनमूलिका[1] । अङ्का स्फटिकसंज्ञा च चन्दना बर्बकेति च ॥ ३
बकुला पञ्चदशयुक्ता षोडशी च शिलाह्वया । सहस्रमाना चैकैकाप्यालोकान्ताच्च विस्तृता ॥ ४
इयं चित्रा ततो वज्रा वैडूर्या तु परा ततः । क्रमशोऽधःस्थिता एवं षोडशैता वसुधरा ॥ ५
सहस्राणामशीतिश्च बाहल्य चतुरुत्तरा । तत सप्तदशी भूमिः पङ्काद्या किल नामत ॥ ६

। ८४००० ।

ततोऽन्त्याष्टादशा भूमिर्बाहल्येन सहस्रिका । अशीतिगुणिता नाम्नाप्येषा चाब्बहुला[2] किल ॥ ७

। ८०००० ।

योजनानामधस्त्यक्त्वा सहस्रमवनाविह । स्थानानि सन्ति देवीना (?) प्रकीर्णानि समन्ततः ॥ ८
रत्नप्रभेति तेनेय भूरुक्ता गुणनामत । तिर्यग्लोकाश्रिते तस्या सहस्रे चित्रनामके ॥ ९
व्यन्तराणामसंख्येया आलया जन्मभूमय । संख्येयविस्तृता एव सर्वे ते चात्र भाषिताः ॥१०

विद्वान् मनुष्यो और देवोके द्वारा वन्दित ऐसे जिनेन्द्रोकी स्तुति करके हर्षसे प्राप्त हुए अमृतके समान अधोलोकके सक्षेपको कहता हू ॥ १ ॥ चित्रा, वज्रा, वैडूर्या, लोहिताक्षा, मसारकल्पा, गोमेदा, सातवी प्रवाला, ज्योतिरसा, अजना, अजनमूलिका, अका, स्फटिका, चन्दना, वर्बका, पन्द्रहवी बकुला और सोलहवी शिला नामकी, इन सोलह पृथिवियोमे एक एकका प्रमाण (बाहल्य) एक हजार योजन है। ये सब पृथिविया लोक पर्यन्त विस्तृत हैं ॥ २-४ ॥ यह सबसे ऊपर चित्रा पृथिवी स्थित है, उसके नीचे वज्रा, उसके नीचे वैडूर्या, इस प्रकारसे ये सोलह पृथिविया क्रमसे नीचे नीचे स्थित है ॥५॥ उनके नीचे सत्तरहवी पका नामकी पृथिवी स्थित है। उसका बाहल्य चौरासी हजार (८४०००) योजन प्रमाण है ॥ ६ ॥ उसके नीचे अन्तिम अब्बहुला नामकी अठारहवी पृथिवी है। उसका बाहल्य अस्सी हजार (८००००) योजन मात्र है ॥ ७ ॥

इस पृथिवीमे नीचे एक हजार (१०००) योजन छोडकर सब ओर देवियोके प्रकीर्णक स्थान हैं (?) ॥८॥ इसलिये इस पृथिवीका 'रत्नप्रभा' यह सार्थक नाम कहा गया है। तिर्यग्लोकके आश्रित एव एक हजार योजन मोटी चित्रा नामक पृथिवीके ऊपर व्यन्तर देवोके जन्मभूमिस्वरूप असख्यात भवन हैं। यहा वे सब सख्यात योजन विस्तृत कहे गये हैं ॥ ९-१० ॥ अठत्तर

---

१ आ प चूलिका । २ ब चावहुला ।

सहस्रैरष्टसप्तत्या युक्तलक्षकरुन्द्रके[1] । मध्ये रत्नप्रभायां स्युर्भावना भवनालया ।। ११

। १७८००० ।

असुरा नागनामानः सुपर्णा द्वीपसञ्ज्ञकाः । समुद्रास्तनिता विद्युद्दिगग्निपवनाह्वकाः ।। १२

भावना दशधा देवाः कुमारोत्तरनामकाः । भवनानां तु संख्यानं शास्त्रदृष्टं निशम्यताम् ।। १३

नियुतानां चतुःषष्टिरसुराणामुदाहृता । भवनान्यथ नागानामशीतिश्चतुरुत्तरा ।।१४

। ६४००००० । [८४०००००] ।

द्विसप्तति. सुपर्णाना नियुताना च लक्षयेत्[2] । नवतिः षट् च वातानां संख्यया भवनानि तु ।। १५

[७२०००००] । ९६००००० ।

शेषषण्णां च लक्षाणि प्रत्येक षट् च सप्तति. । सप्तकोट्यो द्विसप्ततिनियुता· सर्वसग्रहः ।। १६

। ७६००००० । [७७२००००००] ।

तावत्प्रमा जिनेन्द्राणामालयाः शुभदर्शनाः । सदा रत्नमया भान्ति भव्यानां मुक्तिहेतवः ।। १७

योजनासख्यकोटीश्च विस्तृतानि हि कानिचित् । संख्येययोजनानीति दृष्टान्युक्तानि चार्हता ।।१८

उक्त च द्वयम् [त्रि. सा. २२०, ·····]––

जोयणसंखासंखाकोडी तव्वित्थड तु चउरस्सा। तिसयं बहल मज्झ पडि सयतुगेक्ककूडं च ।।१

हजार सहित एक लाख (१७८०००) योजन विस्तार युक्त रत्नप्रभा पृथिवीके मध्य भागमे भवनवासियोके भवन है ।। ११ ।।

असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, दीपकुमार, उदधिकुमार, स्तनितकुमार, विद्युत्कुमार, दिक्कुमार, अग्निकुमार और पवन (वात) कुमार, ये दस प्रकारके भवनवासी देव है। इन सबके नामोके आगे 'कुमार' शब्दका प्रयोग किया जाता है। उनके भवनोकी जो सख्या शास्त्रमे देखी गई है उसे सुनिये ।। १२–१३ ।। ये भवन असुरकुमारोके चौंसठ (६४) लाख, नागकुमारोके चौरासी (८४) लाख, सुपर्णकुमारोके बहत्तर (७२) लाख, वातकुमारोके छ्यानवै (९६) लाख, तथा शेष छह कुमारोके वे छयत्तर (७६) लाख कहे गये है। इन सबकी समस्त सख्याका प्रमाण सात करोड बहत्तर लाख (७७२०००००) है ।। १४–१६ ।। इन भवनोमे उतने ही रत्नमय जिनेन्द्र देवोके आलय (जिनभवन) सदा शोभायमान रहते है। उनका दर्शन पुण्यबन्धक है। ये जिनभवन भव्य जीवोके लिये मुक्तिप्राप्तिके कारण हैं ।। १७ ।। उनमे कितने ही भवन असख्यात करोड योजन तथा कितने ही सख्यात योजन विस्तृत हैं, यह विस्तार अर्हन्त भगवान्के द्वारा प्रत्यक्ष देखकर कहा गया है ।। १८ ।। यहा दो गाथायें कही गई हैं––

उनका विस्तार जघन्यसे सख्यात करोड योजन और उत्कर्षसे असख्यात करोड योजन है। आकारमे वे समचतुष्कोण है। उनका बाहल्य तीन सौ (३००) योजन मात्र है। इनमेसे प्रत्येकके मध्यमे एक सौ (१००) योजन ऊचा एक एक कूट स्थित है [जिसके ऊपर चैत्यालय विराजमान है] ।। १ ।।

---

१ प लक्षण° । २ ब सुपर्णाणा तु लक्षयेत् ।

कूडुवरिं जिणगेहा अकट्टिमा पउमरायमणिकलसा। चउगोउरमणिसालत्तिवणधयमाला विराजंति ॥
चतुरस्राणि भास्वन्ति रत्नैरुन्मिषितानि च। घ्राणानन्दनगन्धानि नित्योद्द्योतशुभानि च ॥१९
सुगन्धकुसुमाच्छन्नरत्नभूम्युज्ज्वलानि च। अवलम्बितधामानि धूपस्रोतोवहानि च ॥२०
तुरुष्कागरुगोशीर्षपत्रकुङ्कुमगन्धितैः। उपस्थानसभाहर्म्यवासगेहैर्युतानि च ॥ २१
शब्दरूपरसस्पर्शगन्धैर्दिव्यमनोहरैः। भवनान्यतिपूर्णानि[1] भोगैर्नित्यमनःप्रियैः ॥ २२
अमलान्यरजस्कानि वरशय्यासनानि च। श्लक्ष्णानि नयनेष्टानि इहात्यनुपमानि च ॥२३
रत्नाभरणदीप्ताङ्गाः सततानङ्गसगिनः। अङ्गनाभिर्वराङ्गाभिर्मोदन्ते तेषु भावनाः ॥ २४
तत्राष्टगुणमैश्वर्यं स्वपूर्वतपसः फलम्। अव्याकुलमतिश्लाघ्यं प्राप्नुवन्त्यन्यदुर्लभम् ॥२५
असुरेन्द्रो हि चमरस्ततो वैरोचनोऽपि च। भूतानन्दश्च नागाना धरणानन्द एव च ॥ २६
वेणुदेव सुपर्णाना वेणुधारी च नामत। पूर्ण इन्द्रो वशिष्ठश्च द्वीपनाम्ना च भाषित ॥२७
जलप्रभः समुद्राणा जलकान्तश्च देवराट्। स्तनितानां पतिर्घोषो महाघोषश्च नामतः ॥२८
विद्युता हरिषेणश्च हरिकान्तश्च भाषितौ। दिशा चामितगत्याख्यो नाम्ना चामितवाहन. ॥२९
अग्नीन्द्रोऽग्निशिखो नाम्ना अग्निवाहन इत्यपि। वैलम्बो नाम वाताना द्वितीयश्च प्रभञ्जनः ॥३०

कूटोके ऊपर पद्मराग मणिमय कलशोसे सुशोभित, तथा चार गोपुर, तीन मणिमय प्राकार, वन, ध्वजाओ एव मालाओसे सयुक्त जिनगृह विराजते हैं ॥ २ ॥

भवनवासी देवोके वे भवन चतुष्कोण, रत्नोसे प्रकाशमान, विकसित, घ्राणेन्द्रियको आनन्दित करनेवाले गन्धसे सयुक्त, नित्य उद्योतसे शुभ, सुगन्धित कुसुमोसे व्याप्त ऐसी रत्नमय भूमियोसे उज्ज्वल, तेजका अवलम्बन करनेवाले, धूपके प्रवाहको धारण करनेवाले, तुरुष्क (लोभान), अगरु, गोशीर्ष, पत्र एव कुकुमसे सुवासित ऐसे उपस्थानो, सभाभवनो एव वासगृहोसे सयुक्त तथा दिव्य व मनोहर ऐसे शब्द, रूप, रस, स्पर्श और गन्धसे एव नित्य ही मनको मुदित करनेवाले भोगोसे परिपूर्ण हैं ॥ १९-२२ ॥ इन भवनोमे निर्मल, धूलिसे रहित, चिक्कण एव नेत्रोको सन्तुष्ट करनेवाली सर्वोत्कृष्ट शय्यायें और आसन सुशोभित है ॥ २३ ॥ उन भवनोमे रत्नमय आभरणोसे विभूषित शरीरसे सयुक्त और निरन्तर काममे आसक्त रहनेवाले वे भवनवासी देव सुन्दर शरीरवाली देवागनाओके साथ आनन्दको प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥ वहापर वे देव अपने पूर्वकृत तपके प्रभावसे उत्पन्न, निराकुल, अतिशय प्रशसनीय और दूसरोको दुर्लभ ऐसे अणिमा-महिमादि रूप आठ प्रकारके ऐश्वर्यको प्राप्त होते हैं ॥ २५ ॥

इनमे असुरकुमारोके इन्द्र चमर और वैरोचन, नागकुमारोके भूतानन्द और धरणानन्द, सुपर्णकुमारोके वेणुदेव और वेणुधारी, द्वीपकुमारोके पूर्ण और वशिष्ठ इन्द्र, उदधिकुमारोके जलप्रभ और जलकान्त इन्द्र, स्तनितकुमारोके अधिपति घोष और महाघोष, विद्युत्कुमारोके हरिषेण और हरिकान्त, दिक्कुमारोके अमितगति और अमितवाहन, अग्निकुमारोके अग्निशिख और अग्निवाहन तथा वातकुमारोके वैलम्ब और दूसरा प्रभजन, इस प्रकार उन दस प्रकारके

१ प ब पूर्वानि।

दश पूर्वोदिता येषामिन्द्रा ये स्युर्द्वयोर्द्वयोः । दिशि ते दक्षिणस्यां च शेषास्तिष्ठन्ति चोत्तरे ।।३१
चमरस्य चतुस्त्रिंश[त्त्रिंश]द्वैरोचनस्य तु । नियुतानामिति ज्ञेयं भवनानि प्रमाणतः ।। ३२
भूतानन्दस्य लक्षाणां चत्वारिंशच्चतुर्युता । भवनानि धरणस्यैव चत्वारिंशद्भवन्ति च ।।३३
त्रिंशदष्टौ च वेणोः स्युश्चतुस्त्रिंशत्तु धारिणः । चत्वरिंशच्च पूर्णस्य वशिष्ठे षट्कृति[1] भजेत् ।।३४
जलप्रभश्च घोषश्च हरिषेणोऽमितालयः । तुल्या अग्निशिखाश्चैते पूर्णस्येव प्रसख्यया ।। ३५

। ४०००००० ।

जलकान्तो महाघोषो हरिकान्तोऽमितवाहनः । वशिष्ठेन समा एते पञ्चमश्चाग्निवाहनः ।।३६

। ३६००००० ।

वैलम्बनस्य पञ्चाशत् षट्चत्वारिंशदेव च । प्रभञ्जनस्य वेद्यानि नियुतानीह संख्यया ।।३७

। ५०००००० । ४६००००० ।

विंशतिर्भवनेन्द्राणा उपेन्द्रा अपि विंशतिः । यौवराज्येन तेनैव यान्त्यन्त जीवितस्य ते ।।३८

अत्रोपयोगिन्यस्त्रिलोकप्रज्ञप्तिगाथाः [३, ६३-६८] —

एक्केक्केसिं इंदे परिवारसुरा हवंति दसभेया । पडिइंदा तेत्तीसं तिदसा सामाणिया दिसाइंदा ।।३
तणुरक्खा तिप्परिसा सत्ताणीया पइण्णगभियोगा । किब्भिसया इदि कमसो पवण्णिदा इंदपरिवारा ।।
इदा रायसरिच्छा जुवरायसमा हवंति पडिइदा । पुत्तणिहा तेत्तीस तिदसा सामाणिया कलत्त वा ।।५

भवनवासियोमे ये दो दो इन्द्र है। इन दो दो इन्द्रोमे जिन (चमर व भूतानन्द आदि) दस इन्द्रोका पूर्वमे निर्देश किया गया है वे दक्षिण दिशामे तथा शेष (वैरोचन व धरणानन्द आदि) दस इन्द्र उत्तर दिशामे स्थित हैं।। २६-३१ ।।

उक्त बीस इन्द्रोमेसे चमरेन्द्रके चौंतीस (३४) लाख और वैरोचनके तीस (३०) लाख प्रमाण भवन जानना चाहिये। भूतानन्दके चवालीस (४४) लाख और धरणानन्दके चालीस (४०) लाख ही भवन हैं। वेणुके अडतीस (३८) लाख और वेणुधारीके चौंतीस (३४) लाख, पूर्णके चालीस (४०) लाख और वशिष्ठके छहके वर्ग अर्थात् छत्तीस ($६ \times ६ = ३६$) लाख, जलप्रभ, घोष, हरिषेण, अमित और अग्निशिख इनमेसे प्रत्येकके सख्यामे पूर्ण इन्द्रके समान चालीस चालीस लाख (४००००००), जलकान्त, महाघोष, हरिकान्त, अमितवाहन और पाचवा अग्निवाहन, इनमेसे प्रत्येकके वशिष्ठके समान छत्तीस छत्तीस (३६०००००) लाख तथा वैलम्बके पचास लाख (५००००००) और प्रभजनके छयालीस लाख (४६०००००) संख्या प्रमाण भवन जानना चाहिये ।। ३२-३७ ।। उपर्युक्त बीस भवनवासी इन्द्रोके बीस उपेन्द्र भी होते है। वे उनके युवराजके समान होते हुए जीवितके अन्त अर्थात् मरणको प्राप्त होते है ।। ३८ ।। यहा त्रिलोकप्रज्ञप्तिकी उपयोगी गाथाये —

एक एक इन्द्रके दस प्रकारके परिवार देव होते है – प्रतीन्द्र, त्रायस्त्रिंश देव, सामानिक, दिशाइन्द्र (लोकपाल), तनुरक्ष (आत्मरक्ष), तीन पारिषद, सात अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषिक, ये क्रमसे इन्द्रके परिवार देव कहे गये हैं। इनमे इन्द्र राजाके सदृश, प्रतीन्द्र युवराजके समान, त्रायस्त्रिंश देव पुत्रके सदृश, सामानिक देव पत्नीके समान, चार

१ आ प वशिष्ठत्वट°।

चत्तारि लोयवाला सारिच्छा होंति ततवालाण । तणुरक्खाण समाणा सरीररक्खा सुरा सव्वे ॥६
बाहिरमज्झब्भंतरतडयसरिसा हवंति तिप्परिसा । सेणोवमा अणीया पइण्णया[1] पुरजणसरिच्छा ॥
परिवारसमाणा ते अभियोगसुरा हवन्ति किब्भिसया । पाणोवमाणधारी[2] देवाण णिदसणा एव ॥८
सामानिकसहस्राणि चतुःषष्टिर्भवन्ति हि । [3]चमरस्योत्तरस्यापि तेषा षष्टिरुदाहृता ॥३९

। च ६४००० । वै ६०००० ।

भूतानन्दस्य पञ्चाशत्सहस्राणि पुनश्च षट् । पञ्चाशदेव शेषाणा प्रत्येकमिति वर्ण्यते ॥४०

। भू ५६००० । शे ५०००० ।

त्रायस्त्रिंशाः सुरास्तेषां त्र्यधिका त्रिंशदेकश । चत्वारो लोकपालाश्च प्रत्येक ते च दिग्गताः ॥४१
षट्पञ्चाशत्सहस्राणि चमरे नियुतद्वयम् । चत्वारिंशत्सहस्राणि नियुते द्वे परस्य च ॥४२

। च २५६००० । वै २४०००० ।

चतुर्विंशतिसहस्राणि भूतानन्दस्य लक्षक- । द्वितय[4] चात्मरक्षाश्च शेषाणा नियुतद्वयम् ॥४३

। भू २२४००० । शे २००००० ।

चमरस्य सहस्रं स्यादष्टाविंशतिताडितम् । षड्विंशत्येतरस्यापि भूतानन्दस्य षड्गुणम् ॥४४
चतुर्गुण तु शेषाणा [5]परिषद्यान्तराश्रिता । द्वाभ्या द्वाभ्या सहस्राभ्यामधिका मध्यमान्तिमा ॥४५

अ च २८००० । वै २६००० । भू ६००० । शे ४००० । म च ३०००० । वै २८००० ।
भू ८००० । शे ६००० । बा च ३२००० । वै ३०००० । भू १०००० । शे ८००० ।

लोकपाल कोतवालोके सदृश, सब तनुरक्ष देव अगरक्षकोके समान, तीन पारिषद बाह्य, मध्य और अभ्यन्तर समितिके सदस्योके समान, अनीक देव सेनाके सदृश, प्रकीर्णक पुरवासी (प्रजा) जनोके सदृश, आभियोग्य देव परिचारक(दास)के सदृश, और किल्विषिक देव चाण्डालके सदृश होते है। इस प्रकार उपर्युक्त देवपरिवारोके लिये ये लौकिक दृष्टान्त है ॥३-८॥

सामानिक देव चमरेन्द्रके चौंसठ हजार (६४०००) तथा उत्तर इन्द्र(वैरोचन)के साठ हजार (६००००) कहे गये हैं ॥ ३९ ॥ ये देव भूतानन्दके पचास और छह अर्थात् छप्पन हजार (५६०००) तथा शेष सत्तरह इन्द्रोमे प्रत्येकके पचास हजार (५००००)ही कहे जाते हैं ॥४०॥ उपर्युक्त बीस इन्द्रोमेसे प्रत्येकके त्रायस्त्रिंश देव तेतीस तथा लोकपाल चार होते हैं और वे एक एक दिशामे स्थित होते है ॥४१॥ आत्मरक्ष देव चमरेन्द्रके दो लाख छप्पन हजार (२५६०००), वैरोचनके दो लाख चालीस हजार (२४००००),भूतानन्दके दो लाख चौबीस हजार(२२४०००) तथा शेष सत्तरह इन्द्रोके दो दो लाख (२०००००) होते है ॥४२-४३॥ पारिषदोमे अभ्यन्तर परिषद्के आश्रित देव चमरेन्द्रके अट्ठाईस हजार (२८०००), वैरोचनके छब्बीस हजार (२६०००), भूतानन्दके छह हजार (६०००), तथा शेष सत्तरहके चार चार हजार(४०००) होते हैं। मध्यम परिषद्के आश्रित वे देव इनसे क्रमश दो हजार अधिक (३००००,

---

१ आ प परिण्णया । २ ब 'दारी । ३ आ प चरम' । ४ प द्वितीय । ५ प परिष्या' ।

जतुश्चन्द्रा च समिता बाह्यमध्यान्तराश्रिताः । संज्ञाः परिषदामेता[1] याथासंख्येन भाषिताः ॥४६
सप्तैव च स्युरानीकाः सप्तकक्षाः पृथक् पृथक् । स्वसामानिकतुल्यः स्यात्प्रथमो द्विगुण आन्तिमात्[2] ॥
असुरस्य लुलापाश्वरथदन्तिपदातिक- । गन्धर्वनर्तनानीका सप्तेत्येते भवन्ति च ॥ ४८॥
एषा महत्तराः षट् च प्रोक्ता एका महत्तरी । शेषेषु प्रथमानीका. क्रमान्नौताक्ष्यवारणाः ॥ ४९
मकर. खड्गी च करभो मृगारिशिबिकाश्वकाः । शेषानीकाश्च [3]पूर्वोक्तवद्भवन्तीति निश्चिता ॥
पदमात्रगुणसवर्गगुणितादिर्मुखोनकः । रूपोनकगुणाप्तश्च गुणसकलितं भवेत् ॥ ५१

चमरस्यैकानीकाः	८१२८००० ।	समस्तानीका ५६८९६००० ।
वैरोचनस्यैकानीका.	७६२०००० ।	समस्तानीकाः ५३३४०००० ।
भूतानन्दस्य एकानीकाः	७११२००० ।	समस्तानीका. ४९७८४००० ।
शेषस्य एकानीकाः	६३५०००० ।	समस्तानीकाः ४४४५०००० ।

२८०००, ८०००, ६०००), तथा इनसे भी दो हजार अधिक (३२०००, ३००००, १००००, ८०००) वे देव बाह्य परिषद्के आश्रित होते है ॥ ४४-४५ ॥

उन तीन परिषदोमेसे बाह्य, मध्यम और अभ्यन्तर परिषदकी यथाक्रमसे जतु, चन्द्रा और समिता ये सज्ञायें कही गई हैं ॥ ४६ ॥

अनीक देव सात ही होते हैं । उनमे अलग अलग सात कक्षायें होती है । उनमेसे प्रथम कक्षामे सख्याकी अपेक्षा अपने सामानिक देवोके बराबर देव रहते है, आगे वे अन्तिम कक्षा तक उत्तरोत्तर दूने दूने होते गये है ॥ ४७॥ असुर जातिके देवोमे महिष, अश्व, रथ, हाथी, पादचारी, गन्धर्व और नर्तक ये सात अनीक देव होते हैं । इनमे छह महत्तर और एक महत्तरी कही गई है। शेष नौ भवनवासी देवोमे क्रमसे नाव, गरुड पक्षी, हाथी, मगर, खड्गी, ऊट, सिंह, शिविक (गेंडा) और अश्व ये प्रथम अनीक देव तथा शेष (द्वितीय आदि)अनीक देव पूर्वोक्त अनीकोके ही समान होते है, यह निश्चित समझना चाहिये ॥ ४८-५० ॥

गच्छ प्रमाण गुणकारोको परस्पर गुणित करके प्राप्त राशिसे आदि (मुख) को गुणित करनेपर जो सख्या प्राप्त हो उसमेसे मुखको कम करके शेषमे एक कम गुणकारका भाग देनेपर गुणसकलनका प्रमाण होता है ॥ ५१ ॥

उदाहरण-- प्रकृतमे गच्छका प्रमाण ७, गुणकारका प्रमाण २, और मुखका प्रमाण ६४००० है । अत एव इस गणितसूत्रके अनुसार (२×२×२×२×२×२×२)×६४०००-६४०००-(२-१)=८१२८०००, इतना चमरेन्द्रकी सातो कक्षाओके महिष आदि ७ अनीकोमेसे एक एकका प्रमाण होता है । इसे ७ से गुणा कर देनेपर उसकी सातो अनीकोका समस्त प्रमाण इतना होता है- ८१२८०००×७=५६८९६००० । वैरोचनकी एक अनीक ७६२०००० समस्त अनीक ५३३४०००० । भूतानन्दकी एक अनीक ७११२०००, समस्त अनीक ४९७८४०००, शेष इन्द्रोकी एक अनीक ६३५००००, समस्त अनीक ४४४५०००० ।

१ ब प परिषधा । २ प अन्तिमात् । ३ ब प पूर्वोक्ता ।

प्रकीर्णकादिसख्यान सर्वेष्विन्द्रेषु यद्भवेत् । तत्सख्यानोपदेशश्च नष्टः कालवशादिह ॥ ५२
षट्पञ्चाशत्सहस्राणि चमरस्य वरस्त्रियः। षोडशात्र सहस्राणि तस्य वल्लभिका मता ॥ ५३
कृष्णा सुमेघनामा च सुकाख्या च सुकाढचया। रत्निका च महादेव्यः पञ्चैताश्चमरस्य च ॥ ५४
एकोनाष्टसहस्राणि पृथक् ताश्च विकुर्वते । वैरोचनस्य चेन्द्रस्य तथा तावत्य एव च ॥ ५५
पद्मदेवी महापद्मा पद्मश्रीः कनकश्रिया । युक्ता कनकमाला च महादेव्योऽस्य पञ्च च ॥ ५६
नागाना च सहस्राणि पञ्चाशत्प्रवरस्त्रियः । दश तासु सहस्राणि मता वल्लभिकाङ्गनाः ॥ ५७
सुपर्णाना सहस्राणा चत्वारिंशच्चतुर्युता । योषितस्तासु चत्वारि सहस्राणि प्रियाङ्गनाः ॥ ५८
द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशत्सहस्राणि च योषिताम् । शेषाणा च सहस्रे द्वे द्वेऽत्र वल्लभिकाङ्गनाः ॥ ५९
पञ्च पञ्चाग्रदेव्यश्च विक्रियाः पूर्ववन्मता. । शेषाणा च रूपोनषट्सहस्रं विकुर्वते ॥ ६०

। ५९९९ ।

पञ्च चत्वारि च त्रीणि पञ्चाशद्घ्नानि योषिताम् । चमरे पारिषद्यानामासन्नादिक्रमाच्च ताः ॥६१

। २५० । २०० । १५० ।

पञ्चाशद्घ्नानि षट् पञ्च चत्वार्येव परस्य च । नागाना द्विशतं षष्टि-चत्वारिंशद्युतं शतम् ॥६२

३०० । २५० । २०० । २०० । १६० । १४० ।

सब इन्द्रोमे प्रकीर्णक आदि देवोकी जितनी सख्या है उस सख्याका उपदेश कालवश यहा नष्ट हो चुका है ॥ ५२ ॥

चमरेन्द्रके छप्पन हजार (५६०००) उत्तम देविया होती हैं । इनमेंसे सोलह हजार उसकी वल्लभायें मानी गई हैं ॥ ५३ ॥ कृष्णा, सुमेघा, सुका, सुकाढया और रत्निका ये पाच चमरेन्द्रकी महादेवी मानी गई हैं ॥ ५४ ॥ वे देविया एक कम आठ हजार (७९९९) रूपोकी पृथक् विक्रिया करती हैं। उतनी (५६०००) ही देविया वैरोचन इन्द्रके भी हैं ॥ ५५ ॥ इस वैरोचन इन्द्रकी पाच महादेवियोके नाम ये हैं– पद्मादेवी, महापद्मा, पद्मश्री, कनकश्री और कनकमाला ॥ ५६ ॥

नागकुमारोके इन्द्रो (भूतानन्द और धरणानन्द) के पचास हजार (५००००) उत्तम देवागनायें हैं, उनमे दस हजार (१००००) देविया वल्लभा मानी गई हैं ॥ ५७ ॥ सुपर्णकुमारेन्द्रो (वेणु और वेणुधारी)के चवालीस हजार (४४०००)देवागनायें हैं, उनमे चार हजार (४०००) वल्लभाये हैं ॥ ५८ ॥ शेष (पूर्ण और वशिष्ठ आदि) इन्द्रोके बत्तीस हजार बत्तीस हजार(३२०००–३२०००) देवागनायें हैं, इनमेसे दो दो हजार (२०००–२०००) वल्लभायें है ॥ ५९ ॥ शेष इन्द्रोके विक्रियाको करनेवाली अग्रदेविया पूर्वके समान पाच पाच मानी गई हैं वे एक कम छह हजार (५९९९) रूपोकी विक्रिया करती हैं ॥ ६० ॥

वे देविया चमरेन्द्रके पारिषद देवोके अभ्यन्तर परिषद् आदिके क्रमसे पचाससे गुणित पाच, चार और तीन अर्थात् अढाई सौ (५०×५=२५०), दो सौ (५०×४) और डेढ सौ (५०×३)हैं— अभ्यन्तर पारिषद २५०, मध्यम पा २००, बाह्य पा १५० ॥६१॥ वे देविया द्वितीय वैरोचन इन्द्रके पारिषदोके यथाक्रमसे पचास गुणित छह (३००), पाच (२५०) और

गरुडानां षष्टिसंयुक्त चत्वारिंशद्युतं पुनः। सविंशतिशतं परिषद्देवीनां च यथाक्रमम् ॥ ६३

१६० । १४० । १२० ।

चत्वारिंशद्युतं विंशयुत शुद्ध शत भवेत् । द्वीपादीनां च शेषाणा परिषत्सुरयोषिताम् ॥ ६४

१४० । १२० । १०० ।

सेनामहत्तराणा च देव्यश्चात्मरक्षिणाम् । पृथक् पृथक् शत सेनासुराणां च तदर्धकम् ॥६५
प्रकीर्णकत्रयस्यापि जिनदृष्टप्रमाणकाः । देव्यः सर्वनिकृष्टाना द्वात्रिंशदिति भाषिताः ॥ ६६
प्रधानपरिवारा· स्युरिन्द्राणामिमे सुरा· । अप्रधानपरीवाराः संख्यातीतान्यनिर्जरा· ॥ ६७
सामानिकप्रतीन्द्रेषु त्रायस्त्रिंशाह्वकेषु च । विक्रियापरिवारार्धिस्थितयः पतिभिः समाः ॥ ६८
सर्वे कायप्रवीचारा इन्द्राः केवलयाज्ञया । छत्रसिंहासनाभ्या च चामरैरपि चाधिकाः ॥ ६९
चमरे सागरायुः स्यात्पक्षादुच्छ्वसनं भवेत् । समासहस्रेणाहारश्चान्यस्मिन्नधिकं त्रयम् ॥ ७०
भूतानन्दे त्रिपल्यायुर्धरणस्य तु साधिकम् । सुपर्णद्वीपसंज्ञाना द्विपल्यं सार्धसाधिकम् ५/२ ॥ ७१
सार्धेन द्वादशाह्वेन आहारश्चोपतिष्ठते । तावन्मुहूर्तैरुच्छ्वासस्तेषां खल्वपि जायते ॥ ७२

चार (२००) मात्र है। उक्त देविया नागेन्द्रोके पारिषदोके पूर्वोक्त क्रमसे दो सौ (२००), एक सौ साठ (१६०) और एक सौ चालीस (१४०) हैं ॥ ६२ ॥ गरुडेन्द्रोके पारिषदोके वे देविया यथाक्रमसे एक सौ साठ (१६०), एक सौ चालीस (१४०) और एक सौ बीस (१२०) हैं ॥ ६३ ॥ शेष द्वीपकुमारेन्द्रादिकोमे प्रत्येकके पारिषद देवोके वे देविया क्रमश एक सौ चालीस (१४०), एक सौ बीस (१२०) और केवल सौ (१००) मात्र हैं ॥ ६४ ॥

वे देविया सेनामहत्तरोके और आत्मरक्षक देवोके पृथक् पृथक् सौ (१००)तथा अनीक देवोके उनसे आधी (५०) है ॥ ६५॥ शेप प्रकीर्णक आदि तीन प्रकारके देवोके जिन भगवान्के द्वारा देखी गई सख्या प्रमाण देविया होती हैं [अभिप्राय यह कि उनकी सख्याके प्रमाणका प्ररूपक उपदेश इस समय उपलब्ध नही है] । सबसे निकृष्ट देवोके बत्तीस (३२) देविया कही गई हैं ॥ ६६ ॥

उपर्युक्त ये सामानिक आदि देव इन्द्रोके प्रधान परिवारस्वरूप है । उनके अप्रधान परिवारस्वरूप अन्य देव असख्यात हैं ॥ ६७ ॥

सामानिक, प्रतीन्द्र और त्रायस्त्रिश नामक देवोमे विक्रिया, परिवार, ऋद्धि और आयु-स्थिति अपने अपने इन्द्रोके समान होती है ॥६८॥ ये सब देव कायप्रवीचारसे सहित है । इन्द्र उन सामानिक आदि देवोकी अपेक्षा केवल आज्ञा, छत्र, सिंहासन और चामरोसे अधिक होते है॥६९॥

चमरेन्द्रकी उत्कृष्ट आयु एक सागरोपम प्रमाण होती है । उसके पक्ष (१५ दिन) मे एक वार उच्छ्वास और एक हजार वर्षमे आहारग्रहण होता है । वैरोचन इन्द्रकी आयु आदि उन तीनका प्रमाण चमरेन्द्रकी अपेक्षा कुछ अधिक होता है ॥ ७० ॥ भूतानन्दकी उत्कृष्ट आयु तीन पल्योपम प्रमाण तथा धरणानन्दकी उससे कुछ अधिक होती है । सुपर्ण और द्वीपकुमारोके इन्द्रोकी वह आयु अढाई (५/२) पल्योपम प्रमाण होती है । उनमे वेणुधारी और वशिष्ठकी आयु वेणु और पूर्ण इन्द्रसे कुछ अधिक होती है ॥ ७१ ॥ वे साढे वारह दिनमे आहार ग्रहण करते हैं।

समुद्रविद्युतस्तनिता द्विपल्याधिकजीविन· । द्वादशाह्वेन चाहार. श्वासस्तावन्मुहूर्तकै· ॥ ७३
दिगग्निवातसज्ञानां पल्यं सार्धं च साधिकम् । सार्धसप्तदिनैर्भुक्ति. श्वासस्तावन्मुहूर्तकै. ॥ ७४
त्रायस्त्रिशत्प्रतीन्द्राणा सामानिकदिवौकसाम् । आयुराहारकोच्छ्वासा. स्वै स्वैरिन्द्रै. समा खलु ॥ ७५

उक्तं च द्वयम् [त्रि सा २४१-४२]-

असुरचउक्के सेसे उवही पल्लत्तय दलूणकम[1] । उत्तरइदाणहिय सरिस इदादिपचण्ह ॥ ९

सा १ । प ३ । प $\frac{5}{2}$ । प २ । प $\frac{3}{2}$ ।

आऊपरिवारिड्ढीविक्किरियाहि पडिदयाइचऊ । सगसगइदेहि समा दहरच्छत्तादिसजुत्ता ॥ १०

सार्धद्विपल्यमायुष्य चमरस्य तु योषिताम् । पल्यत्रय परस्यापि भोगिना पल्यकाष्टम· $\frac{1}{8}$ ॥ ७६
पूर्वकोटित्रय चायु सुपर्णेन्द्राङ्गनास्वपि । द्वीपादिशेषकेन्द्राणा वर्षकोटित्रय भवेत् ॥ ७७
सेनामहत्तराणा च चमरस्यात्मरक्षिणाम् । पल्यमायुस्तदर्धं स्याद्वाहनानीकवासिनाम् ॥ ७८

१ । $\frac{1}{2}$ ।

वैरोचनेऽधिक तच्च तत्स्थाने भोगिना पुन· । जीवित पूर्वकोटिश्च वर्षकोटि: क्रमाद्भवेत् ॥ ७९

तथा उतने (१२$\frac{1}{2}$) ही मुहूर्तोमे उच्छ्वास भी लेते हैं ॥ ७२ ॥ उदधिकुमार, विद्युत्कुमार और स्तनितकुमार देवोमे दक्षिण इन्द्रोकी आयु दो पल्य और उत्तर इन्द्रोकी उससे कुछ अधिक होती है। वे बारह दिनोमे आहार ग्रहण करते हैं तथा उतने (१२) ही मुहूर्तोमे उच्छ्वास लेते है ॥७३॥ दिक्कुमार, अग्निकुमार और वायुकुमार देवोमे दक्षिण इन्द्रोकी आयु डेढ पल्य और उत्तर इन्द्रोकी उससे कुछ अधिक होती है। वे साढे सात (७$\frac{1}{2}$) दिनोमे आहार ग्रहण करते हैं तथा उतने (७$\frac{1}{2}$) ही मुहूर्तोमे उच्छ्वास लेते हैं ॥ ७४ ॥

त्रायस्त्रिश, प्रतीन्द्र और सामानिक देवोकी आयु, आहारग्रहण एव उच्छ्वासका काल अपने अपने इन्द्रोके समान है ॥ ७ ५ ॥ यहा दो गाथायें कही गई हैं—

असुरकुमार आदि चार तथा शेप छह भवनवासी देवोकी आयु क्रमश एक सागर तीन पल्य तथा आगे आधे पल्यसे कम होती गई है – असुर १ सागर, नागकुमार ३ पल्य, सुपर्ण २$\frac{1}{2}$ प, द्वीप २ प, शेष १$\frac{1}{2}$ प । उत्तर इन्द्रोकी आयु दक्षिण इन्द्रोकी अपेक्षा कुछ अधिक होती है। यह आयुका प्रमाण इन्द्रादिक पाचके समान रूपमे होता है । प्रतीन्द्र आदि चार प्रकारके देव आयु, परिवार, ऋद्धि तथा विक्रियामे अपने अपने इन्द्रोके समान होते हैं। इनके छत्र आदि इन्द्रोकी अपेक्षा कुछ हीन होते हैं ॥९-१०॥

चमरेन्द्रकी देवियोकी आयु अढाई (२$\frac{1}{2}$) पल्य, वैरोचन इन्द्रकी देवियोकी तीन (३) पल्य, नागकुमार देवियोकी आयु पल्यके आठवे भाग ($\frac{1}{8}$), सुपर्णकुमार इन्द्रोकी देवागनाओकी वह आयु तीन पूर्वकोटि, तथा द्वीपकुमार आदि शेष इन्द्रोकी देवियोकी आयु तीन करोड (३०००००००) वर्ष प्रमाण होती है ॥ ७६-७७ ॥

चमरेन्द्रके सेनामहत्तरो और आत्मरक्षकोकी आयु एक पल्य प्रमाण तथा वाहन एव अनीक देवोकी आयु उससे आधी ($\frac{1}{2}$ पल्य) होती है ॥ ७८ ॥ इनसे वैरोचन इन्द्रके इन देवोकी आयु कुछ अधिक होती है। नागकुमार इन्द्रोके इन देवोकी आयु क्रमसे एक पूर्वकोटि

---

[1] आ प पलूणकम ।

सुपर्णाना च तत्स्थाने वर्षकोटिश्च जीवितम् । वर्षलक्षं च शेषाणा नियुत नियुतार्धकम् ॥ ८०
चमरेऽभ्यन्तरादीना पारिषद्यदिवौकसाम् । सार्धद्विपल्यक पल्यद्विक सार्धैकपल्यकम् ॥ ८१
$\frac{५}{२}$ । २ । $\frac{३}{२}$ ।
वैरोचने त्रिपल्य च क्रमादर्धार्धहीनकम् । पल्याष्टमश्च नागाना तदर्धं स्यात्तदर्धकम् ॥ ८२
३ । $\frac{५}{२}$ । २ । $\frac{१}{८}$ । $\frac{१}{१६}$ ।
गरुडेषु पूर्वकोटीना त्रय द्वितयमेककम् । शेषेषु वर्षकोटीना त्रिक च द्विकमेककम् ॥ ८३
असुराणां तनूत्सेधश्चापाना पञ्चविंशतिः । शेषाणा च कुमाराणां दश दण्डा भवन्ति च ॥ ८४
इन्द्राणां भवनस्थानि अर्हदायतनानि च । विंशतिर्नैषधैश्चैत्यैर्भाषितानि समानि च ॥ ८५
अश्वत्थ. सप्तपर्णश्च शाल्मलिश्च क्रमेण तु । जम्बूर्वेतसनामा च कदम्बप्रियकोऽपि च ॥ ८६
शिरीषश्च पलाशश्च कृतमालश्च पश्चिम । असुरादिकुमाराणामेते स्युश्चैत्यपादपा. ॥ ८७
मूले च चैत्यवृक्षाणां प्रत्येक च चतुर्दिशम् । जिनार्चाः पञ्च राजन्ते पर्यङ्कासनमास्थिताः ॥ ८८
विंशती रत्नसुस्तम्भाश्चैत्यैस्ते समपीठिकाः । प्रत्येकं प्रतिमाः सप्त स्थितास्तेषु चतुर्गुणा' ॥ ८९
उक्तं च [ ]–
ककुभं प्रति मूर्धस्थसप्तार्हद्बिम्बशोभितः । तुङ्गा रत्नमया मानस्तम्भा पञ्च दिश प्रति ॥ ११

और एक करोड वर्ष प्रमाण होती है ॥ ७९ ॥ सुपर्णकुमार इन्द्रोके उक्त देवोकी आयु एक करोड़ वर्ष व एक लाख वर्ष तथा शेष इन्द्रोके इन देवोकी आयु एक लाख और अर्ध लाख वर्ष प्रमाण होती है ॥ ८० ॥

चमरेन्द्रके अभ्यन्तर आदि पारिषद देवोकी आयु क्रमसे अढाई पल्य, दो पल्य और डेढ पल्य ($\frac{५}{२}$, २, $\frac{३}{२}$) प्रमाण होती है ॥ ८१ ॥ वैरोचन इन्द्रके उन देवोकी आयु क्रमसे तीन पल्य, अढाई पल्य और दो (३, $\frac{५}{२}$, २) पल्य मात्र होती है। नागकुमारोके इन देवोकी आयु क्रमसे पल्यके आठवे भाग ($\frac{१}{८}$), इससे आधी ($\frac{१}{१६}$ पल्य) और उससे भी आधी ($\frac{१}{३२}$ पल्य) होती है ॥ ८२ ॥ गरुडकुमारेन्द्रोमे उक्त देवोकी आयु क्रमसे तीन पूर्वकोटि, दो पूर्वकोटि और एक पूर्वकोटि मात्र होती है। शेष इन्द्रोके इन देवोकी आयु तीन करोड वर्ष, दो करोड वर्ष और एक करोड वर्ष मात्र होती है ॥ ८३ ॥

असुरकुमारोके शरीरकी ऊचाई पच्चीस (२५) धनुष और शेष कुमार देवोके शरीरकी ऊचाई दस (१०) धनुष मात्र होती है ॥ ८४ ॥

इन्द्रोके भवनोमे स्थित जिनभवनोकी सख्या बीस (२०) है। ये जिनभवन प्रमाण आदिमे निषधपर्वतस्थ जिनभवनोके समान कहे गये हैं ॥ ८५ ॥

अश्वत्थ, सप्तपर्ण, शाल्मलि, जामुन, वेतस, कदम्ब, प्रियक (प्रियगु), शिरीष, पलाश और अन्तिम कृतमाल (राजद्रुम), ये यथाक्रमसे उन असुरकुमारादि भवनवासी देवोके चैत्यवृक्ष है ॥ ८६–८७ ॥ इन चैत्यवृक्षोमेसे प्रत्येकके मूलमे चारो दिशाओमेसे प्रत्येक दिशामे पर्यंक आसनसे स्थित पाच जिनप्रतिमाये विराजमान हैं ॥ ८८ ॥ वहा रत्नमय सुन्दर बीस स्तम्भ है। वे प्रतिमाओके पीठके समान पीठसे सयुक्त है। उनमेसे प्रत्येकके ऊपर चतुर्गुणित सात अर्थात् अट्ठाईस प्रतिमाये स्थित है ॥ ८९ ॥ कहा भी है –

प्रत्येक दिशामे शिरके ऊपर स्थित सात जिनबिम्बोसे शोभायमान रत्नमय पाच ऊचे मानस्तम्भ है ॥ ११ ॥

चिह्नं चूडामणिर्मौलौ स्फटामकुटमेव च । गरुडश्च गजश्चैव मकरो वर्धमानकः ॥ ९०
वज्रं सिंहश्च कलशो मकुटं चाश्वचिह्नकम् । क्रमेण भावनेन्द्राणामथ चैत्यद्रुमा ध्वजाः ॥ ९१
प्रकृत्या प्रेम नास्त्येव शक्रस्य चमरस्य च । ईशानवैरोचनयोस्तथा प्रेमविपर्ययः ॥९२
भूतानन्दस्य वेणोश्च अक्षमा तु स्वभावत । धारिणो[1] धरणस्यापि[2] तथा प्रेमविपर्ययः ॥ ९३
सहस्रमवगाह्याधो व[्या]नान्तरसुरालया. । आलोकान्ताद् गता वेद्या द्विसहस्रेऽल्पभावनाः ॥ ९४

। १००० ।

द्विचत्वारिंशत गत्वा सहस्राणामित. परम् । महर्द्धिभावना देवास्तत्र तिष्ठन्ति सर्वत. ॥ ९५

। ४२००० ।

योजनानामितो गत्वा नियुतं भावनालयाः । ततोऽतीत्य सहस्रं च तत्राद्या नरकालयाः ॥ ९६

। १००००० ।

रत्नकूटकमध्यानि सर्वरत्नमयानि च । त्रिशतोच्चानि रम्याणि भवनान्यैन्द्रकाणि च ॥ ९७
असुराणा गतिश्चोर्ध्वमैशानात्खलु कल्पत । बिन्दुमात्रमिदं शेष ग्राह्य लोकानुयोगतः ॥ ९८

ऋद्धिर्दिव्या सततरम्या भवनानामात्तै[3] पुण्यैर्हस्तगतैषा मनुजानाम् ।
एव मत्वा साधु चरन्तश्चरितानि रंरम्यन्ते मत्तमयूरा इव तेषु ॥ ९९

इति लोकविभागे भवनवासिकलोकविभागो नाम सप्तम प्रकरण समाप्तम् ॥७॥

मुकुटमे चूडामणि, फणायुक्त मुकुट (सर्प), गरुड, हाथी, मगर, वर्धमानक, वज्र, सिंह, कलश और अश्वसे चिह्नित मुकुट ये क्रमसे उन भवनवासी इन्द्रोके मुकुटमे चिह्न होते हैं। उनके चिह्न चैत्यवृक्ष या ध्वजाये होते है ॥ ९०-९१ ॥

सौधर्म इन्द्र और चमरेन्द्रके परस्पर स्वभावसे ही प्रेम नही है। ईशानेन्द्र और वैरोचन इन्द्रके भी प्रेमविपर्यय अर्थात् परस्पर ईर्षाभाव होता है। भूतानन्द और वेणु इन्द्रोके स्वभावसे विद्वेष होता है। उसी प्रकार वेणुधारी और धरणानन्द इन्द्रोमे भी परस्पर प्रेमकी विपरीतता (विद्वेष) देखी जाती है ॥ ९२-९३ ॥

चित्रा पृथिवीसे नीचे एक हजार (१०००) योजन जाकर लोक पर्यन्त व्यन्तर देवोके आश्चर्यजनक भवन स्थित जानना चाहिये। अल्पर्द्धिक भवनवासी देवोके भवन उससे दो हजार (२०००) योजन नीचे जाकर अवस्थित है ॥९४॥ उससे ब्यालीस हजार (४२०००) योजन नीचे जाकर वहा सब ओर महर्द्धिक भवनवासी देव स्थित है ॥ ९५ ॥ इससे एक लाख (१०००००) योजन नीचे जाकर मध्यमर्द्धिक भवनवासी देवोके भवन अवस्थित हैं। वहासे एक हजार (१०००) योजन नीचे जाकर प्रथम नरकके नारकबिल हैं ॥ ९६ ॥ वे रमणीय ऐन्द्रक भवन मध्यमे रत्नमय कूटसे सयुक्त, सर्वरत्नोसे निर्मित और तीन सौ (३००) योजन ऊचे है ॥९७॥

असुरकुमारोका गमन ऊपर ऐशान स्वर्ग तक होता है। यह उपर्युक्त विवरण बिन्दु मात्र अर्थात् बहुत सक्षिप्त है। शेष कथन लोकानुयोगसे जानना चाहिये ॥ ९८ ॥

निरन्तर रमणीय यह भवनवासी देवोकी ऋद्धि मनुष्योके लिये पूर्वप्राप्त पुण्यसे हस्तगत होती है, ऐसा समझकर साधु आचरण करनेवाले प्राणी उन भवनोमे मत्त मयूरोंके समान वार वार रमते है ॥ ९९ ॥

इस प्रकार लोकविभागमे भवनवासिक लोकविभाग नामका सातवा प्रकरण समाप्त हुआ ॥७॥

---

१ ब दारिणो । २ प धारिणस्यापि ब दरिणस्यापि । ३ आ प 'मात्यै ।

[अष्टमो विभागः]

इयं रत्नप्रभा भूमिस्त्रेधा स्यादिति वर्णिता । खरभागः पङ्कभागश्च भागश्चाब्बहुलादिकः ॥ १
प्रथम· षोडशाभ्यस्तसहस्रबहुल. स्मृत. । द्वितीयश्चतुरशीतिघ्नसहस्रबहुलो भवेत् ॥ २
। १६००० । ८४००० ।
सहस्रगुणिताशीतिबहुलोऽब्बहुलो भवेत् । पूर्वयोर्भवनावासास्तृतीये नरका स्मृता ॥ ३
। ८०००० ।
अधश्चोर्ध्वं सहस्र स्युस्त्यक्त्वास्या प्रतरा भुवि । नरकावासकेष्वेषु प्रथमा नरका स्मृताः ॥ ४.
शर्करावालुकापङ्कप्रभा धूमप्रमेति च । तम प्रभा च षष्ठी भू सप्तमी च महातम. ॥ ५
घर्मा वंशा च शैला च अञ्जनारिष्टसंज्ञका । मघवी माघवी चेति गोत्रनामानि सप्त च ॥ ६
द्वात्रिंशदष्टाविंशतिश्चतुरग्रा च विंशति. । विंशति षोडशाष्टौ च सहस्राणि क्रमाद् घनाः ॥ ७
तिर्यग्लोकप्रविस्तारसमितान्यन्तराणि च । सप्तानामपि भूमीनामाहुर्लोकतलस्य च ॥ ८
घनोदधिघनानिलस्तनुवातस्त्रयोऽनिला. । भूमीनां च तले लोकबहिर्भागे भवन्त्यमी ॥ ९
घनोदधिश्च गोमूत्रवर्ण. स्याद् घनवातक । मुद्गवर्णनिभो नानावर्णश्च तनुवातक ॥ १०
भूलोकतलवायूना द्विहतायुतयोजनम् । बाहल्य च पृथग्मूलाद्यावद्रज्जुप्रमाणकम् ॥ ११
। २०००० ।

यह रत्नप्रभा भूमि खरभाग, पकभाग और अब्बहुलभागके भेदसे तीन प्रकारकी कही गई है ॥ १ ॥ इनमे खरभाग नामका प्रथम भाग सोलह हजार (१६०००) योजन, द्वितीय भाग चौरासी हजार (८४०००) योजन और तीसरा अब्बहुल भाग अस्सी हजार (८००००) योजन प्रमाण मोटा है । उनमेसे पूर्वके दो भागो (खरभाग और पकभाग) मे भवनवासी देवोंके आवास है तथा तीसरे अब्बहुल भागमे नरक माने गये है ॥ २-३ ॥ इस पृथिवीमे नीचे और ऊपर एक एक हजार (१०००) योजन छोडकर नारक पटल स्थित हैं । इन नरकावासोमे प्रथम नरकके विल माने गये है ॥ ४॥ उस रत्नप्रभा पृथिवीके नीचे क्रमसे शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पकप्रभा, धूमप्रभा, छठी तमप्रभा और सातवी महातमप्रभा पृथिवी स्थित है ॥ ५ ॥ इन पृथिवियोके क्रमसे घर्मा, वशा, शैला, अजना, अरिष्टा, मघवी और माघवी, ये सात गोत्रनाम है ॥ ६ ॥ शर्कराप्रभाको आदि लेकर इन पृथिवियोकी मुटाई क्रमसे बत्तीस हजार (३२०००) अट्ठाईस हजार (२८०००), चौवीस हजार (२४०००), बीस हजार (२००००), सोलह हजार (१६०००) और आठ हजार (८०००) योजन प्रमाण है ॥ ७ ॥ इन सातो पृथिवियो तथा लोकतलके मध्यमे तिर्यग्लोकके विस्तारप्रमाण अर्थात् एक एक राजुका अन्तर है ॥ ८ ॥

इन पृथिवियोके तलभागमे तथा लोकके बाह्य भागमे क्रमसे घनोदधि, घनवात और तनुवात ये तीन वातवलय स्थित हैं ॥ ९ ॥ इनमें घनोदधिका वर्ण गोमूत्र जैसा, घनवातका मूगके समान और तनुवातका वर्ण अनेक प्रकारका है ॥ १० ॥ उपर्युक्त पृथिवियोके तलभागमे तथा लोकके भी तलभागमे स्थित इन वातवलयोमेसे प्रत्येकका बाहल्य पृथक् पृथक् दुगुणे दस अर्थात् बीस हजार (२००००) योजन प्रमाण है । यह उनका बाहल्यप्रमाण लोकके उभय

सप्त पञ्च च चत्वारि प्रणिधौ सप्तमावनेः। तिर्यग्लोकस्य पार्श्वे च पञ्च चत्वारि च त्रिकम् ॥१२

। ७ । ५ । ४ ।

सप्त पञ्च चतुष्कं च ब्रह्मलोकस्य पार्श्वके। प्रणिधावष्टमावन्याः पञ्च चत्वारि च त्रयम् ॥ १३

लोकाग्रे क्रोशयुग्मं तु गव्यूतिर्न्यूनगोरुतम्। न्यूनप्रमाणं धनुषां पञ्चविंश-चतुःशतम् ॥ १४

। २ । १ । १ ।

आद्यायामवनौ सर्वे प्रतराः स्युस्त्रयोदश। द्विकद्विकोनाः शेषासु व्येकपञ्चाशदेव ते ॥ १५

। १३ । ११ । ९ । ७ । ५ । ३ । १ ।

गव्यूतिरुन्द्राः प्रतराः प्रथमायामतः परम्। गव्यूत्यर्धोत्तरा ज्ञेयाश्चान्त्या[1] योजनरुन्द्रकः ॥ १६

स्वप्रतररुन्द्रपिण्डोना चैकैका प्रतरस्थिता। रूपोनप्रतरैर्भक्ता भूमिश्च प्रतरान्तरम् ॥ १७

पार्श्वभागोमे मूलसे लेकर एक राजु मात्र ऊपर जाने तक है ॥११॥ उन वातवलयोका वाहल्य सातवी पृथिवीके प्रणिधिभागमे क्रमसे सात, पाच और चार (७, ५, ४) योजन तथा तिर्यग्लोकके पार्श्वभागमे पाच, चार और तीन (५, ४, ३) योजन प्रमाण है ॥ १२ ॥ उक्त वातवलयोका वाहल्य ब्रह्मलोक (पाचवा कल्प) के पार्श्वभागमे यथाक्रमसे सात, पाच और चार योजन तथा आठवी पृथिवीके प्रणिधिभागमे पाच, चार और तीन योजन मात्र है ॥ १३ ॥ उन वातवलयोका वाहल्य लोकशिखरपर क्रमसे दो (२) कोस, एक (१) कोस और एक (१) कोससे कुछ कम है। कुछ कमका प्रमाण यहा चार सौ पच्चीस (४२५) धनुष है। एक कोस=२००० धनुष, २०००-४२५=१५७५ धनुष ॥ १४ ॥

प्रथम पृथिवीमे सब पटल तेरह (१३) है। शेष छह पृथिवियोमे वे उत्तरोत्तर इनसे दो दो कम होते गये है (११, ९, ७, ५, ३, १)। वे सब पटल उनचास (४९) हैं ॥१५॥ प्रथम पृथिवीके पटलोका रुन्द्र (वाहल्य) एक कोस मात्र है। आगे द्वितीय आदि पृथिवियोमे वह उत्तरोत्तर आधा आधा कोस अधिक होता गया है। इस प्रकार अन्तिम पृथिवीके पटलका वह वाहल्य एक योजन प्रमाण हो गया है ॥ १६ ॥ विवक्षित प्रतरस्थित (जितनी मुटाईमे पटल स्थित हैं) पृथिवीके बाहल्यप्रमाणमेसे अपने पटलोका जितना समस्त बाहल्य हो उसे कम करके जो शेष रहे उसमे विवक्षित पृथिवीकी एक कम प्रतरसख्याका भाग देनेपर उन पटलोके मध्यमे अवस्थित अन्तरालका प्रमाण प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

विशेषार्थ– ऊपर प्रथमादिक पृथिवियोमे जिन तेरह ग्यारह आदि पटलोका अवस्थान बतलाया गया है उनके मध्यमे कितना अन्तर है और वह किस प्रकारसे प्राप्त होता है, इसका उल्लेख करते हुए यहा यह बतलाया है कि विवक्षित पृथिवीमे जितने पटल स्थित हैं उन सबके समस्त बाहल्यप्रमाणको तथा पृथिवीके जितने भागमे उन पटलोका अवस्थान नही है उसको भी कम करके शेषमे एक कम अपनी पटलसख्याका भाग देनेसे जो लब्ध हो उतना उन पटलोके मध्यमे ऊर्ध्व अन्तरालका प्रमाण होता है। जैसे– प्रथम पृथिवीके जिस अब्बहुल भागमे प्रथम नरक

१ ब °श्चात्यो।

स्वप्रतरुन्द्रपिण्डेन व्येकप्रतरैर्हृतेन[1] च । हीनाः स्युर्वक्ष्यमाणाश्च प्रतरान्तरसंख्यकाः ॥ १८

प्रथमादिभूम्यन्तरसख्यायामृण क्रमेण यो. $\frac{५३}{४८}$ । $\frac{३३}{८०}$ । $\frac{९}{१६}$ । $\frac{३५}{४८}$ । $\frac{१५}{१६}$ । $\frac{२१}{१६}$ ।

सार्धषट् च सहस्राणि आद्याया प्रतरान्तरम् । त्रिसहस्र पर तत्तु सार्धद्विशतसयुतम् ॥ १९

। ६५०० । [३००० ।] ३२५० ।

षट्षष्ट्या षट्शतैर्युक्त त्रिसहस्र च साधिकम् । सार्धं चतु सहस्र स्यात्पञ्चम्यां प्रतरान्तरम् ॥ २०

। ३६६६ । $\frac{२}{३}$ । ४५०० ।

सप्तैव च सहस्राणि षठ्या च प्रतरान्तरम् । चतु सहस्रे भूम्यर्धे सप्तम्यां प्रतरः स्थितः ॥ २१

स्थित है उसकी मुटाईका प्रमाण ८०००० यो है । चूकि इसके ऊपर और नीचे १०००-१००० योजनमे कोई भी प-ल नही है अतएव उसकी उक्त मुटाईमेसे २००० योजन कम कर देनेपर शेष ७८००० योजन रहते है । इसके अतिरिक्त यहा जो १३ पटल स्थित हैं उनमेसे प्रत्येकका बाहल्य एक कोस मात्र है । अत एव उनके समस्त बाहल्यका प्रमाण १३ कोस (३$\frac{१}{४}$ यो) होता है । इसको ७८००० योजनमेसे कम करके शेषमे उसकी एक कम प-लसख्याका भाग दे देनेसे उन पटलोके मध्यमे जितना अन्तर है वह इस प्रकारसे प्राप्त हो जाता है– { (८००००–२०००) –($\frac{१}{४}$×१३) } –(१३–१)=६४९९$\frac{३५}{४८}$ यो , प्रथम पृथिवीस्थ इन्द्रक बिलोका अन्तर । { (८००००–२०००) – ($\frac{४}{९२}$×१३) } – (१३–१) = $\frac{९३५९४८}{१४४}$ = ६४९९$\frac{२३}{३६}$ यो, प्रथम पृथिवीस्थ श्रेणीबद्ध बिलोका अन्तर । { (८००००–२०००) – ($\frac{७}{९२}$×१३) } – (१३–१) =$\frac{९३५९०९}{१४४}$=६४९९$\frac{५३}{१४४}$ यो , प्रथम पृथिवीस्थ प्रकीर्णक बिलोका अन्तर ।

आगे जो प्रथमादिक पृथिवियोमे पटलोके अन्तरका प्रमाण बतलाया जा रहा है वह एक कम अपनी पटलसख्यासे भाजित अपने समस्त पटलोके बाहल्यसे हीन समझना चाहिये । आगे कहे जानेवाले उन प्रथमादि पृथिवियोके इस अन्तरप्रमाणमेसे क्रमश अपनी अपनी पृथिवीके समस्त पटलोके बाहल्यको इस प्रकारसे कम करना चाहिये– प्र पृ $\frac{१३}{४८}$, द्वि पृ $\frac{३३}{८०}$, तृ पृ $\frac{९}{१६}$, च पृ $\frac{३५}{४८}$, प पृ $\frac{१५}{१६}$, ष पृ $\frac{२१}{१६}$ ॥ १८ ॥ पटलोका यह अन्तर प्रथम पृथिवीमे साढे छह हजार (६५००) योजन, द्वितीय पृथिवीमे तीन हजार (३०००) योजन, तृतीय पृथिवीमे तीन हजार दो सौ पचास (३२५०) योजन, चतुर्थ पृथिवीमे तीन हजार छह सौ छचासठ (३६६६) योजनसे कुछ अधिक, पाचवी पथिवीमे साढे चार हजार (४५००) योजन और छठी पृथिवीमे सात हजार (७०००) योजन प्रमाण है । सातवी पृथिवीकी मुटाई जो आठ हजार योजन है उसके अर्ध भागमे अर्थात् चार हजार (४०००) योजन नीचे जाकर ठीक मध्यमे एक ही पटल स्थित है ॥ १९-२१ ॥ उक्त सात पृथियोमे स्थित उन पटलोका अन्तर क्रमश इस प्रकार है–

प्रथम पृथिवीमे– { (८००००–२०००) – ($\frac{१}{४}$×१३) }–(१३—१)=६४९९$\frac{३५}{४८}$= ६५००–$\frac{१३}{४८}$ योजन ।

द्वितीय पृथिवीमे { (३२०००–२०००) – ($\frac{३}{८}$×११) } – (११–१) =२९९९$\frac{४७}{८०}$ =(३०००–$\frac{३३}{८०}$) यो

---

1 आ प °र्हृतेन ।

प्रतराणा च मध्ये स्युरिन्द्रका इति नामत.। निरया घोरदुःखाढ्या नामभिस्तान्निबोधित.[1] ॥ २२
सीमन्तकोऽथ निरयो रौरवो भ्रान्त एव च। उद्भ्रान्तोऽप्यथ सभ्रान्तस्त्वसभ्रान्तश्च सप्तम ॥२३
विभ्रान्तस्त्रस्तनामा च त्रसितो वक्रान्त एव च। अवक्रान्तश्च विक्रान्त. प्रथमाया क्षिताविमे ॥२४
ततकस्तनकश्चैव वनको मनकस्तथा। खटा च खटिको जिह्वा जिह्विका लोलिका तथा ॥ २५
लोलवत्सा च दशमी स्तनलोलेति पश्चिमा। द्वितीयस्या क्षितावेते इन्द्रका निरया. खरा ॥ २६
तृतीयस्या भवेत्तप्तस्तपितस्तपन. पुन । [2]तापनोऽथ निदाघश्च उज्ज्वल प्रज्वलोऽपि च ॥ २७
तत सज्वलितो[3] घोरः सप्रज्वलित एव च। विज्ञेया[4] इन्द्रका एते नव प्रतरनामय ॥ २८
आरा मारा च तारा च चर्चाथ तमकीति च। घाटा घट च सप्तैते चतुर्थ्यामवनौ स्थिता ॥ २९
तमका भ्रमका भूयो झषकान्द्रा[न्धा]तिमिश्रका। हिमवार्दललल्लक्य अप्रतिष्ठान इत्यपि ॥ ३०

तृतीय पृथिवीमे $-\{(२८०००-२०००)-(\frac{१}{२}\times ९)\}-(९-१)=३२४९\frac{७}{१६}$
$=(३२५०-\frac{९}{१६})$ योजन

चतुर्थ पृथिवीमे $-\{(२४०००-२०००)-(\frac{५}{८}\times ७)\}-(७-१)=३६६५\frac{४५}{४८}$
$=(३६६६\frac{३२}{४८}-\frac{३५}{४८})$ यो

पाचवी पृथिवीमे $-\{(२००००-२०००)-(\frac{३}{४}\times ५)\}-(५-१)=४४९९\frac{१}{१६}$
$=(४५००-\frac{१५}{१६})$ योजन।

छठी पृथिवीमे$-\{(१६०००-२०००)-(\frac{६}{८}\times ३)\}-(३-१)=६९९८\frac{११}{१६}$
$=(७०००-\frac{२१}{१६})$ योजन।

सातवी पृथिवीमे– १ ही पटलके होनेसे अन्तरकी सम्भावना नही है।

पटलोके बीचमे इन्द्रक नामके जो नारक बिल हैं वे इतने भयानक दुखसे व्याप्त हैं कि उनका नाम भी नही लिया जा सकता है ॥ २२ ॥ सीमन्तक, निरय, रौरव, भ्रान्त, उद्भ्रान्त, सम्भ्रान्त, सातवा असम्भ्रान्त, विभ्रान्त, त्रस्त, त्रसित, वक्रान्त, अवक्रान्त और विक्रान्त, ये तेरह इन्द्रक बिल प्रथम पृथिवीमे स्थित हैं ॥ २३-२४ ॥ ततक, तनक, वनक, मनक, खटा, खटिक, जिह्वा, जिह्विका, लोलिका, दसवा लोलवत्सा और अन्तिम (ग्यारहवा) स्तनलोला ये तीक्ष्ण ग्यारह इन्द्रक बिल द्वितीय पृथिवीमे स्थित हैं ॥ २५-२६ ॥ तप्त, तपित, तपन, तापन, निदाघ, उज्ज्वल, प्रज्वल, सज्वलित और सप्रज्वलित, ये नौ इन्द्रक बिल तृतीय पृथिवीमे स्थित जानना चाहिये ॥ २७-२८ ॥ आरा, मारा, तारा, चर्चा, तमकी, घाटा और घट, ये सात इन्द्रक बिल चतुर्थ पृथिवीमे स्थित है ॥२९॥ तमका भ्रमका, झषका, अन्द्रा (अन्धा ?) और तिमिश्रका, ये पाच इन्द्रक बिल पाचवी पृथिवीमे स्थित हैं। हिम, वार्दल और लल्लकी ये तीन इन्द्रक बिल छठी पृथिवीमे स्थित हैं। सातवी पृथिवीमे अप्रतिष्ठान नामका एक ही इन्द्रक बिल स्थित है ॥३०॥

---

१ प 'स्तान्निनिवोधित। २ प तपनो। ३ आ प संजलितो। ४ प विज्ञेयो।

त्रिंशच्च पञ्चवर्गाः स्यु· पञ्चादश दशैव च । त्रीणि पञ्चोनमेक च लक्ष पञ्च च केवला. ॥ ३१
३०००००० । २५००००० । १५००००० । १०००००० । ३००००० । ९९९९५ । ५ ।
क्रमात्सप्तावनीनरका भागस्तेषां च पञ्चमः । भवेत्संख्येयविस्तार· शेषाश्चासख्यविस्तृता. ॥ ३२
चतु.शून्याष्टषट्कैक[1] नरका· संख्येयविस्तृताः । चतुर्गगनद्विकं सप्त षट्कं चासख्यविस्तृता. ॥३३
१६८०००० । ६७२०००० ।
द्वे सहस्रे शते द्वे च चत्वारिंशन्नवोत्तरा । दिग्गता[ता.] प्रथमाया स्युर्वक्ष्यन्तेऽतो विदिग्गता ॥३४
द्वे सहस्रे शत चैकमशीतिश्चतुरुत्तरा । उभये पिण्डिताः सन्तो भवन्त्यावलिकास्थिता ॥ ३५
सप्त षट् पञ्च पञ्चैव नव चैव पुनर्नव । द्वे च स्थानक्रमाद् ग्राह्या घर्मापुष्पप्रकीर्णकाः ॥ ३६
पञ्चसप्ततियुक्तानि त्रयोदशशतानि हि । दिक्ष्वन्यासु च विशानि[2] त्रयोदशशतानि हि ॥ ३७
पञ्च शून्य त्रय सप्त नव चत्वारि च द्विकम् । पुष्पप्रकीर्णका ज्ञेया वशाया नरका इमे ॥ ३८
शतानि सप्त षष्टिश्च पञ्चयुक्ता दिका[गा]श्रिता. । विदिग्गतास्तु विशानि सप्तैव स्युः शतानि हि ॥
पञ्चैकं पञ्च चाष्टौ च नव चत्वारि रूपकम् । पुष्पप्रकीर्णकाः प्रोक्ता. शैलाया नरका इमे ॥ ४०

उपर्युक्त सात पृथिवियोमे क्रमसे तीस लाख (३००००००), पाचका वर्ग अर्थात् पच्चीस लाख (२५०००००), पन्द्रह लाख (१५०००००), दस लाख (१००००००), तीन लाख (३०००००) पाच कम एक लाख (९९९९५) और केवल पाच (५) ही नारक बिल अवस्थित है। इनमेसे पाचवे भाग प्रमाण (६०००००, ५०००००, ३०००००, २०००००, ६००००, १९९९९, १) नारक बिलोका विस्तार सख्यात योजन और शेष (४/५) का असख्यात योजन प्रमाण है ॥ ३१-३२ ॥ अकक्रमसे चार शून्य, आठ, छह और एक (१६८००००) इतने नारक बिलोका विस्तार सख्यात योजन, तथा चार शून्य, दो, सात और छह (६७२००००) इतने नारक बिलोका विस्तार असख्यात योजन है ॥ ३३ ॥

प्रथम पृथिवीमे दो हजार दो सौ उनचास (२२४९) बिल दिशागत है। आगे विदिशागत बिलोका प्रमाण कहा जाता है– दो हजार एक सौ चौरासी (२१८४) बिल विदिशागत है। इन दोनो प्रकारके बिलोकी जितनी समस्त सख्या है उतने (२२४९+२१८४=४४३३) प्रथम पृथिवीमे श्रेणीबद्ध बिल स्थित है ॥ ३४-३५॥ घर्मा पृथिवीमे अकक्रमसे सात, छह, पाच, पाच, नौ, फिर नौ और दो इतने (२९९५५६७) अर्थात् उनतीस लाख पचानबै हजार पाच सौ सँडसठ पुष्पप्रकीर्णक बिल जानना जाहिये ॥ ३६ ॥

वशा (द्वितीय) पृथिवीमे दिशागत श्रेणीबद्ध बिल तेरह सौ पचत्तर (१३७५) और विदिशागत तेरह सौ बीस (१३२०) है। यहा पुष्पप्रकीर्णक बिल अकक्रमसे पाच, शून्य, तीन, सात, नौ, चार और दो (२४९७३०५) इतने जानना चाहिये ॥३७-३८॥ शैला पृथिवीमे दिशागत श्रेणीबद्ध बिल सात सौ पैसठ (७६५) और विदिशागत सात सौ बीस (७२०) है। पुष्पप्रकीर्णक बिल वहा अकक्रमसे पाच, एक, पाच, आठ, नौ, चार और एक (१४९८५१५) इतने है ॥३९-४०॥

१ आ प शून्याष्टकैकैक । २ आ प विंशानी ।

एकसप्ततियुक्तानि शतानि त्रीणि दिग्गता.। षट्त्रिंशानि पुनस्त्रीणि शतानि स्युर्विदिग्गता ॥ ४१
एकादश शत ज्ञेय सहस्राणा नवाहतम् । शते द्वे त्रिनवत्यग्रे चतुर्थ्यां च प्रकीर्णका ॥ ४२
चत्वारिंशच्छत चैक पञ्चाग्रा दिक्षु भाषिता । विंशमेक शत भूय पञ्चम्या च विदिग्गताः ॥ ४३
नवैव च सहस्राणि व्ययुत नियुतत्रिकम् । शतानि सप्त त्रिंशच्च पञ्चाग्रात्र प्रकीर्णका. ॥४४
त्रिंशन्नवोत्तरा दिक्षु षट्चतुष्का विदिग्गता.। नियुत[1] त्वष्टषष्टयून षष्ठ्या पुष्पप्रकीर्णका ॥४५
कालश्चैव महाकालो रौरवो महरौरवा । पूर्वापरे दक्षिणतश्चोत्तरत क्रमोदिता. ॥ ४६
अप्रतिष्ठानसज्ञश्च मध्ये तेषा प्रतिष्ठित.। जम्बूद्वीपसमव्यास पञ्चैते सप्तमीस्थिता ॥ ४७

उक्त च [ ] –

मनुष्यक्षेत्रमान स्यात्प्रथमो जम्बूसमोऽन्तिम.। विशेचोऽभये[2] व्येकेन्द्रकाप्ते[3] हानिवृद्धि(?) च ॥१
द्वादशाप्ताश्च[4] लक्षाणामेकादश चयो भवेत् । उपर्युपरि विस्तारे चेन्द्रकाणा यथाक्रमम् ॥ ४८

। $\frac{1100000}{12}$ ।

चतुर्थ पृथिवीमे दिशागत श्रेणीबद्ध बिल तीन सौ इकत्तर (३७१) और विदिशागत तीन सौ छत्तीस (३३६) है। वहा प्रकीर्णक बिल नौसे गुणित एक सौ ग्यारह हजार अर्थात् नौ लाख निन्यानबै हजार और दो सौ तैरानवै (९९९२९३) जानना चाहिये ॥ ४१-४२ ॥ पाचवी पृथिवीमे दिशागत श्रेणीबद्ध विल एक सौ पैंतालीस (१४५) और विदिशागत एक सौ वीस (१२०) कहे गये हैं। वहा प्रकीर्णक विल दस हजारसे कम तीन लाख और नौ हजार सात सौ पैंतीस (२९९७३५) हैं ॥ ४३-४४ ॥ छठी पृथिवीमे दिशागत श्रेणीबद्ध बिल उनतालीस (३९) और विदिशागत छह चतुष्क अर्थात् चोवीस (२४) है। वहा प्रकीर्णक बिल अडसठ कम एक लाख (९९९३२) हैं ॥ ४५ ॥ सातवी पृथिवीमे काल, महाकाल, रौरव और महारौरव ये चार श्रेणीबद्ध बिल क्रमसे पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तरमे कहे गये हैं। उनके मध्यमे अप्रतिष्ठान नामका इन्द्रक बिल स्थित है। उसका विस्तार जम्बूद्वीपके बराबर (१००००० यो) है। सातवी पृथिवीमे ये ही पाच बिल स्थित है ॥४६-४७॥ कहा भी है–

प्रथम इन्द्रकका विस्तार मनुष्यक्षेत्र (अढाई द्वीप) के बराबर और अन्तिम इन्द्रकका विस्तार जबूद्वीपके बराबर है। इन दोनोको परस्पर विशुद्ध करके अर्थात् प्रथम इन्द्रकके विस्तारमेसे अन्तिम इन्द्रकके विस्तारको घटाकर शेषमे एक कम इन्द्रकसख्याका भाग देनेपर हानि-वृद्धिका प्रमाण प्राप्त होता है। यथा– (४५००००० – १०००००) – (४९ – १) = ९१६६६$\frac{2}{3}$ यो , इतनी प्रथम इन्द्रककी अपेक्षा उन पटलोके विस्तारमे उत्तरोत्तर हानि तथा अन्तिम इन्द्रककी अपेक्षा उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है ॥ १ ॥

ग्यारह लाखमे बारहका भाग देनेपर जो लब्ध हो उतनी ($\frac{1100000}{12}$) आगे आगे इन्द्रक बिलोके विस्तारमे यथाक्रमसे [प्रथम इन्द्रककी अपेक्षा हानि और अन्तिम इन्द्रककी अपेक्षा

---

१ आ प युत । २ ब विषये चोऽभये [विशोध्योभये] ३ प व्येकेन्द्राप्ते । ४ प द्वादशाप्ता च ।

एकनवतिसहस्राणि योजनानि तु षट्छतम् । षट्षष्टिश्च समाख्याता त्रिभागौ वृद्धिरेव च ॥ ४९

९१६६६ । $\frac{2}{3}$ ।

सीमन्तकस्य दिक्षु स्युः पञ्चाशद्रूपवर्जिता । विदिक्षु पुनरेकोना निरयाः समवस्थिताः ॥ ५०

४९ । ४८ ।

द्वितीयप्रतरोऽष्टोन एवमष्टोनकाः[1] क्रमात् । सर्वेऽपि प्रतरा ज्ञेया यावदन्त्यो भवेदिति ॥ ५१

एकेन हीनगच्छश्च दलितश्चयताडित । सादिर्गच्छहतश्चैव सर्वसंकलितं भवेत् ॥ ५२

षट्छतानि त्रिपञ्चाशत् सहस्राणि नवैव च । आवल्या तु स्थिता ज्ञेया निरयाः सर्वभूमिषु ॥ ५३

शतान्येकान्न पञ्चाशच्चत्वारिंशन्नवोत्तरा । दिक्स्थिता निरयाः एते गणिताः सर्वभूमिषु ॥ ५४

वृद्धि] होती गई है ॥ ४८ ॥ इस हानि वृद्धिका प्रमाण इक्यानबै हजार छह सौ छयासठ योजन और एक योजनके तीन भागोमेसे दो भाग मात्र कहा गया है– $\frac{1100000}{12}=91666\frac{2}{3}$ ॥४९॥

उदाहरण– प्रथम सीमन्तक इन्द्रकका विस्तार ४५००००० और अन्तिम अप्रतिष्ठान इन्द्रकका विस्तार १००००० योजन है । अत एव उक्त नियमानुसार हानि-वृद्धिका पूर्वोक्त प्रमाण इस प्रकार प्राप्त होता है–$(4500000-100000)\div(49-1)=\frac{1100000}{12}=91666\frac{2}{3}$ योजन । अब यदि आप २५वे इन्द्रकके विस्तारको जानना चाहते हैं तो एक कम अभीष्ट इन्द्रककी सख्या (२५ – १) से इस हानि-वृद्धिके प्रमाणको गुणित करके जो प्राप्त हो उसे प्रथम इन्द्रकके विस्तारमेसे कम कर दीजिये अथवा अन्तिम इन्द्रकके विस्तारमे जोड दीजिये । इस रीतिसे २५वे इन्द्रकका विस्तार इतना प्राप्त हो जाता है । $4500000-\{\frac{1100000}{12}\times(25-1)\}=2300000$, अथवा $\{\frac{1100000}{12}\times(25-1)\}+100000=2300000$, योजन ।

सीमन्तक इन्द्रककी चारो दिशाओमेसे प्रत्येक दिशामे एक कम पचास (४९) तथा विदिशाओमे इससे एक कम (४८-४८) नारक बिल अवस्थित हैं ॥ ५० ॥ द्वितीय प्रतरके आश्रित श्रेणीबद्ध बिल प्रथमकी अपेक्षा [प्रत्येक दिशा और विदिशामे एक एक कम होते जानेसे] आठ कम है । इस प्रकार अन्तिम इन्द्रक तक सब इन्द्रकोके आश्रित श्रेणीबद्ध बिल क्रमसे आठ आठ हीन होते गये हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ ५१ ॥

एक कम गच्छको आधा करके चयसे गुणित करे । फिर उसमे आदि (मुख) को मिलाकर गच्छसे गुणित करनेपर सर्वसंकलित (सर्वधन) प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥

उदाहरण– प्रकृतमे गच्छ ४९ चय ८ और आदि ४ है । अतएव उक्त नियमानुसार सातो पृथिवियोके समस्त श्रेणीबद्ध बिलोका प्रमाण इस प्रकार प्राप्त हो जाता है– $(\frac{49-1}{2})\times 8+4\times 49=9604$

सब पृथिवियोमे नौ हजार छह सौ तिरेपन बिल श्रेणीस्वरूपसे स्थित जानने चाहिये– श्रेणीबद्ध ९६०४+इन्द्रक ४९=९६५३ ॥ ५३ ॥ सब पृथिवियोमे उनचास सौ उनचास (४९४९ नारक बिल पूर्वादिक दिशाओमे स्थित है– $(\frac{49-1}{2})\times 4+4\times 49=4900$ श्रेणीबद्ध, ४९००

---

[1] प एकमष्टो° ।

चत्वारि स्यु सहस्राणि पुन सप्त शतानि च । चत्वारश्च विदिग्भाज संख्याता: सर्वभूमिषु ॥ ५५
त्र्यशीतिर्नियुताना च अयुतानि नवैव च । चत्वारिंशच्च सप्ताग्रा त्रिशतं च प्रकीर्णका. ॥ ५६
सख्येयविस्तृता ज्ञेया सर्वेऽपीन्द्रकसज्ञका. । असख्येयतता एव आवल्या निरया स्थिताः ॥ ५७
पुष्पप्रकीर्णकाख्यास्तु प्रायेणासख्यविस्तृता । सख्येयविस्तृताः स्तोका इति केवलिभाषिता ॥ ५८

उक्त च [त्रि सा. १५३, १६३, १६५-६८, १७१-७२]-

तेरादिदुहीणिदय सेडीबद्धा दिसासु विदिसासु । उणवण्णडदालादी एक्केक्केणूणया कमसो ॥ २

१३।११।९।७।५।३।१ ।

वेकपद चयगुणिद भूमिम्मि मुहम्मि[1] रिणधण[2] च कए । मुहभूमीजोगदले पदगुणिदे पदधण होदि ॥

+४९ इन्द्रक = ८०४९ ॥ ५४ ॥ चार हजार सात सौ चार (४७०४) उतने नारक बिल सब भूमियोके भीतर विदिशाओंमे स्थित बतलाये गये हैं ॥ ५५ ॥

विशेषार्थ– सातवी पृथिवीमे अप्रतिष्ठान इन्द्रकके विदिशागत श्रेणीबद्ध नहीं हैं । अत एव गच्छका प्रमाण यहा ४८ होगा । $(\frac{४८-१}{२}) \times ८ + ८ \times ४८ = ४७०४$, $४९४९ + ४७०४ = ९६५३$ समस्त इन्द्रक और श्रेणीबद्ध ।

तेरासी लाख नौ अयुत (नौगुणित दस हजार) अर्थात् नब्बै हजार तीन सौ सैंतालीस (८३९०३४७) उतने सब पृथिवियोमे प्रकीर्णक बिल स्थित हैं– ८३९०३४७+ ९६५३=८४००००० समस्त नारक बिल ॥ ५६ ॥

सब इन्द्रक बिल सख्यात योजन विस्तारवाले जानना चाहिये । आवलीके रूपमे स्थित अर्थात् श्रेणीबद्ध बिल सब असख्यात योजन विस्तारवाले ही हैं ॥ ५७ ॥ पुष्पप्रकीर्णक नामक बिलोमे अधिकाश असख्यात योजन विस्तृत हैं । उनमे सख्यात योजन विस्तृत बिल थोडेसे ही हैं, ऐसा केवलियोके द्वारा निर्दिष्ट किया गया है ॥५८॥ कहा भी है—

इन्द्रक बिल प्रथमादिक पृथिवियोमे यथाक्रमसे तेरहको आदि लेकर उत्तरोत्तर दो दो कम होते गये है (१३, ११, ९, ७, ५, ३, १) । श्रेणीबद्ध बिल दिशाओ और विदिशाओंमे क्रमसे उनचास और अडतालीसको आदि लेकर उत्तरोत्तर एक एकसे कम होते गये हैं । अभिप्राय यह है कि वे प्रथम सीमन्तक इन्द्रक बिलकी पूर्वादिक चार दिशाओमे उनचास उनचास (४९–४९) और विदिशाओमे अडतालीस अडतालीस (४८–४८) है । आगे द्वितीय आदि इन्द्रक बिलोकी दिशाओ और विदिशाओमे वे एक एक कम होते गये हैं ॥ २ ॥

एक कम गच्छको चयसे गुणित करनेपर जो प्राप्त हो उसे भूमिमेसे कम करने और मुखमे जोड देनेपर क्रमसे भूमि और मुखका प्रमाण होता है । उस भूमि और मुखको जोड कर आधा करनेपर जो प्राप्त हो उसे गच्छसे गुणित करे । इस रीतिसे गच्छका समस्त धन प्राप्त हो जाता है ॥ ३ ॥

विशेषार्थ– उक्त नियमानुसार उदाहरणके रूपमे प्रथम पृथिवीमें स्थित समस्त श्रेणीबद्ध बिलोका प्रमाण लाते हैं । प्रथम इन्द्रक बिलकी प्रत्येक दिशामे ४९ और विदिशामे ४८ श्रेणीबद्ध बिल हैं । अत एव इन दोनोको मिलाकर ४ से गुणित करनेपर भूमिका प्रमाण

---

१ प भूमिम्मुहम्मि । २ आ रिणदण प णिरदण ।

पुढविंदयमेगूणं अद्धकय वग्गियं च मूलजुद[1] । अट्ठगुण चउसहियं पुढविदयताडिदम्मि[2] पुढविधण ॥
श्रे ४४२०।२६८४।१४७६।७००।२६०।६०।४।
सेढीण विच्चाले पुप्फपइण्णय इव ट्ठिया णिरया । होंति पइण्णयणामा सेढिदयहीणरासिसमा ॥ ५
पचमभागपमाणा णिरयाण होंति सखवित्थारा । सेसचउपचभागा असखवित्थारया णिरया ॥ ६
इंदयसेढीबद्धप्पइण्णयाण[3] कमेण वित्थारा । संखेज्जमसंखेज्ज उभय च य जोयणाण हुवे ॥ ७

(४९+४८×४ =३८८ इतना होता है । अन्तिम (१३वे) पटलकी प्रत्येक दिशा और विदिशामे क्रमश ३७ और ३६ श्रेणीवद्ध विल है । इन दोनोको जोडकर ४ से गुणित करनेपर (३७+३६) ×४=२९२, इतना मुखका प्रमाण होता है । अव एक कम गच्छको चयसे गुणित करनेपर जो प्राप्त हो उसे भूमिमेसे कम कर देने और मुखमे जोड देनेपर मुखका और भूमिका प्रमाण निम्न प्रकार होता है – ३८८–{ (१३–१) ×८}=२९२ मुख, २९२+{ (१३–१) × ८}=३८८ भूमि, इन दोनोको जोडकर और फिर आधा करके गच्छसे गुणित कर देनेपर प्रथम पृथिवीके समस्त श्रेणीबद्ध विलोका प्रमाण इस प्रकार प्राप्त हो जाता है –$(\frac{३८८+२९२}{२})\times १३=$ ४४२० सब श्रेणीवद्ध । इसी नियमके अनुसार सातो पृथिवियोके भी समस्त श्रेणीवद्ध विलोका प्रमाण लाया जा सकता है । जैसे – यहा भूमि ३८९ (इन्द्रक सहित) और मुख ५ है, ३८९–{ (४९–१) ×८}=५ मुख, ५+{ (४९–१) ×८=३८९भूमि $(\frac{३८९+५}{२})\times ४९=९६५३$; इन्द्रक (४९) सहित समस्त श्रेणीवद्ध ।

विवक्षित पृथिवीके इन्द्रक विलोकी जितनी सख्या हो उसमेसे एक कम करके आधा कर दे । तत्पश्चात् उसका वर्ग करके प्राप्त राशिमे वर्गमूलको मिला दे । पुनः उसे आठसे गुणित करके व उसमे चार अकोको और मिलाकर विवक्षित पृथिवीकी इन्द्रकसख्यासे गुणा करे । इस प्रकारसे उस पृथिवीके समस्त श्रेणीवद्धोकी सख्या प्राप्त हो जाती है ॥ ४ ॥

उदाहरण– प्रथम पृथिवीमे १३ इन्द्रक विल है । अत –$\{(\frac{१३-१}{२})^२+(\sqrt{(\frac{१३-१}{२})^२}\times ८$ =३३६, (३३६+४) ×१३=४४२० प्रथम पृथिवीके समस्त श्रेणीवद्ध, २६८४ द्वि पृथिवीके समस्त श्रे व , १४७६ तृ पृ के समस्त श्रे व , ७०० च पृ के समस्त श्रे व., २६० प. पृ के समस्त श्रे व , ६० छठी पृ के समस्त श्रे व , ४ सातवी पृ के समस्त श्रेणीवद्ध ।

श्रेणीवद्ध विलोके अन्तरालमे इधर उधर विखरे हुए पुष्पोके समान जो नारक विल स्थित है वे प्रकीर्णक नामक विल कहे जाते है । समस्त विलोकी सख्यामेसे श्रेणीवद्ध और इन्द्रक विलोकी सख्याको कम कर देनेपर जो राशि अवशिष्ट रहती है उतना उन प्रकीर्णक विलोका प्रमाण समझना चाहिये । जैसे– प्रथम पृथिवीमे समस्त विल ३०००००० है, अत एव ३००००००–(४४२०+१३)=२९९५५६७ प्रथम पथिवीके समस्त प्रकीर्णक विल ॥ ५ ॥ समस्त नारक विलोमे पाचवे भाग ($\frac{१}{५}$) प्रमाण नारक विल सख्यात योजन विस्तारवाले और शेष चार वटे पाच भाग ($\frac{४}{५}$) प्रमाण विल असख्यात योजन विस्तारवाले है ॥ ६ ॥ इन्द्रक विलोका विस्तार सख्यात योजन, श्रेणीवद्ध विलोका असख्यात योजन, तथा प्रकीर्णक विलोका उभय अर्थात् उनमे कितने ही विलोका विस्तार सख्यात योजन और कितने ही विलोका विस्तार

१ आ प गुरुजुद । २ दि मा 'ताडियच । ३ दि मा बद्धा पइण्ण° ।

रूवहियपुढविसंख तियचउसत्तेहि गुणिय छब्भजिदे । कोसाण वेहुलियं इदयसेढीपइण्णाण ॥ ८

इ को. १ । $\frac{३}{२}$ । २ । $\frac{५}{२}$ । ३ । $\frac{७}{२}$ । ४ । श्रे $\frac{४}{३}$ । २ । $\frac{८}{३}$ । $\frac{१०}{३}$ । ४ । $\frac{१४}{३}$ । $\frac{१६}{३}$ । प्र $\frac{७}{३}$ । $\frac{७}{२}$ । $\frac{१४}{३}$ । $\frac{३५}{६}$ । ७ । $\frac{४९}{६}$ । [$\frac{५६}{६}$]

पदराहदबिलवहल पदरट्ठिदभूमिदो विसोहित्ता । रूऊणपदहिदाए बिलतर उड्ढग तीए ॥ ९

प्रथमपृथ्वीन्द्रकान्तर $\frac{३११९८७}{४८}$ श्रेणीवद्धान्तर $\frac{२३३९८७}{३६}$ प्रकीर्णकान्तर $\frac{९३५९०९}{१४४}$ ।

पूर्वे काक्षा महाकाक्षा चापरे दक्षिणोत्तरे । पिपासातिपिपासा च भवेत् सीमन्तकस्य च ॥ ५९

निरया ख्यातनामानः प्रथमे प्रतरे मता । मध्ये मानुषवास्योरुः शेषाश्चासख्ययोजना ॥ ६०

अनिच्छा तु महानिच्छा अविद्येति च नामत । महाविद्या च वशायास्ततकायाश्चतुर्दिशम् ॥ ६१

दु खा खलु महादु खा वेदा नाम्ना तु दक्षिणा । महावेदा च तप्तस्य दिक्षु शैलादिषु स्थिता ॥ ६२

असख्यात योजन भी है ॥ ७ ॥ एक अधिक पृथिवीसख्याको क्रमसे तीन, चार और सातसे गुणित करके प्राप्त राशिमे छहका भाग देनेपर जो लब्ध हो उतने कोस क्रमसे इन्द्रक, श्रेणीवद्ध और प्रकीर्णक विलोका बाहल्य जानना चाहिये ॥ ८ ॥

उदाहरण– जैसे यदि हमे छठी पृथिवीके इन्द्रकादि विलोके बाहल्यका प्रमाण जानना अभीष्ट है तो उक्त नियमके अनुसार वह इस प्रकारसे ज्ञात हो जाता है– पृथिवीसख्या ६; {(६+१)×३}–६=३$\frac{१}{२}$ कोस, छठी पृथिवीके इन्द्रकोका बाहल्य।{(६+१)×४}–६=४$\frac{२}{३}$ कोस, छठी पृथिवीके श्रे व विलोका बाहल्य।{(६+१)×७}–६=८$\frac{१}{६}$ कोस, छठी पृथिवीके प्र विलोका बाहल्य ।

पृथिवीक्रमसे इन्द्रक, श्रेणीवद्ध और प्रकीर्णक विलोका बाहल्य–

पृथिवी	घर्मा	वशा	मेघा	अरिष्टा	अजना	मघवी	माघवी
इन्द्रक	१ कोस	१$\frac{१}{२}$ को	२ को	२$\frac{१}{२}$ को	३ को	३$\frac{१}{२}$ को	४ को
श्रेणीबद्ध	१$\frac{१}{३}$,,	२ ,,	२$\frac{२}{३}$,,	३$\frac{१}{३}$,,	४ ,,	४$\frac{२}{३}$,,	५$\frac{१}{३}$,,
प्रकीर्णक	२$\frac{१}{३}$,,	३$\frac{१}{२}$,,	४$\frac{२}{३}$,,	५$\frac{५}{६}$,,	७ ,,	८$\frac{१}{६}$,,	९$\frac{१}{३}$,,

विवक्षित पृथिवीमे जितने पटल हो उनकी सख्यासे गुणित बिलके बाहल्यको प्रतर-स्थित भूमि अर्थात् पृथिवीकी जितनी मुटाईमे विल स्थित हैं उसमेसे कम करके शेषको एक कम गच्छसे गुणित करनेपर उक्त पृथिवीके बिलोका ऊर्ध्वग अन्तराल प्राप्त होता है– प्रथम पृथिवीके इन्द्रक बिलोका अन्तर $\frac{३११९८७}{४८}$, उसीके श्रे व. विलोका अन्तर $\frac{२३३९८७}{३६}$, उसीके प्रकीर्णक विलोका अन्तर $\frac{९३५९०९}{१४४}$ (देखिये पीछे श्लोक १७ का विशेषार्थ) ॥ ९ ॥

प्रथम पृथिवीके प्रथम पटलमे स्थित सीमन्तक इन्द्रक विलके पूर्वमे काक्षा, पश्चिममे महाकाक्षा, दक्षिणमे पिपासा और उत्तरमे अतिपिपासा, इन प्रसिद्ध नामोवाले चार श्रेणीवद्ध नारक विल हैं । इनके मध्यमे जो सीमन्तक इन्द्रक बिल है उसका विस्तार मनुष्यलोकके बराबर पैंतालीस लाख (४५०००००) योजन और शेष चार श्रेणीवद्धोका विस्तार असख्यात योजन मात्र है ॥ ५९-६० ॥ अनिच्छा, महानिच्छा, अविद्या और महा-अविद्या नामके चार श्रेणीवद्ध विल वशा पृथिवीके प्रथम ततक इन्द्रककी चारो दिशाओमे स्थित हैं ॥ ६१॥ दु खा, महादु खा, वेदा और महावेदा नामके चार श्रेणीवद्ध विल शैला (तृतीय) पृथिवीके तप्त इन्द्रककी पूर्वादिक

निसृष्टातिनिसृष्टा च निरोधा चाञ्जनादिका । महानिरोधा चारायाश्चत्वारो दिक्षु संस्थिता ॥ ६३
निरुद्धातिनिरुद्धा च तृतीया तु विमर्दना । महाविमर्दना चेति तमकायाश्चतुर्दिशम् ॥ ६४
नीला नाम्ना महा नीला पङ्का च मघवीगता । महापङ्का च बोद्धव्या हिमा ह्वस्य चतुर्दिशम् ॥ ६५
उष्ट्रिकाकुस्थली[1] कुम्भीमोदलीमुद्गरैः समाः । मृदङ्गनालिकातुल्या निगोदा अवनित्रये ॥ ६६
गोहस्तिहयबस्तैश्च समा अष्टघटेन च । द्रोण्यम्बरीषैश्च समा च[श्च]तुर्थी-पञ्चमीगताः ॥ ६७
झल्लरीमल्लकसमाः किलिञ्जप्रच्छिखोपमा[2]: । केदारमसुराकारा निगोदा अन्त्ययोरपि ॥ ६८
श्वशृगालवृकव्याघ्रद्वीपिकोकर्क्षगर्दभैः । गोव्यजोष्ट्रैश्च सदृशा निगोदा जन्मभूमयः ॥ ६९
एकं द्वे त्रीणि विस्तीर्णा गव्यूतिर्योजनान्यपि । शतयोजनविस्तारा उत्कृष्टास्तेषु वर्णिताः ॥ ७०

ज क्रो ५ । म १० । १५ ।

उच्छ्रिताः पञ्चगुणितं विस्तारं च पृथग्विधाः । सप्तत्रिद्व्येककोणाश्च पञ्चकोणाश्च भाषिताः ॥ ७१
त्रिद्वाराश्च त्रिकोणाश्च ऐन्द्रका इतरेषु तु । सप्तत्रिपञ्चद्व्येकानि द्वारि[3] कोणाश्च निर्दिशेत् ॥ ७२

दिशाओमे स्थित है ॥ ६२ ॥ निसृष्टा, अतिनिसृष्टा, निरोधा और महानिरोधा ये चार श्रेणी-बद्ध बिल अजना पृथिवीके प्रथम आरा इन्द्रक बिलकी चार दिशाओमे स्थित है॥ ६३॥ निरुद्धा अतिनिरुद्धा, तृतीय विमर्दना और चतुर्थ महाविमर्दना ये चार श्रेणीबद्ध बिल तमका (पाचवी पृथिवीका प्रथम इन्द्रक) की चारो दिशाओमे स्थित है ॥ ६४ ॥ नीला, महानीला, पका और महापका नामके चार श्रेणीबद्ध बिल मघवी पृथिवीके हिम नामक प्रथम इन्द्रककी चारो दिशाओमे स्थित जानने चाहिये ॥ ६५ ॥ [काल, महाकाल, रौरव और महारौरव ये चार श्रेणीबद्ध बिल माघवी पृथिवीके अवधिष्ठान इन्द्रक बिलकी चार दिशाओमे स्थित है ।]

घर्मा आदिक प्रथम तीन पृथिवियोमे स्थित जन्मभूमिया उष्ट्रिका, कुस्थली, कुम्भी, मोदली और मुद्गरके समान तथा मृदगनालिकाके समान आकारवाली हैं ॥ ६६ ॥ चौथी और पाचवी पृथिवीमे स्थित वे जन्मभूमिया गाय, हाथी, घोडा, वस्त (भस्त्रा), अष्टघट (?), द्रोणी और अम्बरीषके समान आकारवाली है ॥ ६७ ॥ अन्तिम दो पृथिवियोमे स्थित जन्मभूमिया झल्लरी, मल्लक, किलिज, प्रच्छिख (पत्थी), केदार और मसूरके समान आकारवाली तथा कुत्ता, शृगाल, वृक, व्याघ्र, द्वीपी, कोक, ऋक्ष, गर्दभ, गौ, अज और उष्ट्रके सदृश आकारवाली है ॥ ६८-६९॥ इन जन्मभूमियोका विस्तार एक, दो और तीन कोस तथा इतने योजनो प्रमाण भी है। उनमे उत्कृष्ट जन्मभूमिया सौ योजन विस्तृत कही गई है– जघन्य जन्मभूमि ५ कोस और मध्यम १०-१५ कोस विस्तृत है (?) ॥ ७० ॥ उनकी ऊचाई अपने विस्तारकी अपेक्षा पाच गुणी है । ये जन्मभूमिया सात, तीन, दो, एक और पाच कोनोवाली कही गई हैं ॥ ७१॥ इन्द्रक बिल सम्बन्धी वे जन्मभूमिया तीन द्वार व तीन कोनोवाली कही गई है । किन्तु श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलोमे उनको सात, तीन, पाच, दो, और एक द्वारो तथा इतने ही कोनोवाली कहना चाहिये॥७२॥

१ आ प कुत्थली । २ प प्रच्छिरपोपमा. । ३ ब 'त्रिद्व्येकपचानि द्वारि ।

खररूक्षघनस्पर्शा दुर्गन्धा भीमरूपका । नित्यान्धकारा अशुभा वज्रकुडचतलाश्च ते ॥ ७३
बहिरस्त्रिकुसस्थाना अन्तर्वृत्ता दुरीक्षणा[1] । निगोदा परमानिष्टाः कष्टा. पापिजनाश्रया ॥ ७४
श्वाश्वशूकरमार्जारनृखरोष्ट्राहिहस्तिनाम् । कुथितानां समस्तानां गन्धादधिकगन्धिन ॥ ७५
कच्छुरीकरपत्राश्मश्वदष्ट्रापुञ्जतोऽधिकम् । निगोदाना च तज्जाना स्पृश्यत्वमशुभ सदा ॥ ७६
सख्येयविस्तृताना तु निगोदाना यदन्तरम् । षड्गोरुत भवेद् ह्रस्व महत्तद्विगुण मतम् ॥ ७७
६ । १२ ।
असख्यविस्तृताना च सहस्राणि च सप्त च । योजनान्यतर ह्रस्वमसंख्यानि वृहद्भवेत् ॥ ७८
सप्त दण्डानि रत्नींस्त्रीनुच्छ्रिता.[तास्ते]षडङगुलान् । नारका प्रथमाया ये शेषासु द्विगुणा क्रमात् ॥
दं ७ ह ३ अं ६ । द १५ ह २ । अ १२ । द ३१ ह १ । द ६२ ह २ । द १२५ । दं २५० । द ५०० ।
एकस्त्रयश्च सप्त स्युर्दश सप्तदशैव च । द्वाविंशतिस्त्रयस्त्रिंशत्सागरास्तेषु जीवितम् ॥ ८०
दशवर्षसहस्राणि प्रथमाया जघन्यकम् । समयेनाधिक[2] पूर्व वर परजघन्यकम् ॥ ८१

वे अशुभ जन्मभूमिया तीक्ष्ण, रूक्ष एव घन स्पर्शसे सहित, दुर्गन्धसयुक्त, भयानक रूपवाली और शाश्वतिक अन्धकारमे व्याप्त हैं। उनकी भीते और तलभाग वज्रमय हैं ॥ ७३ ॥ दुर्दर्शनीय उन जन्मभूमियोका आकार बाह्यमे करोत जैसा तथा अभ्यन्तर भागमे गोल है। पापी जनोको आश्रय देनेवाली वे भूमिया अतिशय अनिष्ट और कष्टदायक हैं ॥ ७४ ॥ उपर्युक्त जन्मभूमिया कुत्ता, घोडा, शूकर, बिलाव, मनुष्य, गर्दभ, ऊट, सर्प और हाथी इन सबके सडे-गले शरीरोकी दुर्गन्धकी अपेक्षा भी अधिक दुर्गन्धसे सयुक्त हैं ॥ ७५ ॥ उन जन्मभूमियोका तथा उनमे उत्पन्न नारकियोका स्पर्श सदा कच्छुरी (कपिकच्छ), करपत्र (करोत), पत्थर और कुत्तेकी दाढोके समूहसे भी अधिक अशुभ होता है ॥ ७६ ॥

सख्यात योजन विस्तारवाले बिलोके मध्यमे जो तिरछा अन्तर है वह जघन्यसे छह (६) गव्यूति और उत्कर्षत इससे दूना (१२ गव्यूति) माना गया है ॥ ७७ ॥ असख्यात योजन विस्तारवाले बिलोका जघन्य अन्तर सात हजार (७०००) और उत्कृष्ट असख्यात योजन मात्र है ॥ ७८ ॥

प्रथम पृथिवीमे जो नारकी है वे सात धनुष, तीन रत्नि और छह अगुल ऊचे हैं। शेष दूसरी आदि पृथिवियोमे वे उत्तरोत्तर क्रमसे इससे दुगुणे दुगुणे ऊचे हैं– प्रथम नरकमे ७ धनुष ३ हाथ ६ अगुल, द्वितीयमे १५ धनुष २ हाथ १२ अगुल, तृतीयमे ३१ धनुष १ हाथ, चतुर्थमे ६२ धनुष २ हाथ, पचममे १२५ धनुष, छठेमे २५० धनुष, सातवेमे ५०० धनुष ॥ ७९ ॥

उन नरकोमे क्रमश एक, तीन, सात, दस, सत्तरह, बाईस और तेतीस सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट आयु होती है ॥ ८० ॥ जघन्य आयु प्रथम नरकमे दस हजार (१००००) वर्ष प्रमाण है। आगे द्वितीय आदि नरकोमे पूर्व पूर्व नरकोकी एक समयसे अधिक उत्कृष्ट आयुको जघन्य समझना चाहिये (जैसे – पहले नरकमे उत्कृष्ट आयु १ सागरोपम प्रमाण है, वही एक समयसे अधिक होकर दूसरे नरकमे जघन्य है, दूसरेमे जो ३ सागरोपम उत्कृष्ट आयु है वह एक समयसे अधिक होकर तीसरेमे जघन्य है, इत्यादि) ॥ ८१ ॥ कहा भी है —

१ आ प धुरीक्षणा । २ आ प समयेसाधिक ।

उक्त च [त्रि सा. १९८-२००]–

पढमिदे दसणउदीवाससहस्साउग जहण्णिदरं[1]। तो णउदिलक्खजेट्ठं असखपुव्वाण कोडी य ॥ १०

१०००० । ९०००० । ९०००००० ।

सायरदसमं तुरिये $\frac{१}{१०}$ सगसगचरिमिंदयम्मि इगि १ तिण्णि ३ ।

सत्त ७ दस १० सत्तरस १७ उवही बावीस २२ तेत्तीस ३३ ॥ ११ ॥

आदीअंतविसेसे रूऊणद्धाहिदम्मि हाणिचय । उवरिमजेट्ठ[2] समयेणहियं हेट्ठिमजहण्णं तु ॥ १२

सा $\frac{१}{१०}$ । $\frac{२}{११}$ । $\frac{४}{९}$ । $\frac{३}{७}$ । $\frac{७}{५}$ । $\frac{५}{३}$ । $\frac{११}{१}$ ।

श्वादीना कोशतोऽत्यर्थं[3] दुर्गन्धाशुचिमृत्तिकाम् । आहारन्त्यचिरेणाल्पा प्रथमाजातनारका ॥ ८२

प्रथम इन्द्रक बिलमे जघन्य आयु दस हजार (१००००) वर्ष और उत्कृष्ट नब्बै हजार (९००००) वर्ष प्रमाण है। उसके आगे द्वितीय (नरक) इन्द्रक बिलमे नब्बै लाख (९००००००) वर्ष और तृतीय (रौरुक) इन्द्रक बिलमे असख्यात पूर्वकोटि प्रमाण उत्कृष्ट आयु है॥ १० ॥ चतुर्थ इन्द्रक बिलमे नारकियोकी उत्कृष्ट आयु एक सागरोपमके दसवे भाग ($\frac{१}{१०}$) प्रमाण है। प्रथमादिक पृथिवियोमे अपने अपने अन्तिम इन्द्रक बिलमे यथाक्रमसे एक, तीन, सात, दस, सत्तरह, बाईस और तेतीस सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट आयु है– प्रथम पृथिवीके अन्तिम इन्द्रकमे १ सा, द्वि पृ के ३ सा, तृ पृ के ७ सा, च पृ के १० सा, प पृ के १७ सा, छठी पृ के २२ सा और स पृ के अन्तिम इन्द्रकमे ३३ सा है॥११॥ अन्तमेसे आदिको घटाकर जो शेष रहे उसमे एक कम अपनी इन्द्रकसख्याका भाग देनेपर विवक्षित पृथिवीमे उसकी हानि-वृद्धिका प्रमाण होता है। नीचेके इन्द्रकमे उत्कृष्ट आयुका जो प्रमाण है उसमे एक समय मिला देनेसे वह आगेके इन्द्रकमे उत्कृष्ट आयुका प्रमाण होता है॥ १२ ॥

उदाहरण— प्रथम पृथिवीके चतुर्थ इन्द्रकमे $\frac{१}{१०}$ सा और उसके अन्तिम (१३वे) इन्द्रकमे १ सा मात्र उत्कृष्ट आयु है। अत एव उपर्युक्त नियमानुसार यहा हानि-वृद्धिका प्रमाण इतना प्राप्त होता है— १–$\frac{१}{१०}$–९ (४ इ बिलोमे आयुका प्रमाण ऊपर बतलाया जा चुका है) $\frac{१}{१०}$ हा वृ । इसे उत्तरोत्तर मिलाते जानेसे आगे पाचवे आदि इन्द्रक बिलोकी उत्कृष्ट आयुका प्रमाण इस प्रकार प्राप्त होता है— पाचवे इन्द्रमे $\frac{२}{१०}$ सा, छठे इ $\frac{३}{१०}$ सा, सातवे $\frac{४}{१०}$ सा, आठवे $\frac{५}{१०}$ सा, नौवे $\frac{६}{१०}$ सा., दसवे $\frac{७}{१०}$ सा, ग्यारहवे $\frac{८}{१०}$ सा, बारहवे $\frac{९}{१०}$, तेरहवे इन्द्रकमे $\frac{१०}{१०}$=१ सा। द्वि पृथिवीमे ११ इन्द्रक बिल हैं। इनमेसे उत्कृष्ट आयु प्रथममे $\frac{१३}{११}$ और अन्तिममे $\frac{३३}{११}$ सा है। अत एव $\frac{३३-१३}{११}$— (११–१)=$\frac{२}{११}$ अथवा $\frac{३-१}{११}=\frac{२}{११}$, तृ पृ. मे $\frac{७-३}{९}=\frac{४}{९}$, च पृ मे $\frac{१०-७}{७}=\frac{३}{७}$, प पृ मे $\frac{१७-१०}{५}=\frac{७}{५}$, ष पृ. मे $\frac{२२-१७}{३}=\frac{५}{३}$, स पृ मे $\frac{३३-२२}{१}=\frac{११}{१}$ सा. हानि-वृद्धि ।

प्रथम पृथिवीमे उत्पन्न हुए नारकी कुत्ते आदिके सडे-गले शरीरकी अपेक्षा भी अत्यन्त

१ आ प जहण्णिधरं । २ प उवरि° । ३ आ प कोयतो° ।

प्रथमाहारतोऽसंख्यागुणिताशुभ[१] उत्तर । द्वितीयादिषु विज्ञेयः आहारोऽवनिषु क्रमात् ॥ ८३

गव्यूत्यभ्यन्तरे जन्तून् गन्धेनाद्यस्तु मारयेत् । आहारो गोरुतार्धार्धेनाधिक. प्रतर क्रमात् ॥ ८४

१ । ३/२ । २ । ५/२ । ३ । ७/२ । ४ । ९/२ । ५ । ११/२ । ६ । १३/२ । ७ । १५/२ । ८ । १७/२ । ९ । १९/२ । १० । २१/२ । ११ । २३/२ । १२ । २५/२ । १३ । २७/२ । १४ । २९/२ । १५ । ३१/२ । १६ ३३/२ । १७ । ३५/२ । १८ । ३७/२ । १९ । ३९/२ । २० ४१/२ । २१ । ४३/२ । २२ । ४५/२ । २३ । ४७/२ । २४ । ४९/२ । २५ ।

उक्त च [त्रि सा . १९३] —

पढमासणमिह खित्त [२]कोसद्ध गन्धदो विमारेदि । कोसद्धद्धहियधराठियजीवे पत्थरक्कमदो ॥

क्रो. १/२ । १ । ३/२ । इत्यादि ।

अवधेर्विषय. सर्व· प्रथमायां तु योजनम् । गव्यूत्यर्धार्धहानिः स्यात् [३]सप्तम्यामेकगोरुतम् ॥ ८५

क्रो. ४ । ७/२ । ३ । ५/२ । २ । ३/२ । १ ।

दुर्गन्धयुक्त, अपवित्र मिट्टीको अल्प मात्रामे जल्दी ही खाते हैं ॥ ८२ ॥ प्रथम पृथिवीके आहारकी अपेक्षा असख्यातगुणा अशुभ आहार क्रमसे द्वितीय आदि पृथिवियोमे जानना चाहिये ॥ ८३ ॥ प्रथम पृथिवी सम्बन्धी प्रथम पटलका आहार अपने गन्धके द्वारा एक कोसके भीतर स्थित मनुष्यलोकके जन्तुओको मार सकता है । आगे वह पटल क्रमसे उत्तरोत्तर आध आध कोस अधिक मनुष्यक्षेत्रके भीतरके प्राणियोका सहार कर सकता है ॥ ८४ ॥ यथा—

सीमन्तक १ कोस, निरय १½ को, रौरव २ को, भ्रान्त २½ को, उद्भ्रान्त ३ को, सम्भ्रान्त ३½ को, असम्भ्रान्त ४ को, विभ्रान्त ४½ को, त्रस्त ५ को, त्रसित ५½ को, वक्रान्त ६, अवक्रान्त ६½ को, विक्रान्त ७ को, ततक ७½ को, तनक ८ को, वनक ८½ को, मनक ९ को, खटा ९½ को, खटिक १० को, जिह्वा १०½ को, जिह्विक ११ को, लोलिका ११½ को, लोलवत्सा १२ को, स्तनलोला १२½ को, तप्त १३ को, तपित १३½ को, तपन १४ को, तापन १४½ को, निदाघ १५ को, उज्ज्वल १५½ को, प्रज्वलित १६ को, सज्वलित १६½ को, सप्रज्वलित १७ को, आरा १७½ को, मारा १८ को, तारा १८½ को, चर्चा १९ को, तमकी १९½ को, घाटा २० को, घट २०½ को, तमका २१ को, भ्रमका २१½ को, झषका २२ को, अन्धा २२½ को, तिमिश्रक २३ को, हिम २३½ को, वार्दल २४ को, लल्लकी २४½ को और अप्रतिष्ठान २५ कोस । कहा भी है—

प्रथम पृथिवीके आहारको यहा मनुष्यलोकमे रखनेपर वह अपने गन्धके द्वारा आध कोसके भीतर स्थित प्राणियोका सहार कर सकता है । आगे वह पटलक्रमसे आध आध कोस अधिक क्षेत्रमे स्थित जीवोका विघात कर सकता है ॥ १३ ॥

प्रथम पृथिवीमे अवधिज्ञानका सव विषय एक योजन प्रमाण है । आगे आधे आधे कोसकी हानि होकर सातवी पृथिवीमे वह एक कोस मात्र रह जाता है ॥ ८५ ॥

---

१ [सख्यगुणिता°] । २ आ प व कोसद्धे । ३ आ प सप्तम्योमेक ।

पञ्चेन्द्रियास्त्रियोगाश्च कषायैः सकलैर्युता । नपुसकाश्च षड्ज्ञाना दर्शनैः सहितास्त्रिभिः ॥ ८६
कुदृक् सासादनो मिश्रोऽसयतश्च चतुर्गुणाः । त्रिलेश्या भावलेश्याभिर्भव्याभव्याश्च सज्ञिन ॥ ८७
भूमी द्वे वर्जयित्वान्त्ये पञ्चम्या नियुत तथा । द्व्यग्राया नियुताशीत्या नरकेष्वौष्ण्यवेदना ॥

८२००००० ।

अरिष्टायास्त्रिभागे च भूम्योरपि च शेषयोः । निरयेषूपमातीता अत्युग्रा शीतवेदना ॥ ८९

२००००० । उक्त च [त्रि. सा. १५२, ति प २-३२]--

रयणप्पहपुढवीदो पचमतिचउत्थओ त्ति अदिउण्हं । पचमतुरिये छट्ठे सत्तमिये होदि अदिसीदं ॥

८२२५००० । १७५००० ।

मेरुसमलोहपिण्ड सीदं उण्हे विलम्हि पक्खित्तं । ण लहदि तलप्पदेस विलीयदे मयणखडं व ॥ १५
घोर तीव्र महाकष्ट भीमं भीष्म भयानकम् । दारुण विपुलं चोग्र दु खमश्नुवते खरम् ॥ ९०

प्रथममे ४ कोस, द्वितीय ३½ को , तृतीय ३ को , चतुर्थ २½ को , पचम २ को , षष्ठ १½ को , सप्तम १ कोस ।

चौदह मार्गणाओके कथनमे नरकगतिमे स्थित नारकी जीव पचेन्द्रिय, [त्रसकाय], मन वचन व काय स्वरूप तीनो योगोसे सहित, समस्त कषायोसे सयुक्त, नपुसक वेदवाले, मति, श्रुत, अवधि, कुमति, कुश्रुत और विभग इन छह ज्ञानोसे तथा चक्षु, अचक्षु और अवधि स्वरूप तीन दर्शनोसे सहित, मिथ्यादृष्टि, सासादन, मिश्र एव असयतसम्यग्दृष्टि इन चार गुणस्थानोसे युक्त, कृष्णादिक तीन भाव लेश्यायोसे [तथा एक उत्कृष्ट कृष्ण द्रव्यलेश्यासे] सहित, भव्य व अभव्य तथा सज्ञी होते हैं ॥ ८६-८७ ॥

अन्तिम दो पृथिवियोको तथा पाचवी पृथिवीके एक लाख बिलोको छोडकर शेष प्रथमादिक पृथिवियोके ब्यासी लाख (८२०००००) नारक बिलोमे उष्णताकी वेदना है। अरिष्टा (पाचवी) पृथिवीके एक त्रिभाग अर्थात् एक लाख बिलोमे तथा शेष अन्तिम दो पृथिवियोके नारक बिलोमे (१०००००+९९९९५+५=२०००००) अतिशय तीक्ष्ण शीतकी वेदना है जो उपमासे अतीत अर्थात् असाधारण है ॥ ८८-८९ ॥ कहा भी है—

रत्नप्रभा पृथिवीसे लेकर पाचवी पृथिवीके तीन बटे चार भाग ($\frac{३०००००\times३}{४}$= २२५०००) तक अत्यन्त उष्णवेदना है। आगे पाचवी पृथिवीके शेष एक चतुर्थ भाग ($\frac{१}{४}$) ($\frac{३०००००\times१}{४}$=७५०००) तथा छठी और सातवी पृथिवीमे अत्यन्त शीतवेदना है ॥ १४ ॥

प्रथम पृथिवीके ३००००० + द्वि पृ २५००००० + तृ पृ १५००००० + च पृ. १०००००० + प पृ $\frac{३०००००\times३}{४}$=८२२५०००, इतने नारक बिलोमे उष्णवेदना तथा प पृ $\frac{३०००००\times१}{४}$ + छठी पृ ९९९९५ + सातवी पृ ५=१७५०००, इतने बिलोमे शीत वेदना है।

यदि उष्ण बिलमे मेरुके बराबर लोहेका शीत पिण्ड फेंका जावे तो वह तल प्रदेशको न प्राप्त होकर बीचमे ही मदनखण्ड अर्थात् मैनके खण्डके समान विलीन हो सकता है ॥ १५॥

उन नरकोमे जीवोको घोर, तीव्र, महाकष्ट, भीम, भीष्म, भयानक, दारुण, विपुल, उग्र और तीक्ष्ण दुख प्राप्त होता है ॥ ९० ॥

द्वयो कपोतलेश्यास्तु नीललेश्याश्च तत्परे । नीला एवाञ्जनोत्पन्ना नीलकृष्णाश्च तत्परे ।। ९१
षठ्यां दु कृष्णलेश्यास्ते महाकृष्णास्तत. परे । क्रमशोऽशुभवृद्धि' स्यात्तत्र सप्तसु भूमिषु ।। ९२
सचतुर्भागगव्यूतिस्तिस्रो योजनसप्तकम् । घर्मायामुत्पतन्त्यार्ता. शेषासु द्विगुणा. क्रमात् ।। ९३
यो ७ क्रो ३¼ । १५ क्रो २½ । ३१ क्रो १ । ६२ क्रो २ । १२५ । २५० । ५०० ।
षट्चतुष्क मुहूर्तानि सप्ताह पक्ष एव च । मासो मासौ च चत्वार. षण्मासा जननान्तरम् ।। ९४
मु. २४ । दि ७ । १५ । मा १ । २ । ४ । ६ ।
कर्मभूमिमनुष्याश्च तिर्यञ्च सकलेन्द्रिया' । नरकेषूपपद्यन्ते निर्गताना च सा गति. ।। ९५
अमनस्का प्रसर्पन्त पक्षिणोऽपि भुजगमा. । सिंहा स्त्रियो मनुष्याश्च साप्चरा यान्ति ता. क्रमात् ।।
एका द्वे खलु तिस्रश्च चतस्र पञ्च षट् तथा । सप्त च क्रमशो भूमीर्गन्तुमर्हन्ति जन्तव ।। ९७
सप्तम्या निर्गतो जन्तुर्यायात्सकृदनन्तरम् । द्वि र्षष्ठि पञ्चमीं च त्रिश्चतुर्थीं च चतुस्तत. ।। ९८
पञ्चकृत्वस्तृतीया च वश्या षट्कृत्व एव च । सप्तकृत्वो विशेदाद्या प्रथमाया विनिर्गत. ।। ९९

प्रथम दो पृथिवियोमे उत्पन्न नारकियोके कपोत लेश्या, उसके आगे तृतीय पृथिवीमे नील लेश्या, चतुर्थ अजना पृथिवीमे उत्पन्न नारकियोके एक नील लेश्या, पाचवीमे नील और कृष्ण, छठीमे दु कृष्ण लेश्या (मध्यम कृष्णलेश्या) और उसके आगे सातवी पृथिवीमे उत्पन्न नारकियोके महाकृष्ण लेश्या होती है । इस प्रकार उन सात पृथिवियोमे क्रमसे अशुभ लेश्याकी वृद्धि होती गई है ।। ९१-९२ ।।

घर्मा पृथिवीमे उत्पन्न हुए नारकी जीव पीडित होकर जन्मभूमिसे नीचे गिरते हुए सात योजन, तीन कोस और एक कोसके चतुर्थ भाग (५०० धनुप) प्रमाण ऊपर उछलते हैं । शेष पृथिवियोमे वे क्रमश इससे दूने दूने ऊपर उछलते हैं ।। ९३ ।। उछलन प्रथम पृथिवीमे ७ यो ३¼ को, द्वि पृ १५ यो २½ को, तृ पृ ३१ यो १ को, च पृ ६२ यो २ को, प पृ १२५ यो, ष पृ. २५० यो, स पृ ५०० यो ।

छह चतुष्क अर्थात् चौबीस (६×४) मुहूर्त, एक सप्ताह, एक पक्ष, एक मास, दो मास, चार मास और छह मास, इतना क्रमसे उन घर्मा आदि सात पृथिवियोमे नारकी जीवोके जन्म-मरणका अन्तर होता है ।। ९४ ।।

अन्तर— प्रथम पृथिवीमे २४ मुहूर्त, द्वि पृ. ७ दिन, तृ पृ १५ दिन, च पृ १ मास, प पृ २ मास, ष पृ ४ मास, स पृ ६ मास ।

कर्मभूमिके मनुष्य और तिर्यंच पचेन्द्रिय जीव उन नरकोमे उत्पन्न होते है । तथा उन नरकोसे निकले हुए नारकी जीवोकी वही गति भी होती है, अर्थात् उक्त नरकोसे निकले हुए जीव कर्मभूमिके मनुष्य और तिर्यंच पचेन्द्रियोमे ही उत्पन्न होते हैं ।। ९५ ।। असज्ञी, सरीसृप, पक्षी, सर्प, सिंह, स्त्रिया और अप्चरो (जलचरो) अर्थात् मत्स्योके साथ मनुष्य भी क्रमश उन पृथिवियोको प्राप्त होते हैं । असज्ञी जीव एक मात्र घर्मा पृथिवीमे जानेकी योग्यता रखते हैं । इसी प्रकार सरीसृप दो (प्रथम और द्वितीय), पक्षी तीन, सर्प चार, सिंह पाच, स्त्रिया छह तथा मत्स्य व मनुष्य सातो ही पृथिवियोमे जानेकी योग्यता रखते हैं ।। ९६-९७ ।। सातवी पृथिवीसे निकला हुआ जीव यदि निरन्तर सातवी पृथिवीमे जाता है तो वह एक वार ही जाता है । छठी पृथिवीसे निकला जीव यदि फिरसे वहा निरन्तर जाता है तो वह दो वार जाता है । इसी प्रकार पाचवीसे निकला हुआ तीन वार, चौथीसे निकला हुआ चार वार, तीसरीसे निकला हुआ पाच वार, दूसरी वशा पृथिवीसे निकला हुआ छह वार और पहिलीसे निकला हुआ जीव सात वार उन उन पृथिवियोमे निरन्तर प्रविष्ट हो सकता है ।। ९८-९९ ।।

सप्तम्या अप्रतिष्ठानाच्च्युत्वा तं यद्यनन्तरम् । विशेत्पुनः सकृद्यायात् कालादीन् द्विर्धरा अपि ॥
शेषामवनिमेकैकां नरकावासमेव वा । ततश्च्युतस्तया यायात्प्रत्येकं च त्रिरादि स ॥ १०१

पाठान्तरम् ।

नरकान्निर्गतः कश्चिच्चक्रवर्त्यप्यनन्तरम् । रामः कृष्णोऽथवान्यो वा न भवेदिति निश्चितम् ॥

विशेषार्थ– इसका अभिप्राय यह है कि सातवी पृथिवीसे निकला हुआ नारकी जीव यदि फिर निरन्तर स्वरूपसे वहा जावे तो वह एक वार ही जावेगा, अधिक वार नही । छठी पृथिवीसे निकला हुआ जीव यदि निरन्तर स्वरूपसे छठी पृथिवीमे जाता है तो वह दो वार ही वहा जा सकेगा, अधिक नही । इसी प्रकार पाचवी आदि पृथिवियोसे निकले हुए जीवोकी भी वहा निरन्तर गति क्रमसे तीन, चार, पाच, छह और सात वार ही हो सकती है– इससे अधिक बार नही हो सकती । इस विषयमे तिलोयपण्णत्ती (२, २८६) और त्रिलोकसार (२०५) के रचयिताओका अभिप्राय इससे भिन्न रहा प्रतीत होता है । उनके अभिप्रायानुसार सातवी आदि पृथिवियोसे निकले हुए जीवोके निरन्तर स्वरूपसे उन उन पृथिवियोमे जानेका क्रम यथाक्रमसे इस प्रकार है– दो, तीन, चार, पाच, छह सात और आठ । त्रिलोकसारकी टीका (माधवचन्द्र त्रैविद्य देवकृत) मे इसका स्पष्टीकरण करते हुए बतलाया है कि कोई असज्ञी जीव प्रथम नरकमे जाकर और फिर वहासे निकलकर सज्ञी हुआ । पुन मरणको प्राप्त होकर वह असज्ञी होता हुआ फिरसे प्रथम नरकमे उत्पन्न हुआ । यह एक वार उत्पत्ति हुई । इसी प्रकारसे असज्ञी जीव निरन्तर स्वरूपसे वहा आठ वार उत्पन्न हो सकता है । चूकि असज्ञी जीवका नरकमे जाकर और वहासे निकल कर असज्ञी हो फिरसे प्रथम नरकमे जाना शक्य नही है, अतएव यहा एक अन्तर (सज्ञी पर्यायका) ग्रहण करना चाहिये । परन्तु सरीसृप आदि जीव नरकमे जाकर और वहासे निकल कर फिरसे सरीसृप आदि होते हुए निरन्तर स्वरूपसे ही उन उन नरकोमे जा सकते है, अत एव उनके विषयमे एक अन्तर नही ग्रहण किया जा सकता है । मत्स्य सातवे नरकमे जाकर और वहासे निकल कर तिर्यंच हो मरा और फिरसे मत्स्य हुआ । तत्पश्चात् वह मरणको प्राप्त होकर पुन सातवे नरकमे जाता है । इसी प्रकार मनुष्यकी भी वहा दो वार निरन्तर उत्पत्ति समझना चाहिये ।

पाठान्तर– सातवी पृथिवीके अप्रतिष्ठान नामक बिलसे निकल कर जीव यदि निरन्तर उसमे प्रविष्ट होता है तो वह एक वार वहा फिरसे जा सकता है । परन्तु इसी पृथिवीके काल आदि (रौरव, महाकाल व महारौरव) बिलोमे वह दो वार भी जा सकता है । शेष छठी आदि पृथिवियोमेसे प्रत्येक पृथिवीमे अथवा बिलोमे वहासे च्युत होकर यदि कोई निरन्तर रूपसे फिर वहा उत्पन्न होता है तो वह प्रत्येकमे यथाक्रमसे तीन आदि (चार, पाच, छह, सात व आठ) वार जा सकता है । यह अभिमत तिलोयपण्णत्ती और त्रिलोकसारमे निर्दिष्ट अभिमतसे समानता रखता है ॥ १००-१०१ ॥

नरकसे निकल कर कोई भी जीव अनन्तर भवमे चक्रवर्ती, राम (बलदेव), कृष्ण (नारायण) अथवा अन्य (प्रतिनारायण) नही हो सकता है, यह निश्चित है ॥ १०२ ॥

तिसृभ्यो निर्गतो जीव. कश्चित्तीर्थकरो भवेत् । चतसृभ्यो हि मोक्षार्ह. पञ्चभ्य सयतोऽपि च ॥
सयतासयतः षष्ठ्या. सप्तम्यास्तु मृतोद्गत. । सम्यक्त्वार्हो भवेत्कश्चित्तिर्यक्ष्वेष्वात्र जायते ॥१०४

उक्त च [त्रि सा २०४]—

णिरयचरो णत्थि हरी वलचक्की तुरियपहुदिणिस्सरिदो ।
तित्थचरमगसजद मिस्सतिय णत्थि णियमेण ॥१६

विक्रिया त्वशुभा तेषामपृथक्त्वेन भाषिता । आयुधानि शरादीनि अग्न्यादित्व च कुर्वते ॥ १०५
शङ्कुतोमरकुन्तेष्टिप्रासवास्यसिमुद्गरान् । चक्रक्रकचशूलादीन् स्वाङ्गैरेव विकुर्वते ॥ १०६
अग्निवायुशिलावृक्षक्षारतोयविषादिताम् । गत्वा परस्पर घोर घातयन्ति सदापि ते ॥ १०७
व्याघ्रगृध्रमहाकङ्कध्वाक्षकोकवृकश्वताम् । विकृत्य विविधै रूपैर्बाधन्ते च परस्परम् ॥ १०८
वधबन्धनबाधाभिश्छिदताडनतोदनै [1] । स्फाटनच्छोटनच्छेदक्षोदतक्षणभक्षणै ॥ १०९
सततैश्चरितैस्तीव्रैरशुभैरिति गर्हितै । तुष्यन्ति च चिर ते च गमयन्ति च जीवितम् ॥ ११०
तप्तलोहसमस्पर्शशर्कराक्षुरवालुका । मुर्मुराङ्गारिणी भूमि. सूचीशाद्वलसचिता [2] ॥ १११

प्रथम तीन पृथिवियोसे निकला हुआ कोई जीव तीर्थंकर हो सकता है, चार पृथिवियोसे निकला हुआ जीव मोक्ष जानेके योग्य होता है, पाच पृथिवियोसे निकला हुआ कोई जीव सयत हो सकता है, छठी पृथिवीसे निकला हुआ जीव सयतासयत हो सकता है, तथा सातवी पृथिवीसे मरकर निकला हुआ कोई जीव सम्यक्त्वप्राप्तिके योग्य होता है, परन्तु वह यहा तिर्यंचोमे ही उत्पन्न होता है ॥ १०३-४ ॥ कहा भी है–

पूर्व भवका नारकी जीव नारायण, बलदेव और चक्रवर्ती नही होता । चतुर्थ आदि पृथिवियोसे निकला हुआ जीव क्रमसे तीर्थंकर, चरमशरीरी, स यत और मिश्रत्रय (मिश्र असयत, सम्यग्दृष्टि, और सयतासयत) को नियमत प्राप्त नही होता॥ १६॥

उन नारकी जीवोके अशुभ अपृथक् विक्रिया कही गई है । वे बाण आदि आयुधोकी तथा अग्नि आदिकी अपनेसे अपृथक् विक्रिया किया करते हैं । वे अपने अगोसे ही शकु, तोमर (वाण), कुन्तेष्टि (भाला की लकडी), प्रास (भाला), वासी, तलवार, मुद्गर, चक्र, क्रकच (आरी) और शूल आदिकोकी विक्रिया करते है॥ १०५-६॥ वे नारकी सदा ही अग्नि, वायु, शिला, वृक्ष, क्षार जल और विष आदिके स्वरूपको प्राप्त होकर एक दूसरेको भयानक कष्ट पहुचाते हैं ॥१०७॥ वे व्याघ्र, गिद्ध, महाकक (पक्षिविशेष), काक, चक्रवाक, भेडिया और कुत्ता, इन हिंसक जीवोकी अनेक प्रकारके रूपो द्वारा विक्रिया करके परस्परमे बाधा पहुचाते है ॥ १०८॥ उक्त नारकी जीव वध-बन्धन रूप बाधाओसे तथा छिद् (छेदन), ताडन, तोदन, स्फाटन, छोटन, छेद, क्षोद, तक्षण और भक्षण स्वरूप निरन्तर आचरित तीव्र, अशुभ एव निन्द्य प्रवृत्तियोके द्वारा सन्तुष्ट होते हैं और चिर काल (कई सागरोपम) तक अपने जीवनको बिताते हैं ॥ १०९-११० ॥ मुर्मुर (उपलोकी अग्नि) के समान अगारवाली वहाकी भूमि तपे हुए लोहेके समान स्पर्शयुक्त पाषाणो एव छुराके समान तीक्ष्ण बालुसे सयुक्त तथा सुईके समान नुकीले

१ आ प 'भिचिदताडण'। २ ब स्याद्वल'।

वृश्चिकाणा सहस्राणा वेदनादतिदु सहम् । दुःखमुत्पद्यते तत्र भूमिस्पर्शनमात्रत ॥ ११२
सज्वाला विस्फुलिङ्गाङ्गचः[1] प्रतिमा लोहसनिभा । परशुच्छुरिकाबाणाद्यसिपत्रवनानि च ॥
वेतालगिरयो भीमा गुहायन्त्रशतोत्कटाः । कूटशाल्मलयोऽचिन्त्या वैतरण्योऽपि निम्नगाः ॥ ११४
घूकशोणितदुर्गन्धा कृमिकोटिकुलाकुलाः । ह्रदाश्च परितस्तत्र त्रस्तकातरदुस्तराः ॥ ११५
अग्निभीताः प्रधावन्तो गत्वा वैतरणीं नदीम् । शीत तोयमिति ज्ञात्वा क्षाराम्भसि पतन्ति ते ॥
क्षारदग्धशरीराश्च मृगवेगोत्थिताः पुनः । असिपत्रवन यान्ति छायेति कृतबुद्धय ॥ ११७
शक्तिकुन्तासियष्टीभि खड्गतोमरपट्टिसैः । छिद्यन्ते कृपणास्तत्र पतद्भिर्वातकम्पितै. ॥ ११८
छिन्नपादभुजस्कन्धाश्छिन्नकर्णोष्ठनासिका । छिन्नतालुशिरोदन्ताश्छिन्नाक्षिहृदयोदराः ॥ ११९
असह्य शीतमुष्ण च पृथिवी चातिदुस्सहा । क्षुधातृषाभयत्रासवेदनाश्चात्र सतताः ॥ १२०
लोहाम्भोभरिताः कुम्भ्य कटाहाः क्वथितोदका । चित्राः प्रज्वलिता शूला भर्जनानि बहूनि च ॥
बहून्येव प्रकाराणि यातनाकारणानि तु । विक्रियातः स्वभावाच्च प्राणिनां पापकर्मणाम् ॥ १२२

नवीन तृणोसे व्याप्त है ॥ १११ ॥ वहाकी भूमिके स्पर्श मात्रसे हजारो विच्छुओके काटनेकी वेदनासे भी अत्यन्त दु सह वेदना उत्पन्न होती है ॥ ११२ ॥

वहा चारो ओर ज्वाला एव विस्फुलिंगोसे व्याप्त अगवाली लोहसदृश (या लोह-निर्मित) प्रतिमाये, फरसा, छुरी व बाण आदिके समान तीक्ष्ण पत्तोवाले असिपत्रवन, सैकडो गुफाओ एव यत्रोसे उत्कट ऐसे भयानक वेतालगिरि, अचिन्त्य कूटशाल्मली, वैतरणी नदिया, तथा उलूकोके खूनसे दुर्गन्धित और करोडो कीडोके समूहोसे व्याप्त ऐसे तालाब है जो कातर नारकियोके लिये दुस्तर है ॥ ११३-११५ ॥ अग्निसे भयभीत होकर दौडते हुए वे नारकी वैतरणी नदीपर जाते है और शीतल जल समझकर उसके खारे जलमे जा गिरते है ॥ ११६ ॥ उस खारे जलसे शरीरमे दाहजनित पीडाका अनुभव करनेवाले वे नारकी मृगके समान वेगसे उठकर फिर छायाकी अभिलाषासे असिपत्रवनमे प्रविष्ट होते है। परन्तु वहा भी वे निकृष्ट नारकी वायुसे कम्पित होकर गिरनेवाले शक्ति, भाला, तलवार, यष्टि, खड्ग, बाण और पट्टिस (शस्त्रविशेष), इन आयुधोके द्वारा छेदे जाते है ॥ ११७-१८ ॥ उक्त आयुधोके द्वारा उन नारकियोके पैर, भुजाये, कन्धे, कान, ओठ, नाक, तालु, शिर, दात, आखे, हृदय और उदर छिन्न-भिन्न हो जाते हैं ॥ ११९ ॥ नरकोमे शीत व उष्णकी वेदना असह्य होती है । वहाकी पृथिवी दु सह दुखको देनेवाली है। नरकोमे क्षुधा, तृषा और भयके कष्टका वेदन निरन्तर हुआ करता है ॥ १२० ॥ वहापर लोहजलसे भरी हुई कुम्भिया (घडे), उबलते हुए जलसे परिपूर्ण कडाहे, जलते हुए विचित्र शूल (शस्त्रविशेष) और बहुतसे भाड (भट्टिया), इस प्रकारके बहुत-से यातनाके कारण उन पापी नारकियोके लिये स्वभावसे और विक्रियासे भी प्राप्त होते है ॥ १२१-२२ ॥

। १ प ॅलिगाढ्य ।

कुमार्गगतचारित्रा देवाश्चासुरकायिका । नारकानतिबाधन्ते तिसृष्वाद्यासु भूमिषु ॥ १२३
मेषकुक्कुटयुद्धाद्यै रमन्तेऽत्र यथा नरा । तथापि[1] ते रतिं यान्ति रागवेगेन पूरिता ॥ १२४
ईप्सितालाभतो दु खमनिष्टैश्च समागमात् । अवमानभयाच्चैव जायते सागरोपमम् ॥ १२५
सहस्रशोऽपि छिन्नाङ्गा न म्रियन्ते हि नारका । सूतकस्य रसस्येव सहन्यन्ते तनोर्लवा ॥ १२६
अकालमरण नैषा समाप्ते पुनरायुषि[2] । विध्वसन्ते च तत्काया वायुना भ्रलवा इव ॥ १२७

कुचरितचितै[3] पापैस्तीव्रैरधोगतिपातिता,
अवशशरणा शीतोष्णादिक्षुधावधपीडिता ।
अतिभयरुज श्राम्यन्त्यार्ता श्रमैर्वत नारका,
श्वगणविषमव्याधाक्रान्ता यथा हरिणीवृषाः ॥ १२८ ॥

इति अधोलोकविभागो नामाष्टम प्रकरण समाप्तम् ॥ ८ ॥

वहा प्रथम तीन पृथिवियोमे कुमार्गगत चारित्रवाले (दुष्ट आचरण करनेवाले) असुर जातिके देव भी उन नारकियोको अत्यन्त बाधा पहुचाते हैं। जैसे यहापर मनुष्य मेषो और मुर्गों आदिको लडाकर आनन्दित होते है वैसे वे भी रागके वेगसे परिपूर्ण होते हुए उन नारकियोको परस्परमे लडाकर आनन्दको प्राप्त होते है ॥ १२३-२४ ॥ उक्त नारकी जीवोको इष्ट वस्तुओका लाभ न हो सकनेसे, अनिष्ट वस्तुओका सयोग होनेसे, तथा अपमान एवं भयके कारण भी समुद्रके समान महान् (अथवा सागरोपम काल तक) दुख होता है ॥ १२५ ॥ नारकी जीव हजारो प्रकारसे छिन्नशरीर होकर भी मरणको प्राप्त नही होते । उनके शरीरके टुकडे पारेके समान विखर कर फिरसे जुड जाते हैं ॥ १२६ ॥ इनका अकालमरण नही होता, परन्तु आयुके समाप्त होनेपर उनके शरीर इस प्रकार नष्ट हो जाते जिस प्रकार कि वायुके द्वारा अभ्रकके टुकडे विखर कर नष्ट हो जाते हैं॥१२७॥ दुष्टतापूर्ण आचरणोसे सचित हुए तीव्र पापोके द्वारा अधोगतिमे डाले गये, अवश, अशरण, शीत व उष्ण आदिकी बाधाके साथ क्षुधा एव वधकी पीडासे सहित, तथा अतिशय भयरूप रोगसे सयुक्त ऐसे वे नारकी जीव श्रमोसे पीड़ित होकर इस प्रकार दुखी होते है जैसे कि कुत्तोके समूहके साथ भयानक व्याधसे त्रस्त होकर हरिणी एव हरिण दुखी होते हैं ॥ १२८ ॥

इस प्रकार अधोलोकविभाग नामका आठवा प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ८ ॥

---

१ [तथैव]। २ आ प समाप्तेषु नरायुषि । ३ प चित्तै ।

[नवमो विभागः]

अनन्तदर्शनज्ञानान् प्राप्तानन्त भवोदधेः । नत्वा व्यन्तरदेवानां विकल्पोऽत्र प्रवक्ष्यते ॥ १
औपपातिकसज्ञाश्च अन्ये चाध्युषिता इति । अभियोग्यास्तृतीयाश्च त्रिविधा व्यन्तरा सुराः ॥ २
भवनान्यथ चावासा भवनाख्यपुराणि तु । स्थानानि त्रिविधान्याहुर्व्यन्तराणां समन्ततः ॥ ३
अष्टौ तु किंनराद्यास्तु भवन्त्यावासवासिनः । द्विविधेषु वसन्त्येते भवनेषु पुरेषु च ॥ ४
तिर्यगूर्ध्वाधरे लोके मेरुमात्रप्रमाणके । वसत्यस्त्रिविधास्तत्र व्यन्तराणामवारिताः[1] ॥ ५
वसुधरायां चित्रायां सन्त्यत्र भवनानि हि । आवासास्तु न विद्यन्ते इति शास्त्रस्य निर्णयः ॥ ६
केषांचिद्भवनान्येव भवनावासा भवन्ति च । अन्येषामपरेषां च भवनावासपुराणि हि ॥ ७
आवासा वर्णिताः सर्वे प्राकारपरिवारिताः । भावनेष्वसुरांस्त्यक्त्वा केचित्स्युस्त्रिविधालयाः ॥ ८
भवनानां तु सर्वेषा वेदिकाः परितो मताः । क्रोशद्वयोच्चा[2] महता शतहस्ताः परत्र च ॥ ९
द्वादशापि सहस्राणि द्वे शते च पृथूनि च । महान्त्यल्पानि मानेन त्रिक्रोशानीति लक्षयेत् ॥ १०
। १२२०० । [३] ।
बाहल्याद्भवनं वेद्यं शतानि त्रीणि यन्महत् । भवनेषु च सर्वाल्प त्रिकोशं बहलं मतम् ॥ ११
। ३०० । [३] ।

जो अनन्तदर्शन एव अनन्तज्ञानसे युक्त होकर ससार-समुद्रके अन्तको प्राप्त हो चुके हैं [ऐसे सिद्धोको] नमस्कार करके यहा व्यन्तर देवोके विकल्पको कहते हैं ॥ १ ॥ औपपातिक सज्ञावाले, दूसरे अध्युषित और तीसरे अभियोग्य इस प्रकार व्यन्तर देव तीन प्रकारके है ॥ २ ॥ भवन, आवास और भवनपुर ये तीन प्रकारके व्यन्तरोके स्थान सब ओर कहे गये है ॥ ३ ॥ किनर आदि आठ प्रकारके व्यन्तर देव आवासोमे निवास करनेवाले हैं, ये भवन और भवनपुर इन दो प्रकारके निवासस्थानोमे रहते है ॥ ४ ॥ मेरुमात्र प्रमाणवाले तिर्यग्लोक, ऊर्ध्व लोक और अधोलोकमे व्यन्तर देवोकी उपर्युक्त तीन प्रकारकी अवारित (स्वतन्त्र) वसतिया हैं ॥ ५ ॥ यहा चित्रा पृथिवीपर भवन स्थित है, किन्तु वहा आवास नही है, यह शास्त्रका निर्णय है ॥ ६ ॥ उपर्युक्त व्यन्तरोमेसे किन्हीके भवन ही हैं, दूसरोके भवन व आवास दो हैं, तथा इतर व्यन्तरोके भवन, आवास एव भवनपुर तीनो ही होते हैं ॥ ७ ॥ सब आवास प्राकारसे परिवेष्टित बतलाये गये हैं। भवनवासी देवोमे असुरकुमारोको छोडकर किन्हीके तीनो प्रकारकी वसतियां हैं ॥ ८ ॥ सब भवनोके चारो ओर वेदिकाये मानी गई हैं। ये वेदिकाये महाभवनोकी दो कोस ऊची तथा अन्य भवनोकी सौ (१००) हाथ ही ऊची हैं ॥ ९ ॥ महाभवनोका विस्तार बारह हजार दो सौ (१२२००) योजन और अल्प भवनोका विस्तार तीन (३) कोस जानना चाहिये ॥ १० ॥ इन भवनोमे जो महाभवन है उसका वाहल्य तीन सौ (३००) योजन तथा

१ प मवारित । २ व द्वयोश्चा ।

शतयोजनबाहल्यं कूटमुत्कृष्टके मतम् । बहलं क्रोशमात्रं तु जघन्ये भवने भवेत् ॥ १२
द्वीपेषु सागरस्थेषु भवनाख्यपुराणि तु । [1]हृदपर्वतवृक्षाश्च श्रिता. प्रतिवसन्ति ते ॥ १३
पुराणि वृत्तत्र्यस्राणि[2] चतुरस्राणि कानिचित् । दभ्राणि योजनोरूणि नियुत तु वृहन्ति च ॥ १४
। १००००० ।
तिर्यग्द्वीपसमुद्रेषु असख्येयेषु तानि च । रम्याणि बहुरूपाणि नानारत्नमयानि च ॥ १५
उक्त च चतुष्क [त्रि. सा. २९८, ति. प. ६-१२, त्रि सा २९९-३००]–
जेट्ठावरभवणाण वारसहस्स तु सुद्धपणुवीसं। बहल तिसय तिपाद वहलतिभागुदयकूड च ॥ १
। १२००० । २५ । ३०० । ¾ । १०० । ¼ ।
कूडाण उवरिभागे[3] चिट्ठते जिणवरिंदपासादा। कणयमया रजदमया रयणमया विविहविण्णासा॥
जेट्ठभवणाण परिदो वेदी जोयणदलुच्छिया होदि । अवराण भवणाण दडाण पण्णवीसुदया ॥ ३
वट्टादीण पुराण जोयणलक्ख कमेण एक्क च । [4]आवासाण विसयाहियवारसहस्स य तिपाद ॥४
। १२२०० । ¾ ।
पिशाचभूतगन्धर्वा किंनरा· समहोरगा. । रक्ष किंपुरुषा यक्षा निकाया व्यन्तरेष्विमे ॥ १६
कूष्माण्डा राक्षसा यक्षा समोहास्तारकास्तथा । चौक्षा कालमहाकाला अचौक्षाश्च सतालका· ॥

सवसे छोटे भवनका वाहल्य तीन (३) कोस माना गया है ॥ ११ ॥ उत्कृष्ट भवनमे एक सौ (१००) योजन वाहल्यवाला तथा जघन्य भवनमे एक कोस मात्र वाहल्यवाला कूट होता है ॥ १२ ॥ समुद्रस्थ द्वीपोमे भवन नामक पुर (भवनपुर ?) होते हैं। वे (आवास ?) तालाव, पर्वत और वृक्षोके आश्रित होकर रहते है ॥ १३ ॥ पुरोमेसे कितने ही गोल, त्रिकोण तथा चतुष्कोण भी होते हैं। इनमे क्षुद्र पुर एक योजन उरु (विस्तीर्ण) तथा महापुर एक लाख (१०००००) योजन उरु होते हैं ॥ १४॥ तिरछे असख्यात द्वीप-समुद्रोमे स्थित वे पुर रमणीय, वहुत आकारवाले और नाना रत्नमय हैं ॥ १५ ॥ यहा चार गाथाये भी कही गई हैं—

उत्कृष्ट और जघन्य भवनोका विस्तार क्रमश वारह हजार (१२०००) और शुद्ध (केवल) पच्चीस (२५) योजन मात्र है। वाहल्य उनका तीन सौ (३००) योजन और पौन (¾) योजन होता है। उनके मध्यमे वाहल्यके तृतीय भाग (१०० यो, ¼ यो.) प्रमाण ऊचा कूट अवस्थित होता है ॥ १ ॥ कूटोके उपरिम भागमे अनेक प्रकारकी रचनायुक्त सुवर्णमय, रजतमय और रत्नमय जिनेन्द्रप्रासाद अवस्थित है ॥ २ ॥ उत्कृष्ट भवनोके चारो ओर आधा योजन ऊची तथा जघन्य भवनोके चारो ओर पच्चीस धनुष ऊची वेदिका होती है ॥ ३ ॥ वृत्त आदि पुरोका [उत्कृष्ट व जघन्य] विस्तार क्रमसे एक लाख (१०००००) योजन और एक(१) योजन मात्र तथा आवासोका वह विस्तार क्रमसे वारह हजार दो सौ (१२२००) और पौन (¾)योजन प्रमाण होता है ॥ ४ ॥

पिशाच, भूत, गन्धर्व, किंनर, महोरग, राक्षस, किंपुरुष और यक्ष, ये व्यन्तरोमे आठ निकाय (भेद) हैं ॥१६॥ कूष्माण्ड, राक्षस, यक्ष, समोह, तारक, चौक्ष (शुचि), काल, महाकाल,

१ प ब हृद । २ आ त्र्यश्राणि प त्रयाणि । ३ आ प वउरिभागे । ४ आ प आवासाण विसय विसया॰ ।

देहाश्चान्ये महादेहास्तूष्णीका: प्रवचनाख्यका: । चतुर्दशकुला एव पिशाचव्यन्तरा: स्मृता: १८
इन्द्रौ कालमहाकालौ पिशाचाना प्रकीर्तितौ । पल्योपमायुषावेतौ द्वे द्वे देव्यौ च वल्लभे ।। १९
कालस्याग्रमहिष्यौ द्वे कमला कमलप्रभा । महाकालस्य देवस्य उत्पला च सुदर्शना ।। २०
एकैकस्या. परीवारा' सहस्र खलु योषिताम् । अर्धपल्योपमायुष्काश्चतस्रोऽपि वरस्त्रिय:।।
सुरूपा. प्रतिरूपाश्च तथा भूतोत्तमा परे । प्रतिभूता महाभूता: प्रतिच्छनाश्च नामत: ।। २२
आकाशभूता इत्यन्ये भूतानां सप्तमो गण: । सुरूप' प्रतिरूपश्च तेशामिन्द्रौ मनोहरौ ।। २३
रूपवत्युदिता देवी बहुरूपा च वल्लभा । सुरूपे प्रतिरूपस्य सुसीमासुमुखे प्रिये ।। २४
हाहासज्ञाश्च गन्धर्वा हूहूसज्ञाश्च नारदा । तुम्बर्वाख्या. कदम्बाश्च वासवाश्च महास्वरा ।। २५
गीलरतीनी[गी]तयशोनामानो भैरवा अपि । इन्द्रौ नीतरतिस्तेषामन्यो नीतयशा[१] इति ।। २६
सरस्वती प्रियाद्यस्य स्वरसेना च नामत: । नन्दनीति द्वितीयस्य देवी च प्रियदर्शना।। २७
दशधा किंनरा देवा आद्या: किंपुरुषा ह्वका । द्वितीया' किंनरा एव तृतीया हृदयगमा' ।। २८
रूपपालिन इत्यन्ये परे किंनरकिंनरा. । अनिन्दिता मनोरम्या अपरे किंनरोत्तमा: ।। २९
रतिप्रिया रतिज्येष्ठा इति भेदा दशोदिता । इन्द्र: किंपुरुषाख्योऽत्र किंनरश्च प्रकीर्तित. ।। ३०
अवतसा केतुमत्या वल्लभे प्रथमस्य ते । रतिषेणा द्वितीयस्य देवी चापि रतिप्रिया ।। ३१

अचौक्ष (अशुचि), सतालक, देह, महादेह, तूष्णीक और प्रवचन, ये पिशाच व्यन्तरोके चौदह (१४) कुल माने गये है ।। १७-१८ ।। इन पिशाचोके काल और महाकाल नामके दो इन्द्र कहे गये है। इनकी आयु पल्य प्रमाण होती है । उनमेसे प्रत्येकके दो दो वल्लभा देविया है– काल इन्द्रकी उन अग्रदेवियोके नाम कमला और कमलप्रभा तथा महाकालकी अग्रदेवियोके नाम उत्पला और सुदर्शना हैं । इन अग्रदेवियोमेसे प्रत्येकके एक हजार (१०००) प्रमाण परिवार देविया होती हैं। उन चारो अग्रदेवियोकी आयु अर्ध पल्योपम प्रमाण जानना चाहिये ।।१९-२१।।

सुरूप, प्रतिरूप, भूतोत्तम, प्रतिभूत, महाभूत, प्रतिच्छन्न और सातवा आकाशभूत, ये सात कुल भूत व्यन्तरोके है । इनके इन्द्रोके मनोहर नाम सुरूप और प्रतिरूप हैं । उनमे रूपवती और बहुरूपा नामक दो अग्रदेविया सुरूप इन्द्रके तथा सुसीमा और सुमुखा नामक दो अग्रदेविया प्रतिरूप इन्द्रके है ।। २२-२४ ।।

हाहा, हूहू, नारद, तुम्बरु, कदम्ब, वासव, महास्वर, गीतरति, गीतयश और भैरव, ये दश गन्धर्व व्यन्तरोके कुल है । उनके नीतरति और नीतयश नामक दो इन्द्र होते हैं । इनमे प्रथम इन्द्रके सरस्वती और स्वरसेना नामकी तथा द्वितीय इन्द्रके नन्दनी व प्रियदर्शना नामकी दो दो इन्द्राणिया होती है ।। २५-२७ ।।

प्रथम किंपुरुष नामक, द्वितीय किंनर, तृतीय हृदयगम, चतुर्थ रूपपाली, पचम किंनर-किंनर, छठा अनिन्दित, सातवा मनोरम्य, आठवा किंनरोत्तम, नौवा रतिप्रिय और दसवा रति-ज्येष्ठ, इस प्रकार ये दस कुल किंनर व्यन्तरोके कहे गये हैं। इनमे किंपुरुष और किंनर नामके दो इन्द्र निर्दिष्ट किये गये है । इनमेसे प्रथमके अवतसा और केतुमती तथा द्वितीयके रतिषेणा और रतिप्रिया नामकी दो दो अग्रदेविया होती है ।। २८-३१ ।।

१ ब गीत° ।

महोरगा दश ज्ञेयास्तत्राद्या भुजगाह्वका:[1] । भुजंगशालिसंज्ञाश्च महाकायाश्च नामतः ॥३२
अतिकायाश्चतुर्थास्तु पञ्चमाः स्कन्धशालिनः । मनोहराह्वयाः षष्ठा. स्तनिताशनिजवा अपि ॥
महैशकाश्च[2] गम्भीरा अन्तिमाः प्रियदर्शनाः। महाकायोऽतिकायश्च तेषामिन्द्रौ प्रकीर्तितौ॥ ३४
भोगा भोगवती चेति महाकायस्य वल्लभे । पुष्पगन्धातिकायस्य[3] द्वितीया चाप्यनिन्दिता ॥ ३५
सप्तधा राक्षसा भीमा महाभीमाश्च नामत. । विघ्ना विनायका चान्ये ततश्चोदकराक्षसाः ॥ ३६
षष्ठास्तेषां च विज्ञेया नाम्ना राक्षसराक्षसा. । ब्रह्मराक्षसनामानस्तेषामन्त्याश्च सप्तमा' ॥ ३७
इन्द्रौ भीममहाभीमौ राक्षसेषु महाबलौ । पद्मा च वसुमित्रा च भीमस्याग्रस्त्रियौ मते ॥ ३८
महाभीमस्य रत्नाढ्या द्वितीया कनकप्रभा । तथा किंपुरुषा देवा दशधा पुरुषाह्वकाः ॥ ३९
पुरुषोत्तमनामानस्तथा सत्पुरुषा परे । महापुरुषनामान पुनश्च पुरुषप्रभा ॥ ४०
पुरुषा अतिपूर्वाश्च मरवो मरुदेवका. । मरुप्रभा यशस्वन्त' इति भेदा दशोदिता. ॥४१
तेषु सत्पुरुषश्चेन्द्रो महापुरुष इत्यपि । रोहिणी नवमी देव्यौ ह्रीश्च पुष्पवती तथा ॥ ४२
माणिभद्राश्च[4] पूर्णाश्च शैलभद्रास्तत' परे । सुमनोभद्रभद्रास्ते सुभद्राश्च[5] प्रकीर्तिता ॥ ४३
सप्तमाः सर्वतोभद्रा यक्षमानुषनामका. । धनपालरूपयक्षा यक्षोत्तममनोहरा. ॥ ४४
एव द्वादशधा यक्षा माणिपूर्णौ तदीश्वरौ । कुन्दा च वहुपुत्रा च देव्यौ तारा तयोत्तमा ॥ ४५

महोरग व्यन्तर दस प्रकारके जानना चाहिये– उनमे प्रथम भुजग नामक, भुजगशाली, महाकाय, चतुर्थ अतिकाय, पचम स्कन्धशाली, छठा मनोहर, स्तनित अशनिजव, महैशक(महेश्वर), गम्भीर और अन्तिम प्रियदर्शन है । उनके महाकाय और अतिकाय नामके दो इन्द्र कहे गये हैं। उनमेसे महाकाय इन्द्रकी भोगा और भोगवती तथा अतिकाय इन्द्रकी पुष्पगन्धा और अनिन्दिता नामकी दो दो अग्रदेविया हैं ॥ ३२-३५ ॥

भीम, महाभीम, विघ्न, विनायक, उदकराक्षस, छठा नामसे राक्षसराक्षस और अन्तिम सातवा ब्रह्मराक्षस नामक, इस प्रकार ये सात कुल राक्षस व्यन्तरोके जानना चाहिये । उन राक्षसोमे भीम और महाभीम नामके दो वलवान् इन्द्र होते है । इनमेसे भीमके पद्मा और वसुमित्रा तथा महाभीमके रत्नाढ्या और द्वितीय कनकप्रभा नामकी दो दो स्त्रिया (अग्रदेविया)मानी गई हैं । किंपुरुष व्यन्तर देव दस प्रकारके है– पुरुष, पुरुषोत्तम, सत्पुरुष, महापुरुष, पुरुषप्रभ, अतिपुरुष, मरु, मरुदेव, मरुप्रभ और यशस्वान्, इस प्रकार ये उनके दस भेद कहे गये हैं। इनमे सत्पुरुष और महापुरुष नामके दो इन्द्र होते हैं। उनमे प्रथम इन्द्रके रोहिणी और नवमी तथा दूसरे इन्द्रके ह्री और पुष्पवती नामकी दो दो अग्रदेविया हैं॥ ३६-४२ ॥

माणिभद्र, पूर्णभद्र, शैलभद्र, सुमनोभद्र, भद्र, सुभद्र, सातवा सर्वतोभद्र, यक्षमानुष, धनपाल, रूपयक्ष, यक्षोत्तम और मनोहर, इस प्रकार यक्ष व्यन्तर देव बारह प्रकारके हैं। इनमे माणिभद्र और पूर्णभद्र नामके दो इन्द्र होते हैं । उनमे प्रथम इन्द्रके कुन्दा और वहुपुत्रा तथा द्वितीयके तारा और उत्तमा नामकी दो दो अग्रदेविया हैं। इन्द्रोकी आयु एक पल्योपम प्रमाण

१ आ प भुजगास्मृह्वका । २ प महैवकाश्च । ३ प °कायश्च । ४ प मणिभद्राश्च । ५ [°स्ते समुद्राश्च] ।

इन्द्राः पल्योपमायुष्का देव्यस्तस्यार्धजीविका. । एवं सर्वत्र देवीनां परिवारोऽपि पूर्ववत् ।। ४६
कालाः पिशाचा वर्णेन सुरूपाः सौम्यदर्शना. । ग्रीवाहस्तैर्विराजन्ते मणिभूषणभासुरैः ४७
श्यामा भूताश्च वर्णेन चारव. प्रियदर्शना. । आमेचकैर्विराजन्ते चित्रभक्तिविलेपनाः[1] ।। ४८
गन्धर्वा कनकाभासाश्चित्रमाल्यविभूषिता । सुमुखाश्च सुरूपाश्च सर्वेषां चित्तहारिणः ।। ४९
प्रियङ्गुफलवर्णाश्च किंनरा नयनप्रिया । सुरूपा सुमुखाश्चैते सुस्वरा हारभूषिता ।। ५०
महास्कन्धभुजा भान्ति कालश्यामा महोरगाः । ओजस्विनः स्वरूपाश्च नानालकारभूषिताः ।।
श्यामावदाता वर्णेश्च राक्षसा भीमदर्शनाः । महाशीर्षा सरक्तोष्ठा भुजै कनकभूषितै ।। ५२
वदनोरुभुजैर्भान्ति गौरा किंपुरुषा अपि । अतिचारुमुखाश्चैते शुभैर्मकुटमौलिभि ।। ५३
श्यामावदाता यक्षाश्च गम्भीराः सौम्यदर्शनाः । मानोन्मानयुता भान्ति रक्तपाणितलक्रमा. ।। ५४

उक्त च त्रयम् [त्रि. सा. २५१-५३]

किंणरकिंपुरिसा य महोरगगधव्वजक्खणामा य । रक्खसभूयपिसाया अट्ठविहा वेतरा देवा ।। ५

तथा देवियोकी उससे आधी (½ पल्योपम) होती है। इस प्रकारसे यह देवियोकी आयुका क्रम सर्वत्र समझना चाहिये । देवियोका परिवार भी पूर्वके समान जानना चाहिये ।। ४३-४६ ।।

इनमे पिशाच व्यन्तर वर्णकी अपेक्षा कृष्णवर्ण होते हुए भी सुन्दर और देखनेमे सौम्य होते है। वे मणिमय भूषणोसे अलकृत ग्रीवा और हाथोसे सुशोभित रहते हैं ।। ४७ ।। भूत व्यन्तर भी वर्णकी अपेक्षा श्याम होते हुए सुन्दर एव प्रियदर्शन होते है। वे विचित्र भक्तिविलेपनसे सयुक्त होते हुए आमेचकोसे (मणिमिश्रित वर्णोसे) विराजमान होते है ।। ४८ ।। सुवर्णके समान कान्तिमान् होकर विचित्र मालासे विभूषित गन्धर्व व्यन्तर देव सुन्दर मुख एव उत्तम रूपसे सयुक्त होते हुए सबके चित्तको आकृष्ट करते हैं ।। ४९ ।। नेत्रोको प्रिय लगनेवाले किंनर व्यन्तर देव प्रियगु फलके समान वर्णवाले होते है। ये सुन्दर रूप एव सुन्दर मुखसे सयुक्त होकर उत्तम स्वर और हारसे विभूषित होते हैं ।। ५० ।। महोरग व्यन्तर देव विशाल कन्धो एव भुजाओंसे सयुक्त, काले या श्यामवर्ण, ओजस्वी, सुन्दर और नाना अलकारोसे विभूषित होते हुए शोभायमान होते हैं ।। ५१ ।। भयानक दिखनेवाले राक्षस व्यन्तर देव वर्णसे श्याम, निर्मल, विशाल शिरसे सयुक्त तथा लाल ओठोसे सहित होते हुए सुवर्णसे विभूषित भुजाओसे सुशोभित होते है ।। ५२ ।। गौरवर्ण किंपुरुष व्यन्तर भी मुख, जघा एव भुजाओसे सुशोभित होते हैं । ये अतिशय सुन्दर मुखसे सयुक्त होकर उत्तम मुकुट और मौलिसे अलकृत होते हैं ।। ५३ ।। निर्मल एव श्याम वर्णवाले यक्ष व्यन्तर देव भी गम्भीर, सौम्यदर्शन, मान व उन्मानसे सहित तथा लाल हथेलियो व पैरोसे युक्त होते है ।। ५४ ।। यहा तीन गाथाये कही गई हैं —

किंनर, किंपुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच इस तरह व्यन्तर देव

१ प विलेपनो ।

तेसिं कमसो वण्णा[1] पियंगुफलधवलकालयसियाम । हेम तिसु वि सियामं किण्हं बहुलेवभूसा य[2]॥
तेसिं असोयचपयणागा तुंबुरु वडो य कंटतरू । तुलसी कडबणामा[3] चेत्ततरू होंति हु कमेण ॥ ७
कदम्बस्तु पिशाचाना राक्षसाः कण्टकद्रुमा.। भूताना तुलसीचैत्यं यक्षाणा च वटो भवेत् ॥ ५५
किंनराणामशोक· स्यात्किंपुरुषेषु च चम्पक । महोरगाणा नागोऽपि गन्धर्वाणा च तुम्बरु ॥ ५६
पृथिवीपरिणामास्ते आयागनियुतद्रुमा[4] । जम्बूमानार्धमानाश्च कीर्तितास्ते प्रमाणत· ॥ ५७
दिव्यरत्नविचित्र च छत्रत्रितयमेकश । शुभध्वजपताकास्ते विभान्त्यायागमाश्रिता ॥ ५८
तोरणानि च चत्वारि नानारत्नमयानि च । आसक्तमाल्यधामानि चैत्याना हि चतुर्दिशम् ॥ ५९
प्रत्येक च चतस्रोऽर्चा·[5] सौवर्ण्योऽत्र[6] चतुर्दिशम् । भूमिजाना यथा वृक्षाः तथा वानान्तरद्रुमा· ॥
सामानिकसहस्राणि चत्वार्येषा पृथक् पृथक् । षोडशैव सहस्राणि तनुरक्षसुरा मताः ॥ ६१
४००० । १६००० ।
आसन्नाष्टशत तेषा सहस्र मध्यमोदिता । द्वादशैव शतान्येषा परिषद्वाहिरा मता ॥ ६२
८०० । १००० । १२०० ।
नागा अश्वा पदातिश्च रथा गन्धर्वनर्तिका । वृषभा सप्त चानीका सप्तकक्षायुता· पृथक् ॥ ६३
सुज्येष्ठोऽथ सुग्रीवो विमलो मरुदेवक· । श्रीदामो दामपूर्वश्रीर्विशालाक्षो महत्तरा ॥ ६४

आठ प्रकारके होते हैं ॥ ५ ॥ उनका शरीरवर्ण यथाक्रमसे प्रियगु फल जैसा धवल, काला, श्याम, सुवर्ण जैसा, तीनका श्याम तथा कृष्ण होता है। ये देव बहुतसे लेप और भूपणोसे विभूपित होते हैं ॥ ६ ॥ उनके क्रमसे अशोक, चम्पक, नाग (नागकेसर), तुवरु, वट, कण्टतरु, तुलसी और कदम्ब, इन नामोवाले चैत्यवृक्ष होते हैं ॥ ७ ॥

चैत्यवृक्ष पिशाचोका कदम्ब, राक्षसोका कण्टकद्रुम, भूतोका तुलसी, यक्षोका वट, किंनरोका अशोक, किंपुरुषोका चम्पक, महोरगोका नाग (नागकेसर) और गन्धर्वोका तुवरु होता है ॥ ५५-५६ ॥ आयागपर नियत वे चैत्यवृक्ष पृथिवीके परिणामस्वरूप होते हुए प्रमाणमे जम्बूवृक्षके प्रमाणसे अर्ध प्रमाणवाले कहे गये हैं ॥ ५७ ॥ उनमेसे प्रत्येकके दिव्य रत्नोसे विचित्र तीन छत्र होते हैं। आयागके आश्रित वे वृक्ष उत्तम ध्वजा-पताकाओसे सयुक्त होते हुए शोभायमान होते हैं ॥ ५८ ॥ चैत्यवृक्षोकी चारो दिशाओमे मालाओके तेजसे सहित अनेक रत्नमय चार तोरण होते हैं ॥ ५९ ॥ प्रत्येक वृक्षकी चारो दिशाओमे चार सुवर्णमय जिनप्रतिमायें स्थित होती हैं। ये वृक्ष जैसे भूमिजो (भवनवासियो) के होते हैं वैसे ही वे व्यन्तरोके भी होते हैं॥६०॥

इनके अलग अलग चार हजार (४०००) सामानिक देव तथा सोलह हजार (१६०००) आत्मरक्ष देव होते हैं ॥ ६१ ॥ उनकी अभ्यन्तर परिषद् आठ सौ (८००) देवोसे सयुक्त, मध्यम एक हजार (१०००) तथा बाह्य परिषद् बारह सौ (१२००) देवोंसे सयुक्त मानी गई है ॥ ६२ ॥ हाथी, घोडा, पदाति, रथ, गन्धर्व, नर्तकी और बैल, ये सात अनीक देव है। इनमेसे प्रत्येक सात कक्षाओसे युक्त होते हैं ॥ ६३ ॥ सुज्येष्ठ, सुग्रीव, विमल, मरुदेव, श्रीदाम, दामश्री और विशालाक्ष, ये सात उक्त अनीक देवोके महत्तर देव होते हैं॥ ६४॥

१ ब्रि. सा. वण्णो। २ प भूयास। ३ त्रि सा कदव। ४ [नियतद्रुमा]। ५ ब चतस्रोर्च। ६ आ प सौवर्णो।

विंशतिश्च सहस्राणि अष्टौ चाद्या पृथक् पृथक् । कक्षास्तु द्विगुणास्ताश्च द्वितीयादिषु कीर्तिताः ॥

। २८००० । एकानीकाः । ३५५६००० ।

शून्यत्रिकात्परं द्वे च नवाष्टौ द्विकृतिर्द्विकम् । व्यन्तराणा निकायेषु सर्वानीका उदाहृताः ॥६६

। २४८९२००० ।

काला[1] कालप्रभा चैव कालकान्ता[2] च दक्षिणा । कालावर्ताऽपरा नाम्ना कालमध्येति चोत्तरा ॥६७
काला मध्ये चतस्रोऽन्या. पूर्वाद्याशाचतुष्टये । एवं सर्वेन्द्रसंज्ञाभिः पञ्च स्युर्नगराणि हि ॥ ६८
राजधान्य पिशाचाना पञ्च प्रोक्तास्तु नामतः । जम्बूद्वीपप्रमाणाश्च चतुर्वनविभूषिताः ॥ ६९
योजनानां सहस्रे द्वे नगरेभ्यो वनानि हि । नियुतायामयुक्तानि[3] तदर्धं विस्तृतानि च ॥ ७०

। १००००० । ५०००० ।

सप्तत्रिंशतमर्धं च प्राकारस्तत्र चोच्छ्रितः । द्वादशार्धं च मूलोरुद्वे[4] सार्धे चाग्रविस्तृतः ॥ ७१

। ३७ । १/२ । १२ । १/२ । ५/२ ।

इनमेसे प्रथम कक्षामे पृथक् पृथक् अट्ठाईस हजार (२८०००) देव होते हैं। आगे द्वितीय आदि कक्षाओमे वे उत्तरोत्तर दूने दूने बतलाये गये हैं ॥ ६५ ॥

विशेषार्थ– जितना गच्छका प्रमाण हो उतने स्थानमे २ का अक रखकर परस्पर गुणा करनेसे जो प्राप्त हो उसमेसे एक कम करके शेषमे एक कम गुणकार (२–१=१)का भाग दे। इस प्रकारसे जो लब्ध हो उससे मुखको गुणित करनेपर सकलित घनका प्रमाण प्राप्त होता है। तदनुसार यहा गच्छका प्रमाण ७ और मुखका प्रमाण २८००० है। अत एव उक्त नियमके अनुसार यहा सात कक्षाओका समस्त घन निम्न प्रकारसे प्राप्त होता है – २८०००×[{(२×२×२×२×२×२×२)–१}–(२–१)]=३५५६०००, एक अनीककी ७ कक्षाओका प्रमाण। इसे ७ से गुणित करनेपर समस्त सप्तानीकका प्रमाण होता है – ३५५६०००×७=२४८९२०००।

व्यन्तरोके निकायोमे सब अनीकोकी सख्या तीन शून्य, तत्पश्चात् दो, नौ, आठ, दोका वर्ग अर्थात् चार और दो, इन अकोके प्रमाण कही गई है– २४८९२००० ॥ ६६ ॥ काला, कालप्रभा, कालकान्ता, कालावर्ता और कालमध्या [ये पाच नगर काल नामक पिशाचेन्द्रके होते है।] इनमेसे काला नगरी मध्यमे तथा अन्य शेष चार नगरियां पूर्वादिक चार दिशाओमे है। इसी प्रकार सब इन्द्रोके अपने नामोके अनुसार पाच पाच नगर होते है ॥ ६७-६८ ॥ यहा पिशाचोकी पाच राजधानियोके नाम निर्दिष्ट किये हैं। इनके विस्तारादिका प्रमाण द्वितीय जम्बूद्वीपमे स्थित व्यन्तरनगरियोके समान हैं। उक्त राजधानिया चार वनोसे सुशोभित है ॥ ६९ ॥ ये वन नगरोसे दो हजार (२०००) योजन जाकर स्थित हैं। वनोकी लबाई एक लाख (१०००००) योजन और विस्तार उससे आधा (५०००० यो) है ॥ ७० ॥ उन नगरियोका जो प्राकार है। वह साढे सैंतीस (३७१/२) योजन ऊचा है। उसका विस्तार मूलमे साढे बारह (१२१/२) योजन

---

१ प ब काल। २ प कालाकाता। ३ आ प नियुतानामयुक्तानि प नियुतानायुक्त्वानि। ४ आ प °द्वे व °द्वि

सार्धद्विषष्टिर्द्वारस्य[1] उच्छ्रयोऽर्धा तु रुन्द्रता । पञ्चसप्ततिमुद्विद्धः प्रासादोऽत्र च भाषित. ।। ७२

६२ । $\frac{1}{2}$ । ३१ । $\frac{1}{4}$ । ७५ ।

द्वादशार्धं च दीर्घा तु षट् तुर्यं चाथ विस्तृता । योजनानि नवोद्विद्धा सुधर्मा गाधगोरुता[2] ।। ७३

१२ । $\frac{1}{2}$ । ६ । $\frac{1}{4}$ । ९ । १ ।

द्वार योजनविस्तार द्विगुणोच्छ्रयमिष्यते । एव मानानि सर्वेषु नगरेषु विभावयेत् ।। ७४

। १ । २ ।

हरितालाह्वके द्वीपे तथा हिंगुलिकेऽपि च । मन शिलाह्वाञ्जनयो· सुवर्णे रजतेऽपि च ।। ७५
वज्रधातौ च वज्रे च इन्द्राणा नगराणि तु । नगराण्यपि शेषाणामनेकद्वीपवार्धिषु ।। ७६
भवनादित्रयाणा तु जघन्या ते[तै]जसी मता । कृष्णादित्रिकलेश्याश्च तेषा सन्तीति भाषिता. ।। ७७
अम्बा नाम्ना कराला च सुलसा च सुदर्शना । पिशाचाना निकायेषु गणिकाना महत्तराः ।। ७८
भूतकान्ता च भूता च भूतदत्ता महाभुजा । एता भूतनिकायेषु गणिकाना महत्तराः ।। ७९
सुघोषा[3] विमला चैव सुस्वरा चाप्यनिन्दिता । गन्धर्वाणा निकायेषु गणिकाना महत्तराः ।। ८०
मधुरा मधुरालापा सुस्वरा मृदुभाषिणी । किंनराणां भवन्त्येता गणिकाना महत्तरा. ।। ८१
भोगा भोगवती चैका भुजगा भुजगप्रिया । महोरगनिकायेषु गणिकानां महत्तराः ।। ८२

तथा अग्रभागमे अढाई (२$\frac{1}{2}$) योजन प्रमाण है ।। ७१ ।। द्वारकी ऊचाई साढे बासठ (६२$\frac{1}{2}$) योजन तथा विस्तार उससे आधा (३१$\frac{1}{4}$) है । यहा पचहत्तर (७५) योजन ऊचा प्रासाद कहा गया है ।। ७२ ।। सुधर्मा सभाकी लबाई साढे बारह (१२$\frac{1}{2}$) योजन, विस्तार सवा छह (६$\frac{1}{4}$) योजन, ऊचाई नौ (९) योजन और अवगाह एक (१) योजन मात्र है ।। ७३ ।। उसका द्वार एक (१) योजन विस्तृत और दो (२)योजन ऊचा है । इसी प्रकारसे उक्त विस्तारादिका प्रमाण सब ही नगरोमे जानना चाहिये ।। ७४ ।। उक्त व्यन्तर इन्द्रोके नगर हरिताल नामक द्वीपमे, हिंगुलिक द्वीपमे, मन शिला नामक द्वीपमे, अजन द्वीपमे, सुवर्णद्वीपमे, रजतद्वीपमे, वज्रधातु द्वीपमे और वज्रद्वीपमे, इस प्रकार इन आठ द्वीपोमे स्थित है । शेष व्यन्तरोके नगर अनेक द्वीप-समुद्रोमे स्थित है ।। ७५-७६ ।।

भवनवासी आदि तीन प्रकारके देवोमे जघन्य तेजोलेश्या मानी गई है। उनके कृष्णादि तीन लेश्याये भी होती है, ऐसा कहा गया है ।। ७७ ।।

अम्बा, कराला, सुलसा और सुदर्शना ये पिचाच देवोमे गणिकामहत्तरोके नाम है ।।७८।। भूतकान्ता, भूता, भूतदत्ता और महाभुजा ये भूतजातिके व्यन्तरोमे गणिकामहत्तरोके नाम है ।।७९।। सुघोषा, विमला, सुस्वरा और अनिन्दिता ये गन्धर्व जातिके व्यन्तरोमे गणिकामहत्तरोके नाम हैं ।। ८० ।। मधुरा, मधुरालापा, सुस्वरा और मृदुभाषिणी ये किंनर जातिके व्यन्तरोमे गणिकाओके महत्तर होते हैं ।। ८१ ।। भोगा, भोगवती, भुजगा और भुजगप्रिया ये महोरग जातिके

---

१ आ प 'द्विपष्टि°' । २ ब गादगो° । ३ आ प 'सुघोपा-' इत्यादिश्लोकत्रय नास्ति ।

शर्वरी सर्वसेना च रुद्रा वै रुद्रदर्शना । राक्षसाणा[1] भवन्त्येता गणिकानां महत्तराः ॥ ८३
पुंस्प्रियाथ च पुंस्कान्ता सौम्या पुरुषदर्शिनी । एता. किंपुरुषाख्याना गणिकानां महत्तराः ॥ ८४
भद्रा नाम्ना सुभद्रा च मालिनी पद्ममालिनी । एता यक्षनिकायेषु गणिकानां महत्तराः ॥ ८५
योजनानां सहस्राणि अशीतिश्चतुरुत्तरा । विपुलानि पुराण्याहुर्गणिकानामशेषतः[2] ॥ ८६
। ८४००० ।
अष्टास्वपि निकायेषु गणिकाना पुन. स्थितिम् । अर्धपल्योपमां ह्याहुः[3] पौराणिकमहर्षयः ॥ ८७
दश चापोच्छ्रया एते पञ्चाहादथ[4] साधिकात् । आहरन्ति मुहूर्तेभ्यस्तावद्भ्यो निःश्वसन्ति[5] च ॥
ऐशानान्ता सुरा· सर्वे सप्तहस्तास्तु जन्मतः । स्वेच्छातो वैक्रियोत्सेधा ज्योतिषः सप्तचापकाः ॥
उन्मार्गस्थाः शबलचरिता ये निधानप्रयाता[6] ये चाकामाद्विषयविरता.[7] पावकाद्यैर्मृताश्च ।
ते देवाना तिसृषु गतिषु प्राप्नुवन्ति प्रसूतिं मन्दाक्रान्ता मलिनमतिभिर्ये. कषायेन्द्रियाश्वाः ॥ ९०

इति लोकविभागे मध्यमलोके व्यन्तरलोकविभागो नाम
नवम प्रकरणं समाप्तम् ॥ ९ ॥

व्यन्तरोमे गणिकामहत्तरोके नाम कहे गये हैं ॥ ८२ ॥ शर्वरी, सर्वसेना, रुद्रा और रुद्रदर्शना ये राक्षस जातिके व्यन्तरोमे गणिकाओके महत्तर होते हैं॥ ८३ ॥ पुंस्प्रिया, पुंस्कान्ता, सौम्या और पुरुषदर्शिनी ये किंपुरुष व्यन्तरोके गणिकामहत्तरोके नाम हैं ॥ ८४ ॥ भद्रा, सुभद्रा, मालिनी और पद्ममालिनी ये यक्षजातिके देवोमे गणिकाओके महत्तरोके नाम कहे गये है ॥ ८५ ॥ समस्त गणिकाओके पुर चौरासी हजार (८४०००) योजन विस्तृत कहे जाते हैं ॥ ८६ ॥ पुराणोके ज्ञाता महर्षि आठो ही व्यन्तरनिकायोमे गणिकाओकी स्थिति अर्ध पल्य प्रमाण बतलाते है ॥ ८७ ॥ ये व्यन्तर देव दस धनुष ऊचे होते है । वे कुछ अधिक पाच दिनमे आहार करते है तथा उतने ही मुहूर्तोमे नि श्वास लेते है ॥ ८८ ॥ ऐशान कल्प तकके सब देव जन्मसे सात हाथ ऊचे होते हैं । परन्तु विक्रियासे निर्मित शरीर उनकी इच्छाके अनुसार ऊचे होते है । ज्योतिषी देव सात धनुष प्रमाण ऊचे होते है ॥ ८९ ॥

जो कुमार्गमे स्थित है, दूषित आचरण करनेवाले है, निधानको प्राप्त है– सम्पत्तिमे मुग्ध रहते है, विना इच्छाके विषयोसे विरक्त हैं अर्थात् अकाम निर्जरा करनेवाले हैं तथा जो अग्नि आदिके द्वारा मरणको प्राप्त हुए हैं, ऐसे प्राणी देवोकी तीन गतियो (भवनत्रिक) मे जन्मको प्राप्त होते हैं । जिन मलिनबुद्धि प्राणियोने कषाय एव इन्द्रियरूप घोडोके आक्रमणको मन्द कर दिया है ऐसे प्राणी भी इन देवोमे उत्पन्न होते है [यहा ' मन्द्राक्रान्ता ' पदसे छन्दका नाम भी सूचित कर दिया गया है] ॥ ९० ॥

इस प्रकार लोकविभागमे मध्यम लोकमे व्यन्तरलोकविभाग नामक नौवा प्रकरण
समाप्त हुआ ॥ ९ ॥

---

१ प राक्षसाना । २ ब °र्गणिनाम° । ३ ब चाहु । ४ ब °दश । ५ आ ब निष्वसन्ति । ६ ब निदान° । ७ प चाकामद्विषय° ।

[दशमो विभागः]

वर्धमान महावीर मूर्ध्ना[1] नत्वा कृताञ्जलि. । क्रमवृद्धोर्ध्वसाखाढ्य[2] मूर्ध्वलोकमितो ब्रुवे ॥१
ऊर्ध्वं भावनदेवेभ्यो देवा वानान्तरा स्थिता. । नीचोपपातिकास्तेभ्यस्तेभ्यो दिग्वासिनः सुरा· ॥२
ततश्चान्तरवासाख्या वसन्तोऽपि निरन्तरम् । कूष्माण्डाश्च पर तेभ्यस्तत उत्पन्नका. सुरा ॥३
अनुत्पन्नकनामानस्तत ऊर्ध्वं प्रमाणका । गन्धिकाश्च महागन्धा भुजगा प्रीतिका अपि ॥४
आकाशोत्पन्नका नाम्ना ततो ज्योतिषिका अपि । कल्पोद्भवाः परे तेभ्यस्तेभ्यो वैमानिकाः परे ॥५
आद्या ग्रैवेयकास्तेष्वनुदिशानुत्तरा सुराः । द्वितीया तत ऊर्ध्वास्ते सिद्धा ऊर्ध्वं तत· स्थिता ॥६
हस्तमात्रं भुवो गत्वा देवा नीचोपपातिका । दशवर्षसहस्राणि जीवन्तस्तत्र[3] भाषिताः ॥७

। १ । १०००० ।

दशहस्तसहस्राणि तेभ्य ऊर्ध्वमतीत्य च । विंशत्यब्दसहस्राणि जीवन्त्यो नीचदेवता· ॥८

। २०००० ।

दशहस्तसहस्राणि तेभ्यो ह्यूर्ध्वमतीत्य च । त्रिंशदब्दसहस्राणि जीवन्त्यो नीचदेवता· ॥९

। ३०००० ।

दशहस्तसहस्राणि तेभ्य ऊर्ध्वमतीत्य च । चत्वारिंशत्सहस्राणि जीवन्त्यो नीचदेवताः ॥१०

। १०००० । ४०००० ।

मैं हाथ जोडकर श्रीवर्धमान महावीर अन्तिम तीर्थंकरको शिरसे नमस्कार करता हुआ यहा क्रमसे वृद्धिगत उपरिम शाखाओसे (?) व्याप्त ऊर्ध्व लोकका वर्णन करता हू ॥१॥ भवनवासी देवोसे ऊपर वानव्यन्तर देव, उनसे ऊपर नीचोपपातिक देव, और उनसे ऊपर दिग्वासी देव स्थित हैं। उनके ऊपर निरन्तर अन्तरवासी देव निवास करते हैं, उनसे ऊपर कूष्माण्ड देव, उनसे ऊपर उत्पन्नक देव, उनसे ऊपर अनुत्पन्नक नामक देव, उनसे ऊपर प्रमाणक देव, उनसे ऊपर गन्धिक देव, उनसे ऊपर महागन्ध, उनसे ऊपर भुजग, उनसे ऊपर प्रीतिक, उनसे ऊपर आकाशोत्पन्नक नामक देव, उनसे ऊपर ज्योतिषी देव, उनसे ऊपर कल्पवासी देव, और उनसे ऊपर वैमानिक देव स्थित हैं ॥ २-५॥ वैमानिको (कल्पातीतो) मे प्रथम ग्रैवेयक देव और दूसरे अनुदिश एव अनुत्तर देव हैं जो उनके ऊपर स्थित हैं। उनके ऊपर वे सिद्ध परमात्मा स्थित हैं।६॥

[चित्रा] पृथिवीसे एक हाथ ऊपर जाकर नीचोपपातिक देव स्थित हैं । उनकी आयु दस हजार वर्ष प्रमाण कही गई है– ऊचाई १ हाथ, आयु १०००० वर्ष ॥७॥ उनके ऊपर दस हजार हाथ जाकर बीस हजार वर्ष प्रमाण आयुवाले नीच देव (दिग्वासी) रहते हैं – आयु २०००० वर्ष ॥ ८ ॥ उनके ऊपर दस हजार हाथ जाकर तीस हजार वर्ष तक जीवित रहनेवाले नीच देव (अन्तर निवासी) रहते है– आयु ३०००० वर्ष ॥ ९ ॥ उनके ऊपर दस हजार हाथ जाकर चालीस हजार वर्ष तक जीवित रहनेवाले नीच देव (कुष्माण्ड) स्थित हैं– ऊपर हाथ

१ ब मूर्धा । २ ब साख्याढ्य° । ३ प जीवस्तत्र ।

विंशतिं तु सहस्राणा हस्तास्तेभ्यो व्यतीत्य च । पञ्चाशतं सहस्राणि जीवन्त्यन्यास्तु[1] देवताः ॥११

। २०००० । ५०००० ।

[2]तावत्तावद् व्यतीत्यान्याः[3] षष्टिसप्तत्यशीति च । चतुरशीतिं सहस्राणि जीवन्त्यः सन्ति देवताः ॥

। ६०००० । ७०००० । [८०००० ।] ८४०००० ।

पल्याष्टमायुषस्ताभ्यः पल्यपादायुषस्ततः । पल्योपमदलायुष्कास्ताभ्य[4]ऊर्ध्वमतीत्य च ॥१३

। $\frac{1}{8}$ । $\frac{1}{4}$ । $\frac{1}{2}$ ।

ज्योतिर्देवा. परे तेभ्य· पल्यं जीवन्ति साधिकम् । दशवर्षसहस्राग्र पल्य जीवन्ति भास्कराः ॥१४

। प १ व १०००० ।

नियुतेनाधिकं[5] पल्यं चन्द्रा जीवन्ति तत्परे । अयमायुःक्रमो[6] वेद्यो देवस्थानक्रमोऽपि च ॥१५

। प १ व १००००० ।

द्विधा वैमानिका देवा कल्पातीताश्च कल्पजा. । कल्पा द्वादश तत्र स्युः कल्पातीतास्ततः परे ॥१६
सौधर्म· प्रथम· कल्प ऐशानश्च ततः पर. । सनत्कुमारमाहेन्द्रौ ब्रह्मलोकोऽथ लान्तवः ॥१७
महाशुक्रः सहस्रार आनत. प्राणतोऽपि च । आरणश्चाच्युतश्चेति एते कल्पा उदाहृताः ॥१८

उक्त च त्रयम् [त्रि. सा. ४५२-५४] —

सोहम्मीसाणसणक्कुमारमाहिंदगा हु कप्पा हु । बम्हब्बम्हुत्तरगो[7] लातवकापिट्ठगो छट्ठो ॥१

१००००, आयु ४०००० वर्ष ॥ १० ॥ उनसे बीस हजार हाथ ऊपर जाकर पचास हजार वर्ष तक जीवित रहनेवाले अन्य (उत्पन्न) देव स्थित है– उपर हाथ २००००, आयु ५००००, वर्ष ॥ ११ ॥ उतने उतने हाथ ऊपर जाकर क्रमसे साठ हजार, सत्तर हजार, अस्सी हजार और चौरासी हजार वर्ष तक जीवित रहनेवाले अन्य (अनुत्पन्न, प्रमाणक, गन्ध, महागन्ध) देव रहते है– आयु ६००००, ७००००, ८००००, ८४००० वर्ष ॥ १२ ॥ उनके ऊपर [उतने हाथ] जाकर पल्यके आठवे भाग प्रमाण आयुवाले, पल्यके चतुर्थ भाग प्रमाण आयुवाले और आधा पल्य प्रमाण आयुवाले (भुजग, प्रीतिक और आकाशोत्पन्न) देव स्थित हैं– आयु पल्य $\frac{1}{8}$, पल्य $\frac{1}{4}$, पल्य $\frac{1}{2}$ ॥ १३ ॥

उनके ऊपर ज्योतिषी देव रहते हैं जो कुछ अधिक पल्य प्रमाण काल तक जीवित रहते है। सूर्य ज्योतिषी देव दस हजार वर्षसे अधिक एक पल्य प्रमाण काल तक जीवित रहते है– आयु १ पल्य और १०००० वर्ष ॥ १४ ॥ उनके ऊपर चन्द्र एक लाख वर्षसे अधिक एक पल्य काल तक जीवित रहते हैं। इस प्रकार यह आयुका क्रम और देवोके स्थानका क्रम जानना चाहिये – आयु १ पल्य और १००००० वर्ष ॥ १५ ॥

वैमानिक देव दो प्रकारके है– कल्पोत्पन्न और कल्पातीत । उनमे कल्प बारह हैं। उनके आगे कल्पातीत है ॥ १६ ॥ प्रथम कल्प सौधर्म, तत्पश्चात् दूसरा ऐशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तव, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत, ये बारह कल्प कहे गये है ॥ १७-१८ ॥ इस सम्बधमे ये तीन गाथाये भी कही गई है—

सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, छठा लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र-महाशुक्र

---

१ प जीवन्त्यान्यास्तु° । २ प श्लोकस्यास्य पूर्वार्द्धभागो नास्ति । ३ आ व्यतीतान्या । ४ प °युष्क-स्ताभ्य । ५ व °नादिक । ६ व क्रमा । ७ आ प वम्ह वम्हु° ब वम्हा बम्हु° । (त्रि सा वम्हव्वम्हु°) ।

सुक्कमहासुक्कगदो सदरसहस्सारगो दु तत्तो दु। आणदपाणदआरणअच्चुदगा होंति कप्पा हु ॥२
मज्झिमचउजुगलाणं पुव्वावरजुम्मगेसु सेसेसु । सव्वत्थ होंति इंदा इदि बारस[१] होंति कप्पा हु॥
ग्रैवेयकानि च त्रीणि अधोमध्योत्तमानि तु । एकैकं च त्रिधा भिन्नमूर्ध्वमध्याधराख्यया ॥१९
अनुदिग्नामकान्यूर्ध्वं ततोऽनुत्तरकाणि च । ऊर्ध्वलोकविभागोऽयमीषत्प्राग्भारकान्तिमः[२] ॥ २०
विमानाना च लक्षाणि चतुरशीतिर्भवन्ति च । सप्तनवतिसहस्राणि त्रयोविंशतिरत्र च ॥२१

। ८४९७०२३ ।

इन्द्रकाणि त्रिषष्टिः स्युरूर्ध्वपङक्त्या स्थितानि च । पटलाना च मध्यानि त्रिषष्टि· पटलान्यत· ॥

। ६३ । ६३ ।

त्रिंशदेकाधिका सप्तचतुर्द्व्येकैकषट्त्रिकम् । त्रिकत्रिकैकैकानि स्युरूर्ध्वलोकेन्द्रकाणि तु ॥२३

। ३१ । ७ । ४ । २ । १ । १ । ६ । ३ । ३ । ३ । १ । १ ।

ऋतुरादीन्द्रक प्रोक्त त्रिषष्टिस्तस्य दिक्षु च । श्रेणीबद्धविमानानि एकैकोनानि चोत्तरम् ॥२४

। ६३ ।

उक्त च त्रयम् [ति. प. ८, ८३-८४,१०९]–

शतार-सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत ये कल्प हैं। इनमे मध्यम चार युगलोके पूर्व दो युगलोमे अर्थात् ब्रह्म और लान्तवमे तथा अपर युगलो अर्थात् महाशुक्र और सहस्रारमे एक एक इन्द्र और शेष चार युगलोमे सर्वत्र एक एक इन्द्र है । इस प्रकार बारह कल्प होते हैं ॥ १-३ ॥

ग्रैवेयक तीन है— अधो ग्रैवेयक, मध्यम ग्रैवेयक और उत्तम ग्रैवेयक । इनमेसे प्रत्येक भी ऊर्ध्व, मध्य और अधरके नामसे तीन प्रकारका है ॥ १९ ॥ इनके ऊपर अनुदिश नामक विमान और उनके भी ऊपर अनुत्तर विमान हैं । अन्तमे ईषत्प्राग्भार पृथिवी है । यह ऊर्ध्व लोकका विभाग है ॥ २० ॥ यहाँ सब विमान चौरासी लाख सतानवैं हजार तेईस हैं – ८४९७०२३ ॥ २१ ॥ पटल तिरेसठ (६३) हैं जो ऊर्ध्व पक्तिके क्रमसे स्थित हैं । इन पटलोके मध्यमे तिरेसठ (६३) इन्द्रक विमान स्थित है॥ २२ ॥ एक अधिक तीस अर्थात् इकतीस, सात, चार, दो, एक, एक, छह, तीन, तीन, तीन, एक और एक, इस प्रकार क्रमसे ऊर्ध्व लोकगत उन बारह स्थानोमे इतने इन्द्रक स्थित है— ३१, ७, ४, २, १, १, ६, ३, ३, ३, १, १ ॥ २३ ॥ उनमे जो प्रथम ऋतु इन्द्रक कहा गया है उसकी पूर्वादिक दिशाओमे तिरेसठ तिरेसठ (६३-६३) श्रेणीबद्ध विमान स्थित है । इसके आगे वे उत्तरोत्तर एक एक कम (६२, ६१ आदि) हैं ॥२४॥ इस सम्बन्धमे तीन गाथायें भी कही गई हैं—

---

१ ब बारह । २ प कातिमि ।

उडुणामे पत्तेक्कं सेढिगदा चउदिसासु बासट्ठी । एक्केक्कूणा सेसे पडिदिसमाइच्चपरियंतं[1] ॥४
उडुणामे सेढिगदा[2] एक्केक्कदिसाए होंति तेसट्ठी। एक्केक्कूणा सेसे जाव य सवत्थसिद्धि त्ति[3] ॥५
सेढीबद्धे सव्वे समवट्टा विविहदिव्वरयणमया । उल्लसिदधयवडाया णिरुवमरूवा विराजंति ॥६
ऋतुश्चन्द्रोऽथ विमलो वल्गुवीरमथारुणम् । नन्दन नलिनं चैव काञ्चनं रोहितं तथा ॥२५
चञ्चं च मरुतं भूयः ऋद्धीश च त्रयोदशम् । वैडूर्यं रुचकं चापि रुचिराङ्कं च नामतः ॥२६
स्फटिकं तपनीयं च मेघसभ्रमतः परम् । हारिद्र पद्मसंज्ञं च लोहिताख्यं सवज्रकम् ॥२७
नन्द्यावर्तविमान च प्रभाकरमतः परम् । पृष्ठक[4] गजमित्रे च प्रभा चाद्योऽस्तु कल्पयोः ॥२८
अञ्जनं वनमालं च नागं गरुडमित्यपि । लांगलं बलभद्रं च चक्रं च परयोरपि ॥२९
अरिष्टं देवसमिति ब्रह्मं ब्रह्मोत्तराह्वयम् । ब्रह्मलोके च चत्वारि इन्द्रकाणीति लक्षयेत् ॥३०
नाम्ना तु ब्रह्महृदयं लान्तवं चेति तद्द्वयम्[5] । लान्तवे शुक्रसंज्ञं च महाशुक्रेऽभिधीयते ॥३१
शताराख्यं सहस्रारे आनतं प्राणतं तथा । पुष्पकं शातकारं च आरणं चाच्युतं च षट् ॥३२
आनतादिचतुष्के च ग्रैवेयेषु सुदर्शनम् । अमोघं सुप्रबुद्ध च अधस्ताद्वर्णितं त्रयम् ॥३३
यशोधरं सुभद्र च सुविशालं च मध्यमे । सुमनः सौमनस्यं च ऊर्ध्वे प्रीतिकरं च तत् ॥३४
अनुदिग्मध्यमादित्यं मध्यं चानुत्तरेष्विति । सर्वार्थसिद्धिसंज्ञं च सर्वान्त्यप्रतरेन्द्रकम् ॥३५

ऋतु नामक इन्द्रक विमानकी चारो दिशाओमेसे प्रत्येक दिशामे बासठ श्रेणीबद्ध विमान स्थित है। आगे आदित्य इन्द्रक पर्यन्त शेष इन्द्रकोकी पूर्वादिक दिशाओमे स्थित वे श्रेणीबद्ध विमान उत्तरोत्तर एक एक कम होते गये हैं ॥४॥ ऋतु इन्द्रक विमानकी एक एक दिशामे तिरेसठ श्रेणीबद्ध विमान है। आगे सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त शेष इन्द्रकोमे वे उत्तरोत्तर एक एक कम हैं [पाठान्तर] ॥ ५ ॥ गोल, अनेक प्रकारके दिव्य रत्नोसे निर्मित और ध्वजा-पताओसे सुशोभित वे सब श्रेणीबद्ध विमान अनुपम स्वरूपको धारण करते हुए सुशोभित होते हैं ॥ ६ ॥

ऋतु, चन्द्र, विमल, वल्गु, वीर, अरुण नन्दन, नलिन, काचन, रोहित, चच, मरुत, तेरहवा ऋद्धीश, वैडूर्य, रुचक, रुचिर, अक, स्फटिक, तपनीय, मेघ, अभ्र, हारिद्र, पद्म, लोहित, वज्र, नन्द्यावर्त, प्रभाकर, पृष्ठक, गज, मित्र और प्रभा ये इकतीस इन्द्रक प्रथम दो कल्पो (सौधर्म-ऐशान) मे अवस्थित हैं ॥ २५-२८ ॥ अजन, वनमाल, नाग, गरुड, लागल, बलभद्र और चक्र ये सात इन्द्रक विमान आगेके दो कल्पो (सनत्कुमार-माहेन्द्र) मे अवस्थित हैं ॥२९॥ अरिष्ट, देवसमिति, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर नामक चार इन्द्रक विमान ब्रह्म कल्पमे जानना चाहिये ॥ ३० ॥ ब्रह्महृदय और लान्तव नामक दो इन्द्रक विमान लान्तव कल्पमे हैं। महाशुक्र कल्पमे एक शुक्र नामका विमान कहा जाता है ॥ ३१ ॥ शतार नामका एक इन्द्रक विमान सहस्रार कल्पमे तथा आनत, प्राणत, पुष्पक, शातकार, आरण और अच्युत ये छह इन्द्रक विमान आनत आदि चार कल्पोमे हैं। ग्रैवेयकोमे सुदर्शन, अमोघ और सुप्रबुद्ध ये तीन इन्द्रक विमान नीचे, यशोधर, सुभद्र और सुविशाल ये तीन मध्यमे, तथा सुमनस्, सौमनस्य और प्रीतिकर ये तीन इन्द्रक विमान ऊपर स्थित हैं ॥ ३२-३४ ॥ अनुदिशोके मध्यमे आदित्य तथा अनुत्तरोके मध्यमे सर्वार्थसिद्धि नामका सबमे अन्तिम इन्द्रक पटल है ॥ ३५ ॥

१ आ प माइच° । २ ब °गया । ३ ब त्यि । ४ आ प पृष्टक प पष्टक । ५ आ प तद्वय ।

ये च षोडश कल्पांश्च केचिदिच्छन्ति तन्मते । तस्मिंस्तस्मिन् विमानानां परिमाणं वदाम्यहम् ॥
[1]द्वात्रिंशन्नियुतान्याद्ये[2] विमानगणना भवेत् । अष्टाविंशतिरैशाने तृतीये द्वादशापि च ॥३७
। ३२००००० । २८००००० । १२००००० ।
माहेन्द्रे नियुतान्यष्टौ षण्णवत्यधिकं द्वयम् । ब्रह्मे ब्रह्मोत्तरे चापि चतुष्कं स्यात्तदूनकम् ॥३८
। ८००००० । २०००९६ । १९९९०४ ।
द्विचत्वारिंशदग्रं च पञ्चविंशतिसहस्रकम् । लान्तवे तैः सहस्राणि पञ्चाशत्तु विना परे ॥३९
। २५०४२ । २४९५८ ।
विंशतिः स्यु सहस्राणि शुक्रे शुद्धा च विंशतिः । चत्वारिंशत्सहस्राणि महाशुक्रे तु तैर्विना ॥४०
। २००२० । १९९८० ।
शतारे त्रिसहस्रं स्यादेकोनापि च विंशति । एकाशीतिः सहस्रारे शतानां त्रिंशदेकहा ॥४१
। ३०१९ । १९८१ [२९८१] ।
चत्वारिंशानि चत्वारि शतान्यानतयुग्मके । द्वे शते षष्टिसंयुक्ते[3] आरणाच्युतयुग्मके ॥४२
। ४४० । २६० ।
चतुःशतानि शुद्धानि आनतप्राणतद्विके । आरणाच्युतयुग्मे च त्रिशतान्यपरे विदु ॥४३
। ४०० । ३०० ।
एकादशं शतं चाद्ये शतं सप्त च मध्यमे । एकाग्रनवतिश्चोर्ध्वे अनुदिक्षु नवैव च ॥४४
। १११ । १०७ । ९ (?) । ९१ । ९ ।

जो कितने ही आचार्य सोलह कल्पोको स्वीकार करते हैं उनके मतानुसार मैं उस उस कल्पमें (प्रत्येक कल्पमे) विमानोके प्रमाणको कहता हू ॥ ३६ ॥ उक्त विमानोकी सख्या प्रथम कल्पमे बत्तीस लाख (३२०००००), ऐशान कल्पमे अट्ठाईस लाख (२८०००००), तृतीय सनत्कुमार कल्पमे बारह लाख (१२०००००), माहेन्द्र कल्पमे आठ लाख (८०००००), ब्रह्म कल्पमे छ्यानबैसे अधिक दो लाख (२०००९६), ब्रह्मोत्तर कल्पमे उससे (२०००९६) हीन चार लाख (४०००००−२०००९६=१९९९०४), लान्तव कल्पमे व्यालीस अधिक पच्चीस हजार (२५०४२), आगेके कापिष्ठ कल्पमे इनके विना पचास हजार अर्थात् चौबीस हजार नौ सौं अट्ठावन (५००००−२५०४२=२४९५८), शुक्र कल्पमे बीस हजार बीस (२००२०), महाशुक्रमे उनके विना चालीस हजार अर्थात् उन्नीस हजार नौ सौ अस्सी (४००००−२००२० =१९९८०), शतारमे तीन हजार उन्नीस (३०१९), सहस्रारमे एक कम तीस सौ इक्यासी, (२९८१), आनतयुगलमे चार सौ चालीस (४४०), और आरण-अच्युत युगलमे दो सौ साठ (२६०) है ॥ ३७-४२ ॥ मतान्तर—

आनद्र और प्राणत इन दो कल्पोमे शुद्ध चार सौ (४००) तथा आरण-अच्युत युगलमे शुद्ध तीन सौ (३००) विमान है, ऐसा दूसरे आचार्य कहते है ॥ ४३ ॥

उक्त विमानोकी सख्या प्रथम ग्रैवेयकमे एक सौ ग्यारह (१११), मध्यम ग्रैवेयकमे एक सौ सात (१०७), उपरिम ग्रैवेयकमे इक्यानवै (९१), अनुदिशोमे नौ ही (९) तथा

---

१ ब द्वात्रिंशा° । २ आ प °युतानाद्ये । ३ आ प षष्ठि° ।

अनुत्तरेषु पञ्चैव विमानगणना इमे । इत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि तेषां संख्येयकादिकम् ॥४५
अर्चिश्च मालिनी चैव वैरं वैरोचनाख्यकम् । सोमं सोमप्रभं चाङ्कं स्फटिकादित्यनामकम् ॥४६
अर्चिर्वैरोचनाख्यं च अर्चिमालिन्यपि क्रमात् । प्रभासापि च पूर्वाद्या आदित्यस्य चतुर्दिशम् ॥ ४७
विजयं वैजयन्तं च जयन्तमपराजितम् । सर्वार्थसिद्धिसंज्ञस्य विमानस्य चतुर्दिशम् ॥४८
चतुःशून्याब्धिषट्कं[1] च आद्ये संख्येयविस्तृताः[2] । विमानाश्च परे शून्यचतुष्कं शून्यषट्ककम्[3] ॥४९

। ६४०००० । ५६०००० ।

चत्वारिंशत्सहस्राणि तृतीये नियुतद्वयम् । षष्टिश्चैव[4] सहस्राणि माहेन्द्रे नियुतं तथा ॥५०

। २४०००० । १६०००० ।

संख्येयविस्तृता ब्रह्मयुग्मेऽशीतिसहस्रकम् । दशैव च सहस्राणि विज्ञेया लान्तवद्वये ॥५१

। ८००० । १०००० ।

शुक्रद्वये सहस्राणि अष्टौ संख्येयविस्तृताः । द्वादशैव शतानि स्युः शतारद्वितये पुनः ॥५२

। ८०००० । १२०० ।

चत्वारिंशं शतं विद्यादानतादिचतुष्टये । चतुर्गुणास्तु संख्येयाः सर्वत्रासंख्यविस्तृताः ॥५३

असख्यविस्तृतविमानाः । सौ २५६०००० । ऐ २२४०००० । स ९६०००० । मा ६४०००० । ब्रह्मयुग्मे ३२०००० । लान्तवद्वये ४०००० । शुक्रद्वये ३२००० । शतारद्वितये ४८०० । आनतादिचतुष्के ५६० ।

अनुत्तरोमे पाच (५) ही हैं। इस प्रकार यहां तक यह विमानोकी संख्या निर्दिष्ट की गई है । इसके आगे उन विमानोका सख्येय विस्तार आदि कहा जाता है ॥ ४४-४५ ॥ अर्ची, मालिनी (अर्चिमालिनी), वैर, वैरोचन, सोम, सोमप्रभ, अक, स्फटिक और आदित्य ये नौ अनुदिश विमान हैं ॥ ४६ ॥ इनमे अर्ची, वैरोचन, अर्चिमालिनी और प्रभासा (वैर) ये चार श्रेणी-बद्ध विमान आदित्य इन्द्रककी पूर्वादिक चार दिशाओमे स्थित हैं ॥ ४७ ॥ विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित ये चार विमान सर्वार्थसिद्धि नामक इन्द्रक विमानकी चारो दिशाओमे स्थित हैं ॥ ४८ ॥

सख्यात योजन विस्तारवाले विमान प्रथम कल्पमे चार शून्य, समुद्र अर्थात् चार और छह (६४००००) इतने अर्थात् छह लाख चालीस हजार तथा आगेके ऐशान कल्पमे चार शून्य, छह और [पाच] (५६००००) इतने अको प्रमाण अर्थात् पाच लाख साठ हजार हैं ॥ ४९ ॥ उक्त सख्यात योजन विस्तारवाले विमान तीसरे कल्पमे दो लाख चालीस हजार (२४००००) तथा माहेन्द्र कल्पमे एक लाख साठ हजार (१६००००) हैं ॥ ५० ॥ सख्यात योजन विस्तारवाले विमान ब्रह्मयुगलमे अस्सी हजार (८००००) तथा लान्तवयुगलमे दस हजार (१००००) ही जानने चाहिये ॥ ५१ ॥ सख्यात विस्तारवाले विमान शुक्रयुगलमे आठ हजार (८०००) तथा शतारयुगलमे बारह सौ (१२००) ही हैं ॥ ५२ ॥ वे विमान आनत आदि चार कल्पोमे एक सौ चालीस (१४०) जानना चाहिये । उपर्युक्त सब कल्पोमे असख्यात योजन विस्तारवाले विमान इन सख्यात विस्तारवाले विमानोंसे चौगुने जानने चाहिये— सौधर्म २५६००००, ऐशान २२४००००, सनत्कुमार ९६००००, माहेन्द्र ६४००००, ब्रह्मयुगल ३२००००, लान्तवयुगल ४००००, शुक्रयुगल ३२०००, शतारयुगल ४८००, आनतादि चार

---

१ ब शून्याब्दि° । २ आ प विस्तृता । ३ [°चतुष्क षट्कपचकम्] । ४ आ प षष्ठिश्चैव

कल्पेषु पञ्चमो भागो राशेः सख्येयविस्तृतः । चतु पञ्चमभागाः स्युरसख्येयकविस्तृताः ॥५४

शत चाष्टावसंख्येयास्त्रयः संख्येयविस्तृताः । अगण्या नवतिर्व्येका[1] गण्याश्चाष्टादशोदिताः ॥५५

। १०८ । ८९ । १८ ।

चतुःसप्ततिरूर्ध्वं च असंख्येया उदाहृता.[2] । दश सप्त च संख्येया अष्टौ चासख्यविस्तृताः ॥५६

। ७४ । १७ । ८ ।

संख्येयमनुदिक्ष्वेकं तथैवानुत्तरेष्वपि । असंख्येयास्तु चत्वार इति सर्वज्ञदर्शनम् ॥५७

। १ । १ ।

शून्याष्टक त्रिक चैव नव च स्यु. पुनर्नव । षडेकं च क्रमाद् ज्ञेया विमाना गणितागताः ॥५८

। १६९९३८० ।

त्रयश्चत्वारि षट् सप्त नव सप्त षडेव च । असंख्यविस्तृता ज्ञेया विमाना सर्व एव ते ॥५९

। ६७९७६४३ ।

शतमष्टौ सहस्राणि विंशति सप्तसंयुता । सर्वाण्यपि विमानानि स्थितान्यावलिकासु वै ॥६०

। ८१२७ ।

चत्वारि च सहस्राणि चत्वार्येव शतानि च । नवतिश्चापि पञ्चाग्रा आदावावलिकास्थिता ॥६१

। ४४९५ ।

---

५६० ॥ ५३ ॥ कल्पोमे अपनी अपनी विमानराशिके पाचवे भाग प्रमाण सख्यात योजन विस्तारवाले तथा चार पाचवे भाग ($\frac{4}{5}$) प्रमाण असख्यात योजन विस्तारवाले हैं ॥ ५४ ॥

ग्रैवेयकोमेसे अधस्तन ग्रैवेयकमे असख्यात विस्तारवाले विमान एक सौ आठ (१०८) तथा सख्यात विस्तारवाले तीन (३) हैं, मध्यम ग्रैवेयकोमे एक कम नव्वै (८९) विमान असख्यात विस्तारवाले तथा अठारह (१८) विमान सख्यात विस्तारवाले है, उपरिम ग्रैवेयकमे चौहत्तर (७४) असख्यात विस्तारवाले तथा सत्तरह (१७) सख्यात विस्तारवाले विमान कहे गये हैं । अनुदिशोमे आठ(८) असख्यात विस्तारवाले विमान तथा एक (१) सख्यात विस्तारवाला है । उसी प्रकारसे अनुत्तरोमे भी सख्यात विस्तारवाला एक (१) तथा असख्यात विस्तारवाले चार (४) विमान है, यह सर्वज्ञके द्वारा देखा गया है ॥ ५५-५७ ॥ सब विमानोमे अकक्रमसे शून्य, आठ, तीन, नौ, नौ, छह और एक (१६९९३८०) इतने विमान सख्यात विस्तारवाले तथा तीन, चार, छह सात, नौ, सात और छह (६७९७६४३) इतने विमान असख्यात विस्तारवाले है ॥ ५८-५९ ॥

श्रेणियोमे स्थित (श्रेणीबद्ध) सब विमान आठ हजार एक सौ सत्ताईस (८१२७) हैं ॥ ६० ॥ प्रथम कल्पमे श्रेणीबद्ध विमान चार हजार चार सौ पचानवै (४४९५) हैं ॥६१॥

विशेषार्थ—प्रथम कल्पयुगलमे इकतीस इन्द्रक विमान हैं । इनमेसे प्रथम ऋतु इन्द्रककी चारो दिशाओमेसे प्रत्येकमे ६३–६३ श्रेणीबद्ध विमान स्थित हैं। आगे दूसरे व तीसरे आदि इन्द्रकोमे वे उत्तरोत्तर एक एकसे कम (६२, ६१ आदि) होते गये हैं । इस क्रमसे सौधर्म कल्पमे समस्त (३१) इन्द्रकोके आश्रित सब श्रेणीबद्ध विमान कितने हैं, यह जाननेके लिये निम्न गणित सूत्रका उपयोग किया जाता है– एक कम गच्छको आधा करके उसे चयसे गुणित

---

१ आ प वेंका । २ प असख्येय उदा० ।

चतुर्दश शतान्येव अष्टाशीतिश्च तत्परे । षट्शत षोडशान्यस्मिन् माहेन्द्रे त्र्यधिके शते ॥६२
। १४८८ । ६१६ । २०३ ।
षडशीतिर्द्विशतं ब्रह्मे नवतिश्चतुरुत्तरा । ब्रह्मोत्तरे परस्मिँस्तु पञ्चाविंशं शतं भवेत् ॥६३
। २८६ । ९४ । १२५ ।
चत्वारिंशत्पुन सैका कापित्थे शुक्रनामके । अष्टाग्रा खलु पञ्चाशन्महत्येकान्नविंशतिः ॥६४
। ४१ । ५८ । १९ ।
शतारे पञ्चपञ्चाशदष्टादश ततः परे । पञ्चोने द्वे शते चापि बोद्धव्या आनतद्वये ॥६५
। ५५ । १८ । १९५ ।
शतमेकान्नषष्टिश्च आरणाच्युतयुग्मके । त्रयोविंश शत विद्यादधस्तान्निःप्रकीर्णकाः[1] ॥६६
। १५९ । १२३ ।

करे । फिर उसको मुखमेसे कम करके शेषको गच्छसे गुणित करनेपर सर्व सकलित धन प्राप्त होता है । जैसे– प्रकृत सौधर्म कल्पमे एक दिशागत श्रेणीबद्ध ६३ हैं । चूकि इस कल्पके अधीन पूर्व, पश्चिम और दक्षिण इन तीन दिशागत श्रेणीबद्ध विमान हैं, अत एव इनको तीनसे गुणित करनेपर १८९ मुखका प्रमाण होता है, चयका प्रमाण यहा तीन और गच्छ ३१ है । अत एव उक्त सूत्रके अनुसार $\frac{३१-१}{२}$ ×३=४५, (१८९–४५)×३१ = ४४६४, इसमे सौधर्म कल्पके ३१ इन्द्रक विमानोको मिला देनेपर उपर्युक्त प्रमाण प्राप्त हो जाता है— ४४६४+३१=४४९५ यही क्रम आगेके कल्पोमे भी समझना चाहिये ।

आगे ऐशान कल्पमे चौदह सौ अठासी (१४८८), सनत्कुमार कल्पमे छह सौ सोलह (६१६) तथा माहेन्द्र कल्पमे दो सौ तीन (२०३) श्रेणीबद्ध विमान है ॥ ६२ ॥

विशेषार्थ— उपर्युक्त ३१ इन्द्रक विमानोकी केवल उत्तर दिशागत श्रेणीबद्ध विमान ही इस कल्पके अन्तर्गत हैं । अत एव यहा मुख ६३ चय १ और गच्छ ३१ है । उक्त प्रक्रियाके अनुसार यहा ऐशान कल्पमे $\frac{३१-१}{२}$ ×१=१५, (६३–१५)× ३१ = १४८८ श्रेणीबद्ध विमानोका प्रमाण प्राप्त हो जाता है । सब (३१) इन्द्रक विमान चूकि सौधर्म कल्पके अधीन हैं, अत एव उनका प्रमाण यहा नही जोडा गया है । सनत्कुमार कल्पमे ७ इन्द्रक विमानोमेसे प्रथम इन्द्रककी प्रत्येक दिशामे ३२ तथा आगे १–१ कम (३१, ३० आदि) श्रेणीबद्ध विमान है । अतएव यहा मुखका प्रमाण ३२×३=९६, चय ३ और गच्छ ७ है । अत $\frac{७-१}{२}$×३=९, (९६ –९)×७=६०९, ६०९ + ७ इन्द्रक = ६१६ श्रे ब । माहेन्द्र कल्पमे $\frac{७-१}{२}$ = ३, (३२–३)× ७ = २०३ श्रे ब. ।

ब्रह्म कल्पमे दो सौ छयासी (२८६), ब्रह्मोत्तर कल्पमे चौरानवै (९४) और लान्तव कल्पमे एक सौ पच्चीस (१२५) श्रेणीबद्ध विमान है ॥ ६३ ॥ ब्रह्म $\frac{४-१}{२}$ ×३=४$\frac{१}{२}$, (२५×३)–४$\frac{१}{२}$,=७०$\frac{१}{२}$, ७०$\frac{१}{२}$×४+४ इ वि =२८६ श्रेणीबद्ध । ब्रह्मोत्तर $\frac{४-१}{२}$, २५–$\frac{४-१}{२}$ ×४=९४ श्रेणीबद्ध । लान्तव (२१×३)+(२०×३) + २ इ वि. =१२५श्रेणीबद्ध ।

कापिष्ठ कल्पमे इकतालीस (४१), शुक्रमे अट्ठावन (५८) और महाशुक्रमे उन्नीस श्रेणीबद्ध विमान है ॥ ६४ ॥ शतार कल्पमे पचपन (५५), सहस्रारमे अठारह (१८) और आनतयुगलमे पाच कम दो सौ (१९५) श्रेणीबद्ध विमान है ॥ ६५ ॥ आरण और अच्युत युगलमे एक सौ उनसठ (१५९) तथा अधो ग्रैवेयकमे एक सौ तेईस (१२३) प्रकीर्णकरहित

१ ब निष्प्रकीर्णकाः ।

सप्ताग्रा मध्यमेऽशीतिरेकपञ्चाशदुत्तरे । अनुदिक्षु नवैव स्युः पञ्चैवानुत्तरेषु च ॥६७
। ८७ । ५१ । ९ । ५ ।
ऋतुर्नृक्षेत्रविस्तारश्चरमो जम्बूसमस्तयोः । विशेषे रूपहीनेन्द्रकाप्ते हानिवृद्धिके ॥६८
। ४५००००० । १००००० । हानिवृद्धि ७०९६७ । $\frac{2}{3}\frac{3}{1}$ ।
एकत्रिंशद्विमानानि श्रेणीषु चतसृष्वपि । स्वयम्भूजलधेरूर्ध्वं शेषा द्वीपाम्बुधित्रये ॥६९
। ३१ । १६ । ८ । ४ । २ । १ । १ ।
चन्द्रे विमलवल्ग्वोश्च श्रेण्यर्धार्धं तथा परे । चूलिका वालमात्रेण ऋतुर्न प्राप्य तिष्ठति ॥७०
जलप्रतिष्ठिता आद्यो' परयोर्वातप्रतिष्ठिताः । आ सहस्रारतो [1]ब्रह्माज्जलवातप्रतिष्ठिता. ॥७१
आनतादिविमानाश्च शुद्धाकाशे प्रतिष्ठिता' । अय प्रतिष्ठानियमः सिद्धो लोकानुभावतः ॥७२
एकविंशशत[2] चैक सहस्र च घनो द्वयो । एकोनशतहीन च बहला परयोर्द्वयो. ॥७३
। ११२१ । १०२२ ।
ब्रह्मे च लान्तवे शुक्रे शतारयुगलेऽपि च । आनतादिचतुष्के च अधस्तान्मध्यमे परे ॥७४

(श्रेणीबद्ध) विमान जानना चाहिये ॥ ६६ ॥ मध्यम ग्रैवेयकमे सतासी (८७), उपरिम ग्रैवेयकमे इक्यावन (५१), अनुदिशोमे नौ (९) तथा अनुत्तरोमे पाच (५) ही श्रेणीबद्ध विमान हैं ॥ ६७ ॥

ऋतु इन्द्रकका विस्तार मनुष्यक्षेत्रके बराबर पैंतालीस लाख तथा अन्तिम सर्वार्थसिद्धि इन्द्रकका विस्तार जम्बूद्वीपके प्रमाण एक लाख योजन है। उन दोनोको परस्पर घटाकर शेषमे एक कम इन्द्रकप्रमाणका भाग देनेपर हानि-वृद्धिका प्रमाण प्राप्त होता है ॥ ६८ ॥ यथा—
$\frac{४५००००० - १०००००}{६३ - १} = ७०९६७\frac{२}{३}\frac{३}{१}$ यो हा वृ ।

चारो ही श्रेणियोमे स्थित तिरेसठ तिरेसठ श्रेणीबद्ध विमानोमे इकतीस विमान स्वयम्भूरमण समुद्रके ऊपर तथा शेष बत्तीस विमान तीन द्वीपो और तीन समुद्रोमे (स्वयम्भूरमण द्वीपमे १६, अहीन्द्रवर समुद्रमे ८, अहीन्द्रवर द्वीपमे ४, देववर समुद्रमे २, देववर द्वीपमे १ और यक्षवर समुद्रमे १ = ३२ स्थित है ॥ ६९ ॥ विमल, चन्द्र और वल्गु इद्रक विमानोके आधे आधे श्रेणीबद्ध विमान अनन्तर द्वीपो व समुद्रोमे स्थित हैं (?) । ऋतु विमान मेरु पर्वतकी चूलिकाको बाल मात्रसे न पाकर (बाल प्रमाण अन्तरसे) स्थित है ॥ ७० ॥ प्रथम दो कल्पोके विमान जलके ऊपर स्थित हैं, आगेके दो कल्पोके विमान वायुके ऊपर स्थित हैं, तथा ब्रह्म कल्पसे लेकर सहस्रार कल्प तक आठ कल्पोके विमान जल-वायुके ऊपर स्थित हैं । आनत आदि कल्पोके विमान तथा कल्पातीत विमान शुद्ध आकाशमे स्थित हैं। यह विमानोके अवस्थानका क्रम लोकानुयोगसे सिद्ध है ॥ ७१-७२ ॥

विमानतलका बाहल्य सौधर्म और ऐंशान इन दो कल्पोमे एक हजार एक सौ इक्कीस (११२१), तथा आगेके दो कल्पोमे वह विमानतलबाहल्य निन्यानबै योजनसे हीन (११२१ –९९=१०२२) है ॥ ७३ ॥ ब्रह्म, लान्तव, शुक्र, शतारयुगल, आनत आदि चार, अधो ग्रैवेयक, मध्यम ग्रैवेयक और उपरिम ग्रैवेयकमे वह विमानतलबाहल्य परस्पर क्रमश उतने

१ आ प ब्रह्माज्वल' २ आ प एकविंशत ।

तावदेव क्रमाद्धीना बाहल्येन परस्परात् । एकत्रिंशं शतं रुन्द्राः परस्मिन् पटलद्वये ॥७५

। ९२३ । ८२४ । ७२५ । ६२६ । ५२७ । ४२८ । ३२९ । २३० । १३१ ।

प्रासादा षट्छतोच्छ्राया योजनै पूर्वकल्पयोः । ततः पञ्चशतोच्छ्रायाः परयोः कल्पयोर्द्वयोः ॥७६

। ६०० । ५०० ।

ब्रह्मे च लान्तवे शुक्रे शतारे चानतादिषु । आद्ये मध्ये तथोर्ध्वे च शतार्धोना. परस्परात् ॥७७

। ४५० । ४०० । ३५० । ३०० । २५० । २०० । १५० । १०० ।

प्रासादा ह्यनुदिक्ष्वत्र दृष्टाः पञ्चाशदुच्छ्रयाः । अनुत्तरेषु विज्ञेयाः पञ्चविंशतिमुच्छ्रिताः[1] ॥७८

। ५० । २५ ।

आद्ययोः पञ्चवर्णास्ते कृष्णवर्ज्याः परद्वये । परयोर्नीलवर्ज्याश्च ब्रह्मलान्तवयोरपि ॥७९
रक्तवर्ज्याश्च शुक्राख्ये सहस्रारे च भाषिताः । परतः पाण्डरा एव विमाना शङ्खसंनिभाः ॥८०
व्रजन्ति तापसोत्कृष्टा आ ज्योतिषविमानतः । चरका. सपरिव्राजा गच्छन्त्या ब्रह्मलोकत. ॥८१
[2]अकामनिर्जरातप्तास्तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाः पुनः । अन्यपाषण्डिनश्चापि[3] आ सहस्रारतोऽधिकाः ॥८२
आऽच्युताच्छ्रावका यान्ति उत्कृष्टाऽऽजीवका अपि । स्त्रियः सम्यक्त्वयुक्ताश्च सच्चारित्रविभूषिताः ॥

(९९) से ही उत्तरोत्तर हीन है । आगेके दो पटलोमे वह बाहल्य एक सौ इकतीस योजन मात्र हैं ॥ ७४-७५ ॥

जैसे— ब्रह्म ९२३, लान्तव ८२४, शुक्र ७२५, शतारयुगल ६२६, आनतादि चार ५२७, अधो ग्रै. ४२८, मध्यम ग्रै ३२९, उपरिम ग्रै २३०, अनुदिश व अनुत्तर १३१ यो ।

पूर्व दो कल्पोमे स्थित प्रासाद छह सौ योजन और आगे दो कल्पोमे पाच सौ योजन ऊचे हैं— सौ ऐ ६०० यो , स मा ५०० यो ॥ ७६ ॥ ये प्रासाद ब्रह्म, लान्तव, शुक्र, शतार, आनतादि चार, अधो ग्रैवेयक, मध्यम ग्रैवेयक और उपरिम ग्रैवेयकमे उत्तरोत्तर पचास योजन से हीन हैं । यथा— ब्रह्म ४५०, लान्तव ४००, शुक्र ३५०, शतार ३००, आनतादि २५० अ ग्रै २००, म. ग्रै १५०, उ ग्रै १०० यो ॥ ७७ ॥ यहा अनुदिशोमे स्थित वे प्रासाद पचास (५०) योजन और अनुत्तरोमे पच्चीस (२५) योजन मात्र ऊचे जानने चहिये ॥ ७८ ।

प्रथम दो कल्पोमे स्थित विमान पाचो वर्णवाले, आगेके दो कल्पोमे कृष्ण वर्णको छोडकर चार वर्णवाले, उसके आगे ब्रह्म और लान्तव इन दो कल्पोमे कृष्ण और नील वर्णसे रहित तीन वर्णवाले, शुक्र और सहस्रार कल्पोमे लालको भी छोडकर दो वर्णवाले तथा इसके आगे सब विमान शखके सदृश धवल वर्णवाले ही हैं ॥ ७९-८० ॥

उत्कृष्ट तापस ज्योतिष विमानो तक जाते है, अर्थात् वे भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोमे उत्पन्न होते हैं । नग्न अण्डलक्षण चरक और परिव्राजक (एकदण्डी, त्रिदण्डी आदि) ब्रह्मलोक तक जाते हैं ॥ ८१ ॥ अकामनिर्जरासे सन्तप्त पचेन्द्रिय तिर्यंच तथा दूसरे पाखण्डी तपस्वी भी अधिकसे अधिक सहस्रार कल्प तक जाते हैं ॥ ८२ ॥ श्रावक, उत्कृष्ट आजीवक (कजिकादिभोजी) तथा सम्यग्दर्शनसे सयुक्त व चारित्रसे विभूषित स्त्रिया अच्यु

१ आ प विंशतिरुच्छ्रिता । २ आ प आकाम । ३ प पाखण्डिन' ।

निर्ग्रन्था· शुद्धचारित्रा ज्ञानसम्यक्त्वभूषणा.। [1]जातरूपधराः शूरा गच्छन्ति च ततः परम् ॥८४
आ ग्रैवेयाद् व्रजन्तीति मिथ्यादर्शनिनो मताः[2]। ऊर्ध्वं सद्दर्शनास्तेभ्यः संयमस्था नरोत्तमा· ॥८५
निर्ग्रन्था निरहङ्कारा विमुक्तमदमत्सराः। निर्मोहा निर्विकाराश्च ज्ञानध्यानपरायणा ॥८६
हत्वा कर्मरिपून् धीराः शुक्लध्यानासिधारया। मोक्षमक्षयसौख्याढ्यं व्रजन्ति पुरुषोत्तमाः ॥८७
पञ्च कल्पान् विहायाद्यान् कृत्स्नपूर्वधरोद्भव.। दशपूर्वधरा कल्पान् व्रजन्त्यूर्ध्वं च संयता. ॥८८
पञ्चेन्द्रियतिरश्चोऽपि आ सहस्रारतः सुरा। स्थावरानपि चैशानात् परतो यान्ति मानुषान् ॥८९
सौधर्माद्यास्तु चत्वार. अष्टौ ब्रह्मादयोऽपि च। प्राणतश्चाच्युतश्चेति चिह्नवन्तश्चतुर्दश[3] ॥९०
वराहो मुकुटे चिह्नं मृगो महिषमीनवत्। कूर्मदर्दुरसप्तीभाश्चन्द्र. सर्पोऽथ खड्गक. ॥९१
छागलो वृषभश्चैव [4]विटपीन्द्रस्तथाच्युतात्। क्रमेण चिह्नानीन्द्राणा प्रोक्तान्येव चतुर्दश ॥९२
इन्द्रकात्तु प्रभासञ्ज्ञाद् दक्षिणावलिकास्थितम्[5]। अष्टादशविमान तत् सौधर्मो यत्र देवराट् ॥९३

कल्प तक जाती हैं ॥ ८३ ॥ निर्मल चारित्रसे संयुक्त, सम्यग्ज्ञान व सम्यग्दर्शनसे विभूषित तथा दिगम्बर रूपको धारण करनेवाले ऐसे शूर वीर निर्ग्रन्थ साधु अच्युत कल्पसे आगे अर्थात् कल्पातीत विमानोमे जाते हैं ॥८४॥ मिथ्यादृष्टि (द्रव्यलिंगी मुनि) मरकर ग्रैवेयक पर्यन्त तथा मनुष्योमे श्रेष्ठ सम्यग्दृष्टि सयमी मुनि उससे आगे अनुदिश व अनुत्तर विमानोमे जाते हैं॥ ८५॥ मनुष्योमे श्रेष्ठ जो धीर वीर साधु अहकार, मद, मात्सर्य, मोह एव क्रोधादि विकारोसे रहित होकर ज्ञान और ध्यानमे तप्पर होते हैं वे महात्मा शुक्लध्यानरूप तलवारकी धारसे कर्मरूप शत्रुओको नष्ट करके अविनश्वर सुखसे सपन्न मोक्षको प्राप्त करते हैं ॥ ८६-८७ ॥ समस्त (चौदह) पूर्वोंके धारक प्रथम पाच कल्पोको छोडकर आगेके देवोमे उत्पन्न होते हैं। दस पूर्वोंके धारक कल्पोमे और सयत उसके आगे जाते हैं ॥ ८८ ॥

सहस्रार कल्प तकके देव पचेन्द्रिय तिर्यंच तक होते हैं। ऐशान कल्प तकके देव स्थावर भी होते है। किन्तु आगेके देव मनुष्य ही होते हैं ॥ ८९ ॥

विशेषार्थ— अभिप्राय यह है कि भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और सौधर्म-ऐशान कल्पोके देव वहासे च्युत होकर परिणामोके अनुसार एकेन्द्रियो (पृथिवीकायिक, जलकायिक और प्रत्येक वनस्पति), कर्मभूमिज पचेन्द्रिय तिर्यंचो और मनुष्योमे भी उत्पन्न हो सकते है। इससे आगे सहस्रार कल्प तकके देव मरकरके पचेन्द्रिय तिर्यंचो और मनुष्योमे उत्पन्न होते हैं। इससे ऊपरके देव केवल मनुष्योमे ही उत्पन्न होते है।

सौधर्म आदि चार, ब्रह्म आदि आठ, प्राणत और अच्युत इन कल्पोमे इन्द्रोके मुकुटमे क्रमसे ये चौदह चिह्न होते हैं— वराह, मृग, भैंस, मछली, कछवा, मेढक, घोडा, हाथी, चन्द्र, सर्प, खड्ग, छागल (बकरी), बैल और विटपीन्द्र (कल्पवृक्ष)। इस प्रकार अच्युत कल्प तक ये क्रमसे इन्द्रोके चौदह चिह्न कहे गये हैं ॥ ९०-९२ ॥

प्रभ नामक इन्द्रकसे दक्षिण श्रेणीमे स्थित जो अठारहवा श्रेणीबद्ध विमान है उसमे

१ ब ज्ञात°। २ [मृता.]। ३ प चिन्हवन्त्यचतु°। ४ आ प वटपीन्द्र°। ५ आ प सज्ञादक्षिणा°।

सहस्राणामशीतिं च चत्वार्येव च विस्तृतम् । नगरं तत्र शक्रस्य हेमप्राकारसंवृतम् ॥९४
। ८४००० ।
क्वचिद्दोलाध्वजैश्चित्रैश्चक्रान्दोलनपङक्तिभिः । क्वचिन्मयूरयन्त्राढ्यै[ढ्यै]र्भ्राजन्ते शालकोटयः ॥९५
शतार्धमवगाढो गां तावदेव च विस्तृत. । प्राकारस्त्रिशतोच्छ्रायः प्राक्चतुःशतगोपुरम् ॥९६
। ५० । ३०० । ४०० ।
विस्तृतानि शत चैकं प्रांशूनि च चतु'शतम् । वज्रमूलाग्रवैडूर्यसर्वरत्नानि सर्वतः ॥९७
। १०० । ४०० ।
षष्टिमात्रं[१] प्रविष्टो गां ततो द्विगुणविस्तृत' । प्रासाद. षट्छतोच्छ्रायः सौधर्मे स्तम्भनामकः ॥९८
। ६० । १२० । ६०० ।
षष्ट्या देवीसहस्राणा नियुतेनैव सेवित. । नित्यप्रमुदित शक्र. तत्रास्ते सुखसागरे ॥९९
। १६०००० ।
पञ्चाशतं प्रविष्टा गां ततो द्विगुणविस्तृता । प्रासादा अग्रदेवीनामष्टौ पञ्चशतोच्छ्रयाः ॥१००
। ५० । १०० । ५०० ।
कनकश्रीरिति ख्याता देवी वल्लभिका शुभा । पूर्वस्या शक्रतस्तस्या प्रासादोऽत्र मनोहर. ॥१०१
उत्तरस्यां दिशायां तु प्रभाया. श्रेणिसंस्थितम् । अष्टादशविमान तत् ईशानो यत्र देवराट् ॥१०२

सौधर्म इन्द्र रहता है ॥ ९३ ॥ वहापर चौरासी हजार (८४०००) योजन विस्तृत और सुवर्णमय प्राकारसे वेष्टित सौधर्म इन्द्रका नगर है ॥ ९४ ॥ प्राकारके अग्रभाग कहीपर पक्तिबद्ध विचित्र ध्वजाओसे तथा कहीपर मयूराकार यत्रोसे सुशोभित होते है ॥ ९५ ॥ प्राकार पृथिवीके भीतर पचास (५०) योजन अवगाहसे सहित, उतना (५०) ही विस्तृत तथा तीन सौ (३००) योजन ऊंचा है। इसके पूर्वमे चार सौ (४००) गोपुरद्वार है ॥ ९६ ॥ ये गोपुरद्वार एक सौ (१००) योजन विस्तृत और चार सौ (४००) योजन ऊचे है। उनका मूल भाग वज्रमय तथा उपरिम भाग सब ओर वैडूर्यमणिमय व सर्वरत्नमय है ॥ ९७ ॥ सौधर्म इन्द्रका स्तम्भ नामक प्रासाद साठ (६०) योजन मात्र पृथिवीके भीतर प्रविष्ट (अवगाढ), इससे दूना (१२० यो) विस्तृत और छह सौ योजन (६००) ऊचा है ॥ ९८ ॥ उक्त प्रासादके भीतर एक लाख साठ हजार (१६००००) देवियोसे सेवित सौधर्म इन्द्र निरन्तर आनन्दको प्राप्त होकर सुखसमुद्रमे मग्न रहता है ॥ ९९ ॥

सौधर्म इन्द्रकी अग्रदेवियोके आठ प्रासाद पचास (५०) योजन पृथिवीमे प्रविष्ट, उससे दूने (१०० यो) विस्तृत और पाच सौ (५००) योजन ऊचे हैं ॥ १०० ॥ सौधर्म इन्द्रकी कनकश्री इस नामसे प्रसिद्ध श्रेष्ठ वल्लभा देवी है। उसका मनोहर प्रासाद यहा सौधर्म इन्द्रके प्रासादकी पूर्व दिशामे स्थित है ॥ १०१ ॥

प्रभा नामक इन्द्रककी उत्तर दिशामे जो अठारहवा श्रेणीबद्ध विमान स्थित है उसमे

१ आ ब पष्ठिमात्र ।

सौधर्मस्येव मानेन प्रासादो नगर तथा । अशीति. स्यात् सहस्राणि हेममालास्य वल्लभा ॥१०३
। ८०००० ।

ऊर्ध्वं प्रभायाश्चक्राख्यमष्टम चेन्द्रकं तत । सनत्कुमार इन्द्रश्च दक्षिणे षोडशे स्थित. ॥१०४

योजनानि त्वसख्यानि दक्षिणा व्यतिपत्य च । द्विसप्ततिसहस्राणि विस्तृत प्रवरं पुरम् ॥१०५
। ७२००० ।

पञ्चवर्गविगाढश्च सालस्तावच्च विस्तृत । सौवर्ण सर्वतस्तस्य प्राशु. सार्धशतद्वयम् ॥१०६
। २५ । [२५] । २५० ।

त्रिशत गोपुराणां च प्रत्येक द्विक्चतुष्टये । विस्तारो नवतिस्तेषामुच्छ्रयश्च शतत्रयम् ॥१०७
। ३०० । ९० । ३०० ।

शतार्धमवगाढो गा शतमेव च विस्तृत । [1]प्रासादोऽर्धसहस्रोच्च इन्द्रानन्दकर शुभ ॥१०८
। ५० । १०० । ५०० ।

द्विसप्तत्या सहस्राणा देवीभिर्नित्यसेवित· । अष्टावग्रमहिष्यस्तु वल्लभा कनकप्रभा ॥१०९
। ७२००० ।

नवतिर्विस्तृतास्तासा तदर्धं च गता.[2] क्षितौ । प्रासादा. परितस्तस्मादुच्चा सार्धचतु शतम् ॥११०
। ९० । ४५ । ४५० ।

ईशान इन्द्र रहता है ॥ १०२ ॥ उसका प्रासाद प्रमाणमे सौधर्म इन्द्रके समान है । उसके नगरका विस्तार अस्सी हजार (८००००) योजन तथा वल्लभा देवीका नाम हेममाला है ॥ १०३ ॥

प्रभा नामक इन्द्रकके ऊपर चक्र नामका आठवा (प्रभाके साथ) इन्द्रक है। उसके दक्षिणमे स्थित सोलहवे श्रेणीबद्ध विमानमे सनत्कुमार इन्द्र स्थित है ॥ १०४ ॥ दक्षिणमे असख्यात योजन जाकर उसका बहत्तर हजार (७२०००) योजन विस्तृत श्रेष्ठ नगर है ॥ १०५ ॥ इस नगरका सुवर्णमय प्राकार पच्चीस (२५) योजन नीवसे सहित, उतना (२५ यो) ही विस्तृत और अढाई सौ (२५०) योजन सब ओर ऊचा है ॥ १०६ ॥ उसकी चारो दिशाओमेसे प्रत्येक दिशामे तीन सौ (३००) गोपुरद्वार हैं । उनका विस्तार नब्बै (९०) योजन और ऊचाई तीन सौ (३००) योजन मात्र है ॥ १०७ ॥ वहा इन्द्रको आनन्दित करनेवाला जो उत्तम प्रासाद स्थित है वह पृथिवीमे पचास (५०) योजन प्रमाण अवगाहसे सहित, सौ (१००) योजन विस्तृत और पाच सौ (५००) योजन ऊचा है ॥ १०८ ॥ उक्त सनत्कुमार इन्द्रकी बहत्तर हजार (७२०००) देविया सदा सेवा करती हैं । उनमे आठ अग्रदेविया हैं । उसकी वल्लभा देवीका नाम कनकप्रभा है ॥ १०९ ॥ उन देवियोके प्रासाद नब्बै (९०) योजन विस्तृत, इससे आधे (४५ यो) पृथिवीमे प्रविष्ट और साढे चार सौ (४५०) योजन ऊचे हैं । ये प्रासाद उस इन्द्र-प्रासादके चारो ओर हैं ॥ ११० ॥

---

१ प प्रासादोर्ध्वं° । २ आ प च गगता ।

उत्तरस्या पुनश्चक्रात्[१] षोडशावलिकास्थितम् । माहेन्द्रनगर रुन्द्रं सहस्राणां च सप्ततिः ॥१११
। ७०००० ।
अष्टावग्रमहिष्यश्च देवी कनकमण्डिता । वल्लभा तस्य विख्याता तासा वेश्मानि पूर्ववत् ॥११२
चक्राद् ब्रह्मोत्तर चोर्ध्व पञ्चम दक्षिणे तत. । पुर चतुर्दशे षष्टि सहस्राणा च विस्तृतम् ॥११३
। ६०००० ।
सार्धानि द्वादशागाढस्तावदेव च विस्तृत । प्राकारो द्विशतोच्छ्रायो ब्रह्मणः पुरबाहिरः ॥११४
। २५/२ । २५/२ । २०० ।
गोपुराणा शते द्वे च एकैकस्या पुनर्दिशि । अशीति विस्तृतं वेद्य शुद्धं द्विशतमुच्छ्रितम् ॥११५
। २०० । २०० (?) । ८० । २०० ।
प्रासादो नवतिं रुन्द्रस्तदर्ध च क्षितौ गत' । ब्रह्मेन्द्रस्य शुभो दिव्य उच्च. सार्धचतुःशतम् ॥११६
। ९० । ४५ । ४५० ।
अशीतिरुन्द्रा देवीना तदर्ध च क्षिति गता. । चतु.शतोच्छ्र्याश्चैव अष्टानामिति वर्णिताः ॥११७
। ८० । ४० । ४०० ।
चतुस्त्रिशत्सहस्राणि देव्यस्त सततात्रिता. । नीला वल्लभिका नाम्ना प्रासादोऽस्याश्च पूर्वतः ॥११८
। ३४००० ।
उत्तरस्या पुनः पङक्तौ इन्द्रो ब्रह्मोत्तरस्तथा । नीलोत्पलेति नाम्ना च तस्य वल्लभिकामरी ॥११९
ब्रह्मोत्तरात्तृतीय तु नाम्ना लान्तवमिन्द्रकम् । दक्षिणस्यां तत' पङक्तौ द्वादशे लान्तव पुरम् ॥१२०

उक्त चक्र इन्द्रककी उत्तर दिशामे स्थित सोलहवे श्रेणीबद्ध विमानमे माहेन्द्र इन्द्रका नगर स्थित है। उसका विस्तार सत्तर हजार (७००००) योजन है ॥ १११॥ उसके आठ अग्रदेविया और कनकमण्डिता नामकी प्रसिद्ध वल्लभा देवी है। उनके प्रासाद सनत्कुमार इन्द्रकी देवियोके प्रासादोके समान है ॥ ११२ ॥

चक्र इन्द्रकके ऊपर उसको लेकर पाचवा ब्रह्मोत्तर नामका इन्द्रक है। उसके दक्षिणमे चौदहवे श्रेणीबद्ध विमानमे ब्रह्मेन्द्रका पुर है। उसका विस्तार साठ हजार (६००००) योजन है। इस पुरके बाहिर साढे बारह (२५/२) योजन अवागाहसे सहित, उतना ही (२५/२) विस्तृत और दो सौ (२००) योजन ऊचा प्राकार है ॥ ११३-११४ ॥ इस प्राकारकी प्रत्येक दिशामे दो सौ (२००) गोपुरद्वार है। गोपुरद्वारोका विस्तार अस्सी (८०) योजन [इतना (८० यो.) ही अवगाह] और ऊचाई शुद्ध दो सौ योजन प्रमाण जाननी चाहिये ॥ ११५ ॥ ब्रह्मेन्द्रका दिव्य उत्तम प्रासाद नव्वै (९०) योजन विस्तृत, इससे आधा (४५) पृथिवीमे प्रविष्ट और चार सौ पचास (४५०) योजन ऊचा है ॥ ११६ ॥ ब्रह्मेन्द्रकी आठ अग्रदेवियोके प्रासाद अस्सी (८०) योजन विस्तृत, इससे आधे (४० यो) पृथिवीमे प्रविष्ट और चार सौ (४००) योजन ऊचे कहे गये है ॥ ११७ ॥ चौंतीस हजार (३४०००) देविया निरन्तर उसके आश्रित रहती हैं। उसकी वल्लभा देवीका नाम नीला है। इसका प्रासाद इन्द्रप्रासादके पूर्वमे स्थित है ॥ ११८ ॥

ब्रह्मोत्तर इन्द्रककी उत्तरदिशागत पक्तिके चौदहवे श्रेणीबद्ध विमानमे ब्रह्मोत्तर इन्द्र रहता है। उसकी वल्लभा देवीका नाम नीलोत्पला है ॥ ११९ ॥

ब्रह्मोत्तर इन्द्रकको लेकर जो तीसरा लान्तव नामका इन्द्रक है उसकी दक्षिण दिशागत

१ आ प पुन श्चक्रात् ।

पञ्चाशत सहस्राणि तद्विस्तारेण वर्णितम् । हेमसालपरिक्षिप्त लान्तवेन्द्रमन प्रियम्[1] ॥१२१
।५००००।
सचतुर्भागषड्गाढस्तावदेव च विस्तृत । पञ्चाश शतमुद्विद्ध प्राकारस्तस्य भासुर ॥१२२
। $\frac{२५}{४}$ । [$\frac{२५}{४}$] । १५० ।
गोपुराणा शतं षष्ट्या प्राच्या सप्ततिविस्तृतम् । सषष्टिशतमुद्विद्ध दिक्षु सर्वासु लक्षयेत् ॥१२३
। १६० । ७० । १६० ।
प्रासादोऽशीतिविस्तारस्तदर्धं च क्षिति गत । चतु शतोच्छ्रयो रम्यो लान्तवो यत्र देवराट् ॥१२४
। ८० । ४० । [४००] ।
प्रासादा सप्तति रुन्द्रास्तदर्धं च क्षिति गता । उच्छ्रितास्त्रिशत सार्ध देवीनामिति वर्णिता ॥१२५
। ७० । ३५ । ३५० ।
सार्धं षोडशभि स्त्रीणा सहस्रै परिवारित । अष्टावग्रमहिष्यश्च पद्मा नाम्ना च वल्लभा ॥१२६
। १६५०० ।
उत्तरस्तत्र कापित्थो लान्तवेन सम स्मृत. । पद्मोत्पलेति नाम्ना च वल्लभा तस्य विश्रुता ॥१२७
लान्तवोर्ध्वं भवेच्छुक्रमिन्द्रक दक्षिणे तत । चत्वारिंशत्सहस्रोरुद[दि]शमे शुक्रसत्पुरम् ॥१२८
। ४०००० ।
चतुष्कमवगाढो गा तावदेव च विस्तृत । विंशं च शतमुद्विद्ध प्राकारस्तस्य सर्वत ॥१२९
। ४ । ४ । १२० ।

पक्तिके बारहवे श्रेणीबद्ध विमानमे लान्तव इन्द्रका पुर है ॥ १२० ॥ उसका विस्तार पचास हजार (५००००) योजन प्रमाण बतलाया गया है। लान्तवेन्द्रके मनको प्रसन्न करनेवाला वह पुर सुवर्णमय प्राकारसे वेष्टित है ॥ १२१ ॥ पुरका वह प्राकार सवा छह ($६\frac{१}{४}$) योजन अवगाहसे सहित, उतना ($६\frac{१}{४}$) ही विस्तृत और एक सौ पचास (१५०) योजन ऊचा है ॥१२२॥ प्राकारकी पूर्व दिशामे एक सौ साठ (१६०) गोपुरद्वार है। उनका विस्तार सत्तर (७०) योजन और ऊचाई एक सौ साठ (१६०) योजन मात्र है। इतने (१६०) गोपुरद्वार सब दिशाओमे जानना चाहिये ॥ १२३ ॥ उस पुरमे अस्सी (८०) योजन विस्तृत, इससे आधा (४० यो) पृथिवीमे प्रविष्ट और चार सौ (४००) योजन ऊचा रमणीय प्रासाद है, जहा लान्तव इन्द्र रहता है ॥ १२४ ॥ लान्तवेन्द्रकी देवियोके प्रासाद सत्तर (७०) योजन विस्तृत, इससे आधे (३५ यो) पृथिवीमे प्रविष्ट और साढे तीन सौ (३५०) योजन ऊचे कहे गये हैं ॥१२५॥ साढे सोलह हजार (१६५००) स्त्रियोसे वेष्टित उस इन्द्रके आठ अग्रदेविया और पद्मा नामकी वल्लभा देवी है ॥ १२६ ॥

लान्तव इन्द्रककी उत्तर दिशामे स्थित बारहवे श्रेणीबद्ध विमानमे कापिष्ठ इन्द्र रहता है जो कि लान्तव इन्द्रके समान माना गया है। उसकी वल्लभा देवी पद्मोत्पला नामसे प्रसिद्ध है ॥ १२७ ॥

लान्तव इन्द्रकके ऊपर शुक्र इन्द्रक है। उसके दक्षिणमे दसवे श्रेणीबद्धमे शुक्र इन्द्रका उत्तम पुर है जो चालीस हजार (४००००) योजन विस्तृत है ॥ १२८ ॥ उसके सब ओर चार (४) योजन पृथिवीमे प्रविष्ट, उतना (४ यो) ही विस्तृत और एक सौ बीस (१२०) योजन

---

१ प मत प्रिय ।

चत्वारिंश शतं तस्य गोपुराणि चतुर्दिशम् । पञ्चाशतं च विस्तीर्णं चत्वारिंश-शतोच्छ्रितम् ॥१३०
। १४० । ५० । १४० ।
पञ्चत्रिंशतमागाढो विस्तृतो द्विगुणं ततः । प्रासादः शुक्रदेवस्य [1]सार्धत्रिशतमुच्छ्रितः ॥१३१
। ३५ । ७० । ३५० ।
प्रविष्टास्त्रिंशत भौ[भू]मौ द्विगुणं चापि विस्तृता. । प्रासादास्त्रिशतोच्छ्राया देवीनां तत्र वर्णिताः ॥
। ३० । ६० । ३०० ।
लान्तवार्ध प्रिया देव्यः शुक्रस्यापि च वर्णिताः । अष्टावग्रमहिष्यश्च नन्दा तासु च वल्लभा ॥१३३
। ८२५० ।
उत्तरोऽत्र महाशुक्रो नन्दावत्यपि वल्लभा । शुक्रवत्परिवारोऽस्य नगरं च निर्दशितम् ॥१३४
शुक्राच्छतारमूर्ध्वं स्यात्तस्माद्दक्षिणतो दिशि । त्रिंशत्सहस्रविस्तीर्णं शतार[2] पुरमष्टमे ॥१३५
। ३०००० ।
त्रियोजन गतो भूम्या तावदेव च विस्तृतः । प्राकारः शतमुद्विद्ध सविंशशतगोपुरः ॥१३६
। ३ । ३ । १०० । १२० ।
चत्वारिंशत्स्वविस्तारं विंशं च शतमुच्छ्रितम् । एकैकगोपुरं विद्यात्तावन्त्येवान्यदिक्षु च ॥१३७
। ४० । १२० ।

ऊचा प्राकार स्थित है ॥ १२९ ॥ उसकी चारो दिशाओमेसे प्रत्येकमे एक सौ चालीस (१४०) गोपुरद्वार स्थित है । उनका विस्तार पचास (५०) योजन और ऊचाई एक सौ चालीस (१४०) योजन है ॥ १३० ॥ उस पुरमे पैतीस (३५) योजन अवगाहसे सहित, इससे दूना (७० यो) विस्तृत और साढे तीन सौ (३५०) योजन ऊचा शुक्र देवका प्रासाद है ॥१३१॥ वहा शुक्र इन्द्रकी देवियोके प्रासाद तीस (३०) योजन पृथिवीमे प्रविष्ट, इससे दूने (६०यो) विस्तृत और तीन सौ (३००) योजन ऊचे कहे गये है ॥ १३२ ॥ शुक्र इन्द्रकी प्रिय देविया लान्तव इन्द्रकी देवियोसे आधी (८२५०) निर्दिष्ट की गई है। उनमे आठ अग्रदेविया और नन्दा नामकी वल्लभा देवी है ॥ १३३ ॥

शुक्र इन्द्रकके उत्तरमे दसवे श्रेणीबद्धमे महाशुक्र इन्द्रक रहता है। उसकी वल्लभा देवीका नाम नन्दावती है । इसका परिवार और नगर शुक्र इन्द्रके समान निर्दिष्ट किया गया है ॥ १३४ ॥

शुक्र इन्द्रकके ऊपर शतार इन्द्रक स्थित है । उसकी दक्षिण दिशामे स्थित आठवे श्रेणीबद्ध विमानमे तीस हजार (३००००)योजन विस्तारवाला शतार इन्द्रका पुर है ॥१३५॥ उस पुरको वेष्टित करके तीन (३) योजन पृथिवीमे प्रविष्ट, उतना (३ यो) ही विस्तृत और सौ (१००) योजन ऊचा प्राकार स्थित है । उसकी प्रत्येक दिशामे एक सौ बीस(१२०) गोपुरद्वार हैं ॥ १३६ ॥ एक एक गोपुर द्वारका विस्तार चालीस (४०) योजन और ऊचाई एक सौ बीस (१२०) योजन है । इतने (१२०) ही गोपुरद्वार अन्य तीन दिशाओमे भी स्थित

१ आ प सार्ध । २ प शतार ।

त्रिंशत भूमिमागाढस्तस्माद्विगुणविस्तृतः । प्रासादस्त्रिशतोच्छ्राय शतारेन्द्रस्य भाषित. ॥१३८

। ३० । ६० । ३०० ।

चत्वारि च सहस्राणि पञ्चविंश पुन' शतम् । देव्यस्तस्य समाख्याता सुसीमेति च वल्लभा॥१३९

। ४१२५ ।

पञ्चवर्ग प्रविष्टा गा तस्माद् द्विगुणविस्तृता । पञ्चाशे द्वे शते चोच्चा प्रासादास्तस्य योषिताम्॥

। २५ । ५० । २५० ।

उत्तरोऽत्र सहस्रार' शतारस्येव वर्णनम् । वल्लभा लक्ष्मणा नाम्ना देवी तस्य मनोहरा ॥१४१

शताराख्यात्तदुत्पद्य सप्तम त्वच्युतेन्द्रकम् । दक्षिणावलिकाया च षष्ठे चारणसेवितम् ॥१४२

विंशति च सहस्राणि विस्तृत त्वारण पुरम् । द्वे सार्धे गाहविस्तार प्राकारोऽशीतिमुच्छ्रित ॥१४३

। २०००० । ५/२ । ८० ।

गोपुराणां शतं दिक्षु त्रिंशद्विस्तारकाणि च । शतोच्छ्रितानि सर्वाणि नगरस्यारणस्य तु ॥१४४

। १०० । ३० । १०० ।

पञ्चवर्गं त[ग]तो भूमिं तस्माद्विगुणविस्तृत । प्रासादश्चारणेन्द्रस्य सार्धं द्विशतमुच्छ्रित' ॥१४५

। २५ । ५० । २५० ।

द्वे सहस्रे त्रिषष्टिश्च तस्य देव्य प्रकीर्तिता । अष्टावग्रमहिष्यश्च जिनदत्ता च वल्लभा ॥१४६

। २०६३ ।

प्रविष्टा विंशति भूमिं तस्माद्विगुणविस्तृता । प्रासादा द्विशतोच्छ्राया देवीनामिति वर्णिता. ॥१४७

। २० । ४० । २०० ।

हैं ॥ १३७ ॥ शतार इन्द्रका प्रासाद तीस (३०) योजन पृथिवीमे प्रविष्ट, इससे दूना (६०) विस्तृत और तीन सौ (३००) योजन ऊचा कहा गया है ॥ १३८ ॥ शतार इन्द्रके चार हजार एक सौ पच्चीस (४१२५) देविया कही गई है । उसकी वल्लभा देवीका नाम सुसीमा है ॥१३९॥ उसकी देवियोके प्रासाद पच्चीस (५×५) योजन पृथिवीमे प्रविष्ट, उससे दूने (५० यो) विस्तृत और दो सौ पचास (२५०) योजन उचे हैं ॥ १४० ॥

शतार इन्द्रककी उत्तर दिशामे स्थित आठवे श्रेणीवद्ध विमानमे सहस्रार इन्द्र रहता है । उसका वर्णन शतार इन्द्रकके समान है । उसके लक्ष्मणा नामकी मनोहर वल्लभा देवी है ॥ १४१ ॥

शतार नामक इन्द्रकके उपर जाकर सातवा अच्युत इन्द्रक है । उसकी दक्षिण श्रेणीमे स्थित छठे श्रेणीवद्ध विमानमे चारणोसे सेवित व वीस हजार (२००००) योजन विस्तृत आरण पुर है । उसके प्राकारका अवगाह और विस्तार अढाई (५/२) योजन तथा ऊचाई अस्सी (८०) योजन है ॥ १४२-४३ ॥ आरण नगरकी चारो दिशाओमे एक सौ एक सौ (१००-१००) गोपुरद्वार हैं । सव ही द्वार तीस (३०) योजन विस्तृत और सौ (१००) योजन ऊचे हैं ॥ १४४ ॥ उस पुरमे जो आरण इन्द्रका प्रासाद है वह पच्चीस (२५) योजन पृथिवीमे प्रविष्ट उससे दूना (५० यो) विस्तृत और दो सौ पचास (२५०) योजन ऊचा है ॥१४५॥ उसकी देविया दो हजार तिरेसठ (२०६३) कही गई हैं । उनमे आठ अग्रदेविया और जिनदत्ता नामकी वल्लभा देवी है ॥१४६॥ देवियोके प्रासाद वीस (२०) योजन पृथिवीमे प्रविष्ट, उससे

देवीप्रासादमानैस्तु मता वल्लभिकालयाः । योजनाना तु विशत्या उच्छ्रया केवलाधिकाः[1] ॥१४८

। २० ।

उत्तरेऽत्राच्युतेन्द्रश्च आरणेन समो मतः । वल्लभा जिनदासीति देवी सर्वाङ्गनोत्तमा ॥१४९

उक्त च [त्रिलोकसार ५०८] –

सत्तपदे देवीण गिहोदय पणसय तु पण्णरिण[2] । सव्वगिहदीहवासं उदयस्स य पचम दसम ॥७

। १०० । ५० ।

सामानिकसहस्राणि अशीतिश्चतुरुत्तरा । अशीतिरेवेशानस्य तृतीयस्य द्विसप्ततिः ॥१५०

। ८४००० । ८०००० । ७२००० ।

सप्ततिः स्युर्महेन्द्रस्य षष्टिश्च परयोर्द्वयो । पञ्चाशत्परयोश्चापि चत्वारिंशत्ततो द्वयो[3] ॥१५१

। ७०००० । ६०००० । ५०००० । ४०००० ।

त्रिंशदेव सहस्राणि शतारस्योत्तरस्य च । विंशतिश्चानतेन्द्रस्य तावन्त्यश्चारणस्य च ॥१५२

। ३०००० । २०००० । २०००० ।

त्रायस्त्रिंशास्त्रयस्त्रिंशदेकैकस्य तु भाषिता. । पुत्रस्थाने च ते तेषामिन्द्राणा प्रवरा सुरा. ॥१५३

। ३३ ।

दूने (४०) विस्तृत और दो सौ (२००) योजन ऊचे कहे गये है॥१४७॥ वल्लभा देवियोके प्रासाद प्रमाणमे देवियोके प्रासादोके समान है । वे केवल वीस (२०) योजनसे अधिक ऊचे हैं॥१४८॥

अच्युत इन्द्रकके उत्तरमे स्थित छठे श्रेणीवद्ध विमानमे अच्युत इन्द्र रहता है जो आरण इन्द्रके समान माना गया है । उसकी जो जिनदासो नामकी वल्लभा देवी है वह सव देवियोमे श्रेष्ठ है ॥ १४९ ॥ कहा भी है –

सौधर्मयुगल आदि छह युगल तथा शेष आनतादि, इस प्रकार इन सात स्थानोमे देविय्रोके प्रासादोकी ऊचाई आदिमे पाच सौ (५००) योजन और आगे वह क्रमसे पचास योजनसे कम होती गई है । सब प्रासादोकी लवाई ऊचाईके पाचवे भाग (१००) और विस्तार उसके दसवे भाग (५०) प्रमाण है ॥ ७ ॥

सामानिक देवोकी सख्या सौधर्म इन्द्रके चौरासी हजार (८४०००), ईशान इन्द्रके अस्सी हजार (८००००), तृतीय सनत्कुमार इन्द्रके बहत्तर हजार (७२०००), महेन्द्र इन्द्रके सत्तर हजार (७००००), आगेके दो इन्द्रो (ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर) के साठ हजार (६००००), इसके आगे दो इन्द्रोके पचास हजार (५००००), इसके आगे दो इन्द्रोके चालीस हजार (४००००), शतार और सहस्रार इन्द्रके तीस हजार (३००००), आनतेन्द्रके बीस हजार (२००००) और इतनी (२००००) ही आरण इन्द्रके सामानिक देवोकी सख्या है ॥१५०-५२॥

त्रायस्त्रिंश देव प्रत्येक इन्द्रके तेतीस (३३) कहे गये है । वे श्रेष्ठ देव इन्द्रोके पुत्रोके स्थानमे अर्थात् पुत्रोंके समान होते हैं ॥ १५३ ॥

---

१ ब केवलादिका । २ प पण्णरिय । ३ ब °त्ततोर्ध्वयो ।

षट्त्रिंशच्च सहस्राणि त्रीण्येव नियुतानि च । सौधर्मस्यात्मरक्षाणा त्रीणि द्वे चायुते परे ॥१५४
। ३३६००० । ३२०००० ।

अष्टाशीतिः सहस्राणि तृतीये नियुतद्वयम् । अशीतिर्नियुते द्वे च माहेन्द्रस्यात्मरक्षिणाम् ॥१५५
। २८८००० । २८०००० ।

चत्वारिंशत्सहस्रोना युग्मेषु खलु पञ्चसु । अशीति स्यु. सहस्राणि एवमारणयुग्मके ॥१५६
। २४०००० । २००००० । १६०००० । १२०००० । ८०००० । ८०००० ।

आत्मरक्षा बहीरक्षा इन्द्राणा ते चतुर्दिशम् । प्रत्येक तच्चतुर्भाग सामानिकसमो दिशि ॥१५७
अभ्यन्तरा परिषदः सहस्र द्वादशाहतम् । ईशाने द्विसहस्रोन[1] तृतीये च तथा परे ॥१५८
। १२००० । १०००० । ८००० । ६००० ।

चतुर्गुण सहस्र तु ब्रह्मणश्चोत्तरस्य[2] च । युग्मेषु त्रिषु शेषे च हानिरर्धार्धमिष्यते ॥१५९
। ४००० । २००० । १००० । ५०० । २५० ।

समिता परिषन्नाम्ना चन्द्रेति स्यादत परा । द्विसहस्राधिका पूर्वाद् द्विगुणा लान्तवादिषु ॥१६०
। १४००० । १२००० । १०००० । ८००० । ६००० । ४००० । २००० । १००० । ५०० ।

द्विसहस्राधिका भूय. प्रत्येक बाहिरा भवेत् । शुक्राद्या द्विगुणा मध्या जतुरेषा च नामत ॥१६१
। १६००० । १४००० । १२००० । १०००० । ८००० । ६००० । ४००० । २००० । १००० ।

आत्मरक्ष देव सौधर्म इन्द्रके तीन लाख छत्तीस हजार (३३६०००), ईशान इन्द्रके तीन लाख दो अयुत अर्थात् बीस हजार (३२००००), तृतीय इन्द्रके दो लाख अठासी हजार (२८८०००), माहेन्द्रके दो लाख अस्सी हजार (२८००००) तथा आगे पाच युगलोमे उत्तरोत्तर चालीस हजार कम (२४००००, २०००००, १६००००, १२००००, ८००००) हैं। इसी प्रकार वे आत्मरक्ष देव आरणयुगलमे अस्सी हजार (८००००) हैं। इन्द्रोके जो बाह्यरक्षक (लोकपाल) देव होते है वे चारो दिशाओमे रहते हैं। ये देव सामानिक देवोके समान अपने चतुर्थ भाग प्रमाण प्रत्येक दिशामे रहते है ॥ १५४-१५७ ॥

अभ्यन्तर पारिषद देव सौधर्म इन्द्रके बारह हजार (१२०००), ईशान इन्द्रके इनसे दो हजार कम (१००००), इनसे तृतीय और चतुर्थ इन्द्रके दो दो हजार कम (८०००, ६०००), ब्रह्म और ब्रह्मोत्तरके चार हजार (४०००), इसके आगे तीन युगलो और आनतादि चारमे उत्तरोत्तर इनसे आधे आधे (२०००, १०००, ५००, २५०) माने जाते हैं ॥ १५८-१५९ ॥ इस अभ्यन्तर परिषदका नाम समिता है। दूसरी मध्यम परिषद्का नाम चन्द्रा है। पूर्व अभ्यन्तर पारिषद देवोकी अपेक्षा मध्यम पारिषद देव प्रथम पाच स्थानोमे दो दो हजार अधिक तथा लान्तवादि शेष चार स्थानोमे उनसे दूने है– सौ १४०००, ई १२०००, स. १००००, मा ८०००, ब्रह्मयुगल ६०००, ला का ४०००, शु म २०००, श स १०००, आनतादि ५०० ॥ १६० ॥ इनसे बाह्य पारिषद देव प्रत्येकके मध्यम पारिषदोकी अपेक्षा दो दो हजार अधिक हैं। परन्तु शुक्र आदिके वे मध्यम पारिषद देवोसे दूने हैं – सौ १६०००, ई १४००० स १२००० मा १०००० ब्रह्मयुगल ८००० ला का ६००० शु म ४००० श. स २००० आनतादि १०००। यह परिषद् नामसे जतु कही जाती है ॥ १६१ ॥

१ आ प सहस्रोक्तन । २ आ प ब्रह्मणस्योत्तरस्य ।

पद्मा शिवा शशी चैव अञ्जुका रोहिणीति च। नवमी च बला चेति अर्चिनी चाष्टमी मता ॥१६२
षोडशस्त्रीसहस्राणि रूपोनानि प्रकुर्वते। अष्टावग्रमहिष्योऽपि परिवारोऽपि तत्समः ॥१६३
। १५९९९ । १५९९९ ।
द्वात्रिंशत्तु सहस्राणि सौधर्मेन्द्रस्य वल्लभाः। [1]कनकश्रीर्मुखं चासां तावन्त्यस्तस्य योषितः ॥१६४
। ३२००० । १६०००० ।
कृष्णा च मेघराजी च रामा वै रामरक्षिता। वसुश्च वसुमित्रा च वसुरम्या वसुंधरा ॥१६५
ईशानस्याग्रपत्न्यस्ताः सौधर्मस्येव वर्णना। देवी कनकमालेति वल्लभा चास्य कीर्तिता ॥१६६
अष्टौ सहस्राण्येकस्या. परिवारोऽग्रयोषिताम्। वल्लभा अपि तावन्त्यस्तृतीयस्य द्विसप्ततिः ॥१६७
। ८००० । ७२००० ।
द्वात्रिंशत्तु सहस्राणि विक्रियाश्चैकयोषित। अयमेव क्रमो वाच्यो माहेन्द्रस्य च योषिताम् ॥१६८
। ३२००० ।
चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि ब्रह्मेन्द्रस्य वरस्त्रिय.। वल्लभा द्वे सहस्रे च तासु देवीषु वर्णिता· ॥१६९
चतु.षष्टिसहस्राणि एकस्या अपि विक्रिया·। चतु·सहस्रसयुक्ता अग्रदेव्योऽस्य भाषिताः ॥१७०
। ४००० ।
तावन्त्य एव विज्ञेया देव्यो ब्रह्मोत्तरस्य तु। ब्रह्मवच्छेषमाख्येय विक्रियादिषु योषिताम् ॥१७१

पद्मा, शिवा, शची, अजुका, रोहिणी, नवमी, बला और अर्चिनी ये आठ [सौधर्म इन्द्र की] अग्रदेविया मानी गई हैं। वे आठो ही अग्रदेविया एक कम सोलह हजार (१५९९९) स्त्रियोकी विक्रिया करती है। उतना (१५९९९) ही उनका परिवार भी है ॥ १६२-१६३ ॥ सौधर्म इन्द्रके बत्तीस हजार (३२०००) वल्लभा देविया हैं। उनमे मुख्य वल्लभा देवीका नाम कनकश्री है। उस सौधर्म इन्द्रकी उतनी [(१६०००×८)+३२०००=१६००००] देविया है ॥ १६४ ॥

कृष्णा, मेघराजी, रामा, रामरक्षिता, वसु, वसुमित्रा, वसुरम्या और वसुधरा ये आठ ईशान इन्द्रकी अग्रदेविया है। इनका वर्णन सौधर्म इन्द्रकी अग्रदेवियोके समान है। उसके कनकमाला नामकी वल्लभा देवी कही गई है ॥ १६५-६६ ॥ तृतीय सनत्कुमार इन्द्रकी अग्र-देवियोमेसे प्रत्येककी आठ हजार परिवारदेविया है। इतनी (८०००) ही उसकी वल्लभा देविया भी है। इस प्रकार तृतीय इन्द्रके सब वहत्तर हजार (अग्रदेविया ८ × परि. दे ८००० +वल्लभा ८०००=७२०००) देविया है। उनमे एक एक देवी बत्तीस हजार (३२०००) रूपोकी विक्रिया करती है। यही क्रम माहेन्द्र इन्द्रकी भी देवियोका कहना चाहिये ॥ १६७-६८

ब्रह्म इन्द्रके चौतीस हजार [(४०००×८)+२०००] उत्तम स्त्रिया है। उन देवियोमे दो हजार(२०००) वल्लभा देविया कही गई है। इसकी अग्रदेविया चार चार हजार(४०००) परिवारदेवियोसे सयुक्त कही गई हैं। उनमे प्रत्येक चौसठ हजार (६४०००) रूपोकी विक्रिया करती है ॥ १६९-१७० ॥ ब्रह्मोत्तर इन्द्रके भी उतनी (३४०००) ही देविया जाननी चाहिये। देवियोकी विक्रिया आदिके विषयमे शेष वर्णन ब्रह्म इन्द्रके समान जानना चाहिये ॥ १७१ ॥

१ ब कनक°।

परिवार. सहस्त्रे द्वे लान्तवस्याङ्गनास्वपि । वल्लभास्तु सहस्त्रार्धं पूर्ववद्द्विगुणविक्रिया ॥१७२
। १२८००० । सर्वा १६५०० ।
कापित्थे लान्तवस्येव तस्यार्धं शुक्रयोषित । परीवार. सहस्त्र तु शते सार्धे च वल्लभा ॥१७३
। ८२५० ।
तथैव स्यान्महाशुक्रे विक्रिया· द्विगुणा द्वयो· । अष्टावष्टौ महादेव्य एतयोरपि भाषिता· ॥१७४
। २५६००० ।
सहस्त्रार्ध परीवार· शतारस्याग्रयोषित । पञ्चविंश शत चापि वल्लभास्तस्य कीर्तिता ॥१७५
। १२५ । सर्वा ४१२५ ।
द्विगुणा विक्रिया चात्र सहस्त्रारेऽपि तादृशा. । सरूपाणा पुनश्चासामर्धमानतयोषित [1] ॥१७६
। ५१२००० । २०६३ ।
शतद्वय पुन सार्धं परिवारोऽग्रयोषिताम् । [2] त्रिषष्टिर्वल्लभा द्विगुणा विक्रिया आरणे तथा ॥१७७
। २५० । ६३ । १०२४००० ।
सौधर्मदेवीनामानि दक्षिणेन्द्राग्रयोषिताम् । ईशानदेवीनामानि उत्तरेन्द्राग्रयोषिताम् ॥१७८
षड्युग्मशेषकल्पेषु आदिमध्यान्तवर्तिनाम् । देवीना परिषदा सख्या कथ्यते च यथाक्रमम् ॥१७९

लान्तव इन्द्रकी अग्रदेवियोमे प्रत्येकका परिवार दो हजार (२०००) है । उसकी वल्लभा देविया पाच सौ (५००) हैं । वे पूर्वके समान दूनी (१२८०००) विक्रिया करती हैं। (२०००×८)+५००=१६५०० सब देविया ॥१७२॥ कापिष्ठ इन्द्रकी देवियोका वर्णन लान्तव इन्द्रके समान है । शुक्र इन्द्रकी देविया उससे आधी (८२५०) हैं । उसकी अग्रदेवियोका परिवार एक एक हजार (१०००-१०००) और वल्लभा देविया दो सौ पचास (२५०) हैं ॥ १७३ ॥ उसी प्रकार महाशुक्र इन्द्रकी भी देवियोका प्रमाण (८२५०) है । उन दोनो इन्द्रोकी अग्रदेविया पूर्वसे दूनी (२५६०००) विक्रिया करती है । इनके भी आठ आठ महादेवियां कही गई हैं ॥ १७४ ॥ शतार इन्द्रकी प्रत्येक अग्रदेवीका परिवार पाच सौ (५००) है । उसकी वल्लभा देविया एक सौ पच्चीस (१२५) कही गई है —(५००×८)+१२५=४१२५ सब देविया ॥ १७५ ॥ यहा विक्रियाका प्रमाण पहिलेसे दूना (५१२०००) है । उक्त देविया इसी प्रकार (४१२५) सहस्रार इन्द्रके भी हैं । सुन्दर रूपवाली इन देवियोके अर्ध भाग प्रमाण देविया आनत इन्द्रके हैं −(२५०×८)+६३=२०६३ आनतदेविया । उसकी अग्रदेवियोका परिवार दो सौ पचास (२५०) है । वल्लभा देविया उसकी तिरेसठ (६३) है । विक्रिया पूर्वकी अपेक्षा यहा दूनी (१०२४०००) है। आरण इन्द्रकी देवियोकी प्ररूपणा आनत इन्द्रके समान हैं ॥१७६-७७॥

जो नाम सौधर्म इन्द्रकी अग्रदेवियोके कहे गये हैं वे ही नाम सब दक्षिण इन्द्रोकी अग्रदेवियोके हैं । इसी प्रकार ईशान इन्द्रकी अग्रदेवियोके जो नाम निर्दिष्ट किये गये है वे ही नाम सब उत्तर इन्द्रोकी अग्रदेवियोके हैं ॥ १७८ ॥

अब यहा छह युगलो और शेष चार कल्पोमे क्रमसे आदि, मध्य और अन्तिम परिषद्मे रहनेवाले पारिषद देवोकी देवियोकी सख्या कही जाती है– पाच सौ, छह सौ, सात सौ, चार सौ,

---

१ प योषिताम् । २ आ प त्रिषष्टि॰ ।

शतानि पञ्च षट् सप्त चतु'पञ्चकषट्छतम् । शताना त्रिचतुःपञ्च द्विकत्रिकचतु शतम् ॥१८०
। ५०० । ६०० । ७०० । ४०० । ५०० । ६०० । ३०० । ४०० । ५०० । २०० । ३०० । ४०० ।
एकद्वित्रिशतान्येव शतार्ध च शतं शते । पञ्चवर्गश्च पञ्चाशच्छतमेक[1] भवेदिति ॥१८१
कालर्द्धिपरिवाराश्च[2] विक्रिया चेन्द्रसश्रिता. । तादृशस्तत्प्रतीन्द्रेषु त्रायस्त्रिंशसमेष्वपि ॥१८२

उक्त च [ति प ८-२८६]--

पडिइदाण सामाणियाण तेत्तीससुरवराण च । दस भेदा परिवारा णियइदसमाण[3] पत्तेक्क ॥८
वृषभास्तुरगाश्चैव रथा नागा' पदातयः । गन्धर्वा नर्तिकाश्चेति सप्तानीकानि चक्षते ॥१८३
पुरुषाः षडनीकानि सप्तम नर्तिकास्त्रियः । सेनामहत्तरा षट् स्युरेका सेनामहत्तरी ॥१८४
दामेष्टिर्हरिदामा च मातल्यैरावतौ तत । वायुश्चारिष्टकीर्तिश्च अग्रा नीलाञ्जनापि च ॥१८५
महादामेष्टिनामा च नाम्नामितगतिस्तथा । मन्थरो रथपूर्वश्च पुष्पदन्तस्तथैव च ॥१८६
पराक्रमो लघुपूर्वश्च नाम्ना [4]गीतरतिस्तथा । महासेना[5] क्रमेणैते ईशानानीकमुख्यका' ॥१८७
पूर्वोक्तानीकमुख्यास्ते दक्षिणेन्द्रेषु कीर्तिता । अपरोक्तानीकमुख्यास्ते चोत्तरेन्द्रेषु वर्णिता ॥१८८
सप्तकक्ष भवेदेक कक्षाः पञ्चाशदेकहा । अशीतिश्चतुरग्रा च सहस्राण्यादिमाः पृथक् ॥१८९
। ४९ । ८४००० ।

पाच सौ, छह सौ, तीन सौ, चार सौ, पाच सौ, दो सौ, तीन सौ, चार सौ, एक सौ, दो सौ, तीन सौ, पचास, सौ, दो सौ, तथा पच्चीस, पचास व सौ। सौ ई आ पा ५०० म ६०० अ ७००, स मा आ ४०० म ५०० अ ६००, ब्रह्मयुगल आ ३०० म ४०० अ ५००, ला का आ. २०० म ३०० अ. ४००, शु म आ १०० म २०० अ ३००, श स आ ५० म १०० अ २००, आनतादि आ २५ म ५० अ १०० ॥ १७९-१८१ ॥

आयु, ऋद्धि, परिवार और विक्रिया इनका प्रमाण जिस प्रकार इन्द्रोके कहा गया है उसी प्रकार वह सब उनके प्रतीन्द्रो, त्रायस्त्रिंशो और सामानिकोके भी जानना चाहिये ॥१८२॥ कहा भी है –

प्रतीन्द्र, सामानिक और त्रायस्त्रिंश देवोमेसे प्रत्येकके दस भेदरूप परिवार अपने अपने इन्द्रके समान होता है ॥ ८ ॥

बैल, घोडा, रथ, हाथी, पादचारी, गन्धर्व और नर्तकी, ये सात अनीक कही जाती हैं ॥ १८३ ॥ प्रथम छह अनीक पुरुषरूप और सातवी नर्तकी अनीक स्त्रीरूप है । उनमे छह सेनामहत्तर और एक सेनामहत्तरी होती है ॥ १८४॥ दामेष्टि, हरिदाम, मातलि, ऐरावत, वायु और अरिष्टकीर्ति ये छह सेनामहत्तर तथा सातवी नीलाजना महत्तरी, ये सात सेनाप्रमुख [सौधर्म आदि दक्षिण इन्द्रोके होते है] ॥१८५॥ महादामेष्टि, अमितगति, रथमन्थर, पुष्पदन्त, लघुपराक्रम, गीतरति और महासेना ये सात सेनाप्रमुख ईशान इन्द्रके होते है ॥ १८६-१८७ ॥ वे पूर्वोक्त सात सेनाप्रमुख दक्षिण इन्द्रोके तथा वादमे कहे गये वे सात सेनाप्रमुख उत्तर इन्द्रोके कहे गये है ॥ १८८ ॥ उपर्युक्त सात अनीकोमेसे प्रत्येक सात कक्षाओसे सहित होती है । इस प्रकार उन सात अनीकोमे एक कम पचास (४९) कक्षाये होती है । सौधर्म इन्द्रकी सात अनीकोकी पृथक्

---

१ आ प 'रत् शतमेक । २ आ प परिवारा च । ३ ति प इदसमा य । ४ व नीत° । ५ व हासेना ।

क्रमेण द्विगुणा कक्षा सर्वासामपि सग्रह । त्रीणि शून्यानि षट्सप्तषट्चतु सप्तकानि च ॥१९०
शेषाणामाद्यकक्षाश्च स्वसामानिकसख्यका । क्रमेण द्विगुणा कक्षाः सग्रह तासु लक्षयेत् ॥१९१
पर शून्यचतुष्कात्तु द्वे चैकैक च सप्त च । शून्यत्रिकात्पुनश्चाष्टौ खखचत्वारि षट् तथा ॥१९२
चतुर्भ्य ऊर्ध्वं शून्येभ्यस्त्रीणि द्वे द्वे पुनश्च षट् । ब्रह्मे चत्वारि च त्रीणि त्रीणि पञ्च तथोत्तरे ॥
पञ्च चत्वारि चत्वारि चत्वारि च पुनर्द्वयो । षट् पञ्च पञ्च च त्रीणि शुक्रयुग्मे भवन्ति च ॥१९४
सप्त षट् षड् द्विक चैव शतारद्वितये पुनः । अष्ट सप्त च सप्तैकमानतादिचतुष्टये ॥१९५

पृथक् प्रथम कक्षाका प्रमाण चौरासी हजार (८४०००) है ॥ १८९ ॥ उसकी दूसरी-तीसरी आदि कक्षाओका प्रमाण क्रमश उत्तरोत्तर इससे दूना होता गया है। सौधर्म इन्द्रकी सब (४९) कक्षाओका प्रमाण अकक्रमसे तीन शून्य, छह, सात, छह, चार और सात (७४६७६०००) इतना है ॥ १९० ॥

शेष ईशानादि इन्द्रोकी प्रथम कक्षाओका प्रमाण अपने अपने सामानिक देवोकी सख्याके समान है। उनकी द्वितीय आदि कक्षाओका प्रमाण उत्तरोत्तर इससे दूना है। उनकी समस्त कक्षाओका सकलित प्रमाण क्रमश इस प्रकार जानना चाहिये— शून्य चार, दो, एक, एक और सात (७११२००००), इतना ईशान इन्द्रकी समस्त अनीकका प्रमाण है। तीन शून्य, आठ, शून्य, शून्य, चार और छह (६४००८०००), इतना सनत्कुमार इन्द्रकी समस्त अनीकका प्रमाण है। चार शून्य, तीन, दो, दो और छह (६२२३००००), इतना माहेन्द्र इन्द्रकी समस्त अनीकका प्रमाण है। चार शून्य, चार, तीन, तीन, और पाच (५३३४००००) इतना ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर इन्द्रकी पृथक् पृथक् समस्त अनीकका प्रमाण है। चार शून्य, पाच, चार, चार और चार (४४४५००००), इतना आगेके दो इन्द्रो (लान्तव और कापिष्ठ) की समस्त अनीकका प्रमाण है। चार शून्य, छह, पाच, पाच और तीन (३५५६००००), इतना शुक्रयुगलकी समस्त अनीकका प्रमाण है। चार शून्य, सात, छह, छह और दो (२६६७००००), इतना शतारयुगलकी समस्त अनीकका प्रमाण है। चार शून्य, आठ, सात, सात और एक (१७७८००००), इतना आनतादि चारकी समस्त अनीकका प्रमाण है ॥ १९१-१९५ ॥

विशेषार्थ— दुगुणे दुगुणे क्रमसे वृद्धिको प्राप्त होनेवाली अनीककी उपर्युक्त सात कक्षाओके सकलित धनको लानेके लिये निम्न करणसूत्रका उपयोग होता है— गच्छके बराबर गुणकारोको रखकर उनको परस्पर गुणा करनेसे जो प्राप्त हो उसमेसे एक अक कम करके शेषमे एक कम गुणकारका भाग देकर मुखसे गुणित करनेपर विवक्षित धन प्राप्त हो जाता है। प्रकृतमे सौधर्म इन्द्रकी प्रथम अनीककी प्रथम कक्षाका प्रमाण (८४०००) मुख, गुणकार २ और गच्छ ७ है। अत एव उक्त प्रक्रियाके अनुसार सात स्थानोमे गुणकार २ को रखकर परस्पर गुणा करनेपर २×२×२×२×२×२×२=१२८ प्राप्त होते है, उसमे एक कम करके एक कम गुणकारका भाग देकर मुखसे गुणित करनेपर (१२८–१)–(२–१)×८४०००=१०६६८००० इतना प्रथम अनीककी सातो कक्षाओका समस्त प्रमाण प्राप्त हो जाता है। इसको सातसे गुणित करनेपर सौधर्म इन्द्रकी सातो अनीकोका समस्त प्रमाण प्राप्त हो जाता है–१०६६८०००×७ =७४६७६००० । इसी प्रकारसे ईशान आदि शेष इन्द्रोकी भी अनीकोका प्रमाण ले आना चाहिये जो निम्न प्रकार है–

	प्रथमानीकसख्या	एकानीकसख्या	सर्वानीकसख्या
	८४०००	१०६६८०००	७४६७६०००
	८००००	१०१६००००	७११२००००
	७२०००	९१४४०००	६४००८०००
श्लोकसप्तकरचना --	७००००	८८९००००	६२२३००००
	६००००	७६२००००	५३३४००००
	५००००	६३५००००	४४४५००००
	४००००	५०८००००	३५५६००००
	३००००	३८१००००	२६६७००००
	२००००	२५४००००	१७७८००००

सोमो यमश्च वरुण कुबेरश्चेति लोकपा । एकैकस्य तु चत्वार. पूर्वाद्ये दिक्चतुष्टये ॥१९६
तुल्यर्द्धयः सोमयमा. दक्षिणेन्द्रेषु कीर्तिता. । अधिका वरुणास्तेभ्यः कुबेरा अधिकास्तत ॥१९७
महर्द्धिकास्तु वरुणा उत्तरेन्द्रेषु भाषिता. । तेभ्यो हीना. कुबेरा स्युस्तेभ्यो हीना समा. परे ॥
प्रत्येक लोकपालाना स्त्रीसहस्र चतुर्गुणम् । सामानिकाश्च तावन्तो देव्य एषां च पूर्ववत् ॥१९९
। ४००० । ४०० (?) । ४००० ।
सहस्रं परयोर्देव्यस्ताभि. सामानिका. समा । तेषामप्येकशो देव्यस्तावन्त्य इति भाषिताः ॥२००
। १००० । १००० ।

इन्द्र	प्रथम कक्षा	एक अनीककी समस्त सख्या	सातो अनीकोकी समस्त सख्या
सौधर्म	८४०००	१०६६८०००	७४६७६०००
ईशान	८००००	१०१६००००	७११२००००
सनत्कुमार	७२०००	९१४४०००	६४००८०००
माहेन्द्र	७००००	८८९००००	६२२३००००
ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर	६००००	७६२००००	५३३४००००
लान्तव और का	५००००	६३५००००	४४४५००००
शुक्र और महा	४००००	५०८००००	३५५६००००
शतार-सहस्रार	३००००	३८१००००	२६६७००००
आनतादि चार	२००००	२५४००००	१७७८००००

एक एक इन्द्रके पूर्वादिक चार दिशाओमे क्रमसे सोम, यम, वरुण और कुबेर ये चार लोकपाल होते हैं ॥ १९६ ॥ दक्षिण इन्द्रोमे सोम और यम ये समान ऋद्धिवाले, उनसे अधिक वरुण तथा उनसे भी अधिक कुबेर कहे गये हैं ॥ १९७ ॥ उत्तर इन्द्रोमे वरुण महाऋद्धिसे सम्पन्न होते है, उनसे हीन कुबेर और उनसे भी हीन होकर परस्पर समान ऋद्धिवाले सोम एव यम कहे गये हैं ॥ १९८ ॥ प्रत्येक लोकपालके चार हजार (४०००) देविया और उतने (४००० ही सामानिक देव भी होते है । इन सामानिक देवोकी देवियोका क्रम पूर्वके समान अपने अपने लोकपालके समान जानना चाहिये ॥ १९९ ॥

आगेके दो इन्द्रो (सनत्कुमार व माहेन्द्र) के लोकपालोमेसे प्रत्येककी एक हजार (१०००) देविया और उनके ही बरावर (१०००) सामानिक देव भी होते हैं। उन सामानिक

ब्रह्मयुग्मे सहस्रार्धं देव्यः सामानिका अपि । तदर्धं परयोर्देव्य. सामानिकश्चतु शतम् ॥२०१
। ५०० । ५०० । २५० । ४०० ।
पञ्चविंश शत देव्य' शुक्रयुग्मे च भाषिता. । एकशो लोकपालाना सामानिकशतत्रयम् ॥२०२
। १५५ [१२५] । ३०० ।
शतारे सोत्तरे [1]देव्यस्त्रिषष्टिर्लोकरक्षिणाम् । सामानिकाश्च[2] तेषा स्युः शुद्धमेव शतद्वयम् ॥२०३
। ६३ । २०० ।
आनते त्वारणे देव्यो द्वात्रिंशल्लोकरक्षिणाम् । सामानिकशत चैकमेकैकस्येति निर्दिशेत् ॥२०४
। ३२ । १०० ।
लोकपालसुरस्त्रीभि समा. सामानिकस्त्रिय [3] । द्वयानामग्रदेव्यश्च चतस्रोऽप्येकशो मता ॥२०५
सौधर्मे सोमयमयोस्तयोः सामानिकेष्वपि । पञ्चाशदन्त परिगच्चतु पञ्चशते परे ॥२०६
वरुणस्य समाना च षष्टि.[4] पञ्चशतानि च । षट्छतानि च वेद्यानि ईशानेऽपि तथा द्वयो' ॥२०७
कुबेरस्य समाना च सप्तति षट्छतानि च । गणिता परिषद्देवा बाह्या सप्तशतानि च ॥२०८
दक्षिणे वरुणस्योक्ता कुबेरस्योत्तरस्य ता । कुबेरस्य च या प्रोक्ता वरुणस्योत्तरस्य ता ॥२०९

देवोमेसे भी प्रत्येकके उतनी (१०००) ही देविया कही गई है ॥ २०० ॥ ब्रह्मयुगलमे प्रत्येक लोकपालकी देवियो और सामानिकोकी सख्या पाच सौ (५००) है। आगे लान्तवयुगलमे उनकी देवियोकी सख्या उनसे आधी (२५०) और सामानिक देवोकी सख्या चार सौ (४००) है ॥ २०१ ॥ शुक्रयुगलमे प्रत्येक लोकपालकी देवियोका प्रमाण एक सौ पच्चीस (१२५) और उनके सामानिकोका प्रमाण तीन सौ (३००) है ॥ २०२ ॥ शतार और सहस्रारमे प्रत्येक लोकपालकी तिरेसठ तिरेसठ (६३-६३) देविया और दो सौ (२००) सामानिक होते हैं ॥२०३॥ आनत और आरणमे प्रत्येक लोकपालके बत्तीस (३२) देविया और एक सौ (१००) सामानिक कहे जाते हैं ॥ २०४ ॥

सामानिक देवोकी स्त्रिया प्रमाणमे लोकपालोकी स्त्रियोके समान होती हैं। इन दोनो मेसे प्रत्येकके अग्रदेविया चार मानी गई हैं ॥ २०५ ॥

सौधर्म कल्पके भीतर सोम, यम और उन दोनोके सामानिक देवोमे भी अभ्यन्तर परिषद्का प्रमाण पचास तथा आगेकी मध्य और बाह्य परिषदोका प्रमाण क्रमसे चार सौ और पाच सौ है । वरुण और उसके सामानिक देवोकी उक्त तीनो परिषदोका प्रमाण क्रमश साठ, पाच सौ, और छह सौ जानना चाहिये । ईशान कल्पमे भी सोम व यम तथा इन दोनोके सामानिक देवोकी उक्त तीनो परिषदोका प्रमाण सौधर्म कल्पके समान समझना चाहिये । सौधर्म कल्पमे कुबेर और उसके सामानिकोकी प्रथम दो परिषदोका प्रमाण क्रमसे सत्तर व छह सौ तथा बाह्य परिषद्का प्रमाण सात सौ है । दक्षिणमे जो वरुणकी परिषदोका प्रमाण कहा गया है वह उत्तरमे कुबेरकी परिषदोका तथा दक्षिणमे कुबेरकी जो परिषदोका प्रमाण कहा गया है वह उत्तरमे वरुणकी परिषदोका जानना चाहिये ॥ २०६-२०९ ॥ उक्त चार श्लोकोमे निर्दिष्ट लोकपालो और सामानिकोकी परिषदोका प्रमाण इस प्रकार है—

१ प देव्यस्त्रिपष्ठि । २ प सामानिका च । ३ प सामानिकास्त्रिय । ४ प षष्टि ।

	सोम-यम	वरुण	कुबेर	सोम-यम	वरुण	कुबेर
चतु:श्लोक-	सौ ५०	सौ ६०	सौ ७०	ई ५०	७०	६०
रचना –	४००	५००	६००	४००	६००	५००
	५००	६००	७००	५००	७००	६००

तथैव सर्वकल्पेषु आच्युताल्लोकरक्षिणाम् । ज्ञातव्या. परिषद्देवा इत्याचार्यैरभीप्सितम् ॥२१०
विंशतिश्चाष्टसयुक्ता सहस्राणां पृथग्मता । सप्तानीकाद्यकक्षाणा द्विगुणाश्च क्रमोत्तरा. ॥२११
। २८००० । एकानीकसख्या ३५५६००० । समस्तानीकसख्या २४८९२००० ।
एव सर्वेषु कल्पेषु सर्वेषा लोकरक्षिणाम् । सख्यातव्यान्यनीकानि पौराणिकमहर्षिभिः ॥२१२
शात्रयो सोमयमयोस्तयो सामानिकेष्वपि । आयु पल्यद्वय साधं तदर्ध खलु योषिताम् ॥२१३
। $\frac{5}{2}$ । $\frac{5}{4}$ ।
द्वादशाहात् पुनः[1] सार्धान्मिनसाहारसेवनम् । मुहूर्तेभ्यश्च तावद्भ्यस्तेषामुच्छ्वसन मतम् ॥२१४
। $\frac{25}{2}$ । $\frac{25}{2}$ ।
षडहात्पादसयुक्ताद्देव्याहारनिषेवणम् । मुहूर्तेभ्यश्च तावद्भ्यस्तासामुच्छ्वसनक्षणम् ॥२१५
। $\frac{25}{4}$ । $\frac{25}{4}$ ।
वरुणस्य समानां च न्यूनपल्यत्रय भवेत् । देशोनपक्षादाहार श्वासस्तावन्मुहूर्तकै. ॥२१६
। ३ । दि १५ । मु १५ ।



	सौधर्म				ईशान			
	सोम	यम	वरुण	कुबेर	सोम	यम	वरुण	कुबेर
आ	५०	५०	६०	७०	आ ५०	५०	७०	६०
म	४००	४००	५००	६००	म ४००	४००	६००	५००
वा	५००	५००	६००	७००	वा. ५००	५००	७००	६००

अच्युत पर्यन्त सब कल्पोमे लोकपालोके पारिषद देवोका प्रमाण उसी प्रकार जानना चाहिये, यह आचार्योको अभीष्ट है ॥ २१० ॥ लोकपालोकी सात अनीकोकी प्रथम कक्षाका प्रमाण अट्ठाईस हजार माना गया है । आगेकी कक्षाओमे वह क्रमसे उत्तरोत्तर दूना होता गया है । प्रथम कक्षा २८०००, समस्त एक अनीक ३५५६०००, समस्त सात अनीक २४८९२००० ॥ २११ ॥ इसी प्रकार सब कल्पोमे सब लोकपालोकी अनीकोकी सख्या प्राचीन महर्षियोके द्वारा निर्दिष्ट की गई है ॥ २१२ ॥

सौधर्म इन्द्रके सोम और यम इन दो लोकपालो तथा उनके सामानिक देवोकी भी आयु अढाई ($2\frac{1}{2}$) पल्य मात्र होती है । उनकी स्त्रियोकी आयु उससे आधी ($1\frac{1}{4}$) पल्य जानना चाहिये ॥ २१३ ॥

सौधर्म इन्द्रके लोकपाल साढे बारह ($12\frac{1}{2}$) दिनमे मानसिक आहारका उपभोग करते हैं । इतने ($12\frac{1}{2}$) ही मुहूर्तोमे उनका उच्छ्वास लेना माना गया है ॥ २१४ ॥ उनकी देविया सवा छह ($6\frac{1}{4}$) दिनमे आहारका सेवन करती हैं तथा उतने ($6\frac{1}{4}$) ही मुहूर्तोमे वे उच्छ्वास लेती है ॥ २१५ ॥

वरुण और उसके सामानिक देवोकी आयु कुछ कम तीन (३) पल्य प्रमाण होती है । उनके आहारकालका प्रमाण कुछ कम एक पक्ष (१५ दिन) तथा उच्छ्वासकालका प्रमाण

१ ब द्वादशाहा पुन. ।

एतेषामपि देवीना सार्धपल्यायुरूनकम् । आहारो न्यूनपक्षार्धाच्छ्वासस्तावन्मुहूर्तकै[1] ॥२१७

। $\frac{३}{२}$ । दि $\frac{१५}{२}$ । मु $\frac{१५}{२}$ ।

कुबेरस्य समाना च स्त्रीणा च वरुणक्रमम्[2] । किंतु सपूर्णमाख्येय श्वासाहारायुषा स्थितम् ॥२१८

समसोमयमाना च ऐशानायुस्त्रिपल्यकम् । न्यूनपक्षात्तथाहार· [3]श्वासस्तावन्मुहूर्तकै ॥२१९

। ३ । दि १५ । मु १५ ।

सार्धपल्यायुषो देव्यः सार्धसप्ताहभुक्तय । [3]श्वासस्तावन्मुहूर्तैश्च त्रय देशोनमेव तत् ॥२२०

। प $\frac{३}{२}$ । दि $\frac{१५}{२}$ । मु $\frac{१५}{२}$ ।

कुबेरस्य समाना च देवीनामपि सोमवत् । सपूर्ण वरुणाना तु सातिरेक त्रय भवेत् ॥२२१

अच्युतात्[4] त्रिवर्गस्य पूर्वत पूर्वत क्रमात् । वर्धयेत्पल्यमेकैक जीवितेषु विशारद ॥२२२

सामानिकप्रतीन्द्राणा त्रायस्त्रिशेन्द्रसज्ञिनाम् । देव्य षष्टिसहस्राणि[4] नियुत चादिकल्पयो ॥२२३

। १६०००० ।

शतानि पञ्च षट् सप्त देव्यः परिषदामपि । आसन्नमध्यबाह्याना यथासख्य विभाजयेत् ॥२२४

। ५०० । ६०० । ७०० ।

उतने (१५) ही मुहूर्त है ॥ २१६ ॥ इनकी देवियोकी भी आयु कुछ कम डेढ ($\frac{३}{२}$) पल्य, आहारकाल कुछ कम आधा पक्ष ($\frac{१५}{२}$ दिन) और उच्छ्वासकाल उतने ($\frac{१५}{२}$) ही मुहूर्त प्रमाण है ॥ २१७ ॥

कुवेर, उसके सामानिक और उनकी स्त्रियोकी आयु, आहार एव उच्छ्वासका क्रम वरुण लोकपालके समान है । किन्तु उनका वह प्रमाण कुछ कमके स्थानमे सम्पूर्ण कहना चाहिये ॥२१८॥

ईशान इन्द्रके सोम और यम लोकपालो तथा उनके सामानिकोकी आयु तीन (३) पल्य, आहारकाल कुछ कम एक पक्ष (१५ दिन) और उच्छ्वासकाल उतने (१५) ही मुहूर्त प्रमाण है ॥ २१९ ॥

उनकी देवियोकी आयु डेढ ($\frac{३}{२}$) पल्य, आहारकाल साढे सात ($\frac{१५}{२}$) दिन तथा उच्छ्वासकाल उतने ($\frac{१५}{२}$) ही मुहूर्त प्रमाण है । परन्तु इन तीनोका प्रमाण कुछ कम ही जानना चाहिये ॥२२०॥ कुबेर, उसके सामानिक और इनकी देवियोकी भी आयु आदिका वह प्रमाण सोम लोकपालके समान सम्पूर्ण है । वरुण लोकपाल आदिकी उपर्युक्त आयु आदि उन तीनोका प्रमाण कुछ अधिक जानना चाहिये ॥ २२१ ॥

विद्वान् मनुष्यको अच्युत पर्यन्त लोकपाल, सामानिक और इनकी देविया इन तीनोकी आयुमे क्रमसे पूर्व पूर्वकी अपेक्षा आगे आगे एक एक पल्य बढाना चाहिये ॥ २२२ ॥

प्रथम दो कल्पोमे सामानिक, प्रतीन्द्र, त्रायस्त्रिश और इन्द्र सज्ञावालोके एक लाख साठ हजार (१६००००) देविया होती हैं ॥ २२३ ॥ अभ्यन्तर, मध्य और बाह्य पारिषद देवोकी भी देविया क्रमसे पाच सौ, छह सौ और सात सौ (अ, ५००, म ६०० बा ७००)

---

१ आ प °च्छ्वास ताव° । २ प स्त्रीणा वरुण° । ३ आ प श्वास ताव° । ४ [आच्युतात्] ।

सेनामहत्तराणां च तथा खल्वात्मरक्षिणाम् । षट्छतानि त्वनीकाना द्वे शते वाहनेष्वपि ॥२२५
। ६०० । २०० ।
जघन्यमायुः पल्यं स्यादुत्कृष्टं सागरद्वयम् । सौधर्मोत्पन्नदेवानामैशाने तत्तु साधिकम् ॥२२६
। १ । २ ।
समासहस्रद्वयेन आहारेच्छा च जायते । पक्षद्वयेन चोच्छ्वास. सागरद्वयजीविनाम् ॥२२७
। २००० ।
एकं वर्षसहस्र स्यादाहारे कालनिर्णय । उच्छ्वासस्यैकपक्षश्च[1] एकसागरजीविनाम् ॥२२८
। १००० । १ ।
सागरोपमसख्याभिर्गुणयेत् क्रमतः परम् । आहारोच्छ्वासकालानामेवं संख्यानमिष्यते ॥२२९
सप्त सानत्कुमारे स्युर्दश ब्रह्मे चतुर्दश । लान्तवे द्व्यधिकाः शुक्रे शतारेऽष्टादशैव च ॥२३०
। ७ । १० । १४ । १६ । १८ ।
विंशतिश्चानते वेद्या द्व्यधिका सैव चारणे । एकैकवृद्धिः परत एकादशसु भाषिता ॥२३१
। २० । २२ । २३ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ३२ । ३३ ।
उत्कृष्टमायुर्देवाना पूर्व साधिकमल्पकम्[2] । अनुत्तरेषु [3]द्वात्रिंशत्त्रयस्त्रिंशत्तथाधिकम् ॥२३२
। ३२ । ३३ ।

जानना चाहिये ॥ २२४ ॥ सेनामहत्तरो और आत्मरक्ष देवोके छह सौ (६००) तथा अनीको और वाहन देवोके दो सौ (२००) देविया होती हैं ॥२२५ ॥

सौधर्म कल्पमे उत्पन्न हुए देवोकी जघन्य आयु एक (१) पल्य और उत्कृष्ट दो (२) सागर प्रमाण होती है। ऐशान कल्पमे उत्पन्न हुए देवोकी वह आयु इससे कुछ अधिक होती है ॥ २२६ ॥ जिन देवोकी आयु दो सागर प्रमाण होती है उनको दो हजार (२०००) वर्षोमे भोजनकी इच्छा होती है तथा दो पक्षोमे उच्छ्वास होता है ॥ २२७ ॥ जिन देवोकी आयु एक (१) सागर प्रमाण है उनके आहार कालका प्रमाण एक हजार (१०००) वर्ष तथा उच्छ्वास-कालका प्रमाण एक पक्ष (१५ दिन) निश्चित है ॥२२८॥ आगे इस आहारकाल और उच्छ्वास-कालको क्रमसे सागरोपमोकी सख्यासे गुणित करना चाहिये । इस प्रकारसे आगेके कल्पोंमे उक्त काल जाना जाता है । जैसे—सनत्कुमार कल्पमे आयुका प्रमाण चूकि सात सागर है, इसलिये वहा आहारकालका प्रमाण सात हजार वर्ष और उच्छ्वासकालका प्रमाण सात पक्ष समझना चाहिये ॥ २२९ ॥

देवोकी उत्कृष्ट आयुका प्रमाण सनत्कुमार कल्पमे सात (७) सागरोपम, ब्रह्म कल्पमे दस (१०), लान्तवमे चौदह (१४), शुक्रमे दोसे अधिक चौदह (१६), शतारमे अठारह (१८), आनतमे बीस (२०) तथा आरणमे दो अधिक बीस (२२) सागरोपम जानना चाहिये । इसके आगे नौ ग्रैवेयक, अनुदिश और अनुत्तर इन ग्यारह स्थानोमे उपर्युक्त आयुप्रमाण (२२ सा) मे उत्तरोत्तर एक एक सागरकी वृद्धि कही गई है ॥ २३०-२३१ ॥ जैसे—प्रथम ग्रैवेयक २३ द्वि ग्रै २४, तृ ग्रै २५ च ग्रै २६ प ग्रै. २७ ष ग्रै २८ स ग्रै २९ अ ग्रै ३० न ग्रै ३१ नौ अनुदिश ३२ और पाच अनुत्तर ३३ सागरोपम ।

पूर्व देवोकी उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक होकर आगेके देवोकी जघन्य आयु मानी गई है। अनुत्तरोमे जघन्य आयु बत्तीस (३२) सागरोपम तथा उत्कृष्ट तेतीस (३३) सागरोपम प्रमाण

१ आ प उच्छ्वासश्चैक° । २ प साधिकपल्यकम् । ३ आ प द्वात्रिंशत्रय ।

सर्वार्थेऽल्पं च दीर्घं च त्र्यस्त्रिंशत्तु सागरा । एवमायूषि देवाना सौधर्मादिषु कल्पयेत् ॥२३३

। ३३ ।

सर्वार्थायुर्यदुत्कृष्ट तदेवास्मिँस्ततः पुन । पल्यासख्येयभागोनमिच्छन्त्येकेऽल्पजीवितम् ॥२३४
त्रायस्त्रिंशत्प्रतीन्द्रेन्द्रसामानिकचतुष्टये । आद्ययो कल्पयोराहु साधिक सागरद्वयम् ॥२३५
परत क्रमशो वृद्धिरासर्वार्थादुदाहृता । कल्पराजाहमिन्द्राणा सव सामानिकादिषु ॥२३६
पञ्च चत्वारि च त्रीणि अन्त.परिषदादिषु । पल्यान्यर्धद्वय चैव सेनान्यात्माभिरक्षिणाम् ॥२३७

। ५ । ४ । ३ । $\frac{5}{2}$ ।

अनीकानीकपत्राणा (?) मेकपल्य तु साधिकम् । आद्ययो कल्पयोरेव क्रमात्पल्योत्तर परम् ॥
आद्ययोः साधिक पल्य देवीनामायुरल्पकम् । पञ्चपल्य महत्पूर्व ऐशाने सप्तपल्यकम् ॥२३९
साधिकं सप्तपल्य स्यात्तृतीये ह्रस्वजीवितम् । अधिक नवपल्य तु देवीना तत्र जीवितम् ॥२४०
साधिकं पूर्वमुत्कृष्टमुत्तरे ह्रस्वजीवितम् । तद् द्विपल्याधिक भूयस्तत्रैवोत्कृष्टमुच्यते ॥२४१
एत यावत्सहस्रार तत सप्ताधिक भवेत् । अच्युते पञ्चपञ्चाशत्पल्याना योषिता स्थिति ॥२४२

है ॥ २३२ ॥ सर्वार्थसिद्धिमे जघन्य और उत्कृष्ट भी आयु तेतीस (३३) सागरोपम प्रमाण है । इस प्रकार सौधर्मादि कल्पोमे देवोकी आयु जाननी चाहिये ॥ २३३॥

सर्वार्थसिद्धिमे जो उत्कृष्ट आयु है पल्यके असख्यातवे भागसे हीन वही यहा जघन्य आयु है, ऐसा कितने ही आचार्य स्वीकार करते हैं ॥ २३४ ॥

प्रथम दो कल्पोमे त्रायस्त्रिंश, प्रतीन्द्र, इन्द्र और सामानिक इन चारकी आयु दो सागरोपमसे कुछ अधिक कही जाती है ॥२३५॥ आगे सर्वार्थसिद्धि तक उसमे क्रमसे उत्तरोत्तर वृद्धि कही गई है। जो आयु इन्द्रो व अहमिन्द्रोकी है वही सामानिको आदिकी जानना चाहिये ॥२३६॥ अभ्यन्तर पारिषद आदि देवोकी आयु क्रमसे पाच, चार और तीन पल्य प्रमाण है (अ ५ पल्य, म ४, बा ३)। सेनामहत्तरो और आत्मरक्ष देवोकी आयु अढाई पल्य ($\frac{5}{2}$) प्रमाण होती है ॥ २३७ ॥ प्रथम दो कल्पोमे अनीक और अनीकपत्रोकी (?) आयु कुछ अधिक एक पल्य मात्र है। इस प्रकार प्रथम दो कल्पोमे यह उनका आयुका प्रमाण कहा गया है । आगे क्रमसे वह एक पल्यसे अधिक होता गया है ॥ २३८ ॥

प्रथम दो कल्पोमे देवियोकी जघन्य आयु पल्यसे कुछ अधिक है। उनकी उत्कृष्ट आयु सौधर्म कल्पमे पाच पल्य और ऐशान कल्पमे सात पल्य प्रमाण है ॥ २३९ ॥ तीसरे कल्पमे उनकी जघन्य आयु कुछ अधिक सात पल्य तथा उत्कृष्ट आयु नौ पल्य प्रमाण है ॥ २४० ॥ पूर्वकी जो उत्कृष्ट आयु है वही कुछ अधिक आगे जघन्य समझना चाहिये । वहीपर दो पल्यसे अधिक वह पूर्वकी आयु उत्कृष्ट कही जाती है ॥ २४१ ॥ इस प्रकारसे यह आयुका क्रम सहस्रार कल्प पर्यन्त जानना चाहिये । उसके आगे वह सात पल्यसे अधिक होती गई है । अच्युत कल्पमे देवियोकी उत्कृष्ट आयु पचपन पल्य प्रमाण है ॥ २४२ ॥

चतु.श्लोकरचना – । ज १ ज १ । उ ५ उ ७ । ९ ११ । १३ १५ । १७ १९ । २१ २३ । २५ २७ । ३४ ४१ । ४८ ५५ ।

योजनाना शत दीर्घा तदर्धं चापि विस्तृता । पञ्चसप्ततिमुद्विद्धा सुधर्मेति सभा शुभा ॥२४३
अष्टयोजनविस्तारैर्द्वारैस्तद्द्विगुणोच्छ्रयै. । रत्नचित्रैस्त्रिभिर्युक्ता वेदिकातोरणोज्ज्वला ॥२४४
प्रासादाद्देवराजस्य पूर्वोत्तरदिशि स्थिता । उपपातसभा चात्र सिद्धायतनमेव च ॥२४५
मणिमुक्तेन्द्रनीलैश्च महानीलजलप्रभै· । चन्द्रशुक्रप्रभैश्चापि वैडूर्यकनकप्रभैः ॥२४६
कर्केतनाङ्कसूर्याभै सुवर्णरजतै शुभै. । प्रवालवज्रमुख्यैश्च प्रासादा. साधु मण्डिताः ॥२४७
नानामणिमयस्तम्भवेदिकाद्वारतोरणा. । ज्वालार्धचन्द्रचित्राश्च प्रासादा. विविधा स्मृताः ॥२४८
मुक्ताजालै सलम्बूषैर्माल्यजालै सुगन्धिभि । हेमजालै सुरत्नैश्च विराजन्ते मनोरमैः ॥ २४९
नानापुष्पप्रकीर्णासु रत्नचित्रासु भूमिषु । देशे देशे मनोज्ञानि वरशय्यासनानि च ॥२५०
उद्यानान्युपसन्नानि सर्वर्तुकुसुमैर्द्रुमै.[1] । वाप्यश्च पुष्करिण्यश्च छन्ना· पद्मोत्पलैरपि ॥२५१
तूर्यगन्धर्वगीताना शुभा· शब्दा मनोरमा । रूपाणि कान्तसौम्यानि गन्धा[2] सुरभयस्तथा ॥२५२
रसा परमसुस्वादा[3] स्पर्शा गात्रसुखावहा· । सर्वकामगुणोपेतो नित्योद्द्योत सुरालयः ॥२५३

~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~

देवियोकी आयु–

कल्प	सौधर्म	ऐशान	सान	मा	ब्रह्म	ब्रह्मो	ला	का	शु	महा	श	सह	आन	प्रा	आर.	अ.
जघन्य	१पल्य	१	७	९	११	१३	१५	१७	१९	२१	२३	२५	२७	३४	४१	४८
उत्कृष्ट	५	७	९	११	१३	१५	१७	१९	२१	२३	२५	२७	३४	४१	४८	५५

सौ (१००) योजन लबी, इससे आधी (५०) विस्तृत और पचत्तर (७५) योजन ऊची सुधर्मा नामकी उत्तम सभा (आस्थानमण्डप) है ॥ २४३ ॥ यह सभागृह आठ योजन विस्तृत और इससे दूने (१६ यो) ऊचे ऐसे रत्नोसे विचित्र तीन द्वारोसे सयुक्त तथा वेदिका एव तोरणद्वारोसे उज्ज्वल है ॥२४४॥ वह सभाभवन इन्द्रके प्रासादके पूर्वोत्तर कोण (ईशान) मे स्थित है । इसके भीतर उपपातसभा और सिद्धायतन भी है ॥ २४५ ॥ वहापर स्थित अनेक प्रकारके भवन मणि, मोती, इन्द्रनील, महानील, जलकान्त, चन्द्रकान्त, शुक्र (शुक ?) कान्त, वैडूर्यमणि, सुवर्णकान्त, कर्केतन, अक, सूर्यकान्त, उत्तम सुवर्ण व चादी तथा प्रवाल एव वज्र आदिसे अलकृत, अनेक मणियोसे निर्मित स्तम्भ, वेदी, द्वार व तोरणोसे सहित, तथा ज्वाला (?) व अर्धचन्द्रसे विचित्र माने गये है। उक्त भवन मोतियोके समूहो, सुगन्धित माला-समूहो, सुवर्णजालो और मनोहर रत्नोसे विराजमान है ॥ २४६-२४९ ॥ उन भवनोके भीतर अनेक पुष्पोसे व्याप्त एव रत्नोसे विचित्र भूमियोमे स्थान स्थानपर मनोहर शय्याये व आसन, सब ऋतुओके फूलो युक्त वृक्षोसे सहित निकटवर्ती उद्यान तथा कमलो व उत्पलोसे व्याप्त वापिया एव पुष्करिणिया है । स्वर्गमे वाद्यो और गन्धर्वोके गीतोके मनोहर उत्तम शब्द, कान्ति युक्त सुन्दर रूप, सुरभि गन्ध, उत्तम स्वादवाले रस तथा शरीरको सुख देनेवाले स्पर्श है । इस प्रकारसे निरन्तर प्रकाशमान वह स्वर्ग सब ही अभीष्ट गुणोसे सहित है ॥ २५०-२५३ ॥

---

१ आ प 'मैद्रुमै । २ प गधा । ३ प पर सु' ।
~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~

तत्र सिंहासने दिव्ये सर्वरत्नमये शुभे । स्वैरं निषण्णो विस्तीर्णे जयशब्दाभिनन्दित ॥२५४
वृत. सामानिकैर्देवैस्त्रायस्त्रिंशैस्तथैव च । सुखासनस्थै. श्रीमद्भिस्तन्मुखोन्मुखदृष्टिभि ॥२५५
चित्रभद्रासनस्थाभिर्वामदक्षिणपार्श्वयो. । सक्रीडयमानो देवीभि क्रीडारतिपरायण ॥२५६
तत्र योजनविस्तीर्ण षट्कृतिं च समुच्छ्रित । स्तम्भो गोरुतविस्तारधाराद्वादशसयुत ॥२५७
वज्रमूर्ति सपीठोऽस्मिन् क्रोशतत्पाददीर्घक । व्यासाश्च रत्नशिक्यस्थास्तिष्ठन्ति च समुद्गका ॥

। १ । $\frac{1}{4}$ ।

सक्रोशानि[1] हि षट् तूर्ध्वं योजनान्यसमुद्गका. । क्रोशन्यूनानि तावन्ति अधश्चाप्यसमुद्गका ॥२५९

। $\frac{2}{4}$ । $\frac{2}{4}$ ।

जिनाना रुच्यकास्तेषु सुरै स्थापितपूजिता । [2]भारतैरावतेशाना सौधर्मैशानयोर्द्वयो ॥२६०
पूर्वापरविदेहेषु जिनाना रुच्यका. पुनः । सनत्कुमारमाहेन्द्रकल्पयोर्न्यस्तपूजिता. ॥२६१
न्यग्रोधा प्रतिकल्प च आयागा. पादपा. शुभा । जम्बूमानाश्चतु पार्श्वे पल्यङ्कप्रतिमायुता ॥२६२

उक्त च [ति प ८,४०५–६]—

सयलिंदमंदिराण पुरदो णग्गोहपायवा होंति । एक्केक्क पुढविमया पुव्वोदिदजंबुदुमसरिसा ॥९
तम्मूले एक्केक्का जिणिंदपडिमा य पडिदिसं होति[3] । सक्कादिणमियचलणा सुमरणमेत्ते वि दुरिदहरा

उस सभाभवनमे 'जय-जय' शब्दसे अभिनन्दित इन्द्र दिव्य, सर्वरत्नोंसे निर्मित, शुभ एव विस्तीर्ण सिंहासनके ऊपर स्वेच्छापूर्वक विराजमान होता है। वह सुखकारक आसनोंपर स्थित एवं उसके मुखकी ओर दृष्टि रखनेवाले ऐसे कान्तियुक्त सामानिक और त्रायस्त्रिंश देवोंसे वेष्टित होकर क्रीडामे अनुराग रखता हुआ अपने वाम और दक्षिण भागोमे अनेक प्रकारके भद्रासनोंपर स्थित देवियोके साथ क्रीडा किया करता है ॥ २५४-२५६ ॥

वहा एक योजन विस्तीर्ण, छहके वर्गभूत छत्तीस योजन ऊंचा, एक कोस विस्तारवाली बारह धाराओसे सयुक्त और पादपीठसे सहित वज्रमय स्तम्भ है। इसके ऊपर एक (?) कोस लंबे और पाव ($\frac{1}{4}$) कोस विस्तृत रत्नमय सीकेके ऊपर स्थित करण्डक है ॥ २५७-२५८ ॥ मानस्तम्भके ऊपर सवा छह ($6\frac{1}{4}$) योजन ऊपर और पौने छह ($5\frac{3}{4}$) योजन नीचे वे करण्डक नही हैं ॥ २५९ ॥ सौधर्म और ऐशान इन दो कल्पोमे स्थित उन स्तम्भोके ऊपर देवोके द्वारा स्थापित और पूजित भरत एव ऐरावत क्षेत्रोके तीर्थकरोके आभूषण रहते हैं ॥ २६० ॥ सनत्कुमार और माहेन्द्र इन दो कल्पोमे स्थित उन स्तम्भोके ऊपर देवो द्वारा स्थापित एव पूजित पूर्व और अपर विदेह क्षेत्रोके तीर्थंकरोके आभूषण रहते हैं ॥ २६१ ॥

प्रत्येक कल्पमे अपने चारो पार्श्वभागोमे विराजमान ऐसी पल्यकासन युक्त प्रतिमाओंसे सुशोभित उत्तम न्यग्रोध आयाग वृक्ष होते है। ये वृक्ष प्रमाणमे जम्बूवृक्षके समान हैं ॥ २६२ ॥ कहा भी है—

समस्त इन्द्रप्रासादोके आगे पृथिवीके परिणामरूप एक एक न्यग्रोध वृक्ष होते हैं। वे प्रमाण आदिमे पूर्वोक्त जम्बूवृक्षके समान हैं ॥ ९ ॥ उनके मूल भागमे प्रत्येक दिशामे एक एक जिनप्रतिमा होती है। स्मरण मात्रसे ही पापको नष्ट करनेवाली उन प्रतिमाओके चरणोमे इन्द्रादि नमस्कार करते हैं ॥ १० ॥

१ ब षट्क्रोशानि । २ प भरतं° । ३ ति प होदि ।

सौधर्मे व सभैशाने[1] शेषेन्द्राणा सभास्तथा । उपपातसभाश्चैव अर्हदायतनानि च ॥२६३
शतार्धायामविस्तीर्णा· पुरस्तान्मुखमण्डपा· । वेदिकाभि· परिक्षिप्ता नानारत्नशतोज्ज्वला· ॥२६४
। १०० । ५० ।
सामानिकादिभि· सार्धम् इन्द्रा पर्वसु सादरा । पूजयन्त्यर्हता तेषु कथाभिरपि चासते ॥२६५
कल्पेषु परतश्चापि सिद्धायतनवर्णना । आयागा· खलु कल्पेषु सभा ग्रैवेयत· स्मृता ॥२६६
योजनाष्टकमुद्विद्धा तावदेव च विस्तृता । उपपातसभेन्द्राणा त्रायस्त्रिशवता स्मृता ॥२६७
अशोकं सप्तपर्ण च चम्पक चूतमेव च । पूर्वाद्यानि वनान्याहुर्देवराजबहि पुरात् ॥२६८
आयतानि सहस्रं च तदर्ध विस्तृतान्यपि । प्राकार· परितस्तेषा मध्ये चैत्यद्रुमा अपि ॥२६९
। १००० । ५०० ।
अर्हता प्रतिबिम्बानि जाम्बूनदमयानि च । तेषा चतुर्षु पार्श्वेषु निषण्णानि चकासते ॥२७०
वालुक पुष्पकं चैव सौमनस्य तत परम् । [2]श्रीवृक्ष सर्वतोभद्रं प्रीतिकृद्रम्यक तथा ॥२७१
मनोहरविमान च अर्चिमाली च नामत· । विमल च विमानानि यानकानीति लक्षयेत् ॥२७२
नियुतव्यासदीर्घाणि वैक्रियाणीतराणि च । वैक्रियाणि विनाशीनि स्वभावानि ध्रुवाणि[3] च ॥२७३
सौधर्मादिचतुष्के[4] च ब्रह्मादिषु तथा क्रमात् । आनतारणयोश्चैव उक्तान्येतानि योजयेत् ॥२७४
उक्तं च [ति· प ८–४४१]

सौधर्म कल्पके समान ऐशान कल्पमे भी सभागृह है। उसी प्रकार शेष इन्द्रोके भी सभागृह, उपपातसभा और जिनायतन होते है ॥ २६३ ॥ उनके आगे सौ (१००) योजन दीर्घ, इससे आधे (५० यो) विस्तीर्ण, वेदिकाओसे वेष्टित और सैकडो नाना प्रकारके रत्नोसे उज्ज्वल मुखमण्डप होते है ॥२६४॥ उनमे इन्द्र पर्व दिनोमे सामानिक आदि देवोके साथ भक्तिसे जिन भगवान्की पूजा करते है तथा कथाओके साथ (तत्त्वचर्चा करते हुए) वहा स्थित होते है ॥ २६५ ॥ कल्पोमे तथा आगे ग्रैवेयक आदिमे भी सिद्धायतनका वर्णन करना चाहिये। आयाग (न्यग्रोध वृक्ष) कल्पोमे तथा सभाभवन ग्रैवेयकमे माने गये है (?) ॥ २६६ ॥

त्रायस्त्रिशोके साथ इन्द्रोकी उपपातसभा आठ योजन ऊची और उतनी ही विस्तृत कही गई है ॥ २६७ ॥

इन्द्रपुरके बाहिर पूर्वादि दिशाओमे क्रमसे अशोक, सप्तपर्ण, चम्पक और आम्र ये चार वन स्थित हैं ॥ २६८ ॥ वे वन हजार (१०००) योजन लबे और इससे आधे (५००यो) विस्तृत है। उनके चारो ओर प्राकार और मध्यमे चैत्यवृक्ष स्थित है ॥ २६९ ॥ उक्त चैत्य-वृक्षोके चारो पार्श्वभागोमे पल्यकासनसे स्थित सुवर्णमय जिनविम्ब शोभायमान हैं ॥ २७० ॥

वालुक, पुष्पक, सौमनस्य, श्रीवृक्ष, सर्वतोभद्र, प्रीतिकृत्, रम्यक, मनोहर, अर्चिमाली और विमल ये यानविमान जानना चाहिये। ये एक लाख [योजन] लबे-चौडे यानविमान विक्रिया-निर्मित और प्राकृतिक भी होते है। उनमे विक्रियानिर्मित विमान नश्वर और स्वाभाविक विमान स्थिर होते हैं ॥ २७१-२७३ ॥ ये उपर्युक्त विमान क्रमसे सौधर्म आदि चार कल्पो, ब्रह्मादि चार युगलो तथा आनत व आरण कल्प, इस प्रकार इन दस स्थानोमे कहे गये योजित करना चाहिये ॥ २७४ ॥ कहा भी है—

१ प सौधर्मेव समैशाने । २ प श्रीवृक्ष° । ३ आ प द्रुवाणि । ४ प सौधर्मादिकचतुष्के ।

सोहम्मादिचउक्के कमसो अवसेसछक्कजुगलेसु । होंति उ पुव्वुत्ताइ याणविमाणाणि पत्तेय ॥११
शस्त्रभाजनवस्त्राणि बहुधा भूषणानि च । पार्थिवानि ध्रुवाण्येव वैक्रियाण्यध्रुवाणि तु ॥२७५
इन्द्राणा कल्पनामानि विमानानि प्रचक्षते । चतुर्दिश तु चत्वारि तेषा वेद्यानि नामभि. ॥२७६
वैडूर्य रजत चैव अशोकमिति पश्चिमम् । मृषत्कसारमन्त्य च दक्षिणेन्द्राधिवासत [1] ॥२७७
रुचक मन्दराख्य च अशोक सप्तपर्णकम् । उत्तरेन्द्राधिवासेभ्य [2] कीर्तितानि चतुर्दिशम् ॥२७८
दक्षिणे [3]लोकपालाना नामान्युक्तानि मन्दरे[4] । तान्येषा वै विमानानि त्रिषु कल्पेषु कल्पयेत् ॥२७९

उक्त च [ति प ८-३००]–

होंदि दु सयपहक्ख वरजेट्ठसयजणाणि वग्गू य । ताण पहाणविमाणा सेसेसु दक्खिणिंदेसु ॥१२
सौम्य च सर्वतोभद्र समित शुभमित्यपि । उत्तरे [5]लोकपालाना सज्ञा कल्पद्वये मता ॥२८०

उक्त च [ति. प ८,३०१-२]–

सोम्म सव्वदभद्दा सुभद्दसमिदाणि सोमपहुदीण । होंति पहाणविमाणा सव्वेंसि उत्तरिंदाण ॥१३
ताण विमाणसखा उवएसो णत्थि कालदोसेण[6] । ते सव्वे वि दिगिंदा तेसु विमाणेसु कीडंति ॥१४

सौधर्म आदि पृथक् पृथक् चार कल्पो और शेष छह युगलोमेसे प्रत्येकमे क्रमसे पूर्वोक्त यानविमान होते हैं ॥ ११ ॥

शस्त्र, भाजन, वस्त्र और बहुत प्रकारके भूषण ये पृथिवीनिर्मित और वैक्रियिक भी होते हैं । इनमेसे पृथिवीमय स्थिर और वैक्रियिक अस्थिर होते है ॥ २७५ ॥

इन्द्रोके विमान कल्पनामवाले कहे जाते है । उनकी चारो दिशाओमे वैडूर्य, रजत, अशोक और अन्तिम मृषत्कासार इन नामोवाले चार विमान जानने चाहिये । ये विमान दक्षिण इन्द्रोके निवासस्थानकी चारो दिशाओमे होते हैं ॥ २७६-२७७ ॥ रुचक, मन्दर, अशोक और सप्तपर्ण ये चार विमान उत्तर इन्द्रोके निवासस्थानोकी चारो दिशाओमे कहे गये हैं ॥ २७८ ॥

मन्दर पर्वतकी प्ररूपणामे (१–२६० व २६२ आदिमे) दक्षिण (सौधर्म) इन्द्रके लोकपालोके विमानोके जो नाम कहे गये हैं वे तीन कल्पोमे उनके विमानोके नाम जानना चाहिये ॥२७९ ॥ कहा भी है–

लान्तव आदि शेष दक्षिण इन्द्रोमे स्वयप्रभ, उत्तम ज्येष्ठशत, अजन और वल्गु ये प्रधान विमान जानना चाहिये ॥ १२ ॥

सौम्य, सर्वतोभद्र, समित और शुभ ये उत्तरमे दो कल्पोमे लोकपालोके प्रधान विमानोके नाम माने गये है ॥ २८० ॥ कहा भी है–

सौम्य, सर्वतोभद्र सुभद्र और समित ये सब उत्तर इन्द्रोके सोम आदि लोकपालोंके प्रधान विमान होते है ॥ १३ ॥ उनके विमानोकी सख्याका उपदेश कालदोषसे नष्ट हो गया है। वे सब लोकपाल उन विमानोमे क्रीडा किया करते हैं ॥ १४ ॥

१ आ °णेन्द्राधिवासत ब °णेन्द्रादिवासत । २ ब °रेन्द्रादिवा° । ३ आ ब लौक° । ४ प मदिरे । ५ आ लौक° । ६ ति प कालयवसेण° ।

काम्या च कामिनी पद्मगन्धालम्बूषसञ्ज्ञका । चतस्त्र ऊर्ध्वलोके तु गणिकानां महत्तरा. ॥२८१

उक्तं च [ति. प ८-४३५]–

गणियामहत्तरीण समचउरस्सा पुरीओ विदिसासु । एक्कं जोयणलक्खं पत्तेक्क दीहवासजुदा ॥१५

। १००००० ।

पञ्चपल्यायुषस्त्वाद्ये द्वितीये सप्तजीविता. । स्थितिरेव गणिकाना ज्ञेया कन्दर्पा अपि चाद्ययो. ॥

। ५ । ७ ।

आ लान्तवात् किल्विषिका' आभियोग्यास्तथाच्युतात् । जघन्यस्थितयश्चैते स्वे स्वे कल्पे समीरिताः ॥

द्विद्विकत्रिचतुष्केषु शरीरस्पर्शरूपकः[1] । शब्दचित्तप्रवीचारा अप्रवीचारका. परे ॥२८४

ऊर्ध्वलोकमे काम्या, कामिनी, पद्मगन्धा और अलंबूषा नामवाली चार गणिकाओकी महत्तरिया होती हैं ॥ २८१ ॥ कहा भी है–

गणिकामहत्तरियोकी जो विदिशाओमे समचतुष्कोण नगरिया है उनमेसे प्रत्येक एक लाख (१०००००) योजन प्रमाण लबी-चौडी है ॥ १५ ॥

गणिकाओकी आयु प्रथम कल्पमे पाच (५) और द्वितीय कल्पमे सात (७) पल्य प्रमाण जानना चाहिये । कन्दर्प देव प्रथम दो कल्पोमे, किल्विषिक देव लान्तव कल्प तक तथा आभियोग्य देव अच्युत कल्प तक उत्पन्न होते है– आगेके कल्पोमे वे उत्पन्न नही होते। अपने अपने कल्पमे जो जघन्य आयु कही गई है वे उसी जघन्य आयुसे सयुक्त होते है॥ २८२-२८३ ॥

प्रथम दो कल्पोके देव कायप्रवीचारसे सहित, आगेके दो कल्पोके स्पर्शप्रवीचारसे सहित, इसके आगे चार कल्पोके रूपप्रवीचारसे सहित, उनसे आगे चार कल्पोमे शब्दप्रवीचारसे सहित, तथा अन्तिम चार कल्पोमे चित्तप्रवीचारसे सहित होते है । आगेके सब देव प्रवीचारसे रहित होते हैं ॥ २८४ ॥

विशेषार्थ– अभिप्राय यह है कि सौधर्म और ऐशान कल्पोमे रहनेवाले देवोके जो कामपीडा उत्पन्न होती है उसे वे मनुष्योके समान देवागनाओके साथ शारीरिक सम्भोग करके शान्त करते है । सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पोके देव उक्त पीडाको देवागनाओके स्पर्शमात्रसे शान्त करते है । ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव और कापिष्ठ इन चार कल्पोके देव देवागनाओके रूपके अवलोकन मात्रसे ही उस पीडाको शान्त करते हैं। शुक्र, महाशुक्र, शतार और सहस्रार कल्पोके देव केवल देवागनाओके गीत आदिको सुन करके ही उक्त वेदनासे रहित होते है । आनत, प्राणत, आरण और अच्युत इन चार कल्पोके देव मनमे विचार करने मात्रमे ही उस वेदनासे मुक्त होते है । आगे ग्रैवेयक आदि कल्पातीत विमानोमे रहनेवाले देवोके वह कामपीडा उत्पन्न ही नही होती ।

१ ब रूपक

आद्ययो. सप्तहस्तोच्चा. परयो· षट्कहस्तका । पञ्चरत्निप्रमाणाश्च ब्रह्मलान्तवयो· सुरा ॥२८५
शुक्रदेवाश्चतुर्हस्ता सहस्रारे तथैव च । त्रिहस्ता आनताद्येषु ग्रैवेयेषु द्विहस्तका. ॥२८६

। ४ । ३ [२] ।

अनुत्तरानुदिग्देवा सार्धरत्निप्रमाणका. । एकहस्तप्रमाणास्तु सर्वार्थे सुरसत्तमा. ॥२८७

। $\frac{१}{२}$ । (?)

उक्त च [त्रि ५४३]–

दुसु दुसु चदु दुसु दुसु चउ तित्तिसु सेसेसु देहउच्छेहो । रयणीण सत्तछप्पण चत्तारि दलेण हीणकमा ॥

। ७ । ६ । ५ । ४ । $\frac{७}{२}$ । ३ । $\frac{५}{२}$ । २ । $\frac{३}{२}$ । १ ।

ऋतुप्रभृतिदेवाना तेजोलेश्या विवर्धते । आ प्रभाया शताराच्च पद्मातस्त्रिषु वर्धते ॥२८८
आनतादूर्ध्वमूर्ध्व च आ सर्वार्थविमानतः । प्रस्तरे प्रस्तरे लेश्या शुक्ला देवेषु[1] वर्धते ॥२८९

उक्त च [ ]–

द्वयोर्द्वयोश्च षट्के च द्वयोस्त्रयोदशस्वपि । चतुर्दशविमानेषु त्रिदशाना· यथाक्रमम् ॥१७
पीता च पीतपद्मा च पद्मा वै पद्मशुक्लका । शुक्ला परमशुक्ला[2] च लेश्या स्युरिति निश्चिता· ॥१८

प्रथम दो कल्पोके देव सात (७) हाथ ऊचे, आगेके दो कल्पोके देव छह (६) हाथ ऊचे, ब्रह्म और लान्तव कल्पोके देव पाच (५) हाथ ऊचे, शुक्र और सहस्रार कल्पोके देव चार (४) हाथ ऊचे, शेष आनतादि चार कल्पोके देव तीन (३) हाथ ऊचे, ग्रैवेयकोके दो (२) हाथ ऊचे, अनुत्तर व अनुदिशोके देव डेढ ($१\frac{१}{२}$) हाथ ऊचे तथा सर्वार्थसिद्धिके उत्तम देव एक (१) हाथ प्रमाण ऊचे होते हैं ॥ २८५-२८७ ॥ कहा भी है–

देवोके शरीरकी ऊचाई दो कल्पोमे सात (७), दो कल्पोमे छह (६), चार कल्पोमे पाच (५), दो कल्पोमे चार (४), दो कल्पोमे साढे तीन ($३\frac{१}{२}$), चार कल्पोमे तीन (३), शेष तीन त्रिक (अधस्तन, मध्यम व उपरिम ग्रैवेयक) मे क्रमसे अढाई, दो व डेढ ($२\frac{१}{२}$, २, $१\frac{१}{२}$) तथा शेष अनुदिश व अनुत्तरोमे एक (१) हाथ प्रमाण है ॥ १६ ॥

ऋतुको आदि लेकर प्रभा पटल पर्यन्त रहनेवाले देवोके उत्तरोत्तर तेजोलेश्या बढती जाती है। आगे प्रभा पटलसे शतार पर्यन्त पद्मलेश्या बढती जाती है । आनतसे लेकर ऊपरके कल्प विमानोमे तथा उसके आगे सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त कल्पातीत विमानोमे प्रत्येक पटलमे शुक्ल-लेश्या बढती जाती है ॥ २८८-२८९ ॥ कहा भी है–

प्रथम दो कल्पोमे, आगे सानत्कुमार व माहेन्द्र इन दो कल्पोमे, ब्रह्मादि छह कल्पोमे, शतार व सहस्रार इन दो कल्पोमे, आनतादि चार व नौ ग्रैवेयक इन तेरह स्थानोमे तथा शेष चौदह (नौ अनुदिश व पाच अनुत्तर) विमानोमे स्थित देवोके यथाक्रमसे पीत, पीत व पद्म, पद्म, पद्म व शुक्ल, शुक्ल, तथा उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या होती है, इस प्रकार देवोमे लेश्याओका क्रम निश्चित जानना चाहिये ॥ १७-१८ ॥

१ प देवीषु । २ प पर शुक्ला ।

आद्ययोः कल्पयोर्देवा आ घर्माया विकुर्वते । परयोरा द्वितीयाया आ शैलायाश्चतुर्ष्वपि ॥२९०
देवाः शुक्रचतुष्के च आ चतुर्थ्यास्तविक्रिया. । आनतादिषु देवाश्च आ पञ्चम्या इतीष्यते ॥२९१
ग्रैवेयकास्तथा षष्ठ्या आ सप्तम्यास्ततः परे । दर्शनं चावधिज्ञानं विक्रियेवाथ इष्यते ॥२९२
अनन्तभागं मूर्तीनां जीवानपि सकर्मकान् । समस्तां लोकनालिं च प्रेक्षन्तेऽनुत्तरामराः ॥२९३
आऽऽरणाद्दक्षिणस्थानां देवानां हि वराङ्गनाः । सौधर्म एव जायन्ते जाता यान्ति स्वमास्पदम् ॥
तथोत्तरेषा देवानां देव्यो या आऽच्युतान्मता.[1] । ता ऐशाने जनित्वा तु प्रयान्ति स्व स्वमालयम् ॥
नियुतानि विमानानि षट् सौधर्मगतानि हि । देवीभिरेव पूर्णानि चत्वार्यैशाननामनि ॥ २९६
। ६०००००। ४०००००।
शेषाणि तु विमानानि तयोरुक्तानि कल्पयोः । देवीभि. सह देवैस्तु[2] मिश्रैः पूर्णानि लक्षयेत् ॥२९७
षट्चतुष्कमुहूर्ता. स्युरैशानाज्जननान्तरम्[3] । च्यवनान्तरमप्येवं जघन्यात्समयोऽपि च ॥२९८
। २४ ।

विशेषार्थ– अभिप्राय यह है कि सौधर्म और ईशान इन दो कल्पोमे स्थित देवोके मध्यम पीत लेश्या, सनत्कुमार और माहेन्द्र इन दो कल्पोके देवोके उत्कृष्ट पीत लेश्या व जघन्य पद्मलेश्या, आगे ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापिष्ठ, शुक्र और महाशुक्र इन छह कल्पोमे स्थित देवोके मध्यम पद्मलेश्या, शतार और सहस्रार इन दो कल्पोके देवोके उत्कृष्ट पद्मलेश्या व जघन्य शुक्ललेश्या, आनत, प्राणत, आरण व अच्युत ये चार कल्प तथा नौ ग्रैवेयक इस प्रकार इन तेरह स्थानोमे रहनेवाले देवोके मध्यम शुक्ललेश्या, तथा नौ अनुदिश और पाच अनुत्तर इन चौदह विमानोमे रहनेवाले देवोके उत्कृष्ट शुक्ललेश्या होती है।

प्रथम दो कल्पोके देव घर्मा पृथिवी तक, आगेके दो कल्पोके देव दूसरी पृथिवी तक, आगे चार कल्पोके देव शैला (तीसरी) पृथिवी तक, शुक्र आदि चार कल्पोके देव चौथी पृथिवी तक, आनत आदि चार कल्पोके देव पाचवी पृथिवी तक, ग्रैवेयकवासी देव छठी पृथिवी तक, तथा आगे अनुदिश व अनुत्तरोमे रहनेवाले देव सातवी पृथिवी तक विक्रिया करते है। उक्त देवोके दर्शन व अवधिज्ञानका विषयप्रमाण विक्रियाके समान ही माना जाता है ॥२९०-२९२॥ अनुत्तर विमानवासी देव मूर्तिक कर्मोके अनन्तवे भागको, कर्मयुक्त जीवोको तथा समस्त लोकनालीको भी देखते है ॥ २९३ ॥

आरण पर्यन्त दक्षिण कल्पोमे स्थित देवोकी देवागनाये सौधर्म कल्पमे ही उत्पन्न होती है। वहा उत्पन्न हो करके वे अपने स्थानको जाती हैं॥ २९४ ॥ उसी प्रकार अच्युत कल्प तक उत्तर देवोकी जो देविया मानी जाती है वे ऐशान कल्पमे उत्पन्न हो करके अपने अपने स्थानको जाती है॥ २९५ ॥ सौधर्म कल्पगत छह लाख (६०००००) विमान तथा ऐशान कल्पगत चार लाख (४०००००) विमान केवल देवियोसे ही परिपूर्ण है॥ २९६ ॥ उन दोनो कल्पोमे जो शेष विमान है वे देवियोके साथ मिलकर रहनेवाले देवोसे परिपूर्ण कहे गये है, ऐसा समझना चाहिये ॥ २९७ ॥

देवोके जन्मका और मरणका उत्कृष्ट अन्तर सौधर्म कल्पमे छह (६) मुहूर्त और ऐशान कल्पमे चार (४) मुहूर्त प्रमाण होता है। उनके जन्म और मरणका अन्तर जघन्यसे एक

१ आ प या अच्युतान्मता । २ आ प देव्यैस्तु । ३ प स्युरैशात्राज्जन° ।

द्वे शते नवतिश्चैव शतानि त्रीणि सप्ततिः। तृतीये च मुहूर्ताः स्युर्माहेन्द्रेऽपि च भाषिता ॥२९९
। २९० । ३७० ।
द्वाविंशतिरथार्धं च दिनानां ब्रह्मनामनि। चत्वारिंशच्च पञ्चापि अहोरात्राणि लान्तवे ॥३००
। $\frac{४५}{२}$ । ४५ ।
अशीतिर्दिवसाः शुक्रे शतारे शतमेव तु। आनतादिचतुष्केऽपि सख्येयाब्दशतानि वै ॥३०१
। ८० । १०० । व १०० ।
सख्येयाब्दसहस्राणि ग्रैवेयेष्वन्तरं मतम्। पल्यासख्येयभागस्तु वनुदिशानुत्तरेऽपि च ॥३०२
। व १००० । १ । ५ ।
सप्ताहपक्षमासाश्च मासौ मासचतुष्टयम्। षण्मासं चान्तरं जातौ तदेव च्यवनान्तरम् ॥३०३
। दि ७ । १५ । मा १ । २ । ४ । ६ ।
ऐशानान्ते समाहेन्द्रे कापित्थान्ते च योजयेत्। सहस्रारेऽच्युतान्ते च शेषेषु च यथाक्रमम् ॥३०४
पाठान्तरम् ।
इन्द्राणां विरहः कालो जघन्यः समयो मतः। उत्कृष्टोऽपि च षण्मासं तथैवाग्राङ्गनास्वपि ॥३०५
त्रायस्त्रिंशसमानानां पारिषद्यात्मरक्षिणाम्। उत्कृष्टस्तु चतुर्मासमिन्द्रवल्लोकरक्षिणाम् ॥३०६
तमोऽरुणोदादुद्गत्य वृण्वत्कल्पचतुष्टयम्। कल्पानां विभजेद्देशान्[1] ब्रह्मलोकेन संगतः ॥३०७
। १७२१ ।

समय मात्र होता है ॥२९८॥ उक्त अन्तर तीसरे कल्पमे दो सौ नव्वै मुहूर्त (९ दि २० मु), माहेन्द्र कल्पमे तीन सौ सत्तर मुहूर्त (१२ दि. १० मु), ब्रह्म कल्पमे साढे बाईस (२२½) दिन, लान्तव कल्पमे पैंतालीस (४५) दिन, शुक्र कल्पमे अस्सी (८०) दिन, शतार कल्पमे सौ (१००) दिन, आनतादि चार कल्पोमे सख्यात सौ वर्ष (स १०० वर्ष), ग्रैवेयकोमे सख्यात हजार वर्ष (स १००० वर्ष), तथा अनुदिश और अनुत्तरोमे पल्यके असख्यातवे भाग (पल्य —असख्यात) प्रमाण माना गया है ॥ २९९-३०२ ॥ मतान्तर—

ऐशान कल्प तक (सौधर्म-ऐशान), सनत्कुमार और माहेन्द्र, ब्रह्मको आदि लेकर कापिष्ठ तक, शुक्रसे लेकर सहस्रार तक, आनतको लेकर अच्युत कल्प तक, तथा ग्रैवेयक आदि शेष विमानोमे क्रमसे एक सप्ताह (७ दि), एक पक्ष (१५ दि), एक (१) मास, दो (२) मास, चार (४) मास और छह (६) मास, इतना अन्तर जन्मका और उतना ही मरणका भी अन्तर जानना चाहिये ॥३०३-३०४॥

इन्द्रोका विरहकाल जघन्य एक समय तथा उत्कृष्ट छह मास प्रमाण माना गया है। यही विरहकाल उनकी अग्रदेवियोका भी समझना चाहिये ॥ ३०५ ॥ त्रायस्त्रिश, सामानिक, पारिषद और आत्मरक्ष देवोका उत्कृष्ट विरहकाल चार मास प्रमाण है। लोकपाल देवोका विरहकाल अपने अपने इन्द्रोके समान समझना चाहिये ॥ ३०६ ॥

अन्धकार अरुण समुद्रके ऊपर उठकर व प्रथम चार कल्पोको आच्छादित करके इन कल्पोके देशोका विभाग करता हुआ ब्रह्म लोकसे सबद्ध हो गया है। वह इसके ऊपर

---

१ प विभजेद्देशां ब विभजद्देशा ।

एकविंशतियुक्तानि शतानि दश सप्त च । उद्गत्यातः शरावाभं गतं विस्तीर्यमाणकम्[1] ॥३०८
विष्कम्भपरिधी तस्य मूले संख्येययोजने । अग्रे त्वसंख्ये तस्माच्च कृष्णराज्यष्टकं बहिः ॥३०९
प्रागायताश्चतस्रोऽत्र चतस्रश्चोत्तरायताः । वेदिकायुग्मवत्ताश्च अन्योन्य सश्रिताः स्थिताः ॥३१०
पूर्वापरे बहीराज्यौ षडस्रे तिमिरात्मके । दक्षिणोत्तरराज्यौ तु[2] संस्थानाच्चतुरस्रिते ॥३११
अन्तः पूर्वापरे राज्यौ चतुरस्रे प्रकीर्तिते । दक्षिणोत्तरराज्यौ तु त्र्यस्रे पूर्वापरायते ॥३१२
[3]आकाशोऽभ्यन्तराद् बाह्यः सख्येयगुण उच्यते । राज्यप्यभ्यन्तरा तद्वत्तमस्कायस्ततोऽधिकः॥३१३
देशोनाभ्यन्तरायाश्च बाह्यराजी प्रकीर्तिता। बाह्यायाश्च पुना राज्या राजीमध्यं तु साधिकम्॥
मध्ये तु कृष्णराजीना लौकान्तिकसुरालया· । पूर्वोत्तराद्यास्तेऽष्टौ च दृष्टा· सारस्वतादयः ॥३१५
सारस्वताश्च आदित्या वह्नयश्चारुणा अपि । गर्दतोयाश्च तुषिता अव्याबाधाश्च सप्तमाः ॥३१६
आग्नेया उत्तरस्या च अरिष्टा मध्यमाश्रिताः । लौकान्तिका विनारिष्टैरष्टसागरजीविताः॥३१७

उक्त च [त्रि. सा. ५४०]—

चोद्दसपुव्ववरा[4] पडिबोहकरा [5]तित्थयरविणिक्कमणे। एदेसिमट्ठजलही ठिदी अरिट्ठस्स णव चेव॥
प्रकीर्णकविमानानि तेषा वृत्तानि तानि च । अरिष्टानां विमान तु प्रोक्तमावलिकागतम् ॥३१८

सत्तरह सौ इक्कीस (१७२१) योजन ऊपर उठकर सकोरेके आकारको धारण करता हुआ विस्तारको प्राप्त हुआ है। उसका विस्तार और परिधि मूलमे सख्यात योजन और फिर आगे असख्यात योजन प्रमाण है। उसके बाहिर आठ कृष्णराजिया है। इनमे चार राजिया पूर्वमे आयत तथा चार राजिया उत्तरमे आयत है। वे राजिया वेदिकायुगलके समान परस्परका आश्रय लेकर स्थित है । अन्धकारस्वरूप पूर्वापर बाह्य राजिया षट्कोण तथा दक्षिण-उत्तर राजिया आकारमे चतुष्कोण है। भीतरकी पूर्वापर राजिया चतुष्कोण तथा दक्षिण-उत्तर राजिया त्रिकोण व पूर्वापर आयत कही गई है। अभ्यन्तर आकाशकी अपेक्षा बाह्य सख्यातगुणा कहा जाता है, उसी प्रकार अभ्यन्तर राजी भी सख्यातगुणी है, तमस्काय उससे अधिक है, अभ्यन्तर राजीसे बाह्य राजी कुछ कम तथा बाह्य राजीसे मध्य राजी कुछ अधिक कही गई है ॥३०७-३१४॥

इन कृष्णराजियोके मध्यमे लौकान्तिक देवोके विमान है। वे सारस्वत आदि आठ लौकान्तिक देव पूर्व-उत्तर (ईशान) आदि दिशाओके क्रमसे देखे गये हैं ॥३१५॥ सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित और सातवे अव्याबाध ये, क्रमसे ईशान आदि दिशाओमे स्थित हैं। आग्नेय लौकान्तिक उत्तरमे तथा अरिष्ट मध्यमे रहते है। अरिष्टोको छोडकर शेष सात लौकान्तिक देवोकी आयु आठ सागर प्रमाण होती है ॥३१६-३१७॥ कहा भी है—

उत्तम चौदह पूर्वोके धारक वे लौकान्तिक देव तीर्थंकरोके तपकल्याणकमे उन्हे प्रतिबोधित करते है। इनकी आयु आठ सागरोपम मात्र है। परन्तु अरिष्ट देवोंकी आयु नौ सागरोपम प्रमाण होती है ॥१९॥

उनके प्रकीर्णक विमान हैं और वे गोल है। परन्तु अरिष्ट लौकान्तिकोंका विमान

१ आ प गतविस्तीर्य॰ । २ प अतोऽग्रेऽग्रिम 'दक्षिणोत्तरराज्यौ तु' पर्यन्त. पाठस्त्रुटितोऽस्ति । ३ ब आकाशे । ४ ति सा 'पुव्वधरा' पाठोऽस्ति । ५ ब तित्थयरा ।

शतानि सप्त सप्तापि देवाः सारस्वता. मता । तुषिता गर्दतोयाश्च आदित्याश्च तथोदिताः ॥३१९
। ७०७ । ७०७ ।

नवाग्राणि शतानि स्युर्नवाप्याग्नेयनामकाः । अव्याबाधास्तथारिष्टा आग्नेयसमसंख्यका. ॥३२०
। ९०९ ।

चतुर्दशसहस्राणि चतुर्दश च केवला' । वह्नय. सख्यया ज्ञेया अरुणा अपि तत्समा. ॥३२१
। १४०१४ ।

उक्तानि त्रिलोकप्रज्ञप्तौ [ति. प. ८, ५९७-६३४]–

अरुणवरदीवबाहिरजगदीदो जिणवरुत्तसखाणि । गंतूण जोयणाणि अरुणसमुद्दस्स पणिधीए ॥२०
एक्कदुगसत्तएक्के अंककमे जोयणाणि उवरि णहे । गतूण वलयेण चिट्ठेदि तमो तमोक्कायो ॥२१
। १७२१ ।

आदिमचउकप्पेसु देसवियप्पाणि तेसु काद्दूण । उवरिगदबम्हकप्पप्पढमिंदयपणिधितलपत्ते ॥२२
मूलम्मि रुंदपरिही[1] हवति सखेज्जजोयणा तस्स । मज्झम्मि असखेज्जा उवरिं तत्तो असखेज्जा ॥
संखेज्जजोयणाणि तमकायादो दिसाए पुव्वाए । गच्छेय[2] सडस[3] मुरवायारधरा दक्खिणुत्तरायामा ॥
णामेण किण्णराई पच्छिमभागे वि तारिसा य तमो । दक्खिणउत्तरभागे तम्मेत्तं गद्दुव[4] दीहचउरस्सा ॥
एक्केक्ककिण्णराई हवेइ पुव्वावरिं तदायामा[5] । एदाओ राजीवो णियमेण[6] छिवंति अण्णोण्ण ॥२६

श्रेणीबद्ध कहा गया है ॥ ३१८ ॥ सारस्वत देव सात सौ सात (७०७) माने गये हैं । तुषित, गर्दतोय और आदित्य भी उतने (७०७) ही कहे गये हैं ॥३१९॥ आग्नेय नामक देव नौ सौ नौ (९०९) है । अव्यावाध और अरिष्ट देवोकी सख्या आग्नेय देवोके समान (९०९) है ॥३२०॥ वह्नि देव सख्यामे चौदह हजार चौदह (१४०१४) हैं । अरुण देव भी सख्यामे वह्नि देवोके समान (१४०१४) जानना चाहिये ॥ ३२१ ॥ त्रिलोकप्रज्ञप्तिमे इस विषयमे निम्न गाथाये कही गई हैं –

अरुणवर द्वीपकी बाह्य वेदिकासे जिनेन्द्र देवके द्वारा कही गई सख्या प्रमाण योजन जाकर अरुण समुद्रके प्रणिधि भागमे अकक्रमसे एक, दो, सात और एक (१७२१) इतने योजन ऊपर आकाशमे जाकर वलयाकारसे तमस्काय तम स्थित है ॥२०-२१॥ प्रथम चार कल्पोमे देशभेदोको करके उनके ऊपर स्थित ब्रह्मकल्पके प्रथम इन्द्रकके प्रणिधितलको प्राप्त हुए उस तमस्कायके विस्तारकी परिधि मूलमे सख्यात योजन, मध्यमे असख्यात योजन और उसके ऊपर असख्यात योजन है ॥२२-२३॥ उस तमस्कायकी पूर्वदिशामे सख्यात योजन जाकर षट्कोण व मृदगके आकारको धारण करनेवाली दक्षिण-उत्तर लबी कृष्णराजी है । उसी प्रकार कृष्णराजी नामका अन्धकार पश्चिम भागमे भी है । दक्षिण और उत्तर भागमे भी उतने मात्र योजन जाकर पूर्वापर आयामवाली आयतचतुरस्र एक एक कृष्णराजी स्थित है । ये कृष्णराजिया नियमसे

१ आ प मूलविरुद° । २ ति प गच्छिय । ३ आ प सडस्स । ४ ति प गद्धुव । ५ ति प पुव्वावरट्ठिदायामा । ६ ति प णियमा ण ।

संखेज्जजोयणाणिं[1] राजीहिंतो दिसाये पुव्वाए। गतूणब्भंतरिए[2] राजी किण्हा य दीहचउरस्सा॥
उत्तरदक्खिणदीहा दक्खिणराजि ठिदा पविसिदूण। पच्छिमदिसाए[3] उत्तरराजि छिविदूण अण्णतम्रो॥
संखेज्जजोयणाणि राजीदो दक्खिणाए आसाए। गंतूणब्भतरिए[2] एक्क चिय किण्हराजी य॥२९
दीहेण छिदिदस्स य जवखेत्तस्सेक्कभागसारिच्छा। पच्छिमबाहिरराजिं छिविदूण सा ठिदा णियमा॥
पुव्वावरआयामा तमकायदिसाए होदि तप्पती[4]। उत्तरभागम्मि तमो एक्को छिविदूण पुव्ववहिराजिं
अरुणवरदीवबाहिरजगदीए तह य तमसरीरस्स। [5]विच्चालणहयलादो अब्भंतरराजितिमिरकायाणं।
विच्चालायासं[6] तह सखेज्जगुण हवेदि णियमेण। तम्माणादुण्णेय[7] अब्भतरराजि सखगुणजुत्तो॥
अब्भतरराजीदो अदिरेगजुदो हवेदि तमकायो। अब्भंतरराजीदो बाहिरराजी वि[8] किंचूणा॥३४

बाहिरराजीहिंतो दोण्णं राजीण जो दु विच्चालो[9]।
अदिरित्तो इय अप्पाबहुलत्त होदि चउसु य दिसासु॥३५

एदम्मि तम्मि देसे[10] विहरते अप्परिद्धिया देवा। दिम्मूढा वच्चन्ते माहप्पेणं महड्ढियसुराण॥३६
राजीण विच्चाले[11] सखेज्जा होंति बहुविहविमाणा। एदेसु सुरा जादा खादा लोयतिया णामा॥
संसारवारिरासी जो लोगो तस्स होंति अतम्मि। जम्हा तम्हा एदे देवा लोयतिय त्ति गुणणामा॥

परस्परमे एक दूसरेको छूती है॥२४-२६॥ इन राजियोसे पूर्व दिशामे सख्यात योजन जाकर अभ्यन्तर भागमे आयतचतुरस्र कृष्णराजी स्थित है जो उत्तर-दक्षिण दीर्घ होकर दक्षिण राजीमे प्रविष्ट होती है। इसी प्रकार उत्तर राजीको छूकर दूसरा अन्धकार (कृष्णराजी) पश्चिम दिशामे भी स्थित हे॥२७-२८॥ राजीसे सख्यात योजन दक्षिण दिशामे जाकर अभ्यन्तर भागमे एक ही कृष्णराजी स्थित है॥२९॥ लबाई रूपमे छेदे गये यवक्षेत्रके एक भागके समान वह राजी नियमसे पश्चिम बाह्य राजीको छूकर स्थित है॥ ३०॥ तमस्कायकी दिशामे पूर्व-पश्चिम आयत उसकी पक्ति (कृष्णराजी) है। एक तम पूर्व बाह्य राजीको छूकर उत्तर भागमे स्थित है॥ ३१॥ अरुणवर द्वीपकी बाह्य जगती तथा तमस्कायके मध्यवर्ती आकाशतलसे अभ्यन्तर राजी और तिमिरकायके मध्यवर्ती आकाश नियमसे सख्यातगुणा है। उसके प्रमाणसे अभ्यन्तर राजी सख्यातगुणी जानना चाहिये। अभ्यन्तर राजीसे तमस्काय अधिक है। अभ्यन्तर राजीसे बाह्य राजी भी कुछ कम है। बाह्य राजियोसे दोनो राजियोका जो अन्तराल है वह कुछ अधिक है। इस प्रकार यह अल्पबहुत्व चारो ही दिशाओमे है॥३२-३५॥ इस अन्धकारयुक्त प्रदेशमे जो अल्प ऋद्धिवाले देव विहार करते है वे दिशाओको भूलकर महर्द्धिक देवोकी महिमासे निकल पाते है॥ ३६॥ इन राजियोके अन्तरालमे बहुत प्रकारके सख्यात विमान स्थित हैं। इनमे उत्पन्न हुए देव लौकान्तिक नामसे प्रसिद्ध हैं॥ ३७॥ ससाररूप जो समुद्र है वह लोक कहलाता है। चूकि ये देव उस लोकके अन्तमे होते है– उस लोकका अन्त करके अगले भवमे मुक्ति प्राप्त करनेवाले

---

१ ब सखेज्जोयणाणि। २ ति प °ब्भतरए। ३ आ प अतोऽग्रे 'पुव्वावरआयामा तमकायदिसाए होदि तप्पती' पर्यन्त पाठस्त्रुटितोऽस्ति। ४ ति प तप्पट्ठी। ५ प विच्चार ब विव्वाल। ६ ब विव्वालायास। ७ ति प त माणादो त णेय। ८ प राजी व (ति प राजी व)। ९ आ प विच्चालो ब विव्वालो। १० ति प एदम्मि तमिस्से जे। ११ ब विव्वाले।

ते लोयंतियदेवा[1] अट्ठसु राजीसु होंति विच्चाले[2]। सारस्सदपहुदि तहा ईसाणदिसादियासु चउवीसं ॥
पुव्वुत्तरदिब्भागे वसंति सारस्सदा सुरा णिच्चं। आइच्चा पुव्वाए अणलदिसाए वि वण्हिसुरा ॥

दक्खिणदिसाए अरुणा णेरिदिभागम्मि गद्दतोया य।
पच्छिमदिसाए तुसिदा अव्वाबाहा समीरदिब्भाए ॥४१

उत्तरदिसाए रिट्ठा एमेत्ते[3] अट्ठ ताण विच्चाले। दो द्दो हवंति अण्णे देवा तेसिं इमे णामा ॥४२
सारस्सदणामाण आइच्चाण सुराण विच्चाले[4]। अणलाभा सूराभा देवा चिट्ठंति णियमेण ॥४३
चंदाभा सच्चाभा देवा आइच्चवण्हिविच्चाले[4]। सेयक्खा खेमंकरणामसुरा वण्हिअरुणमज्झम्मि ॥४४

विसकोट्ठा कामधरा[5] [4]विच्चाले अरुणगद्दतोयाण।
णिम्माणराजदिसअंतरक्खिणो गद्दतोयतुसिदाण ॥४५

तुसिदव्वाबाहाण विच्चाले अप्पसव्वरक्खसुरा। मरुदेवा वसुदेवा तह अव्वाबाहरिट्ठमज्झम्मि ॥४६
सारस्सदरिट्ठाणं विच्चाले अस्सविस्सणामसुरा। सारस्सदआइच्चा पत्तेक्कं सत्त सत्त सया[6] ॥४७

। सा आ [अ] सू आ। आ चं तू व। व श्रे क्षे अ। अ व [वृ] ता [का] ग।
ग नि दि तु। तु आ स अ। अ म व अ। अ अ वि सा।
। ७०७ । ७०७ ।

वण्ही अरुणा देवा सत्तसहस्साणि सत्त पत्तेक्कं। [7]णवजुत्तणवसहस्सा तुसिदसुरा गद्दतोया य ॥४८
। ७००७ । ७००७ । ९००९ । ९००९ ।

हैं– अतएव उनका 'लौकान्तिक' यह सार्थक नाम है ॥ ३८ ॥ वे सारस्वत आदि लौकान्तिक देव ईशान आदि दिशाओमे उन आठ राजियोके मध्यमे रहते हैं। उनके बीचमे दो दो दूसरे देव रहते है। इस प्रकार वहा चौबीस देव रहते हैं ॥ ३९ ॥ सारस्वत देव निरन्तर पूर्व-उत्तर दिशाभाग (ईशान) मे रहते हैं। आदित्य देव पूर्व दिशामे तथा वह्नि देव आग्नेय दिशामे रहते हैं। अरुण देव दक्षिण दिशामे, गर्दतोय नैर्ऋत्य भागमे, तुषित पश्चिम दिशामे, अव्याबाध वायव्य दिशामे और अरिष्ट देव उत्तर दिशामे रहते हैं। इस प्रकार ये आठ लौकान्तिक देव रहते हैं। उनके अन्तरालमे जो दो दो दूसरे देव रहते है उनके नाम ये हैं–सारस्वत और आदित्य देवोके मध्य-मे नियमसे अनलाभ और सूराभ देव रहते हैं, आदित्य और वह्नि देवोके अन्तरालमे चन्द्राभ और सत्याभ, वह्नि और अरुण देवोके अन्तरालमे श्रेय नामक (श्रेयस्कर) और क्षेमकर नामक, अरुण और गर्दतोय देवोके मध्यमे वृषकोष्ठ और कामधर, गर्दतोय और तुषित देवोके मध्यमे निर्माणराज और दिगन्तरक्षक, तुषित और अव्याबाध देवोके मध्यमे अल्परक्ष और सर्वरक्ष, अव्याबाध और अरिष्ट देवोके अन्तरालमे मरुदेव और वसुदेव, तथा सारस्वत और अरिष्ट देवोके मध्यमे अश्व और विश्व नामक देव रहते हैं [सा (सारस्वत) और आ (आदित्य) के अन्तरालवर्ती अ (अनलाभ) सू (सूर्याभ) आदिकी सदृष्टि मूलमे देखिये]। सारस्वत और आदित्य देवोमे प्रत्येक सात सौ सात (७०७) हैं ॥४०-४७॥ वह्नि और अरुण देवोमेसे प्रत्येक सात हजार सात (७००७) तथा तुषित और गर्दतोयमेसे प्रत्येक नौ हजार नौ (९००९) हैं ॥ ४८ ॥

---

१ आ ब तल्लोयतिय'। २ ब विच्वाले। ३ ति प एमेत्ते। ४ ब विच्चाले। ५ ब कामदरा। ६ ति प (८–६२४) पत्तेक्क होंति सत्तसया। ७ प णवजुदणव।

अव्वावाहारिट्ठा एक्करससहस्स एक्करससजुत्ता । अणलाभा वण्हिसमा[1] सूराभा गद्दतोयसारिच्छा
। ११०११ । ७००७ । ९००९ ।

अव्वावाहसरिच्छा[2] चंदाभसुरा हवंति सच्चाभा । अजुदं तिण्णि सहस्सा तेरसजुत्ता य संखाए ॥
। ११०११ । १३०१३ ।

पण्णरस सहस्साणि पण्णरसजुदाणि होंति सेयक्खा । खेमंकराभिहाणा सत्तरससहस्सयाणि सत्तरस
। १५०१५ । १७०१७ ।

उणवीससहस्साणि उणवीसजुदाणि होंति विसकोट्ठा । इगिवीससहस्साणि इगिवीसजुदाणि कामधरा
१९०१९ । २१०२१ ।

णिम्माणराजणामा[3] तेवीससहस्सयाणि तेवीस । पणुवीससहस्साणि पणुवीस दिगंतरक्खिणो होंति ॥
। २३०२३ । २५०२५ ।

सत्तावीससहस्सा सत्तावीसं च अप्परक्खसुरा । उणतीससहस्साणि उणतीसजुदाणि सव्वरक्खा य ॥
। २७०२७ । २९०२९ ।

एक्कत्तीससहस्सा एक्कत्तीस हवंति मरुदेवा । तेत्तीससहस्साणि तेत्तीसजुदाणि वसुणामा ॥५५
। ३१०३१ । ३३०३३ ।

पचत्तीससहस्सा पचत्तीसा हवंति अस्ससुरा । सत्तत्तीस सहस्सा सत्तत्तीस च विस्ससुरा ॥५६
। ३५०३५ । ३७०३७ ।

चत्तारि य लक्खाणि सत्तरस सहस्साणि[4] अडसयाणि पि ।
छब्भहियाणि[5] होंदि हु सव्वाण पिंडपरिसखा ॥ ५७
। ४१७८०६ ।

अव्याबाध और अरिष्ट देव ग्यारह हजार ग्यारह (११०११) है। अनलाभोकी सख्या वह्नि देवोके समान (७००७) तथा सूराभोकी सख्या गर्दतोय देवोके समान (९००९) है ॥४९॥ चन्द्राभ देव अव्याबाध देवोके समान (११०११) तथा सत्याभ देव सख्यामे तेरह हजार तेरह (१३०१३) है ॥ ५० ॥ श्रेय (या श्वेत) नामक देव पन्द्रह हजार पन्द्रह (१५०१५) और क्षेमकर नामक देव सत्तरह हजार सत्तरह (१७०१७) है ॥ ५१ ॥ वृषकोष्ठ उन्नीस हजार उन्नीस (१९०१९) और कामधर देव इक्कीस हजार इक्कीस (२१०२१) है ॥ ५२ ॥ निर्माणराज नामक देव तेईस हजार तेईस (२३०२३) और दिगन्तरक्षी पच्चीस हजार पच्चीस (२५०२५) है ॥५३॥ अल्परक्ष देव सत्ताईस हजार सत्ताईस (२७०२७) और सर्वरक्ष देव उनतीस हजार उनतीस (२९०२९) है ॥ ५४ ॥ मरुदेव इकतीस हजार इकतीस (३१०३१) और वसु नामक देव तेतीस हजार तेतीस (३३०३३) है ॥५५॥ अश्वदेव पैंतीस हजार पैंतीस (३५०३५) और विश्व देव सैंतीस हजार सैंतीस (३७०३७) हैं ॥ ५६ ॥ सब देवोकी सम्मिलित सख्या चार लाख सत्तरह हजार आठ सौ छह (४१७८०६ [४०७८०६]) है ॥ ५७ ॥

---

१ आ प वण्णिसमा । २ आ प ब अव्वाहमरिच्छा । ३ ब णिम्माणरारिणामा । ४ ति प (८-६३४) सत्त सहस्साणि । ५ आ प छव्वहियाणि ।

ईषत्प्राग्भारसंज्ञायाश्चतुरन्तविनिर्गता.। स्पृशन्त्यः कृष्णराजीना बाह्यपार्श्वानि रज्जव. ॥३२२
तिर्यग्लोके पतन्त्येताः स्वयभूरमणोदधे । असख्येयतमे भागे अभ्यन्तरतटात्परम् ॥३२३
तमस्कायस्य[1] राजेश्च[2] पार्श्वेभ्योऽप्यवलम्बका.। गत्वा चाद्यादसख्येयद्वीपवार्धीन् पतन्ति[3] च ॥

उक्त च चतुष्क त्रिलोकप्रज्ञाप्तौ [८,६५९-६६२]—

एदस्स चउदिसासु चत्तारि तमोमयाओ रज्जूओ। णिस्सरिदूण बाहिरराजीण होदि बाहिरप्पासा[4]
तच्छिविदूण तत्तो ताओ पडिदाओ चरिमउवहिम्मि। अब्भतरतीरादो सखातीदे य जोयणे य[5] धुव॥
बाहिरचउराजीण बहिरवलबो [6]पडेदि दीवम्मि। जबूदीवाहितो गतूण असखदीववारिणिहिं ॥६०
बाहिरभागाहिंतो अवलबो तिमिरकायणामस्स। जबूदीवे[हिंतो]तम्मेत्त गदुव पडेदि दीवम्मि॥६१
शुभशय्यातलेष्वेते उदयेष्विव भास्करा.। पुण्यै पूर्वार्जितैर्देवा जायन्ते गर्भवर्जिता ॥३२५
आनन्दतूर्यनादैश्च तुष्टामरबहुस्तवैः। जयशब्दरवैश्चैषा बुध्यन्ते जनन सुरा ॥ ३२६
देवा देवीसहस्राणा प्रहृष्टाननपुष्पितम्। सुरपङ्कजषण्डे स्व पश्यन्ते[तो]ऽश्नुवते रतिम् ॥ ३२७
पूर्वाप्राप्तविजानाना जायन्तेऽवधिना सह। नानाविद्यासु निष्णाता प्राज्ञाः सुप्तोत्थिता इव ॥३२८

~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~

विशेष – यहा उद्धृत गा ४८ और ५७ का तिलोयपण्णत्तीके अनुसार पाठ ग्रहण करनेपर यह लौकान्तिक देवोकी सम्मिलित सख्या घटित होती है, अन्यथा वह घटित नही होती।

ईपत्प्राग्भार नामक पृथिवीके चारो कोनोसे निकलकर कृष्णराजियोके बाह्य पार्श्व-भागोको छूनेवाली चार रज्जुए (रस्सिया) हैं ॥३२२॥ ये रस्सिया तिर्यग्लोकमे स्वयम्भूरमण समुद्रके अभ्यन्तर तटसे असख्येयतम भागमे जाकर–असख्यात योजन जाकर–पडती है ॥ ३२३ ॥ तमस्काय और राजिके पार्श्वोंका अवलम्बन करनेवाली वे रस्सिया जम्बूद्वीपसे असख्यात द्वीप-समुद्र जाकर गिरती हैं ॥ ३२४ ॥ इस विषयसे सम्बन्ध रखनेवाली चार गाथाये त्रिलोकप्रज्ञप्तिमे भी कही गई हैं —

इस ईपत्प्राग्भार क्षेत्रकी चारो दिशाओमे निकलकर वाह्य रज्जुओके वाह्य भागको छूनेवाली चार अन्धकारस्वरूप रज्जुए (रस्सिया) हैं ॥५८॥ वे उसको छू करके वहासे अन्तिम समुद्रमे अभ्यन्तर तटसे असख्यात योजन जाकर गिरी हैं ॥५९॥ वाह्य चार राजियोके वाह्य भागका अवलम्बन करनेवाला वह तमस्काय जम्बूद्वीपसे असख्यात द्वीप-समुद्र जाकर द्वीपमे गिरता है ॥ ६० ॥ तिमिरकायका अवलम्ब वाह्य भागोंसे उतने मात्र योजन जम्बूद्वीपमे जाकर द्वीपमे गिरता है ॥ ६१॥

जिस प्रकार सूर्य उदयाचलोपर उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार ये देव पूर्वोपार्जित पुण्यसे गर्भसे रहित होकर शुभ शय्यातलोके ऊपर उत्पन्न होते है ॥ ३२५ ॥ दूसरे देव इनके जन्मको आनन्द वाजोके शब्दोसे, सतुष्ट होकर देवोके द्वारा किये जानेवाले वहुत स्तवनोसे तथा 'जय'शब्दकी ध्वनियोसे जानते हैं ॥ ३२६ ॥ वे देव हजारो देवियोके प्रमुदित मुखोसे प्रफुल्लित हुए अपनेको देवोरूप कमलोके समूहमे देखकर आनन्दको प्राप्त होते है ॥३२७॥ अनेक विद्याओमे निपुण वे बुद्धिमान् देव अवधिज्ञानके साथ पूर्वमे कभी नही प्राप्त हुए इस वैभवको जानते हुए सोकर उठे

---

१ आ प तमस्कायश्च २ व 'राजेश्च' नास्ति । ३ व वार्दीन् । ४ आ व बाहिर पास । ५ व दुव । ६ ति प बहिमवलवो पदेदि ।
~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~

सुखस्पर्शसुखालोकसुगन्धिविमलोज्ज्वला । देवाना शुचयो देहा वैडूर्यमणिनिर्मलाः ॥३२९
दृष्ट्वा दिव्या विभूतिं च सर्वतश्चित्तहर्षिणीम् । प्रीतिभारसमाक्रान्ता विह्वला इव ते क्षणम् ॥३३०
प्रत्यक्षं फलमालोक्य धर्मे सवृद्धभक्तयः[१] । तैश्चोपबृहिता देवै. प्रथमं धर्ममीडते ॥३३१
स्नात्वा ह्रद प्रविश्याग्रे अभिषेकमवाप्य च । अलंकारसभां गत्वा दिव्यालंकारभूषिताः ॥३३२
व्यवसायसभा भूयो गत्वा पूजाक्रियोद्यता । नन्दासु शुभभृङ्गारान् पूरयित्वामलोदकैः ॥३३३
चलत्केतुपताकाद्याश्छत्रचामरसंवृताः । सुगन्धिसुमनोवासवर्णचूर्णविलेपनाः ॥ ३३४
कृत्वाभिषेक सपूज्य नत्वा च परमार्हतः । तत. सुदृष्टयो देवा: विषयानुपभुञ्जते ॥३३५
देवानामुदितं श्रुत्वा सुरा मिथ्यादृशोऽपि च । प्रायेण कुर्वते पूजामर्हतां सुरबोधिताः ॥३३६
दिव्याभरणदीप्ताङ्गा यथेष्टशुभविक्रिया । चित्र[त्त]नेत्रहरात्यन्तचारुरूपसमन्विताः ॥३३७
देवोपचारसिद्धाभिर्नित्ययौवनचारुभि. । प्रियाभिरतिरक्ताभिः प्राप्नुवन्ति रतिं सुरा. ॥३३८
प्रतिकारमनालोक्य स्नेहसौभाग्यसाधिकम्[२] । कृतकाचारनिर्मुक्तं शुद्धं प्रेम सुरालये ॥३३९
अन्योन्यप्रीतिसद्भाव विन्दन्तोऽवधिनाधिकम् । देवा देव्यश्च कामान्धा न विदन्ति गतं क्षणम् ॥ ३४०

हुएके समान उत्पन्न होते है ॥ ३२८ ॥ इन देवोके पवित्र शरीर सुखकारक स्पर्श, सुखोत्पादक रूप एव सुगन्ध गन्धसे सहित, निर्मल, उज्वल तथा वैडूर्य मणिके समान निर्मल होते हैं ॥३२९॥ वे देव सव ओरसे चित्तको हर्षित करनेवाली दिव्य विभूतिको देखकर प्रेमके भारसे सहित होते हुए क्षणभरके लिये विह्वल-से हो जाते हैं ॥३३०॥ वे धर्मके इस प्रत्यक्ष फलको देखकर धर्मके विषयमे वृद्धिको प्राप्त हुई भक्तिसे सयुक्त होते हुए उन देवोसे उत्साहित होकर पहिले धर्म-कार्यको करते है ॥ ३३१ ॥ वे प्रथमत सरोवरमे प्रविष्ट होकर स्नान करते है और फिर अभिषेकको प्राप्त होकर अलकारगृहमे जाते है एव वहा दिव्य अलकारोको धारण करते है। फिर व्यवसायसभामे जाकर वे पूजाकार्यमे उद्यत होते हुए नदा वापिकाओमे निर्मल जलसे उत्तम झारियोको भरते है। तपश्चात् फहराती हुई ध्वजा-पताका आदिसे सहित, छत्र व चामरोंसे व्याप्त और सुगन्धित फूलो एव उत्तम वर्णवाले चूर्णोसे लिप्त की गई जिन भगवान्‌की प्रतिमाओका अभिषेक व पूजन करके उन्हे नमस्कार करते हैं। इसके पश्चात् सम्यग्दृष्टि देव विषयोका अनुभव करते हैं ॥ ३३२-३३५ ॥ देवोके अभ्युदयको सुनकर मिथ्यादृष्टि देव भी प्राय अन्य देवोसे सम्बोधित होकर जिनपूजाको करते हैं ॥ ३३६ ॥ दिव्य अलकारोसे देदीप्यमान शरीरके धारक, इच्छित उत्तम विक्रियासे सहित और मन एव नेत्रोको आनन्द देनेवाले अतिशय सुन्दर रूपसे सम्पन्न वे देव देवोपचारसे सिद्ध, शाश्वतिक यौवनसे सुन्दर और अतिशय अनुराग रखनेवाली प्रियाओके साथ रतिको प्राप्त होते हैं ॥३३७-३३८॥ स्वर्गमे प्रतीकारको न देखकर – उसकी अपेक्षा न कर – स्नेह एव सौभाग्यसे अधिक और कृत्रिम व्यवहारसे रहित शुद्ध प्रेम है ॥३३९॥ वे देव और देविया अवधिज्ञानसे अधिक पारस्परिक प्रेमके सद्भावको जानकर काममे आसक्त

---

१ प सवृद्धचभक्तय । २ व सादिक ।

त्रिपुष्करादिभिर्वाद्यैर्गीतैश्च मधुरस्वरै. । नृत्तैश्च ललितैर्नैकै. प्रमोदजननै शुभै· ॥ ३४१
शब्दरूपरसस्पर्शान् गन्धाश्च विविधान् शुभान् । भुञ्जन्ते विविधान् भोगान् मनोज्ञान् प्रियवर्धनान्
नानाङ्गरागवासिन्यो नानाभरणभूषिता । अम्लानमाल्यधारिण्यः कृतचित्रविशेषका ॥ ३४३
ताभिर्नैकाप्सरोभिश्च क्रीडारतिपरायणा. । वेदयन्ति महत्स्वर्गे सर्वे सुरगणा· सुखम् ॥३४४
हेमरत्नमयेष्वेते पञ्चवर्णेषु वेश्मसु । पुष्पोपहाररम्येषु धूपगन्धोपवासिषु ॥ ३४५
आरामवापीगेहेषु द्वीपपर्वतसानुषु । नानाक्रीडनदेशेषु रमन्ते भोगभूमिषु ॥ ३४६
सदैवाचरितास्तेषा विषयाश्चित्तहर्षिण । जयन्त[1] इव चान्योन्य नित्य प्रीतिसुखावहा ॥३४७
महाकल्याणपूजासु यान्ति कल्पनिवासिन । प्रणमन्ति परे भक्त्या तत्रैवोज्ज्वलमौलिभि ॥३४८

जित्वेन्द्रियाणि चरितैरमलैस्तपोभि–
राक्रम्य नाकनिलयान् [2] ज्वलतोऽतिदीप्त्या ।
राजन्ति कान्तवपुषः शुभभूषणाढ्या
देवा वसन्ततिलका इव पुष्पपूर्णाः ॥ ३४९

इति लोकविभागे स्वर्गविभागो नाम दशम प्रकरणं समाप्तम् ॥ १० ॥

रहने वीते हुए कालको नही जानते है ॥ ३४० ॥ वे देव देविया तीन पुष्कर (मृदग) आदि वाजो, मधुर स्वरवाले गीतो एव आनन्दको उत्पन्न करनेवाले अनेक उत्तम नृत्योके साथ नाना प्रकारके उत्तम शव्द, रूप, रस, स्पर्श और गन्ध स्वरूप रागवर्धक अनेक मनोहर भोगोको भोगते हैं ॥ ३४१-४२ ॥ जो देविया अनेक लेपनोसे सुगन्धित, वहुत आभरणोसे विभूषित, न मुरझानेवाली मालाको धारण करनेवाली तथा की गई चित्ररचनासे सुशोभित है उन प्रिय देवियोके साथ तथा और भी अनेक अप्सराओके साथ क्रीडारतिमे लीन हुए वे सब देवसमूह स्वर्गमे महान सुखका अनुभव करते हैं ॥ ३४३-३४४ ॥ वे देव पुष्पोके उपहारसे रमणीय और धूपकी सुगन्धसे सुवासित ऐसे पाच वर्णवाले सुवर्ण एव रत्नमय प्रासादोमे, उद्यानभवनोमे, वापिकागृहोमे, द्वीपोमे, पर्वतशिखरोपर तथा अन्य भी भोगोके स्थानभूत अनेक प्रकारके क्रीडास्थानोमे रमण करते हैं ॥ ३४५-३४६ ॥ उनके मनको हर्षित करनेवाले ऐसे निरन्तर आचरित विषय-भोग सदा ही प्रेम एव सुखको उत्पन्न करते हुए मानो एक दूसरेके ऊपर विजय प्राप्त करते हैं ॥ ३४७ ॥ कल्पवासी देव तीर्थंकरोके कल्याणमहोत्सवोमे जाते है। परन्तु आगेके अहमिन्द्र देव वही स्थित रहकर भक्तिसे उज्ज्वल मस्तकोको झुकाकर प्रणाम करते हैं ॥ ३४८ ॥ इन्द्रियोको जीतकर पूर्वमे अनुष्ठित निर्मल तपोसे स्वर्गविमानोको प्राप्त करके अतिशय कान्तिसे देदीप्यमान वे देव सुन्दर शरीरसे युक्त होकर उत्तम भूषणोको धारण करते हुए पुष्पोसे परिपूर्ण वसन्त-कालीन तिलक वृक्षोके समान सुशोभित होते है ॥ ३४९ ॥

इस प्रकार लोकविभागमे स्वर्गविभाग नामक दसवा प्रकरण समाप्त हुआ ॥ १० ॥

---

१ प जायन्त । २ प ज्वलितो ।

[एकादशो विभागः]

सिद्धानां भाषितं स्थानमूर्ध्वलोकस्य मूर्धनि । ईषत्प्राग्भारसंज्ञा तु पृथिवी पाण्डराष्टमी ॥ १
अष्टयोजनबाहल्या मध्येऽन्ते पत्रवत्तनुः । मानुषक्षेत्रविस्तीर्णा श्वेतच्छत्राकृतिश्च सा ॥ २
विस्तारो मानुषक्षेत्रे परिधिश्चापि वर्णितः । मध्यात्प्रभृतिबाहल्यं क्रमशो हीनमिष्यते ॥ ३

। ४५००००० । १४२३०२४९ ।

उक्तं च षट्कं त्रिलोकप्रज्ञप्तौ [८, ६५२-५४; ६५६-५८]

सव्वत्थसिद्धिइंदयकेदणदंडादु उवरि गंतूण । बारसजोयणमेत्तं अट्ठमिया चिट्ठदे पुढवी ॥ १
पुव्वावरेण तीए उवरिं हेट्ठिमतडेसु[1] पत्तेक्कं । वासो हवेदि एक्को रज्जू थोवेण[2] परिहीणा ॥२
उत्तरदक्खिणभागे दीहं किंचूणसत्तरज्जूओ । वेत्तासणसंठाणा सा पुढवी अट्ठजोयणा बहला ॥३
एदाए बहुमज्झे खेत्तं णामेण ईसपब्भारं । अज्जुणसुवण्णसरिसं णाणारयणेहिं परिपुण्णं ॥ ४
उत्ताणधवलछत्तोवमाणसंठाणसुंदरं एदं । पंचत्तालं जोयणलक्खाणि वाससंजुत्तं ॥ ५

। ४५००००० ।

तम्मज्झबहलमट्ठं[3] जोयणया [4]अंगुलं पि अंतम्मि ।
अट्ठमभूमज्झगदो तप्परिही मणुवखेत्तपरिहिसमा ॥ ६



सिद्धोंका स्थान ऊर्ध्वलोकके शिखरपर कहा गया है। वहां ईषत्प्राग्भार नामकी धवल आठवीं पृथिवी है। वह मध्यमें आठ योजन बाहल्यसे सहित, अन्तमें पत्रके समान कृश, मनुष्य लोकके बराबर विस्तीर्ण और धवल छत्रके समान आकारवाली है ॥ १-२ ॥ मनुष्यलोकका जो विस्तार (४५००००० यो.) और परिधि (१४२३०२४९ यो.) कही गई है वही विस्तार और परिधि उक्त पृथिवीकी भी निर्दिष्ट की गई है। उसका बाहल्य मध्य भागसे लेकर क्रमसे उत्तरोत्तर हीन माना जाता है ॥ ३ ॥ त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें इस विषयसे सम्बद्ध छह गाथायें कही गई हैं —

सर्वार्थसिद्धि इन्द्रकके ध्वजदण्डसे बारह योजन मात्र ऊपर जाकर आठवीं पृथिवी स्थित है ॥ १ ॥ उसका पूर्वापर विस्तार उपरिम और अधस्तन तटोंमेंसे प्रत्येकमें कुछ कम एक राजु मात्र है ॥ २ ॥ उसकी लंबाई उत्तर-दक्षिण भागमें कुछ कम सात राजु प्रमाण है। वेत्रासनके समान आकारवाली वह पृथिवी आठ योजन मोटी है ॥ ३ ॥ इसके ठीक बीचमें ईषत्प्राग्भार नामक क्षेत्र है जो चांदी एवं सुवर्णके सदृश तथा अनेक रत्नोंसे परिपूर्ण है ॥ ४॥ यह क्षेत्र ऊपर ताने हुए धवल छत्रके समान आकारसे सुन्दर और पैंतालीस लाख (४५०००००) योजन प्रमाण विस्तारसे संयुक्त है ॥ ५ ॥ उसका बाहल्य मध्यमें आठ योजन और अन्तमें अंगुल मात्र ही है। आठवीं पृथिवीके मध्यमें उसकी परिधि मनुष्यलोककी परिधिके समान है ॥ ६ ॥

१ प हेट्ठि तणेसु ब हेट्ठिठतडेसु (ति प उवरिमहेट्ठिमतलेसु)। २ ति प रूवेण। ३ आ प वहुलमट्ठ। ४ ब अगल।

सर्वार्थाद् द्वादशोत्पत्य योजनानि स्थिता शुभा । सा त्वर्ज[र्जु]नमयी तस्या ऊर्ध्वं च वलयत्रयम् ॥४
देशोन योजन तच्च[1] पूर्वमेव तु भाषितम् । [2]तृतीयतनुवातान्ते सर्वे[3] सिद्धा प्रतिष्ठिता ॥५
को। घनो २ । घना १ । तनु १ ।
गव्यूतेस्तत्र चोर्ध्वायास्तुर्ये भागे व्यवस्थिता । अन्त्यकायप्रमाणात्तु किंचित्संकुचितात्मका. ॥ ६
धनु शतानि पञ्चैव देशोनानीति भाषितम् । सिद्धावगाहनक्षेत्रबाहल्यमृषिपुगवै ॥ ७
। ५०० ।
अवगाढश्च यत्रैकस्तत्रानेका समागता । धर्मास्तिकायतन्मात्र गत्वा न परतो गता ॥ ८
सिद्धा शुद्धा विमुक्ताश्च विभवा अजरामरा. । असगास्तीर्णसंसारा पारगा बन्धनि सृता ॥ ९
अलेपा[ ] कर्मनिर्मुक्ता अरजस्का अमूर्तय । शान्ता सुनिर्वृता. पूता परमा परमेष्ठिन. ॥ १०
अक्षया अव्ययानन्ता सर्वज्ञा सर्वदर्शिन । निरिन्द्रिया निराबाधा कृतकृत्याश्च ते स्मृता ॥ ११
सर्वदा सर्वजीवाना गतिमागतिमेव च । च्यवन चोपपात[4] च बन्धमोक्षौ च कर्मणाम् ॥ १२
भक्तमृद्धि[5] कृत चापि चिन्तितं सर्वभावि च । जानाना पर्ययै सर्वे सुखायन्तेऽतिनिर्वृत्ता ॥ १३
त्रिधा भिन्न जगच्चेद निरयान् द्वीपसागरान् । [6]धरानद्यद्रितीर्थानि विमानभवनानि च ॥ १४

वह रजतमयी उत्तम पृथिवी सर्वार्थसिद्धि इन्द्रकसे बारह योजन ऊपर जाकर स्थित है। उसके ऊपर तीन वातवलय हैं ॥ ४ ॥ उन तीनो वातवलयोका विस्तार कुछ कम एक योजन मात्र है जो पूर्वमे कहा ही जा चुका है। तीसरे तनुवातवलयके अन्तमे सब सिद्ध जीव स्थित हैं। घनोदधि २ को , घन १ को., तनु १ को [४२५ धनुष कम] ॥५॥ वहा उपरिम गव्यूतिके चतुर्थ भागमे स्थित वे सिद्ध अन्तिम शरीरके प्रमाणसे कुछ सकुचित (हीन) आत्मप्रदेशोवाले हैं ॥ ६ ॥ ऋषियोमे श्रेष्ठ गणधरादिकोने सिद्धोके अवगाहनाक्षेत्रके बाहल्यका प्रमाण कुछ कम पाच सौ (५००) धनुष मात्र कहा है ॥ ७ ॥ जहापर एक सिद्ध जीवका अवगाह है वहींपर अनेक सिद्ध जीव स्थित हैं। वे सिद्ध जीव जहा तक धर्मास्तिकाय है वही तक जाकर उसके आगे नही गये हैं ॥ ८ ॥

वे सिद्ध जीव शुद्ध, कर्ममलसे रहित, जन्मसे रहित, जरा और मरणसे रहित, परिग्रहसे रहित, ससाररूप समुद्रको तैरकर उसके पारको प्राप्त हुए, बन्धसे रहित, निर्लेप, कर्मबन्धसे मुक्तिको प्राप्त हुए, ज्ञानावरणादिरूप कर्मरजसे रहित, अमूर्तिक, शान्त, अतिशय सुखी, पवित्र, उत्कृष्ट, उत्तम पदमे स्थित, अविनश्वर, व्ययसे रहित, अन्तसे रहित, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, इन्द्रियोसे रहित, बाधासे रहित और कृतकृत्य माने गये है ॥ ९-११ ॥ उक्त सिद्ध जीव निरन्तर सब जीवोकी गति-आगति, मरण, उत्पत्ति, कर्मोंके बन्ध-मोक्ष, भक्त, ऋद्धि, कृत, चिन्तित एव भविष्यमे होनेवाले सबको समस्त पर्यायोके साथ जानते हुए अतिशय निवृत्तिको प्राप्त होकर सुखका अनुभव करते हैं ॥ १२-१३ ॥

नरक, द्वीप, समुद्र, पृथिवी, नदी एव तीर्थ, और विमानभवन इनका आश्रय करके यह

१ ब तस्य । २ प तृतीया । ३ ब सर्वे । ४ ब चोपपात्त । ५ प भक्तमृद्धि ब भुक्त मृद्धि । ६ ब धरानध्यद्रि ।

सिद्धो विचित्रचारित्रः षड्द्रव्यनिचितं बृहत् । [1]आलेख्यपटवत्पश्यन्न रज्यति न रुष्यति ॥ १५
मत्तः पिशाचाविष्टो वा तथा पित्तविमोहितः । तैर्विमुक्तः पुनर्दोषैः स्वस्थो यद्वत्सुखायते ॥ १६
रागद्वेषवशातीतः प्रसन्नोदकवच्छुचिः । कामक्रोधविनिर्मुक्त सिद्धस्तद्वत्सुखायते ॥ १७
विषयेषु रतिं मूढा मन्यन्ते प्राणिना[न] सुखम् । न तत्सुख सुखं ज्ञानात् प्राज्ञानां तत्त्वदर्शिनाम्॥
[2]अमेध्यरतयो दृष्टा कृमिशूकरकुक्कुराः[3] । तदप्येषां सुखं प्राप्तं रतिं सुखमितीच्छताम् ॥ १९
कष्टे रत्यरती जन्तून् बाधेते जन्मनि स्थितान् । प्रियाप्रिये विशीले च दरिद्र[4] वनिते यथा ॥२०
दु खेन महता भग्नो रमतेऽज्ञस्तथाविधे[5] । द्विषताभिद्रुतो यद्वत्सदोषा सरित व्रजेत् ॥ २१
भारभग्ने स्ववामांशे दक्षिणे प्रक्षिपेद्यथा । तथा खेदप्रतीकारे रममाण. सुखायते ॥ २२
गतितृष्णाक्षुधाक्रान्तो[6] विश्रमोदकभोजनैः । प्रतीकारात्सुखं वेत्ति श्रमाभावान्महत्सुखम् ॥ २३
कल्हारकुमुदाम्भोजकुसुमैः परिकर्मितम् । चन्दनोशीरशीताम्बुव्यजनानिलवारितम् ॥ २४
ज्वरदाहपरिक्लिष्ट तृष्णार्त प्रेक्ष्य[7] मानुषम् । ज्वराय[8] स्पृहयेत्कश्चित्परिकर्माभिलाषतः ॥ २५

जगत् तीन प्रकारका है ॥ १४ ॥ विचित्र चारित्रका धारक सिद्ध जीव छह द्रव्योसे व्याप्त विस्तृत लोकको चित्रपटके समान देखता हुआ न तो उससे राग करता है और न द्वेष भी करता है ॥ १५ ॥ जिस प्रकार उन्मत्त, पिशाचसे पीडित और पित्तसे विमूढ हुआ प्राणी उन उन दोषोसे रहित होकर स्वस्थ होता हुआ सुखको प्राप्त होता है उसी प्रकार राग-द्वेषकी पराधीनतासे रहित, प्रसन्न जलके समान निर्मल और काम-क्रोधसे मुक्त हुआ सिद्ध जीव भी सुखको प्राप्त होता है ॥ १६-१७ ॥ मूर्ख प्राणी विषयोमे होनेवाले अनुरागको सुख मानते है। परन्तु वास्तवमे वह सुख नही है । सच्चा सुख तो वस्तुस्वरूपके जानकार विद्वान् जनोको तत्त्वज्ञानसे प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ कृमि (लट), शूकर और कुत्ता ये प्राणी अपवित्र वस्तुमे अनुराग करनेवाले देखे गये है। फिर भी रतिको सुख माननेवाले इनको उसीमे सुख प्राप्त होता है १९ ॥ जिस प्रकार विरुद्ध स्वभाववाली दो प्रिय और अप्रिय स्त्रिया दरिद्र प्राणीको वाधा पहुचाती है उसी प्रकार कष्टकारक रति और अरति ये दोनो भी जन्म-मरणरूप ससारमे स्थित प्राणियोको बाधा पहुचाती है ॥ २० ॥ जिम प्रकार शत्रुसे पीडित मनुष्य दोषयुक्त नदीको प्राप्त होता है उसी प्रकार महान् दुखसे दुखी हुआ अज्ञानी प्राणी भी उक्त प्रकारके विषयजन्य सुखमे रमता है ॥ २१ ॥ जिस प्रकार अपने वाम भागके भारसे पीडित होनेपर मनुष्य उस भारको दक्षिण भागमे रखकर सुखका अनुभव करता है उसी प्रकार कामादिवेदनाजन्य खेदके प्रतीकारमे आनन्द माननेवाला प्राणी भी उसमे सुख मानता है ॥ २२ ॥ गमन, प्यास और भूखसे पीडित प्राणी विश्राम, जल और भोजनके द्वारा क्रमसे उन उन पीडाओका प्रतिकार करके सुख मानता है । वास्तविक महान् सुख तो श्रमके अभावसे – उक्त गति आदिकी बाधाओके सर्वथा नष्ट होनेपर – ही होता है ॥२३॥ कल्हार, कुमुद और कमल पुष्पोसे शरीरसस्कारको प्राप्त तथा चन्दन, खश, शीतल जल और वीजनाकी वायुसे निवारित ऐसे ज्वरके दाहसे सन्तप्त एव प्याससे पीडित मनुष्यको देखकर उक्त शरीरसस्कारकी इच्छासे क्या कोई ज्वरकी अभिलाषा करता है ? नही करता

१ ब आलेप्य° । २ ब अमेद्य° । ३ ब कुक्कुटा । ४ आ दरिद प ददिद । ५ प तथाविधे ब तथाविदे । ६ ब श्रान्तो । ७ प प्रेक्ष्य । ८ आ प ज्वरायु ।

प्रतीकारसुखं[1] जानस्तथा यत्र क्वचिद्रतिम् । निर्व्याधिं स्वस्थमासीनं स मन्ये दुःखितं वदेत् ॥ २६
[2]कीटिकादंशदुःखज्ञः अनुमानेन बुध्यते । शार्दूलबलवद्दंष्ट्राक्षोदने वेदनामुरुम् ॥ २७
अल्पपापक्षयादाप्तं सुखं ज्ञात्वा सचेतनः । सर्वकर्मक्षयोत्पन्नं सुखं सिद्धस्य बुध्यते ॥ २८
व्याधिभिर्युगपत्सर्वैः सम्भवद्भिर्विबाधितः[3] । एकैकस्य शमे शान्तिं सर्वेषां च यथाप्नुयात् ॥ २९
एकैकस्येह पापस्य नाशे चेदश्नुते सुखम् । [4]दुष्कृतं निखिलं दग्ध्वा सुखी सिद्धो न किं भवेत्॥३०
पराराधनदैन्योनः काङ्क्षा-कम्पन-निःसृतः । [5]लब्धनाशभयातीतो गतो हीनावमानतः ॥ ३१
अज्ञानतिमिरापूर्णां पापकर्मबृहद्गुहाम् । चिरमध्युष्य निष्क्रान्तो ज्ञानं सकलमाप्तवान् ॥ ३२
लभते यत्सुखं ज्ञानात् सिद्धस्त्रैकाल्यतत्त्ववित् । उपमा तस्य सौख्यस्य मृग्यमाणा न दृश्यते ॥ ३३
श्लोकमेकं विजानानः शास्त्रं ग्रन्थार्थतोऽपि च । ह्लादते मानुषस्तीव्रं किं पुनः सर्वभाववित् ॥ ३४
नारकाणां तिरश्चां च मानुषाणां[6] च यद्विधाः[7] । शारीरा मानसा बाधास्ताश्चिरं प्राप्य खिन्नवान्

॥ २४-२५ ॥ जो प्राणी जिस किसी भी इन्द्रियविषयमे अनुराग करता हुआ वेदनाके प्रतिकारमे सुखकी कल्पना करता है वह व्याधिसे रहित होकर स्वस्थ बैठे हुए मनुष्यको दुखित कहता है, ऐसा मैं समझता हू ॥ २६ ॥ जिस प्रकार चीटी आदि क्षुद्र कीडेके काटनेसे उत्पन्न हुए दुखका अनुभव करनेवाला मनुष्य सिहकी बलिष्ठ दाढोके द्वारा पीसे जानेपर — उसके द्वारा खाये जानेपर — होनेवाली महती पीडाको अनुमानसे जानता है उसी प्रकार थोडे-से पापके क्षयसे प्राप्त हुए सुखका अनुभव कर सचेतन प्राणी समस्त कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न होनेवाले मुक्त जीवके सुखको भी अनुमानसे जान सकता है ॥ २७-२८ ॥ जिस प्रकार एक साथ उत्पन्न हुई समस्त व्याधियोसे पीडित प्राणी उनमे एक एकका उपशम होनेपर तथा सबका ही उपशम होनेपर तरतमरूप शान्तिको प्राप्त होता है उसी प्रकार यहा (ससारमे) जब एक एक पापका नाश होनेपर प्राणी सुखको प्राप्त होता है तब क्या समस्त पापको नष्ट करके मुक्तिको प्राप्त हुआ सिद्ध जीव सुखी नही होगा ? अवश्य होगा ॥ २९-३० ॥ वह सिद्ध जीव दूसरोकी सेवासे उत्पन्न होनेवाली दीनतासे रहित, विषयोकी इच्छासे दूर, प्राप्त हुई अभीष्ट सामग्रीके विनाशके भयसे रहित, तथा नीच जनके द्वारा किये जानेवाले अपमानसे भी रहित होता है ॥३१॥ वह अज्ञानरूप अन्धकारसे परिपूर्ण ऐसी पापरूप विशाल गुफामे चिर काल तक रहकर उससे बाहिर निकलता हुआ पूर्ण ज्ञान (केवलज्ञान) को प्राप्त कर चुका है ॥ ३२ ॥

त्रिकालवर्ती सब तत्त्वोको जाननेवाला सिद्ध जीव ज्ञानसे जिस सुखको प्राप्त करता है उस सुखके लिये बहुत खोजनेपर भी कोई उपमा नही दिखती, अर्थात् वह अनुपम है ॥ ३३॥ जब एक ही श्लोकको तथा ग्रन्थसे और अर्थसे किसी एक पूर्ण शास्त्रको भी जाननेवाला मनुष्य अतिशय आनन्दको प्राप्त होता है तब भला जो सब ही पदार्थोंको जानता है उसके विषयमे क्या कहा जाय ? अर्थात् वह तो नियमसे अतिशय सुखी होगा ही ॥३४॥ ससारी जीव नारकियो, तिर्यंचो और मनुष्योके जितने प्रकारकी शारीरिक एव मानसिक बाधाये हो सकती हैं उन सबको

१ प सुस । २ प कीटका । ३ ब विभाधित । ४ आ प दुकृत । ५ आ लब्द° । ६ आ प मानुपा । ७ ब यद्विदा ।

सर्वतो रहितस्ताभिर्मुक्तः संसारभारकात् । स्वाधीनश्च प्रसन्नश्च सिद्धः सुष्ठु सुखायते ॥ ३६
दुःखैर्नानाविधैः क्षुण्णो जीव. कालमनादिकम् । तेभ्योऽतीतो[1] भृशं शान्तो मग्नो ननु सुखार्णवे ॥
मनोज्ञैर्विषयैस्तृप्तः सर्ववस्तुषु निस्पृहः । प्रसन्नः स्वस्थमासीनः सुखी चेन्निर्वृतस्तथा[2] ॥ ३८
लक्षणाङ्कितदेहानां[3] दर्पणोत्थितबिंबवत् । ज्ञानदर्शनतत्त्वज्ञः शुद्धात्मा सिद्ध इष्यते ॥ ३९
क्षायिकज्ञानसम्यक्त्वं वीर्यदर्शनसिद्धता । निर्द्वन्द्व[4]च सुखं तस्य उक्तान्यात्यन्तिकानि हि[5] ॥ ४०
अवेदश्च[श्चा]कषायश्च निष्क्रियो मूर्तिवर्जितः । [6]अलेपश्चाप्यकर्ता च सिद्धः शाश्वत[7] इष्यते ॥
अक्षयानघमत्यन्तममेयानुपमं शिवम् । ऐकान्तिकमतृष्णं च अव्याबाधं महासुखम् ॥ ४२
त्रैकाल्ये त्रिषु लोकेषु पिण्डितात्प्राणिनां सुखात् । अनन्तगुणितं प्राहुः सिद्धक्षणसुखं बुधाः ॥ ४३
तिर्यग्लोकप्रमाणैका रज्जुर्मीयेत चेत्तया । चतुर्दशगुणो लोको भवत्यायाममानतः ॥ ४४
मेरुमूलादध. सप्त ऊर्ध्वं तस्माच्च रज्जव. । सप्तरज्जुप्रमाणैषा अधोलोकान्तरुन्द्रता ॥ ४५
। ७ । ७ ।
ऐशानाद्रज्जुरध्यर्धा(?)माहेन्द्रात्सार्धकं द्वयम् । सहस्राराच्च पञ्चैव अच्युतात्षडुदाहृताः ॥ ४६
। $\frac{3}{2}$ । $\frac{5}{2}$ । ५ ।

~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~

चिर कालसे प्राप्त करके खेदको प्राप्त हुआ है । ससारके भारसे मुक्त हुआ सिद्ध जीव उपर्युक्त बाधाओसे सर्वथा रहित होकर स्वाधीन एव प्रसन्न होता हुआ अतिशय सुखी होता है ॥३५-३६॥ नाना प्रकारके दु.खो द्वारा अनादि कालसे खेदको प्राप्त हुआ ससारी जीव उक्त दुःखोसे रहित होकर अतिशय शान्त होता हुआ सुखरूप समुद्रमे मग्न हो जाता है ॥ ३७ ॥ जो मनोज्ञ विषयोसे सतुष्ट हो चुका है, सब वस्तुओके विषयमे नि स्पृह है, प्रसन्न है, और स्वस्थ होकर स्थित है वह यदि सुखी है तो जो मुक्तिको प्राप्त हो चुका है वह क्यो न सुखी होगा ? वह तो सुखी होगा ही ॥ ३८ ॥ लक्षणोसे अकित शरीरवालोका जिस प्रकार दर्पणमे प्रतिबिम्ब पडता है उसी प्रकारके आकारमे स्थित जो शुद्ध आत्मा ज्ञान और दर्शनके द्वारा यथार्थ वस्तुस्वरूपको जानता है वह सिद्ध माना जाता है ॥३९॥ उक्त सिद्ध जीवके क्षायिक ज्ञान, क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक वीर्य, क्षायिक दर्शन, सिद्धत्व और निराकुल सुख ये सब गुण आत्यन्तिक (अविनश्वर) कहे गये है ॥ ४० ॥ जो वेदसे रहित, कषायसे विमुक्त, निष्क्रिय, अमूर्तिक, निर्लेप और अकर्ता है वह शाश्वत सिद्ध माना जाता है ॥ ४१ ॥ मुक्तिका महान् सुख अविनश्वर, निष्पाप, अनन्त, अपरिमित, अनुपम, कल्याणकारक, ऐकान्तिक और तृष्णा एव बाधासे रहित है ॥ ४२ ॥ विद्वान् पुरुष तीनो काल और तीनो लोकोमे स्थित प्राणियोके समस्त सुखकी अपेक्षा सिद्धोके क्षणभरके भी सुखको अनन्तगुणा बतलाते है ॥४३॥

एक राजु तिर्यग्लोक (मध्यलोक) प्रमाण है । उस राजुसे यदि लोकको मापा जाय तो वह समस्त लोक आयामप्रमाणमे उस राजुसे चौदहगुणा होगा ॥ ४४ ॥ मेरुतलसे नीचे सात (७) और उससे ऊपर भी सात (७) ही राजु है । यह अधोलोकके अन्तका विस्तार सात राजु प्रमाण है ॥ ४५ ॥ ऐशान कल्प तक डेढ राजु, ($\frac{3}{2}$) माहेन्द्र कल्प तक अढाई ($\frac{5}{2}$) राजु, सहस्रार कल्प तक पाच (५) राजु, अच्युत कल्प तक छह (६) राजु और लोकके अन्त तक सात (७) राजु

१ प °तीता । २ आ चेन्निवृत° प चेन्निनृत° । ३ प द्रलक्षिणाद्किंत° । ४ प निद्वद्व । ५ प ह । ६ प अलेप्य° । ७ शाश्वत् ।
~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~

आ लोकान्तात्तत सप्त एव ताः सप्तरज्जव. । ऊर्ध्वं सख्यगुणो मध्यादधोलोकोऽधिकस्तत ॥४७
चतुर्थ्या समविस्तारो ब्रह्मलोकश्च भाषितः । प्रथमापृथिवीकल्पौ आद्यौ चानुत्तराण्यपि ॥ ४८
द्वितीयापृथिवीकल्पौ द्वितीयौ युगपत् स्थितौ । ग्रैवेयाणि तथैव स्यु॰ शेषाणामपि योजयेत् ॥ ४९

उक्तं च त्रयम् [कत्तिगेयाणु ११८-१९]–

सत्तेक्क पच एक्क य मूले मज्झे तहेव बम्हते । लोयते रज्जूओ पुव्वावरदो य वित्थारो ॥ ७

। ७ । १ । ५ । १ ।

उत्तरदक्खिणदो पुण सत्त वि रज्जू हवेइ सव्वत्थ । उड्ढो चोद्दस रज्जू सत्त वि रज्जू पुणो[1] लोओ

[त्रि. सा ४५८]—

मेरुतलादु दिवड्ढ दिवड्ढ दलछक्क एक्करज्जुम्मि । कप्पाणमट्ठजुगला गेवेज्जादी य होंति कमे।

। ३/२ । ३/२ । १/२ । १/२ । १/२ । १/२ । १/२ । १/२ ।

[2]युक्त॰ प्राणिदयागुणेन विमलैः सत्यादिभिश्च व्रतैः
मिथ्यादृष्टिकषायनिर्जयशुचिर्जित्वेन्द्रियाणां वशम् ।
दग्ध्वा दीप्ततपोऽग्निना विरचित कर्मापि सर्वं मुनिः
सिद्धिं याति विहाय जन्मगहन शार्दूलविक्रीडितम् ॥ ५०

इस प्रकार ऊर्ध्वलोककी ऊचाईमे वे सात (७) राजु कही गई हैं । इसी प्रकार मेरुतलसे नीचे लोकके अन्त तक भी सात ही राजु कही गई है । मध्यलोकसे ऊर्ध्वलोक सख्यातगुणा तथा अधो-लोक उससे (ऊर्ध्वलोकसे) अधिक है ॥ ४६-४७ ॥ ब्रह्मलोकका विस्तार चतुर्थ पृथिवीके वरा-वर कहा गया है । आदिके प्रथम दो कल्प और अनुत्तर विमान भी प्रथम पृथिवीके वरावर विस्तृत है ॥ ४८ ॥ युगपत् स्थित आगेके दो कल्प और ग्रैवेयक द्वितीय पृथिवीके समान विस्तारवाले है । इसी प्रकार वह विस्तारयोजना शेष कल्पोके भी करना चाहिये ॥ ४९ ॥ इस विषयमे निम्न तीन गाथाये कही गई है—

लोकका पूर्व-पश्चिम विस्तार मूलमे सात (७), मध्यमे एक (१), ब्रह्म कल्पके अन्तमे पाच (५) और लोकान्तमे एक (१) राजु मात्र है ॥ ७ ॥ उसका उत्तर-दक्षिण विस्तार सर्वत्र ही सात राजु है । ऊचा वह चौदह राजु है । अधोलोक और ऊर्ध्वलोक सात सात राजु ऊचे है ॥ ८ ॥ मेरुके तलभागसे डेढ (३/२), फिर डेढ (३/२), आधे आधे छह (१/२, १/२, १/२, १/२, १/२, १/२) और एक (१) इस प्रकार क्रमसे इतने राजुओमे आठ कल्पयुगल और ग्रैवेयकादि स्थित हैं ॥९॥

जीवदया गुणसे सहित, सत्य आदि निर्मल व्रतोसे सम्पन्न और मिथ्यात्व एव कषायोको पूर्णतया जीत लेनेसे पवित्रताको प्राप्त हुआ मुनि इन्द्रियोको जीतकर तथा दीप्ततपरूप अग्नि-के द्वारा चिरसचित सब कर्मको जलाकर सिहकी क्रीडाके समान—सिंह जैसे पराक्रमके द्वारा—भयानक ससारको छोडकर सिद्धिको प्राप्त हो जाता है ॥ ५० ॥

१ व घणो । २ प युक्ता ।

भव्येभ्यः सुरमानुषोरुसदसि श्रीवर्धमानार्हता
यत्प्रोक्तं जगतो विधानमखिल ज्ञात[1]सुधर्मादिभिः ।
आचार्यावलिकागतं विरचितं तत्सिंहसूरर्षिणा
भाषायाः परिवर्तनेन निपुणैः संमान्यतां साधुभिः ॥ ५१

वैश्वे स्थिते रविसुते[2] वृषभे च जीवे
राजोत्तरेषु सितपक्षमुपेत्य चन्द्रे ।
ग्रामे च पाटलिकनामनि पाणराष्ट्रे
शास्त्र पुरा लिखितवान् मुनिसर्वनन्दी ॥ ५२

संवत्सरे तु द्वाविंशे काञ्चीशः सिंहवर्मण.[3] । अशीत्यग्रे शकाब्दाना सिद्धमेतच्छतत्रये ॥ ५३
। ३८० ।

पञ्चादश शतान्याहु· षट्त्रिंशदधिकानि वै । शास्त्रस्य संग्रहस्त्वेद(?)छन्दसानुष्टुभेन च ॥ ५४

इति लोकविभागे मोक्षविभागो नामैकादश प्रकरण समाप्तम् ॥११ ॥

देवो और मनुष्योकी महती सभा (समवसरण) मे श्री वर्धमान जिनेन्द्रने भव्य जीवोके लिये जिस समस्त लोकके विधानका व्याख्यान किया था तथा उनसे सुधर्म आदि गणधरोने जिसे ज्ञात किया था, आचार्यपरम्परासे प्राप्त हुए उसी लोकके विधानकी रचना सिंहसूर ऋषिने भाषाका परिवर्तन मात्र करके की है । विद्वान् साधु उसका सम्मान करे ॥ ५१ ॥ जब शनिश्चर उत्तराषाढा नक्षत्रके ऊपर, बृहस्पति वृषराशिके ऊपर तथा चन्द्रमा शुक्ल पक्षका आश्रय पाकर उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रके ऊपर स्थित था.तब पाणराष्ट्रके भीतर पाटलिक नामके ग्राममे पूर्वमे सर्वनन्दी मुनिने शास्त्रको लिखा था ॥ ५२ ॥ यह कार्य काची नगरीके अधिपति सिंहवर्माके २२वे सवत्सर तथा शक सवत् तीन सौ अस्सी (३८०) मे पूर्ण हुआ था ॥५३॥ यह शास्त्रका सग्रह अनुष्टुप् छन्दसे पन्द्रह सौ छत्तीस(१५३६)श्लोक प्रमाण है ॥५४॥

इस प्रकार लोकविभागमे मोक्षविभाग नामका यह ग्यारहवा प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ११ ॥

१ प ज्ञान । २ प रवित्सुते । ३ प वर्मणा ।

१. श्लोकानुक्रमणिका

अ

ध

न

२. उद्धृत-पद्यानुक्रमणिका

पद्य	पृष्ठ	किस ग्रन्थसे
अदृष्टपूर्वौ तौ दृष्ट्वा	८७	आ पु ३-६९
अब्भतरराजीदो	२१३	ति प ८-६११
अरुणवरदीववाहिर-	२१२	ति प ८-५९७
अरुणवरदीववाहिर-	२१३	ति प ८-६०९
अव्वावाहसरिच्छा	२१५	ति प ८-६२७
अव्वावाहारिट्ठा	२१४	ति प ८-६२६
असुरचउक्के सेसे	१४२	त्रि सा २४१
अहवा ससहरविंव	१२५	ति प ७-२१५
आउपरिवारवड्ढी	१४२	त्रि सा २४२
आदिमचउकप्पेसु	२१२	ति प ८-५९९
आदी अतविसेसे	१५७	त्रि सा २००
इदि एक्केक्ककलाए	१२४	ति प ७-२१२
इदयसेढीवद्धय-	१५३	त्रि सा १६८
इदा रायसरिच्छा	१३७	ति प ३-६५
उच्छेहजोयणण	४४	ति प ५-१८१
उडुणामे पत्तेक्क	१७७	ति प ८-८३
उडुणामे सेडिगदा	१७७	ति प ८-८४
उणवीससहस्साणि	२१५	ति प ८-६२९
उत्तरदक्खिणदीहा	२१३	ति प ८-६०५
उत्तरदक्खिणदो पुण	२२४	कत्तिगेया २१९
उत्तरदविखणभागे	२१९	ति प ८-६५४
उत्तरदिसाए रिट्ठा	२१४	ति प ८-६१९
उत्ताणधवलछत्तो	२१९	ति प ८-६५७
उस्सप्पिणीय विदिए	१०१	त्रि सा ८७१
एकोरुगलगुलिगा	५६	ति प ४-२४८४
एक्कत्तीससहस्सा	२१५	ति प ८-६३२
एक्कदुगसत्तएक्के	२१२	ति प ८-५९८
एक्कसय पणवण्णा	५६	ति प ४-२४८२
एक्क कोस गाढो	३३	ति प ४-१९५०
एक्केक्ककिण्णराई	२१२	ति प ८-६०३
एक्केक्कस्स दहस्स य	१८	ति प ४-२०९४
एक्केक्कंसि इदे	१३७	ति प ३-६३
एतौ तौ प्रतिदृश्येते	८७	आ पु ३-७०
एदम्मि तम्मि देसे	२१३	ति प ८-६१३
एदस्स चउदिसासु	२१६	ति प ८-६५९
एदाए वहुमज्झे खेत्त	२१९	ति प ८-६५६
एदाण देवाण	५३	ति प ४-२४७०
ककुभ प्रति मूर्धस्थ-	१४३	[ ]
कल्पानोकहवीर्याणा	८७	आ पु ३-५६
किंणरकिंपुरिसा य महो-	१६९	त्रि सा २५१
कूडाण उवरिभागे	१६६	ति प. ६-१२
कूडुवरिं जिणगेहा	१३६	[ ]
कोसेक्कसमुत्तुगा	६७	ज प ११-५४
गणियामहत्तरीण	२०७	ति प. ८-४३५
गगासिंधुणदीण	९९	ति. प ४-१५४७
चत्तारि चउदिसासु	५६	ति प ४-२४७९
चत्तारि य लक्खाणि	२१५	ति प ८-६३४
चत्तारि लोयवाला	१३८	ति प. ३-६६
चरमे खुदजभवसा	८६	त्रि सा ७९१
चदाभा सच्चाभा	२१४	ति प ८-६२१
चित्तोपरिमतलादो	४८	ति प ४-२४००
चोद्दसपुव्ववरा पडि-	२११	त्रि सा ५४०
छल्लक्खा छावट्ठी	३२	ति प ८-२९७
जस्सि मग्गे ससहर-	१२४	ति प ७-२०६
जादजुगलेसु दिवमा	८६	त्रि सा ७८९
जेट्ठभवणाण परिदो	१६६	त्रि सा २९९
जेट्ठावरभवणाण	१६६	त्रि सा २९८
जोयणसहस्सवामा	७८	ति प ५-६८
जोयणसख.सखा-	१३५	त्रि सा २२०
णइरिदिदिसाविभाए	३५	ति प ४-१९५७
णामेण किण्णराई	२१२	ति प ८-६०२
णिम्माणराजणामा	२१५	ति प ८-६३०
णिरयचरो णत्थि हरी	१६२	त्रि सा २०४
तग्गिरिवरस्स होति उ	८०	ति प ५-१२८
तच्छिविद्दूण तत्तो	२१६	ति प ८-६६०
तणुरक्खा तिप्परिसा	१३७	ति प ३-६४
ततस्तृतीयकालेऽस्मिन्	८७	आ पु ३-५५
तत्थ य दिसाविभाए	३५	ति प ४-१९५८
तदणतरमग्गाइ	१२४	ति प ७-२१०
तद्दपदीणमादिम-	८६	त्रि सा ७९०
तम्मज्झबहुलमट्ठ	२१९	ति प ८-६५८
तम्मूले एक्केक्का	२०४	ति प ८-४०६
तव्वीहीयो लघिय	१२४	ति प. ७-२०७
तस्सग्गिदिसाभागे	३५	ति प ४-१९५५
तस्सोसलमणुहि कुला-	१०१	त्रि सा ८७२
ताण उवदेसेण य	२१	ति प ४-२१३७
ताण विमाणसखा	२०६	ति प ८-३०२
ताहे ससहरमडल-	१२४	ति प ७-२०८
तुसिदव्वावाहाण	२१४	ति प ८-६२३
ते चउचउकोणेसु	७८	ति प ५-६९
तेरादिदुहीणिदय-	१५२	त्रि सा १५३
ते लोयतियदेवा	२१४	ति प ८-६१६
ते सव्वे वरदीवा	५६	ति प ४-२४८३
तेसिं असोयचपय-	१७०	त्रि सा २५३
तेसिं कमसो वण्णा	१७०	त्रि सा २५२
दक्खिणदिसाए अरुणा	२१४	ति प ८-६१८

३. विशिष्ट-शब्द-सूची

(भौगोलिक एवं दार्शनिक शब्दोके साथ देव-देवियों आदिके नाम)

विशिष्ट-शब्द-सूची